परवर्ती
हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य

(सन् १७००-१६०० ई०)

[इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्०
उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध]

डॉ० राजेन्द्र कुमार, एम०ए०, डी०फिल्०
हिन्दी-विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

संगम प्रकाशन
शहराराबाग इलाहाबाद—३

नित बिहार बृन्दाबन राधा-मोहन करत रहैं।
सहज रँगीले छैल छबीले हित-चित-लाह लहैं॥
नित ब्रज नित ब्यवहार नए नित तन-मन पननि बहैं।
नित ही हित झूमैं आनँदघन जमुना-तीर गहैं॥

—घनानन्द

भूमिका

मध्ययुगीन वैष्णव हिन्दी-भक्ति-काव्य की परम्परा का प्रारम्भ यदि मैथिल कोकिल विद्यापति की राधा-कृष्ण विषयक पदावली से स्वीकार किया जाय तो लगभग सात सौ वर्षों की यह सुदीर्घ वैष्णव-भक्ति काव्यधारा विस्तृत आधार-फलक की द्योतक है। किन्तु कुछ विद्वान् विद्यापति की पदावली को भक्ति तत्त्व समन्वित स्वीकार नहीं करते, उनकी दृष्टि में पदावली आश्रयदाता नरेश के निमित्त लिखा हुआ शृंगार वर्णन मात्र है। इस विवादास्पद प्रसंग में न पड़कर विद्यापति के भक्ति-शृंगार को वैष्णव-भक्ति परम्परा से पृथक् भी रखा जाय तो भी हिन्दी का वैष्णव-भक्ति-काव्य किसी प्रकार श्री-हीन या संकीर्ण नहीं होता। वैष्णव भक्ति के सगुणोपासक कवियों की विशाल संख्या को देखते हुए पाँच सौ वर्षों का हिन्दी-भक्ति-काव्य संसार के किसी भी काव्य से गुण और परिमाण दोनों दृष्टियों से टक्कर लेने की क्षमता रखता है। सम्भवतः इन्हीं गुणों के आधार पर भक्तियुगीन हिन्दी-भक्ति-काव्य को स्वर्णयुगीन काव्य की संज्ञा दी गयी है।

भक्ति-युग में राम और कृष्ण की उपासना करने वाले दो महाकवि एक ही युग में अवतरित हुए। उसके बाद राम और कृष्णभक्त कवियों की विशाल पंक्ति खड़ी हो गयी, फलतः चार सौ वर्षों का काल भक्तिकाल के नाम से व्यवहृत हुआ। इस काल के बाद कवियों की विचारधारा या चित्तवृत्ति में परिवर्तन आया और अधिकांश कवि भक्ति के स्थान पर शृंगार और काव्यशास्त्र विषयक रीति निरूपण में लीन हो गये। इस प्रवृत्ति के आधिक्य को लक्षित करके ही परवर्ती काल की संज्ञा रीतिकाल हुई। किन्तु इस शृंगार या रीति प्रणयन के काल में भी भक्त कवियों की अजस्र परम्परा बनी रही, जिन पर सामान्यतः साहित्येतिहास लेखकों का यथोचित ध्यान नहीं गया। कुछ ऐसा भ्रम भी फैला कि जैसे भक्तिकाल के समाप्त होने पर श्रेष्ठ

भक्ति-काव्य लिखा ही नहीं गया। इस भ्रम का निराकरण इतिहास लेखकों को करना चाहिए था किन्तु प्रायः इतिहास लेखक प्रचलित मान्यताओं को ही स्वीकार कर इतिहास लिखते रहे। यह एक ऐसा भ्रम था कि इसके कारण श्रेष्ठ भक्त कवियों का इतिहास ग्रंथों में नामोल्लेख तक नहीं हुआ। इसका एक दूसरा कारण था शोध का अभाव। किसी विद्वान् अनुसंधाता ने इस दिशा में कार्य करने का प्रयास नहीं किया और साहित्येतिहासों में काल-संज्ञाओं को ही काव्य-प्रवृत्तियों का परिचायक माना जाता रहा। इधर जब से हिन्दी में शोध और छानबीन की लहर आई है, ऐसे अज्ञात और अल्पज्ञात कवियों की कृतियाँ प्रकाश में आने लगी हैं जिनकी रचनाएँ काव्य-गुण और भाव-वस्तु के स्तर पर महनीय एवं स्तुत्य हैं और जो किसी भी युग में अपने महत्व के कारण ग्राह्य बन सकती हैं। कुछ कृतियाँ तो ऐसी भी हैं जो उस काल के रूढ़ अभिधान को चुनौती सी देती प्रतीत होती हैं।

सगुण-भक्ति-काव्य में कृष्ण-काव्य का बाहुल्य है। वल्लभ-सम्प्रदाय के अष्टछापी कवियों के अतिरिक्त और भी बीसियों श्रेष्ठ कवि हैं जो रीति-काल के अन्तिम चरण और भारतेन्दु युग के उदय तक भक्ति-काव्य का सृजन करते रहे किन्तु उनका नामोल्लेख तक इतिहास ग्रथों में नहीं हुआ। स्वय भारतेन्दु ही भक्ति के क्षेत्र में साम्प्रदायिक भावना के श्रेष्ठ कवि हैं। वल्लभ सम्प्रदाय के अतिरिक्त निम्बार्क, राधावल्लभ, हरिदासी, गौड़ीय आदि सम्प्रदायों के ऐसे शताधिक श्रेष्ठ कवि हैं जो रीतियुग में और उसके बाद तक कृष्णभक्ति-काव्य के प्रणयन में भाव विभोर होकर लीन रहे और उन्होने ऐसा काव्य रचा जो किसी भी भक्ति-काव्य के समकक्ष होने की क्षमता रखता है। ऐसे कृष्णभक्त कवियों का शोध की वैज्ञानिक प्रक्रिया से अध्ययन होना चाहिए था। हर्ष का विषय है कि डॉ० राजेन्द्र कुमार ने इस विषय को अपने अनुसंधान के लिए चुना और 'परवर्ती हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य' शीर्षक शोध-प्रबन्ध लिखा। इस शोध-प्रबन्ध के माध्यम से कृष्णभक्ति परम्परा के ऐसे बीसियों कवियों की कृतियों पर प्रकाश पड़ा है जिनका कृतित्व अद्यावधि अंधकार के कुहासे में छिपा हुआ था।

डॉ० राजेन्द्र कुमार ने 'परवर्ती हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य' शीर्षक शोध-प्रबन्ध द्वारा परवर्ती काव्यों में अभिव्यक्त कृष्ण-कथा का भी विवेचन-विश्लेषण किया है, उसके उन बिन्दुओं को स्पष्ट करने का प्रयास किया है जो कृष्ण-कथा को विभिन्न दृष्टियों और विभिन्न साधना पद्धतियों के द्वारा परिवर्तित

करते रहे। कृष्ण-कथा के उपजीव्य ग्रंथों में महाभारत और भागवत पुराण तथा अन्य पुराणों का स्थान है। किन्तु लोकमानस में व्याप्त कृष्ण-कथा पुराण और महाभारत से छिटक कर कुछ दूर जा पड़ी थी। लोकप्रिय बनने के लिए कभी-कभी कथानक में काव्यरूढ़ियों अथवा कल्पित अभिप्रायों का समावेश हो जाया करता है। कृष्ण-कथा में लीलाओं का समावेश तो पुराणों ने ही कर दिया था। पुराणों में वर्णित विविध लीला-प्रसंगों ने कृष्ण की कथा को एक ओर अतिरंजित किया था तो दूसरी ओर लोकरंजन का साधन बनाया था। इन दोनों पक्षों ने कृष्ण-कथा का कितना उपकार किया यह कहना तो कठिन है, किन्तु कृष्ण-कथा में वैविध्य और कुतूहल का सम्मिश्रण अवश्य किया। डॉ० राजेन्द्र कुमार ने अपने शोध-प्रबन्ध में कृष्ण-कथा में व्याप्त इन समस्त उपकरणों का संधान बड़ी गहन एवं सूक्ष्म दृष्टि से किया है।

काव्य में वर्णित कथा-प्रसंग किसी भी व्यक्ति या नायक के चरित्र को राग रंजित करने के साथ कतिपय ऐसे अलौकिक सन्दर्भों से भी जोड़ देते हैं जो सहज विश्वसनीय नहीं रह जाते। कृष्ण के व्यक्तित्व और चरित्र की यह विलक्षणता है कि उसमें जीवन के मोहक प्रसंगों को इच्छानुरूप चित्रित किया जा सकता है। इसी कारण कृष्ण-चरित्र में तरलता और ऊष्मा लाने के लिए कवियों ने ऐसे-ऐसे प्रसंगों की उद्भावना की है जो विस्मय और पुलक दोनों की सृष्टि करते हैं। परवर्ती कृष्णभक्त कवियों ने इस प्रकार के रोमांचक प्रसंगों का वर्णन पूर्ववर्ती कृष्णभक्त कवियों की अपेक्षा अधिक किया है। अतः इन कवियों का काव्य हर्षोल्लास के साथ विस्मय का भी जनक है। जिन शोध-बिन्दुओं के आधार पर लेखक ने इस प्रबन्ध में परवर्ती कृष्णभक्ति काव्य का अनुशीलन किया है, वह कई दृष्टियों से नया है और उसकी स्थापनाओं से इस काव्य का महत्व उद्घाटित होता है।

डॉ० राजेन्द्र कुमार ने अपने शोध-प्रबन्ध में कृष्णभक्त कवियों और उनके काव्यों का परिचय देकर यह सिद्ध किया है कि यह परवर्ती काव्य गुण और परिमाण दोनों दृष्टियों से अत्यन्त समृद्ध और संग्रहणीय है। इस लुप्तप्राय साहित्य को इस प्रकार के अनुसंधान से जीवित रखा जा सकता है। मैं डॉ० राजेन्द्र कुमार के अध्यवसाय की सराहना करता हूँ। इस अध्ययन से केवल अल्पज्ञात या अज्ञात कृष्णभक्त कवियों का ही संधान नहीं होगा वरन् उनके काव्य का मूल्यांकन भी सुलभ हो सकेगा। जिस कसौटी पर इस काव्य का

लेखक ने मूल्यांकन किया है, वह शास्त्र सम्मत शोध की वैज्ञानिक प्रक्रिया है और जो निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं, वे ग्राह्य हैं।

मुझे विश्वास है इस प्रकार के गम्भीर शोध कार्य से हिन्दी साहित्य के समग्र इतिहास लेखन के लिए प्रामाणिक सामग्री सुलभ होगी। मैं इस सुन्दर शोध कार्य के लिए डॉ० राजेन्द्र कुमार को साधुवाद देता हूँ।

विजयेन्द्र स्नातक
आचार्य तथा अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

३-११-१९७२

आमुख

हिन्दी साहित्य में व्रजभाषा और कृष्णभक्ति-काव्य के प्रति मेरा विद्यार्थी-जीवन के प्रभातकाल से ही नैसर्गिक एवं अनन्य अनुराग रहा है, जिसका परिणाम यह हुआ कि अपने साहित्यिक अध्ययन में मैंने प्रत्येक स्तर पर व्रजभाषा और कृष्णभक्ति-काव्य को प्रधानता दी। सम्भवत: इसी मनोवृत्ति के प्रभाव-स्वरूप मैंने एम० ए० कक्षा में महाकवि सूरदास और उनके काव्य को विशेष अध्ययन के लिये चुना। इस रससिद्ध कवि के लोकविश्रुत और रससिक्त काव्य का अनुशीलन करते हुए मेरे मन में हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य पर ही अनुसन्धान कार्य करने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई, किन्तु विषयों की छानबीन करने पर ऐसा लगा कि सभी कृष्णभक्ति सम्प्रदायों और उनके काव्य पर अनुसन्धान कार्य हो चुका है अथवा हो रहा है। इससे पहले मुझे किंचित् निराशा तो अवश्य हुई, परन्तु कृष्णभक्ति-काव्य विषयक शोध-प्रबन्धों को देखने के अनन्तर ज्ञात हुआ कि प्राय: वे सभी भक्तिकाल अथवा सत्रहवीं शताब्दी तक ही सीमित रहे हैं। अतएव मैंने उसके परवर्ती काव्य को अपने शोध-विषय के रूप में लेना उचित समझा। भारतीय जीवन के समानान्तर हिन्दी साहित्य में भी उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध तथा बीसवीं शताब्दी का प्रारम्भ मध्ययुगीन संस्कारों, काव्य-परम्पराओं, आदर्शों और काव्य-भाषाओं के अवसान तथा सर्वतोमुखी नवीन चेतना के प्रसार का काल है। अतएव इस अध्ययन का विस्तार मैंने उन्नीसवीं शताब्दी तक ही सीमित कर देना उचित समझा।

हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य की अत्यन्त सशक्त एवं प्राणवान परम्परा रही है। भक्तिकाल के सभी कृष्णभक्ति सम्प्रदायों के कवियों ने राधा-कृष्ण के लीला-गान द्वारा उसे अपूर्व साहित्यिक गरिमा से सम्पन्न बनाया। इन्हीं की साधना के फलस्वरूप कृष्णभक्ति और कृष्णलीलाओं के अनेक तत्त्व लोक-जीवन में तथा लोक की श्रद्धा उनमें इस प्रकार अन्तर्भुक्त हुई कि आज भी दोनों का विच्छेद

असम्भव-सा प्रतीत होता है। कृष्णभक्ति-काव्यधारा शताब्दियों से लोकानुरंजन करती आ रही है। उसने युगानुरूप अपना स्वरूप बदल कर लोकजीवन को आनन्द और माधुर्य की अपूर्व एवं दिव्य भावनाएँ प्रदान की हैं। किन्तु भक्ति-युगीन कृष्णभक्त कवियों का प्रयोजन मानव की प्रबलतम प्रवृत्ति वासना का उदात्तीकरण रहा है, जब कि राजनीतिक पराभव और अतिशय शृंगारिकता की इन दो शताब्दियों में कृष्णभक्ति-काव्यधारा अपने उस आदर्श से हट कर उत्तरोत्तर क्षीण होती हुई दिखाई पड़ती है। फिर भी राधा-कृष्ण की रसमयी लीलाओं ने लोकमन को उल्लसित रखा तथा साम्प्रदायिक संरक्षण में काव्य-रचना की परम्परा विकसित होती रही। परम्परा को अक्षुण्ण बनाए रखने की दृष्टि से इस काव्य का अपना महत्त्व है। रीति-कवियों ने अपने काव्य-हेतु के अनुरूप कृष्णलीलाओं से प्रभूत तत्व संचित किए तथा लोक में न जाने कितने कवियों ने आत्मानुरंजन और लोकानुरंजन के उद्देश्य से राधा-कृष्ण की लीलाओं का आधार लेकर अपनी काव्य-साधना को प्रज्वलित रखा। समालोच्य युग के कृष्णभक्ति-काव्य में कृष्ण-कथा के नाना प्रसंगों, काव्य-रूपों, छंदों आदि के क्षेत्रों में परम्परा निर्वाह के साथ अनेक नवीन प्रवृत्तियों का आविर्भाव हुआ, जिनका उसके साहित्यिक अनुशीलन में पर्याप्त महत्व है। अस्तु, उपर्युक्त पृष्ठ-भूमि में सन् १७००-१९०० ई० तक के हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य का अध्ययन प्रस्तुत प्रबन्ध का अभिप्रेत है।

प्रस्तुत प्रबन्ध सात अध्यायों में विभक्त है। सर्वप्रथम कृष्णचरित और मध्य-युगीन हिन्दी भक्ति-साहित्य में उसकी प्रमुखता दिखाते हुए परवर्ती कृष्णभक्ति-काव्य की धार्मिक समसामयिक, और साहित्यिक पृष्ठभूमि का विवेचन किया गया है। कृष्णचरित और कृष्णभक्ति की परम्परा के निदर्शन में उसके उद्भव और विकास के अप्रासंगिक विवेचन में न जाकर उसका पुराण-युग का परवर्ती विकास ही चित्रित करना उचित प्रतीत हुआ। युग-प्रवाह के विवेचन में कृष्णभक्ति के प्रमुख केन्द्र तथा कृष्ण के लीलाधाम व्रजप्रदेश की गतिविधि पर मेरी विशेष दृष्टि रही है। तदनन्तर समालोच्य कृष्णभक्ति-काव्य पर अन्य काव्य परम्पराओं के प्रभाव का सर्वेक्षण करते हुए उसकी अपनी पूर्ववर्ती परम्परा का निरूपण किया गया है। इसी क्रम में भक्तिकाल में प्रवाहित होने वाली हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य की साम्प्रदायिक और सम्प्रदाय-मुक्त धाराओं का विश्लेषण करते हुए समीक्ष्य युग में भी उनके विकास का संकेत कर दिया गया है।

प्रबन्ध का दूसरा अध्याय पर्याप्त विस्तृत तथा तथ्यानुसन्धान की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसके अन्तर्गत अपनी पूर्व स्थापना के अनुरूप विमर्श्य कृष्णभक्ति-काव्य की साम्प्रदायिक और सम्प्रदाय-मुक्त दोनों ही धाराओं का विकास भिन्न दृष्टियों से निरूपित किया गया है। साम्प्रदायिक का अर्थ मैंने कृष्णभक्ति सम्प्रदायों में दीक्षित कवियों से लिया है। विविध कृष्ण-भक्ति सम्प्रदायों के मुख्य-मुख्य रचनाकारों की रचनाकाल, सम्प्रदाय, जीवनवृत्त और कृतियों से सम्बन्धित समस्त उपलब्ध सामग्री का समुचित परीक्षण करते हुए तत्सम्बधी प्रामाणिक विवेचन के अनन्तर मैंने अपने मतों की स्थापना की है। प्रबन्ध में विवेचित साम्प्रदायिक कवियों में से अनेक कवियों का नामोल्लेख तो विविध इतिहास-ग्रंथों में हुआ है तथा कतिपय शोध-प्रबन्धों में उनका संक्षिप्त परिचय भी मिलता है, किन्तु वह सामान्य कोटि का है। प्रायः सभी में शुक्ल जी के इतिहास की शैली का अनुगमन करते हुए रचना-कारों का परम्परागत परिचयात्मक विवरण देकर उनके काव्य के एक अथवा कुछ उदाहरण देने की शैली अपनायी गयी है। इसी क्रम में प्रबन्ध की काल सीमा में आने वाले कवियों के सम्बन्ध में यह भी निर्देश कर देना उचित होगा कि उनका चयन उनकी कृतियों के रचनाकाल के आधार पर न करके जीवन काल के आधार पर किया गया है। वृंदावनदेव, हरिराय, मनोहरराय, रूप-लाल गोस्वामी और ललितकिशोरी देव को आलोच्य युग की सीमा में लेने का यही आधार रहा है। तदनन्तर सम्प्रदाय-मुक्त वर्ग के अन्तर्गत रीति तथा कृष्णभक्ति और कृष्णलीलाओं पर आधारित काव्यों की रचना करने वाले प्रमुख कवियों और उनकी कृतियों का विवेचन मिलेगा। इन कवियों के जीवन-वृत्त तथा उनकी कृतियों का पुनरावृत्ति के भय से नामोल्लेख तथा उनके काव्य की सामान्य प्रवृत्तियों का निर्देश मात्र कर देना उचित समझा गया है। अन्त में समालोच्य काव्य के कुछ विशिष्ट रूपों, अनूदित-काव्य, सिद्धान्त-काव्य, भक्ति-चरित तथा परम्परा विषयक काव्य, टीका-काव्य तथा नाममाला और कोशकाव्य का विवेचन करते हुए उनकी वास्तविक स्थिति के सम्बन्ध में निर्णय लिया गया है। इस प्रकार आलोच्य-काव्य के प्रणेताओं और उनकी रचनाओं से सम्बद्ध सामग्री का प्रस्तुतीकरण एवं तथ्यानुसंधान इस अध्याय के मुख्य प्रयोजन हैं।

तीसरे अध्याय में परवर्ती कृष्णभक्ति-काव्य में अभिव्यक्त कृष्ण-कथा का स्वरूप स्पष्ट किया गया है। काव्य के सन्दर्भ में कृष्ण-कथा का यह अध्ययन सर्वथा मौलिक है। इसके अन्तर्गत सर्वप्रथम कृष्णलीलाओं के साम्प्रदायिक एवं

उत्सवपरक तथा विविध काव्यों में प्राप्त स्वरूप का उल्लेख करते हुये उनका लीला-स्थल की दृष्टि से व्रजलीला, मथुरा-लीला और द्वारका-लीला के अन्तर्गत वर्गीकरण किया गया है। तदनन्तर लीला की प्रकृति की दृष्टि से प्रत्येक वर्ग की लीलाओं के अलौकिक और लौकिक दो भेद करके विविध लीलाओं का विस्तृत एवं सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत किया है। राधा की नंदगाँव बरसाने की शैशवकालीन लौकिक लीलाओं का विस्तृत विवेचन सर्वप्रथम इसी प्रबन्ध में सुलभ होगा। राधा-कृष्ण की समस्त लीलाओं के स्वरूप विवेचन के साथ ही उनके मूल स्रोतों तथा भक्तिकालीन काव्य में प्राप्त आधारों का भी यथास्थान निर्देश हुआ है। इसके अतिरिक्त कृष्ण-जन्म, माखन-चोरी, राधा-कृष्ण प्रथम-मिलन, राधा-कृष्ण-विवाह, रासलीला, भ्रमरगीत आदि का भी उनकी साम्प्रदायिक और लौकिक पृष्ठभूमि में लेखक ने ही इस प्रबन्ध में सर्वप्रथम अध्ययन प्रस्तुत किया है। कृष्ण-कथा के विश्लेषण के अनन्तर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि समालोच्य काव्य में कृष्ण-कथा की परिधि उत्तरोत्तर संकुचित होती गयी तथा वस्तुगत नवीन उद्‌भावनाओं की दृष्टि से राधा-कृष्ण की नंद-गाँव, बरसाना तथा वृन्दावन की लौकिक लीलाओं का ही विशेष महत्व है।

इसके पश्चात चौथे अध्याय में परवर्ती कृष्णभक्ति-काव्य में व्यवहृत काव्य-रूपों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस काव्य में प्राप्त गीति-काव्य मुक्तक-काव्य, प्रबन्ध-काव्य और लीला-नाट्य के स्वरूप, प्रकारों और प्रवृत्तियों का विवेचन करते हुए मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि काव्य-रूपों की अनेक-रूपता कृष्णभक्ति और कृष्णलीलाओं के प्रतिकूल सिद्ध हुई तथा अपवादों को छोड़ कर गेय पदों के अतिरिक्त अन्य काव्य-रूपों में उसकी मूल चेतना सुरक्षित नहीं रह सकी।

पाँचवें अध्याय में कला का स्थूल अर्थ ग्रहण करते हुए आलोच्य काव्य के अन्तर्गत दृश्य-चित्रण, प्रकृति-चित्रण तथा उक्ति-वैचित्र्य और अलंकार-विधान की सामान्य प्रवृत्तियों का निरूपण हुआ है। उपर्युक्त पक्षों के विश्लेषण के अनन्तर अन्त में तत्सम्बन्धी निष्कर्ष दिये गये हैं।

छठे अध्याय में परवर्ती कृष्णभक्ति-काव्य में प्रयुक्त पद-शैली, लोकगीतों और छंदों का अध्ययन मिलेगा। पद-शैली के विवेचन में उसके स्वरूप, उसमें प्रयुक्त विविध संगीत शैलियों और वस्तु क्रमानुसार प्रयुक्त मुख्य-मुख्य रागों का विवेचन किया गया है। इस युग के कृष्णभक्त कवियों द्वारा प्रयुक्त लोकगीत अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। विशेष कर चाचा वृन्दावनदास और भारतेन्दु के लोक-

गीत। इसीलिए मैंने इन दोनों कवियों के लोकगीतों का पृथक् से विवेचन किया है। इसी क्रम में पदों के अन्तर्गत प्रयुक्त लोकधुनों के स्वरूप का भी विभिन्न पदकारों के पदों के आधार पर विश्लेषण किया गया है, जो अपने ढंग का सर्वप्रथम और मौलिक यत्न है। छंदों के अध्ययन में विविध कवियो द्वारा प्रयुक्त छंदों के परिगणन की अपेक्षा उनकी प्रयोगगत अनेकरूपता पर विशेष दृष्टि रखी गयी है। इस विवेचन में सर्व प्रथम स्वतन्त्र रूप में प्रयुक्त छंदों के साथ ही पद-शैली के अन्तर्गत व्यवहृत छंदों को भी सम्मिलित कर लिया गया है। मांझ और लावनी को मैंने छंद शैलियों के रूप में स्वीकार किया है, जो इनसे सम्बन्धित मेरी अपनी धारणा है। मिश्रित छंदों की परम्परा में चाचा वृन्दावनदास के छंदों का महत्वपूर्ण स्थान है। उनका जो निर्देश और विश्लेषण इस अध्ययन में किया गया है, वह अन्यत्र नहीं मिलेगा। इस प्रकार यह सम्पूर्ण अध्याय अपने प्रतिपाद्य का मौलिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

प्रबन्ध का अन्तिम अध्याय परवर्ती कृष्णभक्ति-काव्य की भाषा से सम्बद्ध है। भाषा के अध्ययन में मौलिकता लाने के प्रयोजन से व्रजभाषा और कृष्णभक्ति-काव्य के अन्योन्य सम्बन्ध का निर्देश करते हुए इसे तीन भागों में वर्गीकृत किया गया है, शब्द-समूह, रूप-विचार और अन्य भाषाओं का प्रयोग। शब्द-समूह के विवेचन में मैंने अभी तक के अध्ययनों के समान केवल विविध वर्गों के शब्दों की सूची मात्र न देकर उनके प्रयोग तथा स्वरूप के स्पष्टीकरण में भाषा वैज्ञानिक दृष्टि का भी स्पर्श दिया है। रूप-विचार वाला अंश इस अध्याय में सर्वाधिक महत्व का है। इसके अन्तर्गत मुख्य-मुख्य कवियों की भाषा से संज्ञा, सर्वनाम, क्रियापद आदि शब्द रूपों का संकलन करके उनके बहुप्रचलित प्रयोगों का निरूपण किया गया है। समस्त शब्द-रूपों के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि आलोच्य काव्य की व्रजभाषा में परिनिष्ठित एवं साहित्यिक प्रयोगों की प्रधानता रही है तथा व्रजभाषा लोक से उत्तरोत्तर दूर पड़ती गयी। इस अध्याय के अन्तिम अंश में यह दिखाया गया है कि समालोच्य युग में कृष्ण-काव्यधारा के कवियों ने व्रजभाषा के साथ पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती और बंगला तथा हिन्दी-प्रदेश की विविध बोलियों—अवधी, भोजपुरी, खड़ीबोली आदि में भी काव्य-रचना की, जो इनकी विविध भाषा-प्रियता का द्योतक तथ्य है। विमर्श्य काव्य की भाषा का यह अध्ययन सर्वथा मौलिक है।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि इस प्रबन्ध में प्रथम अध्याय के अतिरिक्त शेष सभी अध्यायों में प्रयुक्त सामग्री तथा उसका विवेचन पूर्णतया

मौलिक है। मैंने आद्योपान्त यह यत्न किया है कि अनावश्यक एवं अप्रासंगिक विस्तार से बचकर आवश्यक को तथ्यात्मक आधार देते हुए यथासम्भव सुस्पष्ट किया जाये, जिससे निर्दिष्ट काव्य के प्रबन्ध में विवेचित विविध पक्ष सम्यक् रूप से उद्‌घाटित हो सकें।

प्रस्तुत कार्य में मेरे समक्ष सामग्री तथा उसके संकलन से सम्बन्धित अनेक कठिनाइयाँ आयीं। प्रबन्ध में विविध कृष्णभक्ति सम्प्रदायों के जिन कवियों की जीवनी और कृतियों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, उनसे सम्बन्धित सामग्री के संकलन हेतु मैंने व्रजप्रदेश की कई यात्राएँ कीं। मुद्रित ग्रन्थों को प्राप्त करने में तो कोई विशेष कठिनाई नहीं पड़ी, परन्तु हस्तलिखित ग्रंथों के अध्ययन में अनेक प्रकार की बाधाएँ उपस्थित हुईं। खोज रिपोर्टों और स्थानीय सूत्रों से प्राप्त सूचनाओं के अनुसार हस्तलिखित ग्रंथों को प्राप्त करना तो दूर की बात है, उनका अध्ययन के लिये सुलभ हो पाना भी अत्यन्त श्रम-साध्य है। इसके अतिरिक्त साम्प्रदायिक साहित्य के कुछ संरक्षक अब उसका साहित्यिक और लौकिक मूल्य भी भली प्रकार समझने लगे हैं। अतएव उसके अध्ययन का श्रेय वे किसी अन्य को सहज ही नहीं प्राप्त होने देते। फिर भी, किसी प्रकार अपने अध्ययन से सम्बन्धित सामग्री के संकलन कार्य में सहायता देने वाले सज्जन मुझे मिलते गये और मैं अपने अभियान में सफल हुआ।

सामग्री संकलन में मेरा सर्वप्रथम मार्ग-दर्शन गुरुवर डॉ० भगवती प्रसाद सिंह, गोरखपुर ने किया, जिनके निर्देशन में प्रस्तुत कार्य का सूत्रपात हुआ था। विद्वत्वर डॉ० विजयेन्द्र स्नातक, डॉ० सत्येन्द्र और व्रज साहित्य के मर्मज्ञ श्री प्रभुदयाल मीतल ने सामग्री-संकलन विषयक व्यावहारिक सुझाव देकर मुझे ससमय उपकृत किया, अन्यथा मैं इधर-उधर भटक जाता। श्री वेदप्रकाश गर्ग की सूचनाएँ भी मेरे लिये पर्याप्त उपयोगी एवं महत्वपूर्ण रही हैं। व्रजप्रदेश के साम्प्रदायिक वैमनस्य से ऊपर उठ कर विविध सम्प्रदायों के कवियों के हस्त-लिखित संग्रहों के दर्शन और ग्रंथों के अध्ययन का मुझे जिन महानुभावों ने सुयोग प्रदान किया, उनमें श्री व्रजवल्लभशरण वेदान्ताचार्य, बाबा किशोरीशरण अलि और बाबा कृष्णदास प्रमुख हैं। इन सभी उपकारकों के प्रति मैं अपना अनन्य साधुवाद समर्पित करता हूँ। इस अवसर पर मुझे स्वर्गीय द्वारकादास पारीख की पुण्यात्मा का सहज ही स्मरण हो आता है, जिन्होंने अपने औदार्य के अनुरूप मुझे भी वल्लभ-सम्प्रदाय के अनेक अज्ञात रचनाकारों और उनकी

कृतियों से सम्बन्धित सामग्री प्रदान करने का वचन दिया था, किन्तु उनकी आकस्मिक गोलोक यात्रा के कारण मैं इस सौभाग्य से वंचित ही रह गया। डॉ० नारायणदत्त शर्मा, डॉ० शरणबिहारी गोस्वामी और श्री निरंजनदेव शर्मा ने भी व्रज-प्रवास में मेरी अनेक प्रकार से सहायता की है। इन सभी के प्रति आभार प्रकट करना मेरा कर्त्तव्य है।

सामग्री संकलन और उसके अध्ययन में मुझे नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, व्रज साहित्य मण्डल मथुरा, आगरा विश्वविद्यालय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, और इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के पुस्तकालयों से पर्याप्त सहायता मिली है। इन सभी के संचालक और कर्मचारी मेरे धन्यवाद के पात्र हैं।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध श्रद्धेय प्रो० रामकुमार वर्मा के निर्देशन में पूर्ण हुआ है। इसे अन्तिम रूप देने तक उन्होंने अपनी स्नेहसिक्त एवं मर्मोद्‌घाटिनी दृष्टि का जो सम्बल प्रदान किया है, उसे शिष्य होने के नाते मैं अपना सहज अधिकार ही कहूँगा। अतएव उनके प्रति शिष्टाचार की किसी भी शब्दावली का प्रयोग करके मैं कृतज्ञता ज्ञापित करने में अपने को असक्षम पाता हूँ। उनके अतिरिक्त श्रद्धेय डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पं० उमाशंकर शुक्ल, डॉ० हरदेव बाहरी, डॉ० व्रजेश्वर वर्मा, और डॉ० रघुवंश से भी समय-समय पर मुझे अध्ययन विषयक उपयोगी सुझाव मिले हैं। मैं इन सभी गुरुजनों का हृदय से कृतज्ञ हूँ। शोध-प्रबन्ध को अंतिम रूप देने में मेरे आत्मीय डॉ० योगेन्द्र प्रताप सिंह तथा प्रिय शिष्यों कुँवर राजेन्द्र सिंह, श्री छोटेलाल गुप्त और श्री रामकिशोर ने अनेक प्रकार से सहायता की है, परन्तु एतदर्थ उन्हें धन्यवाद देना उनकी आत्मीयता का अवमूल्यन होगा। मैं उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

शोध-प्रबन्ध जिस रूप में स्वीकृत हुआ था, उसमें अब तक प्रकाश में आयी नवीन सामग्री को भी यथास्थान संदर्भित कर दिया गया है। फिर भी सम्भव है कि उसमें कुछ अभाव रह गये हों, जिनका अगले संस्करण में परिष्कार कर दिया जायेगा। यदि मेरा यह कार्य भक्ति-साहित्य में अभिरुचि रखने वाले जिज्ञासुओं को किसी भी रूप में संतुष्टि प्रदान कर सका, तो मैं अपने श्रम को सार्थक समझूँगा।

अन्त में मैं उन सबका पुनः स्मरण करना चाहता हूँ, जिनके सद्‌भाव से आज यह शोध-प्रबन्ध प्रकाशित हो रहा है।

दीपावली
५ नवम्बर १९७२ ई०

—राजेन्द्र कुमार

शब्द-संकेत

खो० रि०	खोज रिपोर्ट
घ०	घनानन्द-ग्रन्थावली
छं०	छंद
ब्र०	ब्रजप्रेमानन्दसागर
ब्र० बि०	ब्रजविलास
भ०	भारतेन्दु-ग्रन्थावली
सं०	संख्या
सु० हि०	सुजान-हित
शृं० र० सा०	शृंगाररससागर
ह०	हरिराय का पद साहित्य
ह० प्रति०	हस्तलिखित प्रति

अध्याय सात में संकेत-अक्षरों के आगे दी गयी संख्याएँ सम्बद्ध ग्रंथों की पृष्ठ संख्याएँ हैं ।

अनुक्रम

अध्याय—२

कवि और काव्य ५८-२३९

१. साम्प्रदायिक कवि और काव्य

निम्बार्क-सम्प्रदाय—वृन्दावनदेव, घनानन्द, रसिकगोविन्द, व्रजदासी, सुन्दर कुंवरि, कृष्णदास, नारायणस्वामी।

वल्लभ-सम्प्रदाय—गोस्वामी हरिराय, व्रजवासीदास, नागरीदास, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र।

चैतन्य-सम्प्रदाय—मनोहरराय, प्रियादास, वृन्दावनदास, वैष्णवदास रसजानि, सुबल श्याम, गौरगणदास, ललितसखी, दक्षसखी, रामहरि, ललितकिशोरी।

राधावल्लभ-सम्प्रदाय—गोस्वामी हित रूपलाल, अनन्य अली, रसिकदास, चाचा वृन्दावनदास, प्रेमदास, चन्द्रलाल गोस्वामी, सहचरिसुख, कृष्णदास भावुक, हठी जी।

हरिदासी-सम्प्रदाय—ललितकिशोरीदेव, ललितमोहनीदेव, सहचरिशरण रूपसखी, किशोरदास, शीलसखी, भगवतरसिक, शीतलदास, बनीठनी 'रसिकबिहारी'।

ललित-सम्प्रदाय—वंशीअलि, किशोरी अलि, अलबेली अलि, संकेत अलि।

२. सम्प्रदाय-मुक्त कवि और काव्य

३. अनूदित-काव्य

अनूदित-काव्य का वर्गीकरण

१. संस्कृत से अनूदित रचनाएँ

२. बंगला से अनूदित रचनाएँ

४. सिद्धान्त-काव्य

५. भक्तचरित तथा साम्प्रदायिक इतिहास-काव्य

६. टीका-काव्य

१. संस्कृत रचनाओं की टीकाएँ

२. ब्रजभाषा रचनाओं की टीकाएँ

परम्परा और पृष्ठभूमि

मध्ययुगीन भक्ति-साहित्य और कृष्णचरित

भारतीय साहित्य का अधिकांश धर्मप्रेरित है। हमारी चिन्ताधारा की धर्ममूलक प्रवृत्ति के कारण किसी भी भारतीय भाषा के साहित्य का सम्यक् अनुशीलन उसकी विशिष्ट धार्मिक पीठिका के अभाव में अपूर्ण कहा जायेगा। विशेष कर मध्ययुग का हिन्दी, गुजराती, बंगला और मराठी भाषाओं का साहित्य धर्मप्रसूत है। वैष्णव धर्म की आधारशिला भक्तितत्व का निरूपण ही इस युग के साहित्यकारों का मुख्य प्रतिपाद्य था। भक्तिकाव्य के प्रणेता प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में मध्यकालीन आचार्यों द्वारा स्थापित धार्मिक संप्रदायों से संबद्ध हैं। अतएव भक्ति-साहित्य की विविध धाराओं का संबंध भारतीय धर्म और दर्शन की विविध परम्पराओं से जोड़ा जाता है। परम्परागत भक्तिपरक एवं दार्शनिक विचार परम्पराओं से परिपुष्ट होने के कारण मध्ययुग के भक्तिकाव्य के विकास की स्वाभाविक परिणति माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त भक्त कवियों की वैयक्तिक साधना का उद्देश्य था, संक्रांति काल की स्थिति में लोकमानस को वैचारिक सम्पदा के रूप में कुछ ठोस वस्तु प्रदान करना। वह अनेक कारणों से उन्हें भक्ति और धर्म में ही लक्षित हुई।

अस्तु, इस भक्तिकाव्य की पृष्ठभूमि में एक ओर तो हमारे साहित्य और संस्कृति की परम्परागत आध्यात्मिक प्रवृत्ति थी तथा दूसरी ओर लोकमंगल की भावना से अनुप्राणित साहित्यकारों की क्रांतिदर्शी दृष्टि। समवेत रूप से इन्हीं तत्वों से विधर्मी शासन से त्रस्त मध्यकालीन जन-जीवन में नवीन चेतना का संचार हुआ। भक्तिकाल की निवृत्तिमूलक निर्गुण भक्तिधारा की अपेक्षा प्रवृत्तिमूलक सगुण भक्तिधारा ने जनमानस को अधिक आकृष्ट किया। उपासना के लिए मूर्त आधार प्रस्तुत करने में राम और कृष्ण की लीलाएँ विशेष सहायक हुईं। मर्यादा पुरुषोत्तम राम का लोकरक्षक व्यक्तित्व मध्यदेश में केवल हिन्दू कवियों के ही बीच समादृत हो सका। परन्तु कृष्ण की प्रेम-लक्षणा भक्ति के प्रवाह में देशी-विदेशी, हिन्दू-मुसलमान, सभी निमग्न हो

गए। उन्होंने अपने मन की शक्ति से भरपूर रस उड़ेला और अपनी काव्य साधना द्वारा लोकमानस के तृषित जीवन को परितृप्त किया।

कृष्णचरित के ललित पक्ष की प्रधानता

भारतीय संस्कृति के ललित पक्ष का दर्शन यदि लोकरंजक एवं व्यापक रूप में कहीं हो सकता है, तो वह कृष्ण के ललित एवं उदात्त चरित में ही संभव है। साहित्य में तो जननायक कृष्ण का लीलात्मक रूप इतनी प्रचुरता के साथ अभिव्यक्त हुआ कि उपनिषद, महाभारत, जातक-कथाओं और पुराणों में उपलब्ध उनके व्यक्तित्व के लोकरक्षक, राजनीतिक, योगी, धर्मात्मा आदि रूप गौण पड़ गए। इतना ही नहीं मध्ययुग में कृष्ण की ब्रह्म की कल्पना पर आधृत जिन दार्शनिक मतवादों का आविर्भाव हुआ उनकी भावधारा में भी एक सहज सरसता एवं आकर्षण का सन्निवेश मिलता है। काल-प्रवाह के साथ दार्शनिकों और कवियों की व्यक्तिगत व्याख्याएँ एवं रुचि सांस्कृतिक आदर्शों के अनुसार कृष्णकथा और कृष्णकाव्य में नवीन संदर्भों की योजना करती गईं। कृष्ण के व्यक्तित्व में भक्तों को आत्मनिवेदन एवं अन्तरानुभूति से निसृत श्रद्धायुक्त पुनीतभावनाभक्ति के दर्शन हुए। दार्शनिकों ने उनके ब्रह्मरूप की व्याख्या की। कवियों ने काव्य सृजन हेतु उर्वर एवं ललित कल्पना के लिए प्रचुर अवकाश देखकर असंख्य काव्य पुष्पों से लोकनायक कृष्ण की अर्चना की।

कृष्णभक्ति-काव्य की आधारभूमि कृष्ण के लीलामय रूपों की श्रद्धा सम्पन्न विवेचना तथा भक्ति के समन्वय की प्रतीक है। भक्तों और उपासकों ने इसे भावनाओं के इन्द्रधनुषी रूप में संवारते हुए अपने जीवन में परम शान्ति का अनुभव किया है। यद्यपि भारतीय जनमानस में कृष्ण के प्रति अनुरागमयी पूजा-भावना की दीर्घकालीन परम्परा है, तथापि सोलहवीं शताब्दी में सगुण भक्ति के प्रवाह में हिन्दी, गुजराती, बंगला, मराठी आदि भाषाओं के साहित्य में कृष्णभक्ति का जो स्वरूप विकसित हुआ, उसने अपने परवर्ती काव्य के लिए पृष्ठभूमि का कार्य किया। आगे चलकर परिस्थितियों और अन्य प्रभावों के परिणामस्वरूप उसमें सन्निहित अनेक तत्व इस प्रकार उभर आये कि पूर्ववर्ती एवं परवर्ती कृष्णभक्ति-काव्य में अंतर की रेखाएँ स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती हैं।

मध्ययुग के हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य पर मुख्य रूप से भागवत तथा गोपालकृष्ण की ललित कथा को पल्लवित करने वाले पुराणों का ही प्रभाव

मिलता है। अतएव वैष्णव भक्ति और कृष्णकथा के संश्लिष्ट विकास के अप्रासंगिक विवेचन की उपेक्षा कर के पुराण-साहित्य के संदर्भ में उनके विकास का सिंहावलोकन उचित प्रतीत होता है।

पुराण और कृष्णचरित

पुराणों की रचना के पूर्व वैष्णव धर्म का सूक्ष्म रूप ही प्रकाश में आ सका था। पुराणों ने भक्ति को व्यापक धरातल प्रदान किया। नाना कथाओं, गूढ़ आध्यात्मिक संकेतों तथा सरल भाषा के प्रयोग के कारण पुराणों के द्वारा वैष्णव धर्म एवं भक्ति का व्यापक प्रचार हुआ। भागवत, विष्णु आदि पुराणों को तो मध्ययुगीन कृष्णभक्ति-सम्प्रदायों में से कुछ ने अपने धर्मग्रन्थ के रूप में महत्व प्रदान किया। भगवद्‌महिमा का आख्यान, जो अभी तक शेष था, पुराणों के द्वारा सम्पन्न हुआ।

कृष्णचरित के माधुर्य रूप का प्रतिपादन पुराणों की रचना का मुख्य प्रयोजन था। पुराणों के द्वारा प्रतिपादित एवं पल्लवित कृष्ण की रसिक भावना भक्ति में इस प्रकार अन्तर्भुक्त हो गई कि उसके आभाव में लीला-विहारी का व्यक्तित्व श्रीहीन-सा प्रतीत होता है। इससे पूर्व कृष्ण के योगी, धर्मात्मा, राजनीति-विशारद, परब्रह्म आदि रूपों में भक्तों को आस्वादन योग्य सामग्री नहीं मिलती। पुराणसाहित्य ने एक ओर तो कृष्ण के अवतारी व्यक्तित्व की सुरक्षा की तथा दूसरी ओर सुदृढ़ मनोवैज्ञानिक भूमि पर जन-मानस को सिक्त करने वाली रस-पेशल सामग्री जुटाई। कृष्ण का माधुर्य मण्डित रूप पुराण-साहित्य में विविध लीलाओं की अवतारणा करने में सहायक हुआ। इसी के द्वारा भक्ति के अन्तर्गत वात्सल्य एवं सख्य के साथ शृंगार को भी स्थान मिला। कृष्णाश्रित प्रेमलक्षणा-भक्ति को दर्शन की ठोस भूमि पुराणों के ही द्वारा प्राप्त हुई। भागवत में लीला पुरुषोत्तम कृष्ण के जीवन की गूढ़ आध्यात्मपरक लीलाएँ हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य का सम्बल बनीं। इनके अन्तर्गत भक्ति की शुद्ध भावना में लौकिक प्रवृत्तियों का अन्तर्भाव करके शृंगार के स्थायी भाव रति का परिष्कृत, उदात्त एवं अलौकिक पक्ष निर्धारित किया गया। राधाकृष्ण के इहलौकिक एवं पारलौकिक अस्तित्व के संश्लेष द्वारा लौकिक प्रेम को उदात्त भावभूमि प्रदान करने का श्लाघनीय उपक्रम पुराणों के महत्व को और भी बढ़ा देता है।

पुराणों में विष्णु के अवतारों की सूचना विस्तृत रूप में मिलती है। परन्तु विष्णु के अन्य अवतारों की अपेक्षा कृष्णावतार की चर्चा अपेक्षाकृत अधिक

हुई है। भागवत, हरिवंश और ब्रह्मवैवर्त पुराणों का मुख्य प्रतिपाद्य कृष्ण-चरित है। मध्ययुगीन कृष्णभक्ति सम्प्रदायों की आराध्ययुगल के स्वरूप एवं उनकी लीला विषयक मान्यताएँ भी मूलतः पुराणों पर ही आधारित हैं।

भागवत कृष्णकाव्य का आधार ग्रंथ

भागवत सम्पूर्ण कृष्णभक्ति-साहित्य का प्रधान उपजीव्य ग्रंथ है। उसे कृष्णलीलाओं का कोश कहा जा सकता है। भागवत ने हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य की स्रोतस्विनी को अपूर्व शक्ति प्रदान की। कृष्णभक्ति का गूढ़ एवं दार्शनिक विवेचन कदाचित भागवत की तुलना में अन्यत्र नहीं मिलता। साहित्य और भक्ति की युगपत अभिव्यक्ति इस पुराण की विशेषता है। भागवत में कृष्णाख्यान के लोकोत्तर स्वरूप का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।[1] वल्लभ और चैतन्य सम्प्रदायों में प्रस्थान चतुष्टय का नियोजन भागवत की महत्ता का प्रतीक है। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने भागवत को समाधि-भाषा के नाम से अभिहित किया है। जिन परम तत्वों की अनुभूति व्यास देव को समाधि दशा में हुई थी, उन्हीं का विशद प्रतिपादन भागवत में किया गया है। भागवत में ही सर्वप्रथम गोपालकृष्ण के जन्म से लेकर द्वारका प्रवास तक की घटनाएँ विस्तारपूर्वक वर्णित हुई हैं। वस्तुतः पुराणों के द्वारा कृष्णभक्ति को व्यापका धरातल प्राप्त हुआ तथा कृष्णकथा में विविध प्रसंगों को जन्म देने की उर्वर शक्ति संभूत हुई।

पौराणिक युग के उपरांत धार्मिक गतिविधि

पौराणिक युग का विस्तार ईसापूर्व दूसरी शती से छठी शती तक माना जाता है। यह युग धार्मिक घात-प्रतिघात एवं सांस्कृतिक संघर्ष का युग रहा है। बौद्ध और जैन सुधार-आन्दोलनों का आविर्भाव इसी युग में हुआ। गुप्त शासकों के संरक्षण में भागवत धर्म का पुनरुत्थान हुआ। इसके अनन्तर हर्षवर्धन के संरक्षण में बौद्धधर्म को विकास का अवसर मिला। परिणामतः उत्तर भारत में भागवत धर्म की जड़ें हिलने लगीं। आगे चल कर बौद्ध धर्म का भी स्वरूप विकृत होने लगा। वज्रयान, सहजयान और मंत्रयान की साधना

---

[1] निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुक्तम्।
पिबत भागवत रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः।।
भागवत १।१।२

के अन्तर्गत उसके उत्तरोत्तर परिवर्तनशील विकृत रूपों की परिणति देखी जा सकती है। तेरहवीं शती तक होने वाले इन परिवर्तनों ने बौद्ध धर्म को खोखला कर दिया था। अपनी लोकविरोधी प्रवृत्तियों से वह धीरे-धीरे मृतप्राय हो ही रहा था। इस्लामी धर्म साधना ने तो उसकी लोक लीला ही समाप्त कर दी।

भक्ति का दक्षिणी-प्रवाह और आलवार संत

सातवीं शती में वैष्णव धर्म के अन्तर्गत साम्प्रदायिक संगठन का श्रीगणेश हुआ। इसके मूल प्रेरक दक्षिण के आलवार संत थे। भागवत में ऐसा उल्लेख आया है कि विष्णु के परम भक्त दक्षिण में ताम्रपर्णी, कृतमाला, पयस्विनी, कावेरी और महानदी के तटों पर उत्पन्न होंगे।[1] आलवार भक्त बारह बताये जाते हैं। इन्होंने माधुर्य भक्तिपरक लगभग चार हजार गीत तमिल भाषा में रचे। इन गीतों का संग्रह नाथमुनि ने ईसा की दसवीं शताब्दी के लगभग किया था। आलवार भक्तों के गीतों में भक्ति का पावन एवं तीव्र उन्मेष प्रस्फुटित हुआ है। आत्मानुभूति प्रेरित ये गीत भागवत धर्म के पुनरुद्धार के

---

[1] कृतादिषु प्रजा राजन् कलाविच्छन्ति सम्भवम्।
कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः ॥३८॥
क्वचित् क्वचिन्महाराज द्रविडेषु च भूरिशः।
ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी ॥३९॥
कावेरी च महापुण्या प्रतीची च महानदी।
ये पिबन्ति जलं तासां मनुजा मनुजेश्वर।
प्रायो भक्ता भगवति वासुदेवेऽमलाशयाः ॥४०॥

भागवत स्कंध ११, अध्याय ५

बारह आलवारों के तमिल नाम इस प्रकार हैं :—

१. पोयगै आलवार, २. भूतत्तालवार, ३. पेयालवार, ४. तिरुमलिसई आलवार, ५. नम्मालवार, ६. मधुरकवि आलवार, ७. कुलशेखरालवार, ८. पेरियालवार, ९. आंडल, १०. तोंडरडीपोडी आलवार, ११. तिरुप्पाण आलवार, १२. तिरुमंगै आलवार,

माध्यम बने। इन गीतों के अन्तर्गत चेतन अथवा अचेतन रूप में जन मानस को आकर्षित करने वाली एक दार्शनिक पीठिका मिलती है[१]।

आलवारों की भक्ति में दास्य, वात्सल्य तथा कांता भावों की प्रधानता है, जो मुख्यतया प्रपत्ति की भावना पर अवलम्बित हैं। उनके अनुसार लौकिक विषय अनित्य होते हैं। प्रपत्ति द्वारा विष्णु की प्राप्ति और सांसारिक कष्टों से मुक्ति मिल जाती है। आलवारों ने विष्णु को विविध नामों से अभिहित किया है। उनका विष्णु सच्चिदानन्द स्वरूप अवतारी है। वे मूर्त रूप में भक्तों की सहायता करने के लिए अवतार लेते हैं। विष्णु के अवतारों में आलवारों ने राम और कृष्ण की सगुणोपासना पर विशेष बल दिया है।

भक्त आचार्यों का आविर्भाव

आलवारों की भावधारा से प्रेरणा प्राप्त करके वैष्णव धर्म के दक्षिणात्य आचार्यों ने समस्त उत्तर भारत में कृष्णभक्ति का प्रचार किया। इस संबंध में जनश्रुति है कि भक्ति का जन्म दक्षिणी भारत में हुआ था और रामानन्द के द्वारा यह उत्तरी भारत में लाई गई थी[२]। परन्तु श्री सी० वी० वैद्य का मत है कि भक्ति का यह प्रवाह दक्षिण से नहीं, पूर्वी भारत से आया था तथा मध्ययुग में उस प्राचीन वैष्णव भावना का नवीन रूप में उदय हुआ जो भागवत के पहले से चली आ रही थी[३]। वस्तुतः मध्ययुग में वैष्णव भक्ति का प्रचार देशव्यापी रूप में हुआ था और भारत का कोई भी भाग उससे अछूता न बचा था। अतएव वैष्णव भावना के पूर्वी भारत में भी उन्मेष का अनुमान किया जा सकता है। परन्तु हिन्दी के मध्ययुगीन कवियों द्वारा की

---

१ Their Hymns were means of great revival of popular religion whose effects spread through the whole of the land, behind it conscious or unconscious lay a philosophy ....Philosophy is sufficiently in background in many of the Hymns for them to become the treasure of the common man.—Hymns of Alvars, Introduction, page 1.

२ भक्ति द्रविड़ उपजी लाये रामानन्द।
परगट किया कबीर ने सात द्वीप नवखण्ड॥

३ History of Medeaval India, Vol. III, page 143, C. V. Vaidya.

गई दार्शनिक विवेचनाएँ, उनकी रचनाओं में वर्णित परम्पराएँ एवं जनश्रुतियाँ उत्तर भारत में विकसित भक्ति के प्रवाह को दक्षिण से आया हुआ सिद्ध करती हैं।

दक्षिण में नाथमुनि की परम्परा में पुण्डरीकाक्ष, राममिश्र और यमुनाचार्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत का सिद्धान्त यमुनाचार्य के ही मत पर आधारित है। यद्यपि इन दक्षिणात्य आचार्यों को भक्ति की प्रेरणा आलवारों की दिव्य एवं ललित पदावली से प्राप्त हुई थी, तथापि दार्शनिक क्षेत्र में उन्हें शंकर के अद्वैतवाद, मायावाद एवं वैराग्यवाद का भी समाधान अभिप्रेत था। अतएव उन्होंने भक्ति साधना को अद्वैत सम्मत दार्शनिक भूमिका प्रदान कर जीव और ब्रह्म के सम्बन्धों की प्रेमभक्ति-परक व्याख्या की। भक्ति और दर्शन के तत्वों से समन्वित होकर उनका विवेचन भारतीय चिन्ताधारा एवं साहित्य के लिए अत्यन्त उपादेय सिद्ध हुआ। अनुभूति और दर्शन के विलक्षण संयोग से भाषा साहित्य को एक सुदृढ़ पीठिका प्राप्त हुई।

कालक्रमानुसार वैष्णव धर्म के आचार्यों में रामानुज (सन् १०३७-११३७) निम्बार्क (१२वीं शती, मध्य १३वीं शती) और विष्णुस्वामी आते हैं। इन आचार्यों ने श्री, सनक, रूद्र और ब्रह्म सम्प्रदायों का प्रवर्तन किया। रामानुजाचार्य के अतिरिक्त शेष तीन आचार्य कृष्णभक्ति के उन्नायक थे। रामानुज की परम्परा में आगे चल कर रामानंद हुए। यद्यपि कृष्णभक्ति का स्रोत उक्त आचार्यों की भक्तिसाधना के रूप में पहले ही प्रस्फुटित हो चुका था, किन्तु कृष्ण की लीलाभूमि व्रजमण्डल में सांप्रदायिक संगठन की प्रवृत्ति पन्द्रहवीं शती के पूर्व लक्षित नहीं होती। सोलहवीं शती में व्रजमण्डल में कृष्णभक्ति को पल्लवित करने वाले आचार्यों में, वल्लभाचार्य, चैतन्यमहाप्रभु, गोस्वामी हितहरिवंश और स्वामी हरिदास का नाम लिया जाता है। इनके द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदायों का सम्बन्ध क्रमशः निम्बार्क, मध्व और विष्णुस्वामी से जोड़ा जाता है। इस विषय में डा० व्रजेश्वर वर्मा का प्रस्तुत मत उल्लेखनीय है—

"परन्तु इनमें से विष्णुस्वामी की ऐतिहासिकता ही संदिग्ध है तथा निम्बार्क और मध्व सम्प्रदायों की कोई संगठित परम्परा सोलहवीं शताब्दी ई० के पहले उत्तर भारत में कहीं मौजूद थी, इसका कोई पुष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं हुआ है। निम्बार्क द्वारा प्रणीत वेदान्त-पारिजात सौरभ और 'दशश्लोकी' उपलब्ध हैं, जिनमें ब्रह्मसूत्रों का द्वैताद्वैतपरक भाष्य तथा प्रेमभक्ति के स्वरूप का निरूपण किया

गया है। परन्तु निम्बार्क द्वारा स्थापित सनकादि या हंस सम्प्रदाय के अनुयायी कुछ ही हिन्दी भक्तकवि हुए हैं। मध्वाचार्य के द्वैतवादी विचारों को प्रतिपादित करने वाले ब्रह्मसूत्र, गीता, उपनिषद् और भागवत के भाष्य उपलब्ध हैं, परन्तु मध्व द्वारा स्थापित ब्रह्म सम्प्रदाय का ब्रज के भक्ति-सम्प्रदायों में प्रत्यक्षतः कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं है। किसी हिन्दी भक्त-कवि का इस सम्प्रदाय से सीधा सम्बन्ध नहीं देखा गया है"।[1]

कृष्णभक्ति-काव्य के प्रेरक सम्प्रदाय

निम्बार्क-सम्प्रदाय

भक्तियुग का हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य, निम्बार्क, वल्लभ, चैतन्य, राधावल्लभ और हरिदासी सम्प्रदायों के संरक्षण में विकसित हुआ। कालक्रम की दृष्टि से निम्बार्क का समय सबसे पहले पड़ता है। निम्बार्क ने द्वैताद्वैत अथवा भेदाभेद सिद्धांत का प्रवर्तन किया। निम्बार्क संप्रदाय को हंस संप्रदाय भी कहते हैं। निम्बार्काचार्य के दो ग्रंथ प्रसिद्ध हैं—'वेदान्त पारिजात सौरभ' और 'दशश्लोकी।' इनमें से प्रथम तो ब्रह्मसूत्रों पर भाष्य है और द्वितीय के अन्तर्गत निम्बार्काचार्य ने अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है। इस सम्प्रदाय में ब्रह्मवैवर्त और गर्ग संहिता की मान्यताओं के आधार पर राधा को कृष्ण की स्वकीया माना गया है। निम्बार्क के अनुसार जीवात्मा ज्ञानस्वरूप है, परन्तु वह हरि-आश्रित है। जीवात्मा मायाबद्ध एवं त्रिगुणों से संयुक्त रहती है। ईश्वर की अनुकम्पा से उसे अपनी प्रकृति का ज्ञान होता है। अचेतन पदार्थों के तीन वर्ण होते हैं—रक्त, श्वेत तथा कृष्ण। इनमें से कृष्ण सब दोषों से रहित और कल्याणकारी है। भक्तों को सहस्रों सखियों से सेवित बृषभाननन्दिनी का ध्यान करना चाहिए। कृष्ण के चरणारविंदों के अतिरिक्त कोई गति नहीं है। ब्रह्म, शिव आदि सब उन्हीं की वंदना करते हैं। कृष्ण की कृपा से ही दैन्य भाव का उदय होता है। भक्तों को उपास्य के रूप, कृष्ण-फल, भक्ति-फल तथा फल-प्राप्ति के विरोधी आधार एवं नाम के पाँच पदार्थों का ज्ञान होना आवश्यक है। युगल उपासना की दृष्टि से निम्बार्क सम्प्रदाय का महत्वपूर्ण स्थान है।

---

[1] हिन्दी साहित्य, भाग २, कृष्णभक्ति-साहित्य, पृ० ३४१

वल्लभ-सम्प्रदाय

विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में विष्णुस्वामी की परम्परा में गोस्वामी वल्लभाचार्य हुए। उन्होंने श्री विष्णुस्वामी से प्रेरणा लेकर शुद्धाद्वैत-सिद्धांत तथा भगवद्कृपा अथवा पुष्टि द्वारा प्राप्त प्रेमभक्ति का प्रवर्तन किया। वल्लभाचार्य के अनुसार कृष्ण ही ब्रह्म हैं, उनके तीन रूप हैं परब्रह्म, अक्षर ब्रह्म और जगत ब्रह्म। ब्रह्म की तीन शक्तियाँ हैं—संधिनी, संवित और ह्लादिनी जो क्रमशः ब्रह्म के सत्, चित् और आनन्द रूपों से संबंधित हैं। जीव के स्वरूप को उन्होंने नित्य माना है तथा उसे शुद्ध संसारी और उक्त तीन कोटियों के अन्तर्गत रखा है। जगत का रूप जड़ है, उसका आविर्भाव और तिरोभाव मात्र होता है। भगवद्भक्ति की प्राप्ति की साधना भक्ति ही है। भगवद्-अनुग्रह और पोषण के भाव की प्रधानता के कारण इनके भक्तिमार्ग को पुष्टिमार्ग कहा जाता है। वल्लभ-सम्प्रदाय में भी युगल उपासना का विधान मिलता है। परन्तु लोकरंजन के उद्देश्य से कृष्ण के बालरूप को प्रधानता दी गई है। उनके अनुसार भक्ति के मर्यादा और पुष्टि दो रूप हैं। मर्यादा-भक्ति में भक्ति के वाह्य साधनों का विधान है तथा पुष्टि-भक्ति में अन्तर्गत साधनों की सापेक्ष्यता अनिवार्य नहीं है। यह मात्र भगवत् अनुग्रह से सम्भव हो जाती है। वल्लभ-सम्प्रदाय में पुष्टि-भक्ति को ही श्रेष्ठ माना गया है। कृष्ण के लीलात्मक रूप की चर्चा इस सम्प्रदाय में सविस्तार मिलती है। समस्त प्रकृति और जगत् ब्रह्म की लीला का ही परिणाम है। वह लीला के लिए अवतार लेता है। कृष्ण की बाललीलाओं पर आधारित वात्सल्य-भक्ति एवं दर्शन की योजना वल्लभ-संप्रदाय के अतिरिक्त अन्य किसी सम्प्रदाय में नहीं मिलती।

चैतन्य-सम्प्रदाय

चैतन्य-मत का आविर्भाव बंगाल में तांत्रिक साधना की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप हुआ। चैतन्य का दार्शनिक सिद्धान्त अचिंत्यभेदाभेदवाद कहलाता है। यद्यपि चैतन्य महाप्रभु की पदावली का व्यापक प्रचार बंगाल और उड़ीसा में हुआ तथापि भक्ति-सिद्धांतों का शास्त्रीय रूप षट्गोस्वामियों द्वारा वृन्दावन में निर्धारित हुआ। इस सम्प्रदाय में कृष्ण परमतत्व एवं एकमात्र ज्ञेय माने गए हैं। भगवत् विमुखता जीव के बंधन का मूल कारण है। परमतत्व की प्राप्ति का साधन भगवद्-भक्ति है। भक्ति ह्लादिनी और संवित् शक्तियों का समन्वित रूप है। साधक भक्तिमार्ग में साधना भाव और प्रेम के साधनों को पार करता

है। साधनभक्ति एन्द्रिय प्रेरणा प्रधान है तथा भावभक्ति हृदय को परिष्कृत और निर्मल बनाती है। भाव का घनीभूत रूप ही प्रेम है। आराध्य में प्रेम-भाव की निष्ठा ही भक्ति की साधना का अंतिम रूप है। अन्य सम्प्रदायों के समान चैतन्य सम्प्रदाय में भी सत्संग नाम तथा लीला कीर्तन, वृन्दावन धाम, कृष्णमूर्ति की पूजा, सेवा आदि को भक्ति के साधनों के रूप में स्वीकार किया गया है।

राधावल्लभ-सम्प्रदाय

कृष्ण की अपेक्षा राधा को प्रधानता देकर स्वतंत्र माधुर्योपासना का प्रवर्तन करने के कारण मध्ययुग के आचार्यों में गोस्वामी हितहरिवंश का व्यक्तित्व अनुपम है। राधावल्लभ-सम्प्रदाय अपनी साधना-पद्धति, विचार-भावना, सेवा-पूजादि में किसी अन्य सम्प्रदाय का अनुगामी नहीं है। राधावल्लभ मत के अनुसार राधा-कृष्ण की अभिन्न सहचरी हैं, परन्तु उनकी सत्ता स्वकीया अथवा परकीया से सर्वथा स्वतंत्र है। 'राधा-सुधानिधि' और 'चौरासी पद' में गोस्वामी हित हरिवंश ने राधा के स्वरूप एवं शक्ति की व्यापकता का मौलिक पद्धति से विवेचन किया है। उनकी साधना में दार्शनिक विवेचन को स्थान नहीं मिला है। प्रेम-तत्व राधावल्लभ-सम्प्रदाय की आधार भूमि है। राधावल्लभी साधना-पद्धति में नित्यविहार का विशेष महत्व है, जो राधा-कृष्ण और उनकी सखियों के साथ वृन्दावन की दिव्य भूमि पर सम्पन्न होता है। अन्य कृष्णभक्ति सम्प्रदायों के समान इस सम्प्रदाय में भी गद्दी-सेवा, नामसेवा-विधि, उत्सव, तिलक आदि भक्ति के वाह्य उपादानों को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

हरिदासी-सम्प्रदाय

स्वामी हरिदास ने रसोपासना के अन्तर्गत सखी भाव का प्रतिपादन करते हुए एक नवीन भक्ति-पद्धति का प्रवर्तन किया। सखी भावोपासना की प्रधानता के कारण इस सम्प्रदाय को सखी सम्प्रदाय भी कहा जाता है। निम्बार्क सम्प्रदाय से हरिदासी सम्प्रदाय का घनिष्ठ संबंध है। परन्तु दोनों की साधना पद्धति में अन्तर होने के कारण इसे स्वतंत्र सम्प्रदाय मान लिया गया है। गोस्वामी हितहरिवंश के समान स्वामी हरिदास ने भी अपनी साधना में किसी भी दर्शन की पीठिका न स्वीकार कर उसे नितान्त भक्तिपरक रक्खा है। स्वामी हरिदास के उपरान्त उनके शिष्यों ने टट्टी स्थान के नाम से अपने महन्त की गद्दी भी स्थापित की।

ललित-सम्प्रदाय

अठारहवीं शताब्दी में वृन्दावनस्थ कृष्णभक्ति के सखीभाव परक एक अन्य सम्प्रदाय 'ललित-सम्प्रदाय' का भी उल्लेख आवश्यक है। ललित-सम्प्रदाय के प्रवर्तक गोस्वामी वंशीअलि[1] माने जाते हैं, जिन्हें विष्णुस्वामी की परम्परा से सम्बद्ध किया जाता है[2]। वंशीअलि ने विष्णुस्वामी की भक्ति-पद्धति में सखीभाव की उपासना का प्रवेश कर उसका एक नवीन रूप प्रतिपादित किया। सखी-भावाश्रित माधुर्योपासना के प्रवेश के कारण यह सम्प्रदाय 'ललित-सम्प्रदाय' के नाम से विख्यात हुआ।

ललित-सम्प्रदाय में राधा की सखीभाव मूलक युगल-उपासना का विधान हुआ है, जिस पर राधावल्लभ और हरिदासी सम्प्रदायों की भक्ति पद्धतियों का सम्मिलित प्रभाव स्वीकार किया जाता है। ललित-सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार स्वामी हरिदास और हित हरिवंश दोनों ही ललिता के अवतार माने जाते हैं तथा इन दोनों आचार्यों ने ही नित्यविहार की पद्धति का प्रवर्तन किया।[3] इस सम्प्रदाय में युगल-उपासना की स्वीकृति होते हुए भी राधा को ही आराध्या स्वीकार किया है। गोस्वामी वंशीअलि ने राधा की दार्शनिक और प्रेमभाव मूलक व्याख्या की है तथा उन्होंने राधा को ब्रह्म-कोटि तक पहुँचाया हैं। परमशक्ति के रूप में राधा की व्याप्ति समस्त जड़ और चेतन में है। राधा ब्रह्म की सत्, चित्त और आनंद शक्तियों की अधिष्ठात्री सच्चिदानंद रूपिणी हैं[4]। वंशअलि की मान्यता के अनुसार श्री राधा ईश्वर और जीव की प्रकल्पिका एवं सर्वोपरि हैं। इस सम्प्रदाय में कृष्ण को राधा का अनन्य भक्त स्वीकार किया गया है। श्री राधा सर्वोपरि होते हुए भी भक्त के अधीन हैं। उनके साथ विहार करने के लिए श्री राधा ने अवतार लिया है। श्री राधा सर्वेश्वरी हैं। अतएव विहार में उनकी समानता और कृष्ण पत्नीत्व आनंद के हेतु

[1] श्री राधा-सिद्धान्त, पृ० २५।

[2] ब्रजमाधुरीसार, पृ० २०।

[3] श्री हितहरिवंश स्वरूप है, श्री हरिदास उदार।
जे जे बालें महल की बरनत नित्य-बिहार ॥ हृदय सर्वस्व, दो, १८

[4] स्याद्ब्रह्मापरपर्याय सर्वानुस्यूतरूपिणी।
स्वातंत्र्याचापि सैवास्ति, तस्मात्सर्वास्तदाश्रितः ॥
श्री राधा-सिद्धान्त, कारिका ७
स्वमते तत्प्रभारूपा शक्तानां तत्वस्वरूपिणी।
शक्तिरेताहशीज्ञेया जीवेशादि प्रकल्पिका ॥ वही कारिका १२

हैं। श्री राधा ने भक्तों के निमित्त ही नित्य-विहार को प्रदर्शित किया है[1]। आराध्या श्री राधा सर्वदा स्वानंद-रस में मग्न हैं तथा उनकी विहारेच्छा कामेच्छा नहीं है[2]। राधा शुद्ध प्रेममूर्ति हैं तथा वे अपने भक्त कृष्ण और सखियों के अन्तःकरण में निरन्तर विराजमान रही हैं।

ललित-सम्प्रदाय के अनुसार राधा की उपासना के लिए अनेक भाव हो सकते हैं। परन्तु उनकी सेवा के लिए सखी-भाव ही प्रमुख एवं केन्द्रीय भाव है। सहचरी की आदर्श ललिता है। ललिता और उसकी अनुगामिनी सख्य रसविष्टा सखियाँ राधा को ही अपना पति मान कर अपने को सौभाग्यवती समझती हैं। तदनंतर सौभाग्य सूचक वस्त्रादि धारण करती हैं। श्री राधा का सखीभाव परक भक्ति-रस नित्यसिद्ध एवं निर्विकल्प रस है, जो रसभूमि वृन्दावन में कृष्ण और ललितादि सखियों के हृदय में नित्य स्थित है। रसकेलि करने वाली श्री राधा ही वंशीअलि की परमागति हैं। वंशीअलि के अनुसार जब तक भक्त के अन्तःकरण में ललिता रति उत्पन्न नहीं होती, तब तक उसे श्री राधा-चरण रेणु की सुगन्धि मात्र भी दुर्लभ है।

आलोच्ययुग में अविच्छिन्न परंपरा

ब्रजमण्डल के कृष्णभक्ति-सम्प्रदायों की रसोपासना में राधाकृष्ण के नाम, रूप, लीला एवं धाम की परिकल्पना में सूक्ष्म अंतर प्राप्त होते हैं। परन्तु आलम्बन एवं माधुर्यभावना की एकरूपता के कारण प्रायः सभी सम्प्रदायों में अन्तर्व्यापी एकसूत्रता है। प्रेमलक्षणाभक्ति में लक्ष्य की एकोन्मुखता के ही कारण कृष्णभक्ति ने लोकमन को अत्यधिक प्रभावित किया। निम्बार्क,

---

[1] नित्यभक्त पराधीना तेन राधाविहारिणी।
साभ्यं भजति भक्तेन रसे कृष्णेन लीलया॥
वस्तुतो न विहारादि तस्या केनापि युज्यते।
न साम्यं न च पत्नीत्वं यत्र सर्वेश्वरेश्वरी॥

राधा-सिद्धान्त कारिका २१, २२

[2] नच कृष्णे परे भक्ते प्रेमा निष्कलिते क्वचित्।
कामुकी स्याद्विहारेच्छा मग्नैरूपमहांबुधो॥ वही कारिका २४
नापेक्षते च या शास्त्रं प्रेमैकप्रपुरा भवेत्।
सा सखीनां च कृष्णस्य, हृदि नित्यं विराजते॥ वही कारिका २५

वल्लभ, चैतन्य, राधावल्लभ और हरिदासी सम्प्रदायों के वाणीकारों की सम्मिलित साधना के फलस्वरूप, आलोच्ययुग में भी कृष्णभक्ति-काव्य की परम्परा विकासमान रही।

युग-प्रवाह

साहित्य मूलत: रचनाकार की अनुभूतियों का प्रतिफलन होता है, किन्तु अनुभूति के स्वरूप एवं विविध स्तरों का परोक्ष संबंध उसके चारों ओर विकसित होने वाले वातावरण से भी होता है। साहित्य के इस सत्य का आकलन काव्यधारा विशेष के मूल्यांकन में भी अपेक्षित होता है। किसी काव्यधारा के अन्तर्गत जहाँ युग जीवन की अभिव्यक्ति होती है, वहीं वह उसकी गतिविधि से प्रभावित हुए बिना नहीं रहती। अनुकूल संवर्धक शक्तियों से प्रेरणा ग्रहण करके वह लता के समान हरी-भरी हो जाती है तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में उसकी जीवन्त शक्ति उत्तरोत्तर क्षीण होने लगती है। युग की विविध सृजनात्मक एवं विध्वंसात्मक शक्तियों के प्रभाव से वह अछूती नहीं बचती। कृष्णभक्ति-काव्यधारा युग-प्रवाह से प्रभावित होते हुए भी अपनी सशक्त सांस्कृतिक पीठिका एवं लोक-जीवन की श्रद्धा-भावना के विनियोग से आलोच्य युग में भी विकसनशील रही। इस संदर्भ में राजनीति, समाज और धर्म की उन गतिविधियों का सर्वेक्षण आवश्यक है, जिन्होंने आलोच्यकालीन कृष्णभक्ति काव्य को प्रभावित किया है।

राजनीतिक गतिविधि

इस काल के साम्प्रदायिक और सम्प्रदाय-मुक्त दोनों ही वर्ग के कवियों का व्यक्तित्व जिस राजनीतिक परिवेश में निर्मित हुआ, उनके कृतित्व पर उसकी छाया मिलना स्वाभाविक है। अठारहवीं शती का पूर्वार्द्ध मुगल सत्ता के छिन्न-भिन्न होने का समय है। सन् १७०७ में औरंगजेब का शासन समाप्त हुआ। उसकी विध्वंसात्मक नीति के प्रभावस्वरूप मुगल-साम्राज्य में विद्रोह की अग्नि धधक उठी तथा मुगलसत्ता का अस्तित्व संकटग्रस्त प्रतीत होने लगा। औरंगजेब के अनन्तर मुगलवंश में कोई भी व्यक्तित्व-सम्पन्न शासक नहीं हुआ। उसके उत्तराधिकारियों में बहादुरशाह, फरुखसियर, मोहम्मदशाह आदि में से किसी में भी इतना सामर्थ्य नहीं था कि वह अपने पूर्वजों के विशाल साम्राज्य का समुचित संरक्षण करके उसे जीवन्त शक्ति दे सकता। हिन्दू नरेश भी अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील थे। दक्षिण में मरहठों ने शिवाजी के संरक्षण में एक संगठित शक्ति का निर्माण कर लिया था। देश के

प्रत्येक भाग में विरोधी शक्तियाँ अपने उत्कर्ष में संलग्न थीं। पंजाब में सिक्खों के बीच भी असंतोष की भावना पल्लवित हो रही थी। राजनीतिक पराभव की इन दो शताब्दियों में मुगल-शासकों का अंतरंग जीवन ऐश्वर्य और विलास की प्रतिमूर्ति बन गया था। मोहम्मदशाह तो इतिहास में रंगीले के नाम से प्रसिद्ध ही है। मुगलों की छत्र-छाया में पोषित सामंत भी निष्क्रिय एवं विलासप्रिय हो चले थे। अवध, बुन्देलखण्ड, राजस्थान आदि प्रदेश जहाँ मुख्यतया हिन्दी रीति-साहित्य का विकास हुआ था, राजनीतिक कुचक्रों से आक्रांत थे। परवर्ती मुगल-शासक जिस प्रकार अकबर और शाहजहाँ के गौरवमय अतीत को भूल चुके थे, ठीक उसी प्रकार राजस्थान के राजपूतों में भी अपने जातीय आदर्शों के प्रति अनुराग एवं उसकी रक्षा का भाव अपेक्षाकृत कम होता जा रहा था।

इन दो शताब्दियों में उत्तर भारत में अधिक समय तक कोई भी राजनीतिक सत्ता स्थापित न हो सकी। मोहम्मदशाह के समय नादिरशाह का आक्रमण हुआ, जिससे मुगल-शासन की अविशिष्ट प्रतिष्ठा भी समाप्त हो गई। मराठों की शक्ति नादिरशाह के उत्तराधिकारी अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण से समाप्त हो गई। पानीपत के युद्ध के उपरान्त समस्त पूर्वी भारत पर अंग्रेजों की सत्ता स्थापित हुई। मुगल सम्राट शाहआलम की प्रतिक्रियास्वरूप सन् १८५७ में भारतीयों ने सम्मिलित रूप से देशव्यापी विद्रोह का संगठन किया, किन्तु वह असफल रहा। इसके पश्चात् कम्पनी के शासन का अन्त हुआ। सन् १८८५ में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के फलस्वरूप देश में राष्ट्रीय चेतना का उन्मेष हुआ।

व्रजप्रदेश पर प्रभाव

राजनीतिक क्षेत्र की अव्यवस्था का कृष्णभक्ति के प्रमुख केन्द्र व्रजमण्डल पर भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा। देशव्यापी राजनीतिक हलचलों से कृष्ण की लीलाभूमि पर अनेक संकट आये। वह कई बार युद्धस्थली भी बनी। सन् १७३७ का मरहठों और मोहम्मदशाह का युद्ध मथुरा में ही हुआ। मोहम्मदशाह के समय में नादिरशाह का आक्रमण हुआ, जिसका व्रजप्रदेश पर विशेष प्रभाव पड़ा। कविवर घनानन्द की मृत्यु तो इसी आक्रमण में हुई। चाचा वृन्दावनदास की रचनाओं में भी नादिरशाही अत्याचारों का उल्लेख आया है।[1] सन् १७५७ में अहमदशाह अब्दाली का व्रजप्रदेश पर

---

[1] क——अठारह सौ तेरह बरस हरि यहि करी।
जमन बिगोयोदेस विपति गाढ़ी परी॥ क्रमशः

आक्रमण हुआ। इससे जाट शासकों के संरक्षण से हुई प्रगति को अत्यन्त भयंकर विध्वंस का सामना करना पड़ा। उसने अपने दो सरदारों, जहान खाँ और नजीब खाँ को यह आदेश दिया कि "जाटों के इलाके में घुस पड़ो और उन्हें लूटो मारो। मथुरा नगर हिन्दुओं का पवित्र स्थान है, उसे पूरी तरह नेस्तनाबूद कर दो। आगरा तक एक भी इमारत खड़ी न दिखाई पड़े। जहाँ कहीं पहुँचो कत्लेआम करो और लूटो। लूट में जिसको जो सामान मिलेगा वह उसी का होगा, सिपाही लोग काफिरों के सिर काट लावें।......सरकारी खज़ाने से प्रत्येक सिर के लिए पाँच रुपया इनाम मिलेगा।"[१] अब्दाली के इस आदेश से मथुरा और वृन्दावन का विध्वंस प्रारम्भ हो गया। अनेक वैष्णवों की हत्यायें हुईं। नृशंसता अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी। डॉ० यदुनाथ सरकार ने लिखा है, "आगरे से दिल्ली जाने वाली सड़क पर एक भी झोंपड़ी दिखाई नहीं पड़ती थी, जिसमें कोई भी आदमी जीवित बचा रहे। जिस रास्ते से अब्दाली आया और जिस मार्ग से लौटा, दो सेर अनाज अथवा चारा तक मिलना मुश्किल हो गया था"।[२]

जाट और मरहठा शासन

जाट शासकों को अपने राज्यकाल में यद्यपि राजनीतिक कुचक्रों तथा युद्धों का सामना करना पड़ा, फिर भी उन्होंने व्रज के सांस्कृतिक स्थलों की

शेष—ख—जमन कछू संका दई, व्रज जन भए उदास।
ता समये चलि तहाँ ते, कियौ कृष्ण गढवास ॥—कृष्णविवाहवेली
(प्रतिलिपि बाबा किशोरीशरण अलि वृन्दावन।)

ग—जमन की जम की जातना भुगताई इह देह।
अब अपनैं अपनाई देहु, वास रखरे गेह ॥
कांपत कपिला गाय ज्यों, कहत मरत हौं लाज।
कलि के हरि तैं अब करौ, रच्छा सुत व्रजराज।
अजू बरस दस बीसते, खुले विपति भंडार।
या व्रज गरुवे सुखनि की, विदित दुरी हटतार ॥

—आर्त पत्रिका

[१] व्रज का इतिहास, भाग १ पृ० १८७ से उद्धृत
[२] Fall of the Moughal Empire, Part II, page 120-124

रक्षा तथा उनके विकास में स्मरणीय योग दिया। मथुरा, वृन्दावन, कामवन आदि स्थानों में इन शासकों द्वारा अनेक कार्य निष्पन्न किये गये। गिरिराज गोवर्धन की महत्ता उनके समय में बहुत बढ़ी। वहाँ अन्य भवनों के साथ कलापूर्ण छतरियाँ भी बनाई गईं।[१]

सत्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध में जाट और मरहठा संघर्ष चलता रहा। परन्तु सन् १७७० के युद्ध के उपरान्त जाट शासकों का व्रजप्रदेश पर से प्रभुत्व ही उठ गया। मरहठों का उत्तर भारत पर अधिकार हो जाने से व्रज पर भी उनका प्रभुत्व स्थापित हो गया। इस समय मथुरा पर मुगलों और रुहेलों के आक्रमण का भय सदा ही बना रहता था। मरहठों के समय में व्रजमण्डल को मुगलों की सत्ता से मुक्ति मिली। मरहठा शासकों में महादजी सिंधिया का नाम व्रजप्रदेश के उद्धारकों में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उसने व्रज के मन्दिरों को मुक्त हस्त से दान दिया और वहाँ के तीर्थस्थलों का पुनरुद्धार कराया। कृष्ण-जन्म स्थान के समीप पोतारा कुंड का निर्माण सिंधिया के द्वारा ही कराया गया। इस कुण्ड के किनारे बैठ कर महादजी सिंधिया अपने इष्टदेव कृष्ण की स्तुति में पद गाया करता था। उसकी इच्छा थी कि कृष्ण-जन्म स्थान पर केशव के मन्दिर का निर्माण फिर से कराया जाय, पर अनेक कारणों से उसकी इच्छा पूरी न हो सकी।[२] महादजी सिंधिया के ही समान धर्मपरायणा रानी अहिल्याबाई ने भी व्रज के तीर्थस्थानों के गौरव की पुर्नस्थापना में अपूर्व योग दिया।

उन्नीसवीं शती और नवीन चेतना का प्रसार

उन्नीसवीं शती का आरम्भ व्रजप्रदेश पर अंग्रेजों के पूर्ण आधिपत्य का सूचक है। सन् १७९५ में महादजी की मृत्यु के पश्चात् मराठा शक्ति का ह्रास तीव्र गति से होने लगा तथा सन् १८०३ के अंग्रेज-मरहठा युद्ध के पश्चात् व्रजप्रदेश पर से मरहठों का आधिपत्य सदैव के लिए उठ गया। मरहठों के पारस्परिक वैमनस्य और योग्य नेताओं के अभाव का अंग्रेजों ने पूर्ण लाभ उठाया। सन् १८५७ के प्रथम स्वाधीनता संग्राम में व्रज का महत्वपूर्ण योग रहा। मथुरा में अंग्रेजों की छावनी थी। अतएव व्रजप्रदेश का संघर्ष-स्थल बन जाना

---

[१] व्रज का इतिहास, भाग १, पृ० १९३

[२] वही पृ० २०४

स्वाभाविक था। ग्राउज ने लिखा है कि मथुरा के चौबों ने क्रान्तिकारियों को पर्याप्त सहायता दी थी[1]। अंग्रेजों की शक्ति ने इस आंदोलन का दमन कर दिया तथा कम्पनी के शासन के स्थान पर इंग्लैंड के सम्राट् का शासन स्थापित हुआ। सन् १८५७ के बाद का व्रजप्रदेश का इतिहास शोषण और अत्याचार का इतिहास है।

अंग्रेजी शिक्षा और ज्ञान विज्ञान के प्रसार के फलस्वरूप नये विचारों को जन्म मिला। व्रजवासी स्वामी विरजानन्द के शिष्य दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज की स्थापना की, जिसके फलस्वरूप आर्य संस्कृति के पुनरुद्धार के अनेक यत्न हुए। राजनीतिक परिस्थितियों की प्रतिकूलता तथा विनाशकारी दुर्भिक्षों के कारण व्रज के धार्मिक वातावरण और प्राकृतिक वैभव को बड़ा आघात पहुँचा। इस वातावरण का साहित्य सृजन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इन दो शताब्दियों में व्रजप्रदेश में रचे गये साम्प्रदायिक साहित्य में न तो कवियों का उन्मुक्त चिन्तन ही प्रकाश में आ सका और न वे कृष्णकथा को उर्वरता एवं व्यापकता का धरातल ही दे सके। केवल राधावल्लभ-सम्प्रदाय के कुछ रचनाकारों का कृतित्व लोकजीवन की अभिव्यक्ति होने के कारण इस प्रवृत्ति के अपवाद रूप में प्राप्त होता है।

सामन्ती जीवन की छाया

राजनीतिक जीवन की निष्क्रियता के परिणामस्वरूप जिस भोगपरक वातावरण को बल मिल रहा था, कृष्णभक्ति-काव्य भी उसकी छाया से अछूता न था। आराध्ययुगल की नित्यलीलाओं को भौतिक उपकरणों से आवेष्टित किया गया। राज्याश्रित कवियों ने राधाकृष्ण को नागर और नागरी बनाकर सामन्ती रंग में रंग दिया। आश्रयदाताओं की साज सज्जा, ऐश्वर्य एवं विलास की समस्त सामग्री राधाकृष्ण की सेवा में समर्पित की गई। सामन्तों की गुप्त नायिकाएँ आराध्ययुगल की सहचरी के रूप में अवतरित हुईं। उनकी अष्टप्रहर की विलासमय दिनचर्या साम्प्रदायिक और सम्प्रदायमुक्त दोनों ही वर्ग के कवियों द्वारा विरचित अष्टयाम ग्रन्थों के अन्तर्गत वर्णित हुई हैं। भव्य प्रासाद, मणिजटित सिंहासन, उपवन में रंग बिरंगे पुष्प, चोवा चन्दन, घनसार, इत्र आदि प्रलेप के अगणित उपकरण ऋतुक्रमानुसार राधाकृष्ण को सुलभ बनाए

[1] मथुरा मेम्वायर, पृ० ४७

गए। जिस प्रकार शोषित जनता संरक्षक सामन्तों को अपना सर्वस्व समर्पित करने की अभ्यस्त हो गई थी, ठीक उसी प्रकार ब्रजमण्डल का निर्धन वैष्णव भी कुछ क्षणों के लिए अपने दारिद्रय का विस्मरण कर आराध्ययुगल का साज सज्जा एवं सेवा में निमग्न रहता था। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि कृष्णभक्ति-काव्य में लोकजीवन सर्वथा उपेक्षित रहा। साम्प्रदायिक कवियों द्वारा रचित काव्य जन सामान्य की भक्ति भावना का संवाहक है। उनके पदों में लोकगीतों की समूहगत चेतना, कृष्णलीलाओं के अभिनय, लोकरंजन आदि के परम्परागत तत्व विद्यमान रहे। लोकसंस्कृति को उनके काव्य में वाणी मिली, परन्तु भावना के स्तर पर यह कैसे संभव था कि लौकिक सामन्त ऐश्वर्य एवं विलास का जीवन व्यतीत करता और भक्त कवियों के आराध्ययुगल उससे वंचित रह जाते?

सामाजिक और आर्थिक जीवन

इस युग का सामाजिक और आर्थिक जीवन राजनीतिक परिवर्तनों से अप्रभावित न बच सका। सामन्तीय शासन के विनाशकारी तत्व हिन्दू-मुसलमान नरेशों तथा उनसे सम्बद्ध उच्च वर्ग की जीवनचर्या के अभिन्न अंग हो गये थे। उनके संरक्षण में विकसित मध्यवर्ग भी इसका शिकार हुआ। अंग्रेजों के शासन काल में इस वर्ग के व्यक्तियों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गई। समाज का निम्न वर्ग सबसे अधिक कष्ट में था। कवि और कलावन्तों के लिए अब राजाश्रय नहीं रह गया था। सामन्तों के शोषण और अत्याचार, राजनीतिक संघर्ष और विदेशी आक्रमणों के फलस्वरूप उत्तरी भारत की आर्थिक स्थिति दिन-प्रति-दिन गिरती जा रही थी। हिन्दुओं का जीवन तो अत्याचार और शोषण की ही कहानी रह गया था। अंग्रेजों के समय में यह शोषण अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया। वे भारत की समस्त सम्पत्ति अपने देश में ले जाना चाहते थे। कृषक वर्ग पर अनेक अत्याचार होते थे। सन् १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम को पारस्परिक विद्वेष एवं शक्ति के अभाव के ही कारण असफलता मिली। सन् १८६४ के पश्चात् राष्ट्रीय चेतना के विकास, पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार और वैज्ञानिक प्रगति के फलस्वरूप भी हिन्दी-प्रदेश की आर्थिक स्थिति में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुआ। यद्यपि आर्थिक स्थिति हिन्दी-प्रदेश के किसी भी क्षेत्र में अच्छी नहीं थी, तथापि धार्मिक केन्द्र होने के कारण व्रजमण्डल के सांस्कृतिक पुनरुद्धार के अनेक यत्न किसी न किसी रूप में होते रहे।

धार्मिक वातावरण

आलोच्ययुग में हिन्दू और मुसलमानों का पारस्परिक जातीय विद्वेष पहले जैसा उग्र नहीं रहा। राजनीतिक पराभव की स्थिति में हिन्दुओं की शक्ति निष्क्रिय हो गई थी। देशव्यापी अव्यवस्था में मुसलमानों की भी दशा पहले की सी नहीं रह गयी थी। निर्गुण संतों और सूफी फकीरों ने हिन्दू और मुसलमानों की भावनाओं में समन्वय की सफल चेष्टा की। हिन्दुओं में जाति-प्रथा तथा मुसलमानों में शिया और फिरकों का भेद वर्तमान था। धर्म के नाम पर हिन्दुओं पर निरन्तर अत्याचार हुआ करते थे। इस युग में निर्गुण और सगुण भक्ति के अनेक सम्प्रदायों का आविर्भाव हुआ। परम्परागत जैन, बौद्ध, सिक्ख आदि मत भी अपना विकास करते रहे। सामान्य धार्मिक जीवन अंधविश्वासपूर्ण और रूढ़िग्रस्त होता जा रहा था। धर्म के तात्विक रूप का तो सर्वथा लोप-सा हो चुका था। उसका स्थान वाह्य उपचार, जप, तप, पूजा, तीर्थयात्रा आदि ले रहे थे।

कृष्णभक्ति-सम्प्रदाओं के विकास की दृष्टि से भी यह युग महत्वपूर्ण है। कृष्णभक्ति का सामान्य धर्म के रूप में प्रचलन हुआ। व्रजमण्डल में तो परम्परा से ही वह धर्म के रूप में प्रतिष्ठित थी। निर्गुण पंथों में चरणदासी, अंतपाड़ा के योगी, वृन्दावन के मलूकदासी, और राधास्वामी मत भी व्रजप्रदेश तथा उसके आस-पास प्रचलित रहे। परम्परागत शैवमत के अन्तर्गत मनसा, आदि देवियों की उपासना का प्रचलन रहा। मुसलमान शासकों ने व्रजप्रदेश में मसजिदों का निर्माण कराया, परन्तु वे राधाकृष्ण के मन्दिरों के समक्ष कला एवं लोकरुचि की दृष्टि से महत्व न प्राप्त कर सकीं। उनके निर्माण का उद्देश्य धार्मिक स्पर्धा मात्र थी। उन्नीसवीं शती के विकटर जैकोट नामक यात्री का तो यहाँ तक कथन है कि वृन्दावन में उसे एक भी मसजिद नहीं दिखाई दी।[१] इसी शती में आर्य समाज की स्थापना से व्रज के धार्मिक जीवन को नई दिशा प्राप्त हुई।

यह ध्यान देने की बात है कि निर्गुण मार्गी साधना के प्रचारक अनेक पंथों की स्थापना और पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार के बावजूद व्रजमण्डल में राधाकृष्ण की उपासना प्रमुख रही। कृष्णभक्ति के विविध संप्रदायों में प्रचलित गद्दी की प्रथा एवं वाह्य आडम्बरों के कारण धर्म के तात्विक रूप का निरन्तर लोप होता

---

[१] मथुरा मेम्वायर, पृ० १७४-७५

जा रहा था। गद्दियों के प्रश्न को लेकर प्रायः संघर्ष भी हुआ करते थे।[1] देवदासी की प्रथा तथा ऐश्वर्य की प्रचुर सामग्री ने मन्दिरों और मठों को सामंती शासकों के स्तर पर पहुँचा दिया था। दार्शनिक चिन्तन के लिए ऐसे वातावरण में कोई अवकाश नहीं रह गया था। राधाकृष्ण की लीलाओं के उन्मुक्त प्रदर्शन के आवरण में महन्तों और मठों के अधिष्ठाताओं की विलास-लिप्सा की तृप्ति होती थी। उत्सवों और पर्वों की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही थी। भोग और लिप्सा के कारण राधाकृष्ण की लीलाएँ व्यावहारिक स्तर पर अपने उच्च आध्यात्मिक आदर्शों से गिर कर ऐहिक स्तर पर आ गई थीं।

राजनीतिक विशृंखलता एवं पराभव, सामाजिक जटिलता, आर्थिक दरिद्रता एवं धर्म में वाह्याचारों की प्रधानता के कारण इस युग का जनजीवन रुग्ण हो चला था! नैतिक ह्रास, युग की पतनोन्मुखी प्रवृत्तियों से होड़ लेना चाहता था। साहित्य, संगीत आदि कलाएँ जो किसी भी युग की बौद्धिक सम्पन्नता की प्रतीक होती हैं, इस युग में घृताहुति का काम दे रही थीं। परन्तु प्रतिकूल परिस्थितियों में भी राधाकृष्ण की लीलाभूमि व्रजमण्डल का धार्मिक महत्व कम न हुआ। व्रजयात्रा की परम्परा, रासलीलाओं के प्रदर्शन, भक्तों के भजन और लोकसाहित्य की अक्षय शक्ति ने व्रजप्रदेश के सांस्कृतिक महत्व को सुरक्षित रखा। सामाजिक विशृंखलता को एकता प्रदान करने में कृष्णभक्ति ने अपूर्व योग दिया। विविध सम्प्रदायों के भक्तों ने काव्य रचना की परम्परा को सुरक्षित रखा। इतना ही नहीं, राधाकृष्ण ने देशकालानुकूल अपना स्वरूप परिवर्तित करके रीति-परम्परा के शृंगारी काव्य में नायक और नायिका की भी भूमिका प्रस्तुत की। इस प्रकार समकालीन समाज की एक मनोवैज्ञानिक आवश्यकता पूरी हुई। किंकर्तव्यविमूढ़ लोकजीवन को आराध्ययुगल की लीलाओं एवं भक्ति ने जीवन्त शक्ति प्रदान कर उसके भावलोक को उल्लसित रक्खा।

साहित्यिक-पृष्ठभूमि

आलोच्यकालीन कृष्णभक्त कवियों को धर्म और भक्ति की प्रेरणा अधिकांशतः पूर्ववर्ती कृष्णकाव्य से प्राप्त हुई थी। परन्तु इसका यह अर्थ न

---

[1] **निधुवन कांड व्रज के धार्मिक इतिहास में प्रसिद्ध है। हरिदासी सम्प्रदाय के गृहस्थ और वैरागी संतों में परस्पर मतभेद हो जाने के कारण गृह युद्ध हुआ, जिसमें अनेक हत्याएँ हुई थीं।**

लेना चाहिए कि सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक धर्म और भक्ति का वहन केवल साहित्य के ही द्वारा हुआ। लोकजीवन में भी उसके व्यावहारिक पक्ष की अविच्छिन्न परम्परा विद्यमान रही। भक्तिकाल के कृष्णभक्ति सम्प्रदायों का इस युग में भी विकास होता रहा तथा उनके संरक्षण में काव्य-रचना की परम्परा पल्लवित होती रही। इस समय तक हिन्दी-काव्य का बहुविधि विकास हो चुका था। विशेषकर भक्तिकाव्य की विविधता, कलात्मक उत्कृष्टता, लोक-रंजन की प्रवृत्ति, लोक-कल्याण की चेतना तथा जीवन के अनेक उदात्त तत्वों ने उसे उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित कर दिया था। भक्तिकाव्य ने जनजीवन में आशा का संचार किया। कबीर ने निर्गुण ब्रह्म की उपासना के संदर्भ में तत्कालीन समाज और धर्म की आलोचना द्वारा जीवन के अनेक चिरंतन मूल्यों की स्थापना की। जायसी ने सूफी-सिद्धान्तों को भारतीय लोककथाओं के साँचे में ढाल कर जनमन को आकृष्ट करने का श्लाघनीय यत्न किया। तुलसी ने तो काव्य के द्वारा समाज, धर्म, राजनीति और दर्शन की विविध धाराओं का मंथन ही कर डाला। उनकी रचनाएँ मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति के अध्ययन में महत्वपूर्ण योग देती हैं। सूरदास और अन्य अष्टछापी कवियों का कृष्णभक्ति का लोकरंजनकारी संदेश इतना शक्तिशाली सिद्ध हुआ कि उनका परवर्ती काव्य राधाकृष्ण की गुणानवलियों के रूप में ही रचा गया। निम्बार्क, चैतन्य, हितहरिवंश और हरिदासी सम्प्रदायों के द्वारा भी कृष्णभक्ति साहित्य का पर्याप्त प्रसार हुआ। भक्तकवियों ने राधाकृष्ण की माधुर्य लीलाओं का सरस चित्रण कर तत्कालीन समाज की वासना और लिप्सा की प्रवृतियों का अध्यात्मपरक मनोवैज्ञानिक उपचार किया।

पूर्ववर्ती प्रभाव की प्रक्रिया

प्रत्येक काव्यधारा एक ओर जहाँ समकालीन वातावरण से प्रभावित होती है, वहीं वह अपनी तथा अन्य पूर्ववर्ती परम्पराओं के तत्वों को भी आत्मसात किये रहती है। कृष्णभक्ति की पृष्ठभूमि के प्रसंग में हम संकेत कर चुके हैं कि उसके देशव्यापी प्रसार के फलस्वरूप विविध प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य में कृष्णकाव्य का उदय और विकास हुआ। आलोच्यकालीन कृष्णभक्ति-काव्य को प्रभावित करने की दृष्टि से बंगला कृष्णकाव्य का उल्लेखनीय स्थान है। चैतन्य-मत के बंगला भाषा में रचित अनेक आधारभूत ग्रंथों का व्रजभाषा में अनुवाद हुआ। अन्य प्रान्तीय भाषाओं के कृष्णकाव्य का समीक्ष्य हिन्दी-कृष्ण काव्य पर कोई प्रभाव नहीं मिलता।

काव्य-परम्पराएँ और उनका प्रभाव

सत्रहवीं शती तक का हिन्दी-काव्य स्थूल रूप से दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है, आध्यात्मिक और लौकिक। आध्यात्मिक काव्य के अन्तर्गत निर्गुणमार्गीय शाखा को संत और सूफी तथा सगुणमार्गीय शाखा की राम और कृष्णकाव्य धाराएँ आती हैं। लौकिक वर्ग में शृंगार और नीति सम्बन्धी पूर्वमध्यकालीन काव्यधाराओं का स्थान है। इसके अतिरिक्त काव्य रचना और उसके सैद्धान्तिक विवेचन से सम्बद्ध रीतिकाव्यधारा भी सत्रहवीं शती के मध्य से ही उभरने लगी थी। इस परम्परा के कवि आचार्यत्व और कवित्व की युगपत अभिव्यक्ति करना ही काव्य सृजन का उद्देश्य मानते थे। प्रायः ऐसा भी देखा जाता है कि एक ही कवि की रचना परम्परा विशेष से सम्बद्ध होते हुए भी एकाधिक विषयों एवं काव्य परम्पराओं से प्रभावित मिलती है। आलोच्य हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य इस प्रवृत्ति का अपवाद नहीं है। वह बहुत अंशों में परम्परामुक्त होते हुए भी अन्य काव्यधाराओं से अछूता न बच सका। अतएव उनके प्रभाव का सर्वेक्षण उचित प्रतीत होता है।

संत-काव्यधारा

संत और कृष्णभक्ति-साहित्य में परम्परा से ही अनेक समानताएँ पाई जाती हैं[1]। भक्तियुग के कृष्णभक्त कवियों ने वैराग्य, संसार की असारता, नाम महिमा, संतगरिमा, गुरुमहिमा आदि विषयों को अपने काव्य में स्थान दिया है। आलोच्यकालीन कृष्णभक्ति-काव्य में भी हमें यह प्रवृत्ति लक्षित होती है। गोपी-उद्धव सम्वाद के अन्तर्गत ब्रह्म की निन्दा और योग-मार्ग की निस्सारता का प्रतिपादन करने वाला भ्रमरगीत का प्रसंग कृष्णभक्ति कवियों द्वारा वर्णित होता रहा। राधावल्लभ-सम्प्रदाय के चाचा वृन्दावनदास ने कृष्ण की छद्म लीलाओं के अन्तर्गत व्रज के वातावरण का चित्रण करते हुए योगमार्ग की तत्कालीन स्थिति का परिचय दिया है[2]। किन्तु ऐसे प्रसंगों पर संतकाव्यधारा का प्रभाव खोजना भूल होगी। वस्तुस्थिति यह है कि अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों में भी संतकवियों के भक्ति-सिद्धान्त और काव्यादर्श कृष्णभक्ति कवियों की सहानुभूति न प्राप्त कर सके। इसके

---

[1] अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—भाग १, पृ० १८

[2] रासछद्म विनोद, जोगीलीला

विपरीत कृष्णभक्ति-काव्य से संतमत विशेष रूप से प्रभावित हुआ। संतमत की विविध काव्यशैलियों का प्रभाव सोलहवीं शती के कृष्णभक्ति-काव्य पर ही विद्वानों के द्वारा अस्वीकार किया[1] गया है। अतएव आलोच्यकालीन कृष्ण-भक्तिकाव्य पर संतकाव्य की वस्तु एवं शैली के प्रभाव की चर्चा असंगत होगी।

प्रेमाख्यानक-काव्यधारा

कृष्णभक्ति कवियों को यद्यपि परम्परा से ही पौराणिक एवं विभिन्न सम्प्रदायों द्वारा प्रवर्तित प्रेमभाव की व्यापक पीठिका प्राप्त थी, तथापि आलोच्य-युग का कृष्णकाव्य भावधारा एवं अभिव्यंजना के क्षेत्र में प्रेमाख्यानक-काव्य से प्रभावित हुआ। घनानंद सरीखे कवियों की प्रेमानुभूति सूफी प्रेमपद्धति से प्रभावित मिलती है। इसके अतिरिक्त, किशोरदास, शीतलदास, सहचरिशरण, शाह ललितकिशोरी, ललितमाधुरी आदि कवियों के रूपचित्रण एवं उनकी वियोगानुभूति में सूफीतत्व प्रचुर मात्रा में घुलमिल गया है। इन कवियों द्वारा प्रयुक्त सूफी-काव्य की फारसी शब्दावली के प्रयोग से भी उसके प्रभाव के स्पष्ट संकेत प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त यह भी स्मरणीय है कि सत्रहवीं शती तक राजकीय संरक्षण के कारण व्यावहारिक एवं साहित्यिक भाषा के रूप में उर्दू और फारसी का प्रयोग प्रचुर मात्रा में होने लगा था। अतएव किसी भी कवि की भाषा का व्यक्तिगत संस्कारों के फलस्वरूप फारसी शब्दावली से प्रभावित होने का तथ्य भी कुछ अंशों में तर्कसंगत प्रतीत होता है।

राम-काव्यधारा

गोस्वामी तुलसीदास के पश्चात् रामकाव्य की परम्परा में उनकी समकक्षता का कोई भी कवि नहीं हुआ। तुलसी ने रामकाव्य को नैतिकता और मर्यादा के जटिल एवं अव्यावहारिक बन्धनों में बांध दिया था। अतः कृष्णकाव्य की स्वच्छंद और ललित प्रकृति की तुलना में मर्यादा मंडित होने पर भी वह लोक-प्रिय न हो सका। आचार्य केशवदास की काव्य-रचना का उद्देश्य ही भिन्न था। केशवदास के अनन्तर महात्मा बनादास, युगलानन्दशरण, प्रेमसखी आदि का नाम रामकाव्य की परंपरा में लिया जा सकता है। परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में रामकाव्य की गतानुगतिका स्पष्ट हो चली थी। इस गतिरोध का

---

[1] अष्टछाप और वल्लभसंप्रदाय—भाग १ पृ० १८

कारण बताते हुए डॉ० भगवती प्रसाद सिंह ने लिखा है—"इससे कवियों की व्यक्तिगत रुचि और प्रतिभा का मार्ग अवरुद्ध हो गया और उनकी कल्पना को एक सीमित क्षेत्र में चक्कर काटना पड़ा। इस दिशा में अल्पप्राण एवं साधना रहित कवियों के लिए कोई बात कहना आसान नहीं था। फिर भी उन्हें परम्परा का पालन तथा काव्यकौशल दिखाने के लिए कुछ लिखना ही पड़ा। ऐसी कृतियों में नीरसता, इतिवृत्तात्मकता और कहीं-कहीं छिछली रसिकता इस मात्रा में मिलती है कि परम्परा से अनभिज्ञ पाठक उन्हें किसी रसात्मिका भक्ति-पद्धति के अवशेष मानने के लिए कदाचित् ही तैयार हो[1]।

कृष्णभक्ति-काव्य की माधुर्य भावना ने रामकाव्य की मर्यादा और नैतिकता के मूल्यों को प्रभावित कर उसके विकास का पथ प्रशस्त किया। विषय क्षेत्र में तो कृष्णकाव्य ने रामकाव्य को प्रभावित किया, परन्तु शैली के क्षेत्र में वह स्वतः रामकाव्य का अनुसरण करने लगा। इस युग तक आते आते तुलसीकृत रामचरित मानस की आख्यान शैली के अनुकरण पर कृष्णकथा को वर्णनात्मक रूप देने के भी यत्न हुए। अष्टछाप के कवि नन्ददास ने तुलसी के मानस के अनुकरण पर 'भाषा-भागवत' की रचना पहले ही की थी, आलोच्ययुग में यह प्रवृत्ति अपेक्षाकृत अधिक विकसित हुई। कृष्णभक्ति विषयक प्रबंधों में ब्रजवासीदास का 'ब्रजविलास' और चाचा वृन्दावनदास का 'ब्रजप्रेमानन्दसागर' इस युग की उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। कृष्णकाव्य के उपजीव्य ग्रंथ भागवत के दोहे चौपाई की शैली में अनेक भाषानुवाद भी विभिन्न कृष्णभक्ति-संप्रदायों के कवियों द्वारा किए गए[2]। इस प्रवृति को सूरसागर के वर्णनात्मक अंश और नन्ददास के 'भाषा-भागवत' का प्रभाव मानना अधिक उपयुक्त होगा। दोहे और चौपाई की शैली में साम्प्रदायिक इतिहास लेखन की भी प्रवृत्ति विकसित हुई। 'निजमतसिद्धांत' और 'ललितप्रकाश' इस परम्परा की उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। इस पारस्परिक आदान प्रदान का कारण राम और कृष्णभक्त कवियों की उदार-भावना और सारग्राहिणी प्रवृत्ति कही जा सकती है। इस युग में राम और कृष्ण भक्तों के सम्पर्क के अनेक उल्लेख भी मिलते हैं।[3]

---

[1] रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय—पृ० ३७८

[2] प्रस्तुत प्रबंध, अनूदित साहित्य—भागवत के भाषानुवाद

[3] (क) रसिकप्रकाश भक्तमाल—पृ० ११६

(ख) इस सम्बन्ध में निम्बार्क सम्प्रदाय के सुदर्शनदास की रसिक रामोपासक युगलानंद शरण से भेंट का प्रसंग अत्यन्त महत्वपूर्ण

लौकिक काव्यधाराएँ

आलोच्ययुगीन कृष्णभक्ति-काव्य पर वीर, शृंगार, नीति आदि लौकिक काव्य-धाराओं में से केवल शृंगार और नीति का ही प्रभाव मिलता है। रीति-युग की शृंगारी काव्यधारा ने कृष्णभक्ति के विविध सम्प्रदायों द्वारा पल्लवित माधुर्य भावना को प्रभावित किया, जिसके परिणामस्वरूप राधाकृष्ण का दिव्य एवं पवित्र व्यक्तित्व लौकिक धरातल पर उतर आया। रीति-परम्परा के कवियों द्वारा वर्णित राधाकृष्ण के रूप चित्रण और उसकी विलास क्रीड़ाओं पर लौकिकता की स्पष्ट छाप दिखाई पड़ती है। तत्कालीन पथभ्रष्ट और भक्ति विमुख समाज को जीवन के विविध आदर्शों से परिचित कराने के उद्देश्य से कृष्णभक्ति-काव्य में उपदेश और नीति निर्देशन की भी प्रवृत्ति मिलती है। उन्होंने आराध्य युगल की भक्ति के उपदेश के अतिरिक्त समाज की भक्ति विहीन मनोवृत्ति के परिष्करण के उद्देश्य से नीति विषयक रचनाएँ कीं। यद्यपि आलोच्यकालीन कृष्णभक्ति कवियों के समक्ष सूर आदि कवियों के आत्मबोध मूलक पदों का आदर्श था, किन्तु युग के रुग्ण वातावरण की प्रतिक्रियात्मक भावना नीतिपरक काव्य के सृजन की प्रेरक शक्ति ज्ञात होती है। लौकिक साहित्य के अन्तर्गत वीरकाव्य का कृष्णकाव्य पर कोई भी प्रभाव नहीं मिलता।

कृष्णभक्ति-काव्य की परम्परा

सोलहवीं शती के पूर्व

साहित्य में गोपालकृष्ण की लीला का सर्वप्रथम उल्लेख संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार अश्वघोष के बुद्धचरित (प्रथम शताब्दी ईसा) में प्राप्त होता है।[1]

और रोचक है। उन्होंने अपनी काशी यात्रा में युगलानन्दशरण से भेंट की थी। एक दिन रसिकभक्तों ने राम विवाह के प्रसंग का अभिनय करने का निश्चय किया, जिसमें जनक की भूमिका सुदर्शनदास को सौंपी गई। परन्तु उन्होंने जनक की भूमिका स्वीकार कर लेने पर भी अंत में कन्यादान देना अस्वीकार कर दिया। देखिये, निम्बार्क माधुरी, पृ० ६९?–९२

[1] अश्वघोष : बुद्धचरित (१।५)

लगभग इसी समय हाल की 'गाहासतसई' में कृष्णलीला के अनेक प्रसंग संकलित मिलते[१] हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि कृष्ण की ये लीलाएँ संकलन से पूर्व मौखिक रूप में प्रचलित रही होंगी, परन्तु उनकी प्रकृति भक्तिपरक नहीं कही जा सकती। दक्षिण के आलवार संतों के 'प्रबन्धनम्' में संकलित चार हजार भावपूर्ण गीतों में विष्णु के अवतारों के प्रति भक्तिभावना अभिव्यक्त हुई है तथा कृष्ण के साथ नापिन्नाई नामक गोपिका का भी उल्लेख हुआ है, जो गुण और प्रेम की दृष्टि से राधा की पर्याय प्रतीत होती है[२]। उनके गीतों में प्रेमानुभूति की आकुलता के साथ ही भक्ति के दास्य, वात्सल्य और माधुर्य रूपों की भी अभिव्यक्ति मिलती है। इन्हीं गीतों से परवर्ती वैष्णव आचार्यों ने प्रेरणा प्राप्त कर उत्तर भारत में कृष्णभक्ति की धारा प्रवाहित की थी। आलवारों के गीतों की प्रवृत्ति पूर्णतया धार्मिक है। इसके उपरान्त 'वेणीसंहार' नाटक के नांदी श्लोक, आनन्दवर्धन के 'ध्वन्यालोक' में उद्धृत श्लोक, सदूक्तिकर्णामृत में संकलित कृष्णलीला के श्लोक, 'कवीन्द्रवचन समुच्चय' में संकलित कृष्णलीला सम्बन्धी कविताएँ, हेमचन्द्र के व्याकरण में उद्धृत राधाकृष्ण विषयक दोहे, कृष्णाश्रय काव्य के गोपीगीत तथा 'अलंकार कौस्तुभ' 'कंदर्पमंरी' आदि ग्रंथों में राधा-कृष्ण विषयक उल्लेख इस तथ्य के प्रमाण हैं कि ११वीं शती के पूर्व संस्कृत और प्राकृत साहित्य में कृष्णकाव्य की परम्परा विद्यमान थी[३]। परन्तु सोलहवीं शती के शुद्ध धार्मिक प्रेरणा से प्रसूत हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य पर इस परम्परा के प्रभाव की खोज भूल होगी।

जयदेवकृत गीतगोविन्द

बारहवीं शती के अनन्तर संस्कृत और प्राकृत भाषाओं के कृष्णकाव्य की श्रृंगारी प्रवृत्ति उत्तरोत्तर धार्मिक होती गई। संस्कृत के पीयूषवर्षी कवि जयदेव के गीतगोविंद में पहली बार राधाकृष्ण की युगल लीला का माधुर्य-परक चित्रण मिलता है। गीतगोविन्दकार का उद्देश्य कोमलकान्त पदावली में राधाकृष्ण की विलास लीलाओं के माध्यम से लोकरंजन रहा है[४]। जयदेव

---

[१] गाहा सतसई १।२६, ५।७, २।१२, २।१४ आदि

[२] Hymns of Alvars, page 18—J.S.M. Hooper.

[३] श्री राधा का क्रम विकास, पृ० ११४ से १२४ तक

[४] गीतगोविन्द, प्रथम सर्ग, श्लोक २–३

की धारणा है कि उनके द्वारा विरचित यह स्तोत्र सम्पूर्ण स्तोत्रों में श्रेष्ठ है तथा भक्तजनों को भक्तिपूर्वक इसका स्मरण करना चाहिए।[1] यथार्थतः गीतगोविन्द के राधाकृष्ण काम पीड़ित हैं। जयदेव ने राधाकृष्ण के रूपचित्रण के साथ कामसूत्र के आधार पर उनके आलिंगन, विलास, एवं रतिक्रीड़ा के अनेक शृंगारी चित्र प्रस्तुत किए हैं। गीतगोविन्द की कोमलकान्त, मधुर एवं संगीतात्मक पदावली में राधाकृष्ण की विलास लीलाओं के अनेक चित्र कृष्णकाव्य की स्वाभाविक लोकरंजन की प्रवृत्ति की माधुर्यभावना के व्यापक प्रसार की ओर संकेत करते हैं।

गीतगोविन्दकार ने अपने अनुपम वाग्विलास से संस्कृत और हिन्दी के अनेक कवियों को प्रभावित किया। गीतगोविन्द के अनुकरण पर संस्कृत में जिन काव्यों की रचना हुई, उनमें प्रकाशानन्द सरस्वती का 'संगीतमाधव', चतुर्भुज का 'गीतगोपाल' और राजा रुद्रप्रतापदेव का 'अभिनव गीतगोविन्द' नामक ग्रंथ विशेष महत्व रखते हैं। बारहवीं शती की कृष्णभक्ति रचनाओं में ईश्वरपुरी का 'श्रीकृष्ण-लीलामृत' और लीलाशुक का कृष्णकर्णामृत भी उल्लेखनीय हैं। इनमें निरूपित शृंगार रस का आधार माधुर्य भक्ति है।

कृष्णचरित के प्रबंधात्मक यत्न

बारहवीं शती से ही कृष्णलीला सम्बन्धी प्रबन्धकाव्य रचे जाने लगे। बोपदेव की 'हरिलीला' (१२वीं शती), 'वेदान्तदेशिक की 'यादवाभ्युदय' (१४ वीं शती), श्रीधरस्वामी की 'व्रजबिहारी', रामचन्द्रभट्ट की 'गोपलीला', चतुर्भुज का 'हरिचरितकाव्य', लोलिम्बराज का 'हरिविलास काव्य', पद्मनाभ का 'गोपालचरित', कृष्णभट्ट का 'मुरारविजय नाटक' पन्द्रहवीं शती की उल्लेखनीय कृष्णपरक प्रबन्धात्मक कृतियाँ हैं।

विद्यापति

कृष्णकाव्य की परम्परा में जयदेव के उपरान्त विद्यापति का व्यक्तित्व विशेष महत्व रखता है। उनकी अधिकांश कृतियाँ संस्कृत, अवहट्ट और मैथिली भाषाओं में मिलती हैं। विद्यापति की भाषा पर बंगला भाषा की छाप दिखाई पड़ती है, परन्तु वे बंगला के कवि नहीं थे। विद्यापति का आविर्भाव लगभग पन्द्रहवीं शती में हुआ था। इनकी काव्य रचना का उद्देश्य अपने आश्रयदाता लक्ष्मणसेन को प्रसन्न कर उनका विलासलीलाओं के प्रति कौतूहल उत्पन्न

---

[1] गीतगोविन्द, प्रथम सर्ग, श्लोक ११

करना था। विद्यापति के शिव सम्बंधी पदों में उनकी भक्तिभावना विशेष रूप से प्रस्फुटित हुई है। परन्तु राधाकृष्ण विषयक रचनाओं में वासना का रंग प्रखर है। विद्यापति की पदावली पर जयदेव के गीतगोविंद का प्रभाव मिलता है, इसलिए उन्हें अभिनव जयदेव भी कहा गया है। इस सम्बन्ध में यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि कृष्णाख्यान की लोकजीवन में संचरित जिस धारा ने जयदेव को गीतगोविन्द-रचना की प्रेरणा दी होगी उसी से विद्यापति भी प्रभावित हुए होंगे। कदाचित् इसी हेतु उन्होंने राधाकृष्ण के लीलागान को अपनी पदावली का विषय चुना। विद्यापति के गीतों में शृंगार की वेगवती धारा बहती है। संगीत की मादक लहरियों ने उसके प्रभाव को और भी गहन बना दिया है। आराध्य के प्रति भक्त का जो पवित्र एवं पूज्य भाव होना चाहिए, वह विद्यापति के राधाकृष्ण विषयक पदों में नहीं मिलता है। यद्यपि इस विषय में मतभेद हो सकता है, किन्तु इतना तो निश्चित ही है कि सोलहवीं शती के धार्मिक वातावरण के निर्माण में उनकी रचनाओं ने पर्याप्त योग दिया। उनके कृष्णलीला विषयक पदों के प्रचार के सबसे शक्तिशाली माध्यम चैतन्य महाप्रभु हुए।

भक्ति और शृंगार की युगपत अभिव्यक्ति होने के कारण विद्यापति के काव्य की स्थिति आलोच्ययुग की रीति परम्परा के शृंगारी काव्य की सी मालूम पड़ती है। यद्यपि कृष्णकाव्य की परम्परा में विद्यापति का महत्वपूर्ण स्थान है तथापि सोलहवीं शती के शुद्ध धार्मिक प्रेरणा से प्रसूत कृष्णभक्ति-काव्य को विद्यापति की उद्दाम शृंगारिक पदावली से प्रत्यक्ष प्रेरणा नहीं मिली। भक्तियुगीन कृष्णकाव्य की प्रकृति अपने पूर्ववर्ती कृष्ण-काव्य से सर्वथा भिन्न है।

हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य

सूरपूर्व कृष्ण-काव्य का प्रश्न

अब तक हिन्दी के गण्यमान्य विद्वानों की यह धारणा रही है कि सोलहवीं शती से पहले का प्रामाणिक व्रजभाषा काव्य नहीं मिलता[1]। परन्तु इस क्षेत्र

[1] हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृ० १५२
'नाम माहात्म्य व्रजांक (अगस्त १९४०) 'व्रजभाषा'
'अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय' भाग १, पृ० २६

में कार्य करने वाले अनुसंधाताओं ने इधर व्रजभाषा काव्य की प्राचीनता जयदेव के गीतगोविन्द के समकक्ष सिद्ध की है। उनकी मान्यता है कि व्रजभाषा कृष्णकाव्य की परम्परा काफी पुरानी है, कम से कम बारहवीं शताब्दी तक तो मानना ही पड़ेगा[1]। इस मत के समर्थन में भागवत पर आधारित पुष्पदंत कवि का 'महापुराण', १०वीं शती में हेमचंद्र द्वारा संकलित अपभ्रंश के कृष्णपरक दो दोहे, प्राकृतपैंगलम में संकलित कृष्णभक्ति सम्बन्धी पद्य, संत कवियों की वाणी, गोपालनायक और बैजूबावरा संगीतज्ञ कवियों की रचनाएँ तथा विष्णुदास, थेघनाथ आदि कवियों के महाभारत और गीता के भाषानुवादों को प्रमाण रूप में प्रस्तुत किया गया है।[2] वस्तुतः इस सम्पूर्ण सामग्री के प्रस्तुतीकरण का प्रमुख प्रयोजन अपभ्रंश मिश्रित सूरपूर्व व्रजभाषा का स्वरूप निर्धारण है।

यह संकेत किया जा चुका है कि कृष्णचरित विषयक अनेक लोकाख्यान और लोकगीत प्राचीनकाल से जनमानस को आकृष्ट करते रहे हैं। उन्हीं से प्रेरित होकर जयदेव, विद्यापति आदि कवियों ने कृष्णलीलाओं का गान किया। भागवत और कृष्ण गीता का कृष्णभक्त कवियों ने समान रूप से आदर किया है। परन्तु भक्त आचार्यों की प्रेरणा से व्रजभाषा कृष्णकाव्य को अपूर्व आश्रय मिला। भक्ति कवियों ने अपने अनुपम भावपुष्प आराध्य युगल के चरणों में अर्पित किए। इन भक्तों से पहले भी कृष्णचरित उत्तर भारत के लिए अपरिचित नहीं था। किन्तु उसे भक्तिकाव्य में अभिव्यक्त कृष्णचरित की श्रेणी में रखना समीचीन नहीं प्रतीत होता। वस्तुत: सूर से पहले व्रजभाषा में कृष्णकाव्य की परम्परा तो विद्यमान थी परन्तु, भक्त आचार्यों की प्रेरणा से रचे गए व्रजभाषा कृष्णकाव्य का भक्ति और दर्शन की सशक्त पीठिका पर आधृत होने के कारण परम्परागत कृष्णकाव्य से भिन्न होना स्वाभाविक था।

साम्प्रदायिक कृष्णभक्ति-काव्य

पन्द्रहवीं शताब्दी में व्रजमण्डल में कृष्णभक्ति का प्रचार करने वाले आचार्यों में स्वामी वल्लभाचार्य का व्यक्तित्व सबसे अधिक प्रभावशाली सिद्ध

[1] सूरपूर्व व्रजभाषा और उसका साहित्य—पृ० २९०

[2] वही, पृ० २९०–९८।

हुआ। शुद्धाद्वैत दर्शन और पुष्टिमार्ग के आधार पर उनके द्वारा प्रतिपादित कृष्णभक्ति ने उत्तरी भारत की अध्यात्म-साधना को अत्यधिक प्रभावित किया। उनके उत्तराधिकारी गोस्वामी विट्ठलनाथ ने चार वल्लभाचार्य जा के (सूरदास, परमानन्दनाद, कुंभनदास, कृष्णदास) और चार अपने (नन्ददास, चतुर्भुजदास, गोविन्दस्वामी और छीतस्वामी) शिष्यों को लेकर अष्टछाप की स्थापना की। इन कवियों ने भागवत के आधार पर कृष्णलीलाओं के वात्सल्य, सख्य, माधुर्य और दास्य भक्ति समन्वित जो भावात्मक चित्र प्रस्तुत किए हैं, उनके द्वारा इनकी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि का परिचय मिलता है। लोकरंजन की स्वाभाविक उदात्त प्रकृति, कलात्मक उत्कृष्टता, सशक्त दार्शनिक पीठिका तथा भगवद्भक्ति के मधुर एवं लोकग्राह्य स्वरूप के प्रतिपादन के कारण इनका कृष्णकाव्य अप्रतिम है। वस्तुतः उन्होंने व्रजभाषा-काव्य को साहित्यिक उर्वरता प्रदान कर कृष्णकथा से उसकी अभिन्नता स्थापित की। वल्लभ-सम्प्रदाय के अष्टछापी कवियों के अतिरिक्त अठारहवीं शती में गोस्वामी हरिराय उल्लेखनीय कवि हुए। यद्यपि हरिराय के महत्व का कारण उनका वार्ता-साहित्य है। परन्तु इधर उनकी काव्य-रचनाएँ भी प्राप्त हुई हैं, जो भावधारा की दृष्टि से अष्टछाप काव्य से प्रचुर मात्रा में प्रभावित हैं।

साहित्य रचना और कृष्णभक्ति के प्रसार की दृष्टि से वल्लभ-सम्प्रदाय के उपरान्त गोस्वामी हितहरिवंश द्वारा प्रवर्तित राधावल्लभ-सम्प्रदाय का स्थान आता है। इस सम्प्रदाय में सत्रहवीं शती तक अनेक प्रतिभा-सम्पन्न कवि हुए, जिन्होंने अपनी काव्य साधना द्वारा भक्ति की मंदाकिनी को विशेष बल दिया। इनमें हरिरामव्यास, दामोदरसेवक, स्वामी चतुर्भुजदास, नेही नागरीदास और ध्रुवदास प्रमुख हैं। सम्प्रदाय प्रवर्तक गोस्वामी हितहरिवंश स्वयं एक रससिद्ध कवि थे। उनके द्वारा विरचित 'चौरासी पद' तथा 'राधासुधानिधि' राधावल्लभ-सम्प्रदाय के मुख्य सिद्धान्तग्रंथ माने जाते हैं। राधावल्लभ-सम्प्रदाय के कवियों ने हितहरिवंश की रचनाओं से प्रेरणा प्राप्त करके माधुर्य भाव की कलात्मक अभिव्यक्ति की है।

राधावल्लभ-सम्प्रदाय की भांति राधाकृष्ण की माधुर्य भक्ति को प्रधानता देकर काव्य रचना करने वाले निम्बार्क और हरिदासी सम्प्रदायों का भी योग महत्वपूर्ण है। सत्रहवीं शती के निम्बार्कीय रचनाकारों में श्री भट्ट, हरिव्यासदेवाचार्य, परशुरामदेव रूपरसिकदेव और तत्ववेत्तादेव का व्यक्तित्व उल्लेखनीय है। श्री भट्ट का 'युगलशतक', और हरिव्यासदेव की 'महावाणी'

निम्बार्क सम्प्रदाय के मुख्य उपजीव्य ग्रंथ हैं। सोलहवीं शती में निम्बार्क स्वामी की परम्परा में स्वामी हरिदास ने स्वतंत्र साधना पद्धति प्रवर्तित करके सखी सम्प्रदाय की स्थापना की। स्वामी हरिदास ने अपनी रचनाओं, 'सिद्धांत के पद' और 'केलिमाल' में साम्प्रदायिक भक्ति और राधाकृष्ण के नित्यविहार, नखसिख आदि का वर्णन किया है। स्वामी हरिदास तथा उनके शिष्यों में विहारिन देव, विट्ठलविपुल, सहचरिशरण और टट्टीस्थान के अष्टाचार्यों ने सखीभाव प्रधान माधुर्य भक्ति का प्रचार किया। हरिदासी सम्प्रदाय के व्रजभाषा साहित्य ने परिमाण में कम होते हुए भी व्रजमण्डल में माधुर्य भक्ति के प्रसार में पर्याप्त योग दिया।

चैतन्य संप्रदाय का अधिकांश साहित्य संस्कृत, बंगला और उड़िया भाषाओं में रचा गया। इसका व्रजभाषा साहित्य परिमाण में अपेक्षाकृत कम है। चैतन्य की कृष्णभक्ति का प्रवाह सुदूर पूर्व से व्रजमण्डल में आया था। अतएव बंगला और उड़िया भाषाओं में उसके साहित्य का रचा जाना स्वाभाविक भी था। परन्तु चैतन्यमत की माधुर्य भक्ति का शास्त्रीय रूप व्रजप्रदेश में रूप और सनातन गोस्वामियों द्वारा रचित संस्कृत के 'उज्ज्वलनीलमणि' और 'हरिभक्ति-रसामृतसिंधु' में ही निर्धारित हो सका। इस सम्प्रदाय के सत्रहवीं शती तक के व्रजभाषा कवियों में गदाधरभट्ट, सूरदास मदनमोहन, बल्लभरसिक और माधवदास उपनाम 'माधुरी' आदि का उल्लेख किया जाता है। इन कवियों ने व्रजभाषा में मधुर पदावली का सृजन किया। व्रजभाषा में साहित्य रचना की दृष्टि से चैतन्यमत का योगदान कृष्णभक्ति के अन्य सम्प्रदायों की तुलना में अपेक्षाकृत कम है।

सत्रहवीं शती तक के साम्प्रदायिक हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य की वर्ण्यवस्तु का मूलाधार पुराण साहित्य ही है। परन्तु कृष्णकाव्य की सहज उर्वर प्रवृत्ति, व्रजलोक-जीवन की अक्षय प्रेरणा-शक्ति एवं अनुभूति के विलक्षण संयोग से मौलिक उद्भावनाओं के कारण उसका स्वरूप नवीन-सा प्रतीत होता है। कृष्णलीला के स्फुट प्रसंगों के अन्तर्गत माधुर्य पक्ष की प्रधानता के कारण कृष्णकाव्य की रचना प्राय: पद शैली में ही हुई। कथात्मक अंश दोहे और चौपाई की शैली में रचे गए, परन्तु ऐसे अंशों में इष्टदेव के चरित वर्णन में कवियों की अनुभूति रम नहीं सकी है। फिर भी स्वतंत्र प्रसंगों को लेकर प्रबंध लेखन की प्रवृत्ति नंददास कृत 'भंवरगीत', 'रासपंचाध्यायी' और 'रुक्मिणी-मंगल' जैसी रचनाओं में पल्लवित होने लगी थी। प्रबन्धकाव्यों में बाल

गोपाल के रूप की अपेक्षा कृष्णचरित के ऐश्वर्य पक्ष को प्रधानता दी गई है। परन्तु आलोच्यकालीन प्रबन्धकाव्यों में यह प्रवृत्ति सुरक्षित न रह सकी।

सम्प्रदायमुक्त-कृष्णकाव्य

कृष्ण काव्य की परम्परा में सम्प्रदाय मुक्त कृष्णभक्ति कवियों का भी एक वर्ग मिलता है। ऐसा ज्ञात होता है कि सम्प्रदायमुक्त कवियों के लिए कृष्णभक्ति की लोकप्रियता ही प्रेरक शक्ति रही होगी। सम्प्रदायमुक्त कवियों की भी दो श्रेणियाँ लक्षित होती हैं, शुद्ध भक्तिभाव से प्रेरित होकर काव्य रचना करने वाले कवि तथा लक्षण ग्रंथों में उदाहरण प्रस्तुत करने के उद्देश्य से लिखने वाले कवि। प्रथम वर्ग में मीरा, तुलसी, और नरोत्तमदास आदि रचनाकार आते हैं। मीरा का काव्य उनके नारी हृदय की कोमलता और भक्ति जनित शुद्ध अनुभूति का प्रकाशन है। उनके पदों में निर्गुण और सगुण भक्ति-धाराओं का अपूर्व समन्वय मिलता है। मीरा की रचनाएँ भाषा की दृष्टि से सांस्कृतिक महत्व रखती हैं। भक्तिकाल में कृष्ण-कीर्तन का प्रवाह व्रज से राजस्थान और गुजरात के प्रदेशों में ले जाने का श्रेय मीरा को ही है। महाकवि तुलसी की गीतावली एक ओर जहाँ उनके उदार व्यक्तित्व की सूचक है, दूसरी ओर वह कृष्णभक्ति के लोकव्यापी प्रसार और आकर्षण की भी प्रतीक है। नरोत्तम का सुदामाचरित नाट्यशैली में रचित संक्षिप्त किन्तु मौलिक प्रबन्धकाव्य है। कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण न होने पर भी यह रचना पर्याप्त प्रभावशाली सिद्ध हुई। आलोच्ययुग में सम्प्रदायमुक्त कवियों द्वारा विरचित सुदामाचरितों की सुदृढ़ परम्परा प्राप्त है। रहीम के काव्य की प्रेरक शक्तियाँ भक्ति, शृंगार और नीति की धाराएँ थीं। वे विदेशी थे अतः उनकी कृष्णभक्ति का स्वरूप भिन्न होना स्वाभाविक था। परन्तु उनके कृष्ण-भक्ति के दोहे उसके लोकव्यापी आकर्षण के प्रमाण हैं। सम्प्रदायमुक्त कृष्ण-परक कवियों को भक्ति समन्वित नीति काव्य के सृजन की प्रेरणा शुद्ध नीति-काव्य प्रणेताओं की अपेक्षा रहीम जैसे भक्तों के काव्य से ही अधिक मिली हुई प्रतीत होती है।

हिन्दी रीतिकाव्य का उत्कर्ष सामान्यतया सन् १६५० के लगभग से माना जाता है। आलोच्ययुग के आविर्भाव तक इस परम्परा से प्रभावित कृष्णपरक कवियों में बिहारी, मतिराम, देव आदि का नामोल्लेख किया जाता है। यद्यपि इन्होंने भक्तिकाव्य की मर्यादा की रक्षा करते हुए आध्यात्मिकता की व्यंजना अपनी काव्य रचना का उद्देश्य नहीं बनाया, तथापि कृष्णभक्ति

की लोकप्रियता एवं उसके माध्यम से शृंगारी मनोवृत्ति के प्रकाशन हेतु प्रचुर उपकरण देख कर इनके लिए उसका पल्ला पकड़ना स्वाभाविक था। इसीलिए इन्हें विविध सम्प्रदायों से सम्बद्ध करने के भी यत्न किए गए हैं। निम्बार्क-माधुरीकार ने सेनापति और बिहारी को निम्बार्क-सम्प्रदाय के अन्तर्गत माना[१] है तथा सेनापति को टट्टी-स्थान का वैष्णव कहा है[२]। बिहारी और देव के सम्बन्ध में वियोगीहरि की धारणा है कि वे राधावल्लभ-सम्प्रदाय से सम्बद्ध थे[३]। वस्तुतः इन धारणाओं के न तो कोई साम्प्रदायिक प्रमाण ही मिलते हैं और न कवियों के आत्मोल्लेखों से ही इनकी पुष्टि होती है। इस युग तक आते-आते निम्बार्क और हरिदासी सम्प्रदायों की प्रधानता हो गई थी तथा उनमें आभिजात्य वर्ग भी दीक्षित होने लगा था। अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि किसी सम्प्रदाय से इन कवियों का सम्बन्ध रहा होगा तथा उसी के प्रभावस्वरूप उनके काव्य में कृष्णपरक अभिव्यक्तियों को स्थान मिला। फिर भी रचनाओं के आधार पर इन्हें किसी सम्प्रदाय से सम्बद्ध करना सर्वथा निर्विवाद नहीं है। वस्तुतः इस युग तक राधा-कृष्ण कवियों के सामान्य आलम्बन बन गए थे और उनके व्यक्तित्व ने काव्य-जगत् का अधिकांश आच्छादित कर लिया।

उपर्युक्त विवेचन से यह भली भाँति स्पष्ट हो जाता है कि आलोच्ययुग के पूर्व तक कृष्णभक्ति-काव्य का विकास साम्प्रदायिक और सम्प्रदाय-मुक्त धाराओं के अन्तर्गत हुआ। अठारहवीं और उन्नीसवीं शती में भी ये धाराएँ अजस्र रूप से प्रवाहित होती रहीं तथा दोनों एक दूसरे से विविध क्षेत्रों में प्रभावित भी हुईं।

---

[१] निम्बार्क माधुरी, पृ० ४७६

[२] वही, पृ० ५७७-

[३] ब्रजमाधुरीसार, पृ० २८५ तथा २६५

कवि और काव्य

समीक्ष्य युग में कृष्णभक्ति के सभी सम्प्रदायों में काव्य रचना की परम्परा मिलती है। इसके अतिरिक्त अनेक ऐसे कवियों की भी कृष्णपरक रचनाएँ प्राप्त होती हैं, जो किसी सम्प्रदाय से सम्बद्ध नहीं हैं। विगत निर्देश के अनुसार उन्हें 'सम्प्रदाय-मुक्त' नाम से अभिहित किया गया है। कृष्णभक्ति सम्प्रदायों की पारस्परिक स्पर्धा एवं कृष्णलीला काव्य की लोकप्रियता के परिणामस्वरूप मौलिक काव्य के अतिरिक्त सिद्धान्तपरक, अनूदित और टीका काव्यों की रचना की भी प्रवृत्ति पल्लवित हुई। समसामयिक रीति-काव्यधारा तथा उसके प्रभावस्वरूप अनेक कवियों ने काव्यशास्त्र विषयक लक्षण ग्रंथों की रचना की। कुछ कृष्णपरक कवियों की रामचरित सम्बन्धी कृतियाँ भी मिलती हैं, जिन्हें वैष्णव भक्ति-साहित्य की परम्परागत उदार प्रवृत्ति का प्रतीक कहा जा सकता है। भक्तों के प्रशस्तिमूलक चरित्र-वर्णन तथा भक्तमालों एवं भक्त-नामावलियों के रूप में कुछ साम्प्रदायिक कवियों का अपने-अपने सम्प्रदायों के इतिहास लेखन के प्रति भी आकर्षण दिखायी पड़ता है। इसके अतिरिक्त राजनीतिक जागरण एवं सामाजिक पुनरुत्थान की भावना से प्रेरित होकर भारतेन्दु आदि के कृतित्व में भक्ति से इतर राजनीतिक एवं सामाजिक विषयों को भी स्थान मिला। किन्तु प्रस्तुत अध्ययन में समीक्ष्य कवियों की कृष्णभक्ति एवं कृष्णलीला-परक कृतियों को ही सम्मिलित किया गया है।

१--साम्प्रदायिक कवि और काव्य

(जीवनी और कृतियों का अध्ययन)

इस युग में साम्प्रदायिक कृष्णपरक कवियों के साम्प्रदायिक स्रोतों, खोज-रिपोर्टों और इतिहास ग्रन्थों में अनेक कवियों और उनकी कृतियों के उल्लेख मिलते हैं। किन्तु यहाँ प्रत्येक सम्प्रदाय के कुछ चुने हुए ऐसे कवियों और उनकी कृतियों का ही अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, जिनके कृतित्व में काव्य एवं भक्ति तत्वों को प्रश्रय मिला है अथवा जिनके सम्बन्ध में नवीन सामग्री के सन्दर्भ में पुनर्विचार की आवश्यकता प्रतीत हुई है।

निम्बार्क-सम्प्रदाय

निम्बार्क-माधुरी में निर्दिष्ट युग के अनेक निम्बार्कीय कवियों का उल्लेख हुआ है, जिनमें वृन्दावनदेव, घनानंद, रसिक गोविन्द, वृजदासी, सुन्दर कुँवरि, कृष्णदास और नारायण स्वामी विशेष उल्लेखनीय हैं। नीचे इन कवियों तथा उनकी रचनाओं का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है—

वृन्दावनदेव

समय- वृन्दावनदेव के जीवन चरित पर उनकी रचनाओं से बहुत कम प्रकाश पड़ता है। वृन्दावनदेव निम्बार्क-सम्प्रदाय के आचार्य श्री नारायणदेव के शिष्य थे। विहारीशरण के अनुसार ये संवत् १७०० के लगभग सम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे[1]। परन्तु यह तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता, क्योंकि निम्बार्क-आचार्यपीठ के प्राचीन पत्रकों तथा उदयपुर, जोधपुर, किशनगढ़, बीकानेर, भरतपुर आदि राज्यों में उपलब्ध ऐतिहासिक सूत्रों से इनके नाम का उल्लेख संवत् १७३५ से १७९७ तक मिलता है।[2] वृन्दावनदेव के आचार्य पीठ के अधिकारी होने के सम्बन्ध में दो तिथि संवतों का उल्लेख मिलता है। ब्रह्मचारी बिहारीशरण के अनुसार वृन्दावनदेव संवत् १७५६ में सलेमाबाद आये और आचार्य पीठ के अधिकारी हुए।[3] परन्तु व्रजवल्लभशरण के अनुसार वे संवत् १७५४ में इस पद पर असीन हो गये थे तथा ४३ वर्षों तक उसके अधिकारी रहे।[4] इस आधार पर वृन्दावनदेव का समय सं० १७९७ पर्यन्त निश्चित होता है।

परिचय तथा सम्बन्ध—वृन्दावनदेव का राजस्थान के राजघरानों से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा था। सवाई जयसिंह, सावंतसिंह (नागरीदास), रानी बाँकावती, राजकुमारी सुन्दर कुँवरि आदि वृन्दावनदेव में विशेष श्रद्धा रखती थीं। जयसिंह द्वितीय, विष्णुसिंह के बाद आमेर की गद्दी पर बैठे तथा उन्होंने संवत् १७५६ से १८०० तक राज्य किया। लेकिन उनके सिंहासनारोहण के पूर्व ही आचार्य वृन्दावनदेव और उनकी बहिन जमुनाबाई का आमेर जाना

---

[1] निम्बार्क माधुरी, पृ० १४३

[2] गीतामृत गंगा-भूमिका, पृ० क

[3] निम्बार्क माधुरी, पृ० १४३

[4] सर्वेश्वर वर्ष १ से ३९, गीतामृत गंगा की भूमिका

प्रारम्भ हो गया था।[१] कृष्णगढ़ के राजा राजसिंह की रानी बाँकावती और उनकी पुत्री सुन्दर कुँवरि ने वृन्दावनदेव को अपनी रचनाओं में सम्मानपूर्वक स्मरण किया है—

भक्ति मुक्ति ठाम श्री परशुराम देव जू की गादी है,
सलेमाबाद तहाँ पाप काँप ही।
कोटि-कोटि जन्म सुकृत तातें पावें,
महाभागी जन सेवा सजाप ही।
जहाँ कलिकाल के अंधियारे के तिमिर हर,
वृन्दावनदेव जू प्रगट प्रभु आप ही।
दीन के दयाल मोसी पतित निहाल कीनी,
लीनी अपनाय अब बन्दौ यह छाप ही।[२]

वृन्दावनदेव के प्रभावशाली व्यक्तित्व का जयपुर के प्रसिद्ध कवि देवर्षि मण्डन ने भी उल्लेख किया[३] है। इसके अतिरिक्त उन्होंने जयपुर के निर्माण में बंगाल के विद्वान विद्याधर की भी सहायता की थी[४]।

वृन्दावनदेव के किशनगढ़ राज्य से घनिष्ठ सम्बन्ध के द्योतक दो चित्र भी उपलब्ध हुए हैं। इन चित्रों के पृष्ठ भाग पर अंकित छप्पय से आचार्यपाद की महत्ता एवं प्रभाव के स्पष्ट संकेत मिलते हैं। राजकीय चित्रकोश के चित्र सं० १४८ के पीछे लिखा है—

'हरिभक्ति निवास विद्या-प्रकाशः महामहान्त स्वामी श्री वृन्दावनदेव जी महाराज सलेमाबाद स्थल।' उस छप्पय में वृन्दावनदेव के प्रताप को दिनकर के सदृश्य कहा है। वे व्रजभाषा के महाकवि और दिग्विजयी पण्डित थे।

---

[१] कृष्णगढ़ राज्य के ऐतिहासिक सूत्रः निम्बार्क शोध मण्डल, वृन्दावन के संग्रह से।

[२] गीतामृत-गंगा, भूमिका खण्ड से

[३] भये नारायण देव के श्री वृन्दावनदेव।
तिनके श्री जयसाह ने करी चरण की सेव।
श्री वृन्दावनदेव को देत देवऋषि दाद।
रघुकुल श्री जयसाह सौ किय तप बल को बाद।।
जयसिंह सुजस प्रकाश, भूमिका, पृ० ६

[४] जयसिंह-सुजस-प्रकाश, भूमिका, पृ० ६

ऐश्वर्यसम्पन्न शासक उनके आज्ञाकारी हुए तथा उन्होंने अन्तिम क्षण तक धर्म की मर्यादा का पालन किया। वे निम्बार्काचार्य की परम्परा में हरिव्यास-देव की गद्दी पर अधिष्ठित थे।[१] जयसिंह द्वितीय द्वारा विरचित वृन्दावनदेव के उद्धृत आदर-सूचक श्लोकों से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है—

श्री वृन्दावनदेवाय गुरवे परमात्मने।
मनो मंजरि रूपाय युग्मसंगानुचारिणे ॥

× ×

श्री वृन्दावन देवाय सच्चिदानन्दरूपिणे।
नमस्तेवेद पारायं गुरवे परमात्मने ॥[२]

व्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि घनानन्द ने वृन्दावनदेव से दीक्षा ली थी। यह तथ्य घनानन्द की परहंस-वंशावली के प्रस्तुत छंद से स्पष्ट हो जाता है :—

जग बोहित मोहित प्रगट, हरि विनोद निज धाम।
अवनीमनि श्रीयुत सदा वृन्दावन अभिराम ॥
बिसे बीस महिमा तिन्हें, ताहि कोस हैं बीस।
सदा बसौ नीके लसौ कृपा-ईस मो सीस ॥

परमहंस-वंशावली में घनानन्द ने वृन्दावनदेवाचार्य के अतिरिक्त उनके शिष्य जयराम शेष की भी प्रशंसा की है :—

काशी बासी शेष गन, निगमागमन-प्रवीन।
निम्बादित्य-अनुगम सबै, परम पुनीत कुलीन ॥
तिनको वंश प्रसंस जग, जगमग ज्यों द्विजराज।
जन मंडित पंडित बिबुध सोभित सदा समाज ॥

---

१ दिनकर लौं जगमग प्रताप जश जक्त अखंडित।
रस भाषा कविराज महादिग्विजयी पंडित।
अतिनिवइयो ऐश्वर्य भूप भये आज्ञाकारी।
अंत समय लौ परम धर्म मरजादा पाली ॥
श्री निम्बादित्य पद्धति बहे. हरिव्यासदेव गादी स्थित।
श्री वृन्दावनदेव महान्त से दिग्गज भये न होंहि छित ॥
—सर्वेश्वर, वर्ष १ सं० ३६

२ गीतामृत-गंगा की भूमिका से उद्धृत

तिनकरि यह निश्चय करी परंपरा की रीति ।
स्रुति और स्मृति पुरान की कथा पुरातन नीति ॥[१]

रचनाएँ—साम्प्रदायिक स्रोतों के अनुसार वृन्दावनदेव ने संस्कृत, राजस्थानी और व्रजभाषा में रचनाएँ की थीं, किन्तु उनकी संस्कृत और राजस्थानी रचनाओं के प्रमाण नहीं मिलते।[२] वृन्दावनदेव के कुछ पदों में अवश्य व्रजभाषा के साथ इन भाषाओं का मिश्रण हुआ है। वृन्दावददेव की व्रजभाषा रचनाओं में 'गीतामृत-गंगा' सर्वश्रेष्ठ है। इसके अतिरिक्त उनकी 'युगलकिशोर परिवार-चंद्रिका'[३], 'भक्ति-सिद्धान्त-कौमुदी'[४] और 'दीक्षा-मंगल[५]', तीन और रचनाएँ कही जाती हैं।

गीतामृत-गंगा—गीतामृत-गंगा वृन्दावनदेव की सर्वश्रेष्ठ रचना है। निम्बार्कमाधुरी-कार ने 'गीतामृत-गंगा' के लिए 'कृष्णामृत-गंगा' नाम दिया[६] है। 'गीतामृत-गंगा' चौदह घाटों में विभाजित है। इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य जन्म से लेकर विवाह संस्कार तक राधाकृष्ण की विविध लीलाओं का वर्णन है।

युगलकिशोर-परिवार-चंद्रिका—यह एक छोटी, किन्तु सुन्दर रचना है। ग्रन्थ में उसका रचनाकाल निर्दिष्ट नहीं है। 'युगलकिशोर-परिवार-चंद्रिका' में राधाकृष्ण के परिवार के अन्तर्गत उनके निकट सम्बन्धियों, ग्वाल-सखाओं, गोपियों, राधा की सखियों आदि का १८३ दोहों और सोरठों में वर्णन किया गया है। रचना के प्रारम्भ में ही कवि ने रचना-प्रयोजन का कथन किया है—

प्रेमभक्ति दातार प्रथमहि श्री हरिव्यास भजि ।
युगल चंद परिवार तासु कृपा ते कहत हौं ॥[७]

---

[१] परमहंस-वंशावली, छंद सं० ४४ (घनानन्द ग्रन्थावली)
[२] सर्वेश्वर, वर्ष १ सं० ३-६
[३] वही, वर्ष २ सं० १०-११ में प्रकाशित
[४] वही, वर्ष १ सं० ३-६
[५] वही, वर्ष २ सं० १२ में प्रकाशित
[६] निम्बार्क-माधुरी, पृ० १४५
[७] युगलकिशोर-परिवार-चंद्रिका, छं० १

दीक्षा-मंगल—यह भी एक छोटी रचना है, जो पाँच विश्रामों में विभाजित है। प्रत्येक विश्राम में क्रमशः १०,१६,१६,१० और १६ दोहों का प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त १० दोहों में रचना का प्रयोजन बताया गया है। इस प्रकार समस्त रचना में केवल ८१ दोहों का प्रयोग हुआ है। भगवत-भक्ति, तथा दीक्षा की विधि का उपदेशपरक शैली में कथन रचना का प्रतिपाद्य[१] है। ग्रन्थ में रचनाकाल का निर्देश नहीं हुआ है।

भक्ति-सिद्धान्त-कौमुदी—वृन्दावनदेव की यह अन्तिम रचना है। दुर्भाग्यवश इसकी अन्य प्रतियाँ खण्डित हैं। केवल एक अखण्डित प्रति की चर्चा व्रजवल्लभशरण जी ने की है।[२] अखण्डित प्रति में उसका रचनाकाल संवत् १७९६ भी दिया है। इस प्रकार यह वृन्दावनदेव की अन्तिम रचना प्रतीत होती है। क्योंकि संवत् १७९७ के उपरान्त उनके वर्तमान रहने का कोई भी उल्लेख नहीं मिलता। इसके अन्तर्गत उनकी साम्प्रदायिक साधना-पद्धति का कथन हुआ है।

वृन्दावनदेव की समस्त रचनाओं में काव्य-दृष्टि से केवल गीतामृत-गंगा ही महत्वपूर्ण है। अन्य रचनाओं का कोई काव्यात्मक प्रयोजन नहीं ज्ञात होता। उनके महत्व का सबसे बड़ा कारण यह है कि एक रससिद्ध कवि होने के साथ ही उन्हें घनानन्द जैसे श्रेष्ठ कवि के गुरु होने का भी गौरव प्राप्त है।

घनानन्द

घनानन्द नामधारी विविध कवि—मध्ययुग में आनंद, घनानन्द और आनंदघन नाम से निम्नलिखित पाँच कवियों के विवरण प्राप्त होते हैं—

१—पहले घनानन्द निम्बार्क-सम्प्रदाय में दीक्षित सुजान प्रेमी और रीतिकाल की स्वच्छन्द काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि हैं। इनका समय संवत् १७३० से १८१३ पर्यन्त है।

२—मिश्रबन्धु विनोद में एक आनन्द नामक कवि का उल्लेख मिलता है। इनकी दो रचनाएँ 'कोकसार' और 'सामुद्रिक' प्राप्त हैं। इनका समय संवत् १६६० के लगभग है।[३]

---

[१] दीक्षा-मंगल, सर्वेश्वर, वर्ष २ सं० १२

[२] भक्ति-कौमुदी की यह प्रति ओरियेन्टल मैनुस्क्रिप्ट लाइब्रेरी उज्जैन में सुरक्षित है।

[३] मिश्रबन्धु-विनोद, भाग २ पृ० ६२३

३—आनन्दघन नाम के एक अन्य जैन धर्मानुयायी कवि का उल्लेख प्राप्त होता है।[१] क्षितिमोहन सेन ने इनका समय संवत् १६१५ से १६७५ तक माना है।[२] जैन पंडित यशोविजय की इनके सम्बन्ध में प्राप्त प्रशंसात्मक स्तुति के आधार पर डॉ० मनोहरलाल गौड़ ने इनका समय संवत् १६१५ से १७१० तक बताया है[३]। जैनधर्मी आनन्दघन का एक अन्य नाम 'लामानन्द' भी मिलता है। इनकी दो रचनाएँ 'आनन्दघन-बहत्तरी' और 'आनंदघन-चौबीसी' प्राप्त हैं। पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'घनआनन्द और आनन्दघन' नामक ग्रन्थ में इन दोनों रचनाओं का संकलन भी किया है।

४—चौथे आनन्दघन नन्दगाँव के एक ब्राह्मण कवि थे। इनका समय विक्रम की सोलहवीं शती का उत्तरार्द्ध है। ये चैतन्य महाप्रभु के समसामयिक थे। संवत् १५५३ में इनकी भेंट चैतन्य-महाप्रभु से भी हुई थी।[४]

५—पाँचवें घनानन्द का परिचय डॉ० केसरीनारायण शुक्ल ने दिया है, जो नानकजी के 'जपजी' के टीकाकार हैं। कवि के आत्मोल्लेख से ज्ञात होता है कि वे सिक्खों के दसवें गुरु की शिष्य परम्परा में रामदयाल के शिष्य थे। टीका का रचनाकाल सं० १८५४ है।[५]

आनंद और आनंदघन नामधारी कवियों से सुजान प्रेमी घनानन्द का पार्थक्य स्पष्ट है। विवेच्य घनानन्द के 'आनन्दघन' और 'घनानन्द' दोनों ही नाम उनकी रचनाओं में प्राप्त होते हैं। 'घनानन्द' अथवा 'आनन्दघन' नामधारी अन्य कवियों से इनकी स्थिति भिन्न है।

नाम की यथार्थता—घनानन्द के वास्तविक नाम की समस्या भी पर्याप्त विनोद का विषय रही है। शिवसिंह, और ग्रियर्सन ने इनका नाम 'आनन्दघन' माना है।[६] आचार्य शुक्ल ने इन्हें सर्वप्रथम 'घनानन्द' नाम से

---

[१] वीणा, सन् १९३८ नवम्बर अंक

[२] वही

[३] घनानन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ० ३६

[४] घनानन्द-ग्रन्थावली, भूमिका, पृ० ६८

[५] सम्पूर्णानन्द अभिनंदन-ग्रन्थ, घनानन्द विषयक लेख

[६] (क) शिव सिंह सरोज, पृ० ३८०, सातवाँ संस्करण (ख) माडर्न वर्नाक्यूलर आफ हिन्दुस्तान, पृ० ३४७

अभिहित किया।[१] पं० राधाचरण गोस्वामी ने इनके लिए 'घनानन्द' और 'आनन्दघन' दोनों ही नामों का प्रयोग किया है।[२] शम्भुप्रसाद बहुगुणा ने इस कवि का वास्तविक नाम 'आनन्द' माना है। उनकी धारणा है कि युगल उपासना के प्रभाव स्वरूप राधा और कृष्ण की सामूहिक शक्ति की व्यंजना हेतु कवि ने इसे 'घनानन्द' और 'आनन्दघन' दोनों रूपों में प्रयुक्त किया है।[३] पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने कवि-नाम 'घनानन्द' ही माना है।[४] निम्बार्क-माधुरीकार ने विवेच्य कवि के 'घनानन्द' और 'आनन्दघन', दोनों ही नाम माने हैं।[५]

इस संदर्भ चाचा वृन्दावनदास, रघुराजसिंह, घनानन्द के सामयिक भड़ौवाकार ब्रजनाथ आदि रचनाकारों की घनानन्द नाम विषयक उद्भावनाओं का भी अनुशीलन उचित होगा। चाचा वृन्दावनदास ने कवि का 'आनन्दघन' नाम प्रयुक्त किया है[६]। रघुराजसिंह ने 'घनानन्द' नाम दिया है[७]। कवि के कवित्तों के संग्रहकर्ता ब्रजनाथ ने उनकी प्रशस्ति में 'आनन्द' नाम का

---

[१] हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३३५

[२] भक्ति-वेलि सिंचन करी घनानन्द आनन्दघन—भक्तमाल

[३] घनानन्द भूमिका, पृ० ८४

[४] मिश्र जी द्वारा सम्पादित 'घनानन्द-कवित्त' और 'घनानन्द-ग्रन्थावली' के नाम ही इसके प्रमाण हैं।

[५] निम्बार्क माधुरी, पृ० ४६२

[६] आनंदघन को ख्याल इक गायौ खुल गए नैन।
सुनत महा विह्वल भयौ मन नहिं पायो चैन।।
—हरिकलावेलि

[७] क—घनानन्द है नाम जिन सुनत हरत भव त्रास।
—राम रसिकावली

ख—घनानन्द की कथा अनेका। ब्रज मैं विदित अहै सविवेका।।
घनानन्द के विपुल कवित्ता। अबलौं हरत कविन के चित्ता।
—भक्तमाल
—उत्तर चरित्र; पृ० ६०८, ६०६

प्रयोग किया है[१]। भड़ौवाकार ने कवि के 'घनानन्द' और 'आनन्दघन' दोनों ही नाम प्रयुक्त किए हैं[२]। घनानन्द के परम मित्र नागरीदास ने उन्हें 'आनन्दघन' कहा है।[३]

डॉ० मनोहरलाल गौड़ ने दोनों शब्दों की अर्थपरम्परा तथा कवि द्वारा प्रयुक्त नाम की विविध छापों के आधार पर विवेच्य कवि का वास्तविक नाम 'घनानन्द' और उपनाम 'आनन्दघन' माना है[४]। कवि द्वारा प्रयुक्त छापों को देखने से ज्ञात होता है कि उसका व्यक्तिगत आग्रह 'आनन्दघन' शब्द के प्रयोग पर अधिक है। समसामयिकों एवं परवर्ती प्रशस्तिकारों ने आत्मरुचि एवं कवि की प्रसिद्धि के अनुसार उसके दोनों ही नामों का प्रयोग किया है। घनानन्द और आनन्दघन के अर्थ साम्य से कवि के उक्त दोनों नामों के प्रचलित होने की अधिक सम्भावना प्रतीत होती है। कवि प्रायः अपने उपनाम का वास्तविक नाम की अपेक्षा अधिक प्रयोग करता है। ध्वनि-विपर्यय एवं साम्य तथा छंद के अन्तर्गत पद व्यवस्था के कारण विविध रूपों में प्रयुक्त 'घनानन्द' कवि का वास्तविक तथा 'आनन्दघन' उपनाम मानना अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है। इस सम्बन्ध में डॉ० गौड़ की यह सम्भावना भी उचित ही प्रतीत होती है

---

[१] भाषा प्रवीन सुछंद सदा रहै सो घन जी के कवित्त बखानै।

× ×

समुझै कविता घनआनन्द की हिय-आँखिन नेह की पीर तकी।

× ×

पूंछ-विषान बिना पसु जो सुकहा घनआनन्द-बानी बखानै॥

घनानन्द-ग्रंथावली, पृ० ३-४

× ×

[२] मुदित आनन्दघन कहत विधाता सो यों,

खाल को आसन दीजो गारी मोहिं गावैगी।

× ×

वह ईस कहूँ घनआनन्द कों जू सुजान इजार की जू करतौ॥

—घनानन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ० ८ से उद्धृत

[३] आनन्दघन को संग करन तन-मन को वाच्यो।

—नागर समुच्चय, पृ० २५ पद सं० ५

आनन्दघन हरिदास आदि संतन बच सुनि-सुनि।

वही, पृ० १०५

[४] घनानन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ० ३४

कि फारसी साहित्य से प्रभावित घनानन्द, आनन्दघन नाम का ही अधिक प्रयोग करते होंगे।

रचनाओं में नाम की छाप—'घनानन्द' छाप का प्रयोग कवि की रचनाओं में अनेक रूपों में मिलता है। डॉ० मनोहरलाल गौड़ के अनुसार ये रूप[1] 'आनन्दघन', 'अनन्दघन', 'आनन्द के घन', 'आनन्द-पयोद', 'आनन्द-निधान', 'पयोदमोद', 'आनन्द', 'आनन्दकंद', 'आनन्दसदन', 'आनन्दमेघ', 'मोदमेह', आनन्दमुदीर' 'आनन्द-अमीबरस' 'मोदपरम-पयोद', 'सच्चिदानन्दघन' 'आनन्द मेह' 'घनआनन्द के अंबुद', 'आनन्द अमृतकंद' हैं। परन्तु लेखक के विचार से इन रूपों में 'पयोदमोद', 'मोद-परमपयोद' और 'मोद-मेह' को कवि के नाम की छाप मानना उचित नहीं है। क्योंकि ये शब्द 'घनानन्द' अथवा 'आनन्दघन' से व्यंजित होने वाले अर्थों से युक्त होते हुए भी इन दोनों शब्दों के पूर्वांश अथवा उत्तरांश किसी पर भी आधारित नहीं है। अतएव अर्थ की दृष्टि से घनानन्द अथवा आनन्दघन के पर्याय होते हुए भी ये शब्द कवि के नाम की छाप नहीं हो सकते। वस्तुतः 'घनानन्द' और 'आनन्दघन' शब्दों में किसी भी ध्वनि के परिवर्तन से निर्मित रूपों को ही उनके नाम की छाप मानना उचित प्रतीत होता है।

घनानन्द का जन्म-संवत्—घनानन्द के जन्म-संवत् पर विचार करने से पूर्व यह जान लेना उचित प्रतीत होता है कि प्राचीन संग्रहों में उनकी रचनाएँ किस समय तक प्राप्त होती रही हैं। प्राप्त संग्रहों में सरदार कवि के 'श्रृंगार संग्रह' (सं० १६०२-१६४० तक), ब्रजनिधि की 'ब्रजनिधि-ग्रंथावली' (सं० १८२१-१८८०) मथुरावासी नवीन के 'सुधासर', कृष्णानन्द के 'संगीत राग-कल्पद्रुम', भक्तराम के 'राग-रत्नाकर' के आधार पर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उन्नीसवीं शती तक घनानन्द की रचनाएँ उद्धृत होती थीं[2]। घनानन्द के समसामायिक और मित्र नागरीदास ने भी उनकी रचनाओं के उद्धरण दिए हैं।[3] नागरीदास का काव्यकाल (संवत् १७८०-१८१६) है।

---

[1] घनानन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ० २६

[2] वही, पृ० ३१

[3] नागर समुच्चय, पृ० ४६३ :१० पर पदमुक्तावली, ५१ : १० के पृ० १४२ तथा ७७ पर २ कवित्त। वैराग्य-सागर पृ० ५१-१०५, १६६, २६४ : ४२ : पर के ६ पद आदि

उन्हें 'मनोरथ-मंजरी' (सं० १७८०) की रचना की प्रेरणा घनानन्द से ही प्राप्त हुई थी। नागरीदास के काव्यकाल तक घनानन्द की प्रसिद्धि का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त 'जसकवित्त' (सं० १८१२) नामक ग्रन्थ में उद्धृत घनानन्द विषयक 'भड़ौवा' छंदों से भी उस समय तक कवि की प्रसिद्धि का अनुमान होता है। घनानन्द अपने समय के लोकप्रिय कवि थे। रघुराजसिंह ने घनानन्द और उनके काव्य की लोकप्रियता की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है।

घनानन्द के जन्म-संवत् के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद रहा है। शिवसिंह, पं० रामचंद्र शुक्ल आदि ने घनानन्द का जन्म संवत् १७४६ माना है। शिवसिंह सरोज में संवत् १७४६ के कालिदास के 'हजारा' नामक ग्रन्थ में विवेच्य कवि की रचनाओं के संग्रहीत होने का उल्लेख किया गया है।[1] अतएव यह अनुमान स्वाभाविक है कि घनानन्द का जन्म 'हजारा' के संग्रह के पूर्व हुआ होगा। लाला भगवानदीन ने भी इसी आधार पर घनानन्द का जन्म संवत् १७१५ माना है। परन्तु पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने वृन्दावनदेव द्वारा दीक्षित होने के साक्ष्य के आधार पर घनानन्द का जन्म संवत् १७३० के लगभग अनुमानित किया है[2]। मिश्र जी ने वृन्दावनदेव का समय साम्प्रदायिक आधार पर सं० १७५९ से १८०० तक माना है, जो अंशतः भ्रमित कहा जायगा। वस्तुतः यह समय संवत् १७५४ से सं० १७९७ तक है।[3] फिर भी घनानन्द का जन्म संवत् १७३० के लगभग मानना ही अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है।[4]

घनानन्द का देहावसान-संवत्—घनानन्द की मृत्यु संवत् १८१३ में अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण में हुई थी।[5] इस प्रकार उनकी अवस्था ८१ वर्ष के लगभग निश्चित होती है। संवत् १७३० में जन्म मान लेने पर निम्बार्क-सम्प्रदाय में दीक्षित होने के समय घनानन्द की अवस्था २४-२५ वर्ष की ज्ञात होती है। साम्प्रदायिक स्रोतों से ऐसा विदित होता है कि संवत्

---

[1] शिवसिंह सरोज, पृ० ३८०

[2] घनानन्द-ग्रन्थावली, पृ० ७५

[3] प्रस्तुत प्रबंध, वृन्दावनदेव, पृ० ५९

[4] घनानंद और स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ० २४

[5] त्रिपथगा, सितम्बर १९६०, महाकवि घनानन्द का निधनकाल, पृ० ६५-६८

१७५५-५६ में वृन्दावनदेव सलेमाबाद चले गए थे।[1] अतएव इसी के आस-पास घनानन्द से उनका दीक्षा लेने का समय पड़ना चाहिए।

इतिहासकारों ने घनानन्द की मृत्यु संवत् १७९६ के नादिरशाह के आक्रमण में बताई है।[2] इस दृष्टि से मृत्यु के समय घनानन्द की अवस्था ६६ वर्ष की निश्चित होती है। घनानन्द ने संवत् १७९८ में मुरलिकामोद की रचना की थी।[3] अतः संवत् १७९६ में उनके वधित होने का प्रश्न ही नहीं उठता। राधाकृष्ण-ग्रन्थावली में मुद्रित कृष्णगढ़ के राजकवि जयलाल के पत्र के अनुसार चैत्र कृष्ण १२ संवत् १८१३ को नागरीदास के साथ घनानन्द कृष्णगढ़ गए थे।[4] जयलाल शेष के विवरण के आधार पर पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र और डॉ० मनोहरलाल गौड़ की यह मान्यता है कि संवत् १८१३ के अनन्तर भी घनानन्द जीवित थे।[5]

अहमदशाह अब्दाली ने व्रजप्रदेश पर दो आक्रमण किए थे, प्रथम संवत् १८१३ में और दूसरा संवत् १८१७ में। प्रथम आक्रमण का समय १मार्च सन् १७५७ से ६ मार्च १७५७ तक है।[6] परन्तु राधाकृष्णदास ने जयलाल के सम्बन्ध में लिखा है, "कत्लेआम होने की खबर यहाँ कृष्णगढ़, रूपनगर में गुप्त आ पहुँची थी, नागरी दास जी के छोटे भाई बहादुर सिंहजी और नागरी-दास जी के पुत्र सरदार जी ने इनकी अर्जी लिखी थी कि कुटुम्ब यात्रा के लिए यहाँ अवश्य पधारें। तब इस धोखा दई से यहाँ आ गए थे, फिर छः महीने

---

[1] सर्वेश्वर, वर्ष १ सं० ३-९, गीतामृतगंगा की भूमिका, पृ० १४३

[2] हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३३६

[3] गोप मास श्री कृस्न पच्छ सुचि।
संबतसर अठानबै अति रुचि॥

मुरलिकामोद, छं० सं० ५०

[4] अठारह से ऊपर संवत् तेरह जान।
चैत्र कृष्ण तिथि द्वादशी व्रज ते कियो पयान॥

घनानन्द ग्रन्थावली, पृ० ५८

[5] (क) घनानन्द, ग्रन्थावली, भूमिका, पृ० ५७
(ख) घनानन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ० २६

[6] व्रज का इतिहास, भाग १, पृ० १८६, १९०

रह कर पीछे वृन्दावन ही पधार गए। सुनते हैं कि उस समय उनके साथ आनन्दघन जी भी थे, परन्तु जयपुर से ही लौट गए"।[१]

पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र और डॉ० मनोहरलाल गौड़ की मान्यता का आधार यही पत्र है। परन्तु इस पत्र का 'धोखा दई से यहाँ आ गए थे' नामक वाक्य संदिग्ध प्रतीत होता है, क्योंकि धोखे का प्रश्न तो तब उठता जबकि कत्लेआम के पूर्व नागरीदास व्रज से कृष्णगढ़ को चल देते। अतः स्पष्ट है कि कवीश्वर जयलाल का यह कथन अनुमानाश्रित है। इससे यथार्थ घटना का बोध नहीं होता।

घनानन्द के समसामयिक चाचा वृन्दावदास की 'हरिकला-वेलि' में संवत् १८१३ में व्रजप्रदेश पर हुए अब्दाली के आक्रमण की भीषणता का उल्लेख हुआ है। चाचा जी ने इस विषय में लिखा है कि—

ठारह से तेरह बरष हरि यह करी।
जमन बिगोये देस बिपति गाढ़ी परी।
तब मन चिंता बाढ़ी साधु पतन करे।
हरिहिं मनहुँ सिष्टि संघारकाल आयुध धरे।

दोहा—भाजि भाजि कोउ छूटे तब मन उपज्यो सोच।
अहो नाथ तुम जन हते, भये कौन बिधि पोच।[२]

आक्रमण की भीषणता के वर्णन के अनन्तर चाचा जी ने एक व्यक्तिगत घटना का उल्लेख किया है। वे चैत्र सुदी एकादशी संवत् १८१४ को फरूखाबाद नामक नगर में गंगा के तट पर गए। वहाँ रात्रि को रास हुआ। तीन प्रहर बीतने पर रास कर्ताओं ने घनानन्द का एक ख्याल गाया, जिसे सुनकर चाचा जी का मन अत्यन्त विह्वल हो गया। वे सोचने लगे कि ऐसे संतों का भी यवनों ने वध कर डाला। इस भाव से उनका अन्तःकरण आक्रान्त हो गया[३] :—

शहर फरुखाबाद जहाँ गए सुर सुरधुनी पास।
चैत्र सुदी एकादशी तहाँ भयो इक रास ॥४॥

---

[१] राधाकृष्ण-ग्रन्थावली, पृ० १७४-१९५

[२] खो० रि०, ना० प्र० स० १९१२-१९१४, सं० १९६

[३] हरिकला बेलि, ना० प्र० स०, खो० रि० १९१२-१४, सं० १९६

तीन पहर रजनी गयी वे कवि कियौ गान।
तहाँ एक कौतुक भयौ जाको करौं बयान ॥५॥
आनंदघन को खयाल इक गायौ खुलिगे नैन।
सुनत महा विह्वल भयो मन नहिं पायौ चैन ॥६॥
ऐसे हू हरि संत जन मारे जमननि आइ।
यह अति देखि हियो भयो लीनो सोच दबाइ ॥७॥

इस रचना में चाचा जी ने अन्यत्र घनानन्द के व्यक्तित्व की महानता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है :—

बिरह सतायौ तन निबाह्यौ बन साँचौ पन,
धन्य आनंदघन मुख गाई सोई करी है।
एहो ब्रजराज कुँवर धन्य-धन्य तुमहूँ कौ,
कहा नीको प्रभु यह जग के बिस्तरी है।
गाह्यौ ब्रज उदासी जिन देह अंत पूरी पारी,
रज की अभिलाषा सो तहाँ ही देह धरी है।
वृन्दावन हितरूप तुमहू हरि उड़ाई धूरि,
ऐ पै साचो निष्ठा जन ही की लखि परी है।

संवत् १८१३ की आक्रमण की घटना के २६ दिन के उपरान्त संवत् १८१४ में इस प्रकार की शोकानुभूति अत्यन्त स्वाभाविक है। मिश्र जी और डॉ० गौड़ की 'हरिकलावेलि' के पूर्तिकाल संवत् १८१७ में कवि द्वारा घनानन्द के प्रत्यक्ष दर्शन की मान्यता अनुमानाश्रित ही प्रतीत होती है।[१]

इस सम्बन्ध में डॉ० विजयेन्द्र स्नातक का वक्तव्य द्रष्टव्य हैं :—

"हरिकलावेलि का रचनाकाल पाँच वर्ष का लम्बा समय है। ब्रज पर यवनों का आक्रमण होते ही चाचा जी भरतपुर चले गए। उस समय भरतपुर की गद्दी पर राजा सुजानसिंह थे। वहीं रह कर आपने यह पुस्तक सम्पूर्ण की। संवत् १८१७ में भरतपुर में थे, कलावेलि में इसका वर्णन है।"[२]

डॉ० स्नातक के उपर्युक्त उल्लेख से यह स्पष्ट है कि संवत् १८१४ से १८१७ तक चाचा जी की वृन्दावन में विद्यमानता का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

---

[१] (क) घनानंद ग्रन्थावली, पृ० ६०
(ख) घनानंद और स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ० २७

[२] राधावल्लभ सम्प्रदाय, सिद्धांत और साहित्य-पृ० ५१८

अतः यह निश्चित है कि चाचा जी द्वारा घनानन्द के शव के समक्ष शोकाभिव्यक्ति संवत् १८१३ की है। ऐतिहासिक साक्ष्य के सन्दर्भ में अब्दाली के संवत् १८१७ के दूसरे आक्रमण में मथुरा-वृन्दावन में कत्लेआम का कोई उल्लेख नहीं मिलता।[१] अतएव यह असंदिग्ध है कि घनानन्द का निधन अब्दाली के प्रथम आक्रमण संवत् १८१३ में ही हुआ, संवत् १८१७ में नहीं। इस प्रकार घनानन्द का समय संवत् १७३० से १८१३ तक सिद्ध होता है।

घनानंद का स्थान—घनानन्द के स्थान का कोई निश्चित उल्लेख नहीं मिलता। रचनाओं के अन्तर्साक्ष्य से उनका व्रज के प्रति अनुराग सिद्ध होता है।[२] डॉ० मनोहरलाल गौड़ ने भी पदावली, कवित्त और प्रबन्ध रचनाओं से अनेक उद्धरण देते हुए घनानन्द के व्रज-वास की असंदिग्धता स्वीकार की है। वे यमुना के किनारे गोकुल घाट पर रहा करते थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने नन्दगाँव में भी कुछ समय व्यतीत किया था।[३] घनानन्द का वृन्दावनदेव से दीक्षा लेना तथा नागरीदास और चाचा वृन्दावनदास जैसे भक्तों का साहचर्य भी उनके व्रजवास की पुष्टि करता है। परन्तु यह कहना कठिन है कि उन्होंने व्रज-वास कब से प्रारम्भ किया।

घनानन्द और सुजान—सुजान के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि वह घनानन्द की प्रेयसी थी तथा वह उनकी काव्य-रचना की प्रेरणा शक्ति थी। घनानन्द के कृतित्व का अधिकांश सुजान को संबोधित करके रचा गया है। घनानन्द के प्रायः १०५५ पद ऐसे हैं जिनमें सुजान के दर्शन नहीं होते। कवित्त सवैयों में भी ऋतु वर्णन, दर्शन और भक्ति के पद इससे रहित हैं। 'इश्कलता' में सुजान और उसके विभिन्न पर्यायों का प्रयोग किया गया है। कुल मिलाकर २५० बार सुजान शब्द कृष्ण, राधा, राधाकृष्ण, प्रियतम, प्रेयसी, स्त्री, सामान्य विशेषण-शैली आदि ग्यारह अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। सुजान शब्द के 'सुजान' के अतिरिक्त पाँच पर्याय प्रयुक्त हुए हैं—'जान', 'जानराय', 'जानी'

---

[१] व्रज का इतिहास, भाग, पृ० १६०-१६१

[२] द्रष्टव्य—घनानंद-ग्रन्थावली : प्रीति पावस छं० ३६, ६४; व्रजबिलास दो० ४०; अनुभवचन्द्रिका चौ० ४६ से ५० तक; व्रज-प्रसाद चौ० १. मुरलिकामोद चौ० ४६; पदावली सं० ३७२, १७५, ४१, ६३६ आदि।

[३] घनानंद और स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ० १७

'जानमनि' और 'ज्यानी' । घनानन्द की रचनाओं के अन्तःसाक्ष्य के आधार पर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि सुजान उनकी प्रेयसी थी ।[१]

वाह्य प्रमाणों से भी सुजान और घनानन्द के प्रणय सम्बन्धों पर प्रकाश पड़ता है[२] । डॉ० गौड़ ने श्री भवानीशंकर याज्ञिक द्वारा प्राप्त चार भड़ौवा छंदों के आधार पर घनानन्द और सुजान के सम्बन्ध पर प्रकाश डाला है । उन छंदों में घनानन्द का सुजान के प्रति प्रणय व्यंजित हुआ है । घनानन्द ने स्वयं को 'हुकुरनी का बंदा' कहा[३] है । वे उस 'तुरकिनी' के सेवक[४] हैं । एक भड़ौवा के अन्तर्गत घनानन्द ने सुजान के प्रति प्रेम निरूपण में जुगुप्सित भावों की भी अभिव्यक्ति की है ।[५] पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने राग-कल्पद्रुम से सुजान विरचित दो पद उद्धृत किए हैं । वे इस प्रकार हैं—

---

[१] द्रष्टव्य-सुजानहित के कुछ छंद–७, ८, १०, २४, ३४, ८८, ६६, १०१, १२०, १२७, १३०, १८५, ३५१, ३५५, ३७३, ४३३ ४४२, आदि । कृपाकंद-छंद-१५, १६ आदि, इश्कलता दो० ३ माँझ १६, निसानो २३ आदि ।

[२] घनानंद और स्वच्छंद काव्यधारा, पृ० ४८

[३] करै गुरुनिंदा वह हुरुकिनी कौ बंदा महा,
निरधिनी गंदा खात पनीर औ नान है ।

[४] डफगी बजावे डोम ढाढ़ी राम गावै काहू,
तुरकैं रिझावै तव पावै झूठौ नाम है ।
हुरकिनी सुजान तुरकिनी को सेवक है,
तजि राम नाम वाको पूजे काम धाम है ।

[५] मुदित आनंदघन कहत विधाता सों यों
खाल को आसन दीजौ गारी मोहि गावैगी ।
मो मुख को पीकदान करियौ सुजान प्यारी,
हुरकिनी तुरकिनी थुक्कै सुख पावैगी ।
धोती को इजार दुपटी को पेश बाज और,
देहुगे रुमाल ताको पूछना बनावैगी ।
पगिया पायंदाज कीजियौ गरीब निवाज
मरि गए मो मन पलंग पर आवैगी ।

किरपा करो रे मो मन सइयाँ, तन-मन-धन न्योछावर कर दूँ
परहूँ पइयाँ।
मुहम्मद सा 'सुजान' अब कहि भाग हमारे जागे लेहु बलैयाँ सुरजन सइयाँ। [१]

× × ×

सिपतमणि अल्ला, नबीयमणि मुहम्मद दोउ जगमणि,
चत्र दिश मासूम पीरनमणि मुरतजा अली कीन।
वासरमणि दिनकर, रजनीमणि चन्द्र तारनमणि ध्रुव,
मलकनमणि जबरइल यह सब जगत में लीनो बीन।
पातालमणि शेष, शेषमणि अवनी अवनिमणि नाभ
नाभमणि अरस, अरसमणि कुरस, कुरस लौह मणि कलमा
तुरंगमणि बुराक, गजनमणि एरावत राजनमणि इन्द्र,
गिरनमणि सुमेर, चंचलमणि मीन।
किताबमणि कुरान, दीन मणि कलमा, अवदन मणि
आदम, कामनीमणि हवा रागनमणि भैरौ, भाषामणि
ब्रज की, ज्योतिमणि दीपक, दीपकमणि नार दोजक
शीतल भलो भिहिस्त एती भात 'सुजान' अस्तुति कीनी।[२]

इन पदों से सुजान का मोहम्मदशाह के प्रति निवेदन और यवन होना सिद्ध होता है। घनानन्द के सुजान नाम-युक्त छंदों के सम्बन्ध में ऐसी धारणा प्रचलित है कि वे छंद सुजानकृत हैं। पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने सुजानकृत ११ पदों का उल्लेख किया है।[३] 'सुधासार-पन्ना' में भी ऐसे दो छंद प्राप्त हैं[४] :—

पहलै तौ नैनन सों नैनन मिलाय फिर,
सैनन चलाय हरिलीनौ चित चाय चाय।
अब क्यों कहत गुरु लोगन की संक मोंहि
मारत निसंक काम कासों कहों जाय जाय।
ऐर निर्दयी कान्ह कहत सुजान तोंसों

---

[१] राग-कल्पद्रुम, प्रथम भाग, पृ० १७६

[२] राग-कल्पद्रुम, प्रथम भाग, पृ० २६४

[३] घनानंद-ग्रन्थावली, भूमिका, पृ० ६२, ६३, ६४

[४] सुधासार-पन्ना, २३४, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, खोज-विभाग

तेरे बिन देखें आँख लहै झर लाल लाय
दूर जो बसाय तो परेखौ हूँ न भाय
अरे निकट बसाय मीत मिलत न हाय हाय।

× ×

वेदहु चारि की बात को बांचि पुरान अठारहु अंग में धारै।
चित्र हूँ आप लिखै समझै कवितान की रीति मैं वार तें धारै।
राग कों आदि जिती चतुराई 'सुजान' कहै सब याही कै लारै।
हीनता होय जो हिम्मत की तौ प्रवीन तालै कहा कूप मैं डारै॥

परन्तु राग-कल्पद्रुम में सुजान नाम से प्राप्त पदों की भाषा, शैली एवं अभिव्यंजना इनसे सर्वथा भिन्न है। सुजान के कवयित्री होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। डॉ० गौड़ का मत है कि राग-कल्पद्रुम में प्राप्त पद भले ही सुजान कृत हों पर 'सुजान' अथवा 'सुजान राइ' नाम से प्राप्त छन्दों को घनानन्द की प्रेयसी सुजान कृत मानना उचित नहीं है।[1] मेरे विचार से 'सुजानराइ', 'जानराइ' अथवा 'जान' जैसे शब्दों की छापों के आधार पर किसी भी पद अथवा कवित्त को सुजानकृत मानना उचित नहीं प्रतीत होता है। भावातिरेक में प्रेयसी के लिए फारसी शब्द 'जान' का सम्बोधन बहुप्रचलित है। राजा का व्रजभाषा रूप 'राइ' है। अतएव सुजान के साथ 'राइ' के योग से 'सुजानराय' अथवा 'जानराय' शब्दों के प्रयोग घनानन्द की सुजान के प्रति तीव्र प्रेमानुभूति के ही परिचायक हैं। अतः वे सुजान के वास्तविक नाम की छाप नहीं कहे जा सकते।

सुजान तथा उसके पर्यायवाची शब्दों से विहीन पदों और कवित्तों के सम्बन्ध में भी यह अनुमान अनुचित न होगा कि कवि ने उनकी रचना सुजान के संसर्ग में आने से पूर्व अथवा विरक्त अवस्था में की होगी। परन्तु निश्चित प्रमाणों के अभाव में घनानन्द की मुक्तक रचनाओं के बीच ऐसी विभाजक रेखा खींच सकना अत्यन्त कठिन है। इस सम्बन्ध में यह शंका भी होना स्वाभाविक है कि क्या सुजान के संसर्ग में आने के उपरान्त घनानन्द ने समस्त मुक्तकों की रचना में 'सुजान' शब्द का प्रयोग अनिवार्य रूप से किया ही होगा अथवा नहीं? घनानन्द और सुजान की पूर्ण जीवनी के प्रकाश में आने तथा पाठ-

१. घनानन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ० ५२

विज्ञान के आधार पर मुक्तकों के रचनाक्रमानुसार पूर्वापर सम्बन्ध निर्धारण के अनन्तर ही एतद्विषयक कोई निष्कर्ष प्रस्तुत किया जा सकता है।

मोहम्मदशाह और सुजान—मोहम्मदशाह और सुजान के सम्बन्ध का प्रश्न भी पर्याप्त विवाद का विषय रहा है। घनानन्द, सुजान और मोहम्मदशाह के परस्पर सम्बन्ध की धारणा का आधार राधाचरण गोस्वामी का निम्न-लिखित छप्पय है :—

दिल्लीश्वर नृप निर्मित एक ध्रुवपद नहिं गायौ।
पै निज प्यारी कहैं सभा को रीझि रिझायौ॥
कुपित होय नृप दिये निकास वृन्दावन आए।
परम सुजान 'सुजान' छाप पद कवित बनाए।
नादिरशाही व्रज मिले कियन नेकु उच्चाट मन।
हरि-भक्ति-बेलि, सिंचन करी घनानंद आनंदघन॥[1]

राधाचरण गोस्वामी के इस छप्पय से दिल्ली-नृपति के नाम का बोध नहीं होता। परवर्ती लेखकों ने इसी छप्पय के आधार पर मोहम्मदशाह और सुजान के सम्बन्ध का विवरण दिया है। वियोगीहरि ने 'कवि-कीर्तन' के अन्तर्गत राधाचरण जी के उपर्युक्त छप्पय के आधार पर लिखा है "घनानन्द सुजान के रूप पर आसक्त थे और प्रेम के रंग में रंगे थे। उन्होंने बादशाह के आदेश की अवहेलना करके सुजान के कहने पर ध्रुवपद का गान किया। इस पर राजा ने कुपित होकर घनानन्द को राज्य से निष्कासित कर दिया। इसके अनन्तर घनानन्द ने वृन्दावन जाकर वैष्णव धर्म स्वीकार कर लिया[2]।" 'जस कवित्त' (संवत् १८१२) नामक ग्रन्थ से प्राप्त घनानन्द संबंधी भड़ौवा छन्दों में उसके मोहम्मदशाह के मीर मुंशी अथवा किसी उच्च पद के अधिकारी होने की बात प्रामाणिक नहीं लगती। डॉ० गौड़ के अनुसार 'जंगनामा' ग्रंथ

---

[1] **व्रजमाधुरी सार, पृ० १७३ से उद्धृत**

[2] **घनानंद सुजान जान को रंग दिवानो।**
वाही के रंग रंग्यौ प्रेम फंदनि अरुमानों।
बादशाह के हुक्म पाय नहिं गायौ इक पद।
छूपै सुजान के कहे चाव सो गाए ध्रुपद!
बादशाह ने कोपि राज्यतें याहि निकार्‌यौ।
वृन्दावन में आय वेश वैष्णव को धार्‌यौ।
—कवि कीर्तन, प्रथम संस्करण, पृ० ३३-३४

के रचयिता श्रीधर उपनाम 'मुरलीधर' भड़ौवा लिखा करते थे। वे घनानन्द के समकालीन थे और मोहम्मदशाह रंगीले के दरबार में बताये जाते हैं। संभवतः इनके रचयिता वे ही हैं[1]। इस आधार पर घनानन्द का मोहम्मदशाह के दरबार में होना प्रामाणिक सिद्ध नहीं होता। रघुराजसिंह कृत 'भक्तमाल' से भी घनानन्द के मोहम्मदशाह के मीरमुंशी होने के तथ्य की पुष्टि नहीं होती[2]।

घनानन्द के मोहम्मदशाह के 'खास-कलम' (प्राइवेट सेक्रेटरी) होने का विवरण लाला भगवानदीन ने एक जनश्रुति के आधार पर दिया है, परन्तु उन्होंने घनानन्द के सुजान-प्रेम का उल्लेख नहीं किया है। उनके अनुसार भक्ति का उद्वेग ही उन्हें काव्य प्रेरणा देता है। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने उपर्युक्त सामग्री के आधार पर घनानन्द को मोहम्मदशाह का मीर मुंशी लिखा है तथा बादशाह द्वारा कुपित होकर इनको दिल्ली से निष्कासित करने की घटना भी उन्होंने प्रामाणिक मानी है।[3]

उपर्युक्त मतों के सिंहावलोकन से यह स्पष्ट है कि घनानन्द विषयक सामग्री में उनके और सुजान के प्रणय सम्बन्धों के तथ्य को अधिकांश इतिहासकारों ने स्वीकार करते हुए भी उन्हें मोहम्मदशाह का मीर-मुंशी नहीं माना है।

मोहम्मदशाह रंगीले के दरबार में घनानन्द के मीर-मुंशी होने के तथ्य की पुष्टि इतिहास द्वारा नहीं होती। ऐसा प्रतीत होता है कि शुक्ल जी ने नादिरशाह के आक्रमण में घनानन्द की मृत्यु की घटना के आधार पर उनका मोहम्मदशाह की नर्तकी सुजान से सम्बन्ध सत्य माना है। 'राग-कल्पद्रुम' में 'सुजान' छाप से प्राप्त छंदों से सुजान के यवन एवं उसके मोहम्मदशाह के दरबार में होने की पुष्टि तो होती है, परन्तु उन पदों से सुजान का घनानन्द से कोई सम्बन्ध व्यंजित नहीं होता। मोहम्मदशाह ने सन् १७४८ ई० (संवत् १८०५) तक शासन किया था।[4] अतः समय की दृष्टि से मोहम्मदशाह, घनानन्द और सुजान के परस्पर सम्बन्धों की कल्पना को पूर्णतया निराधार भी नहीं कहा जा सकता। परन्तु ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव में यह निश्चय

---

१ घनानंद और स्वच्छंद काव्यधारा, पृ० ६

२ भक्तमाल-उत्तरचरित्र, पृ० ६०८-६०९

३ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३३५

४ व्रज का इतिहास, भाग १, पृ० १८१

पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि मोहम्मदशाह के दरबार की नर्तकी सुजान ही रससिद्ध कवि घनानन्द की प्रेमिका थी।

घनानन्द का सम्प्रदाय—'परमहंस-वंशावली' के आधार पर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि घनानंद निम्बार्क-सम्प्रदाय में दीक्षित थे। घनानंद ने 'परमहंस-वंशावली' में नारायणदेव से लेकर अपने गुरु वृन्दावनदेव तक की परम्परा का निर्देश किया है।[1] वृन्दावनदेव के सम्बन्ध में घनानंद ने अपनी विशेष श्रद्धा व्यक्त की है। वे उनके लिये वृन्दावन-स्वरूप[2] हैं। वृन्दावन-देव का समय सम्प्रदाय में संवत् १७५४ से १७९६ तक निश्चित है। घनानंद का जन्म-संवत् १७३० मानने पर उनका वृन्दावनदेव से दीक्षा लेना स्वाभाविक प्रतीत होता है। अपनी एक अन्य रचना 'भोजनादि-धुन' में घनानंद ने यह परम्परा वृन्दावनदेव के परवर्ती गोविन्ददेव तक निर्दिष्ट की है।[3] परन्तु इससे गोविन्ददेव के घनानंद के गुरु होने का भ्रम नहीं होना चाहिए, क्योंकि कवि ने गोविन्ददेव के समान पद पाने की बात वृन्दावनदेव की कृपा के ही आधार पर सम्भावित बताई है। 'परमहंस-वंशावली' में घनानंद ने गोविन्ददेव के समसामयिक श्री जयराम शेष के प्रति भी अपना श्रद्धाभाव व्यक्त किया है।[4] जयराम शेष और ब्रजानंद संवत् १८०० से संवत् १८१४ तक मठ-मंदिरों का प्रबन्ध देखते थे। पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र की धारणा है कि जयराम शेष के सहयोगी ब्रजानन्द, घनानंद के छन्दों के संकलनकर्ता ब्रजनाथ तो नहीं हैं? परन्तु इस सम्बन्ध में कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि मिश्र जी ने घनानन्द के समसामयिक उदयपुर के निम्बार्क-सम्प्रदायानुयायी

---

[1] परमहंसा-वंशावली, दो० ४ से ४४ तक

[2] जग-बोहित मो हित प्रगट हरि बिनोद निज धाम।
अवनी मनि श्रीयुत सदा वृन्दावन अभिराम॥
बीसे बीस महिमा तिन्हैं ताहि कोस ह्वै बीस।
सदा बसौ नीके लसौ कृपा ईस मो सीस॥

परमहंस-वंशावली ४४-४५

[3] श्री वृन्दावन देव सनातन, चातक रसिकन को अनंद घन।
जौ यह भोजनादि धुनि गावै। श्री गोविन्ददेव पद पावै।

भूमिका-घनानन्द-ग्रन्थावली, पृ० ७६

[4] परमहंसा-वंशावली, छं० ४७, ४८

एक ब्रजनाथ भट्ट का भी स्वयं उल्लेख किया है।[1] सखी-भाव के उपासक होते हुए भी घनानंद ने आचार्य परम्परा के अन्तर्गत स्वामी हरिदास का नामोल्लेख नहीं किया है। केवल गिरिगाथा में एक स्थान पर हरिदास का नाम प्रयुक्त हुआ है।[2] डॉ० गौड़ के अनुसार ये सखी-सम्प्रदाय के प्रवर्तक हरिदास नहीं है। घनानंद के समसामयिक कोई अन्य महात्मा है, जिनका उल्लेख नागरीदास ने भी किया है।

> आनंदघन हरिदास आदि सो संत सभामधि सुनि।[3]
> आनन्दघन हरिदास आदि संतन बच सुनि-सुनि।[4]

यद्यपि नागर-समुच्चय के उल्लिखित सन्दर्भों के अनुसार घनानंद और नागरीदास के उभय-मित्र किसी हरिदास नामक महात्मा की बात सत्य प्रतीत होती है, परन्तु 'गिरिगाथा' की उद्धृत पंक्ति से स्वामी 'हरिदास' की व्यंजना होती है। वस्तुतः कवि ने गोवर्द्धन का माहात्मय निर्दशित करते हुए उपर्युत पंक्ति में हरिदास महात्मा को उसका प्रसाद बताया है। घनानन्द की रचनाओं में प्राप्त उनके उदार दृष्टिकोण एवं सखी-भाव की उपासना के आधार पर हरिदास का नामोल्लेख होना अस्वाभाविक नहीं है, भले ही उन्होंने हरिदासी सम्प्रदाय में दीक्षा न ली हो।

साधनागत नाम—साधनागत नाम रखने की प्रवृत्ति केवल सखी सम्प्रादय की ही विशेषता नहीं है वरन् वल्लभ, राधावल्लभ, चैतन्य और निम्बार्क-सम्प्रदायों के भक्तों और आचार्यों के भी इसी भावना पर आधारित नाम मिलते हैं। घनानन्द ने परमहस-वंशावली में परशुरामदेव का 'परमा' नाम दिया है।[5] अन्य आचार्यों के साधनागत नाम इस प्रकार हैं—श्री हरिव्यास-देव (हरिप्रियासखी), श्री परसुरामदेव (परम सहेली), श्री हरिवंशदेव

---

[1] घनानन्द-ग्रन्थावली, भूमिका पृ० ७६।

[2] निज पद-बिहरन परस-प्रसाद। लहत सदा गिरिराज संवाद ॥१७॥
इहि प्रसाद हरिदास-निकर वर। धनि-धनि गिरिवर धनि गिरिवरधर ॥१८॥—गिरिगाथा

[3] नागरसमुच्चय, पृ० ३३, पद्य ४२।

[4] वही, पृ० १०५।

[5] तिनके पाट विराजि के परमनिधि श्रीमान।
पदवी को पदवी दई मुनिवर कृपा निधान ॥—परमहंस-वंशावली-दो० ३५

(हित अलबेली), श्री नारायण देव (नित्य नवेली), श्री वृन्दावनदेव (मन मंजरी)। घनानन्द की रचनाओं में उनका साधनागत नाम 'बहुगुणी' प्रयुक्त हुआ है। उनका यह नाम स्वयं आराध्या राधा ने दिया है। 'बहुगुणी' की अनुभूति उन्हें प्रेम विभोर अवस्था में होती है। वह सदैव राधा के निकट सेवा भाव से खड़ी रहती है।[१] इसके अतिरिक्त कृपाकंद, प्रेम-पद्धति, भावनाप्रकाश, व्रजस्वरूप, व्रजप्रसाद, मनोरथ-मंजरी, व्रजव्यवहार आदि प्रबन्ध रचनाओं तथा पदावली में भी घनानन्द की सखी-भाव की उपासना व्यक्त हुई है जिससे उनकी सखी-भाव की उपासना की संगति बैठ जाती है।

रचनाएँ—घनानन्द की समस्त रचनाएँ पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित घनानन्द-ग्रंथावली में संकलित हैं। घनानन्द-ग्रंथावली के सम्पादन में उन्होंने घनानन्द की रचनाओं के प्राप्त संग्रहों, सूचनाओं तथा पूर्व प्रकाशित समस्त सामग्री का उपयोग किया है।[२] घनानन्द-ग्रन्थावली में घनानन्द की निम्नलिखित रचनाएँ संकलित हैं :—

---

[१] क—राधा धर्यो बहुगुनी नाऊँ। टरि लगि रहौं बुलाए जाऊँ।
—प्रिया-प्रसाद, चौ० २५।

ख – अड़े दाय को काम परै जब। बिन बहुगुनी सँवारै को तब ॥
वही चौ० ४५

ग – नीको नावँ बहुगुनी मेरो। बरसाने ही सुन्दर खेरो।९।
या ही घर की जाई बाढ़ी। सदा रहित राधा ढिग ठाढ़ी ॥१०॥
राधा नाम बहुगुनी राख्यौ। सोई अरथ हिये अभिलाख्यौ ॥१५॥

घ—नंद कुंवर को मुरलीनाद। सुनत कान दै लै सुर स्वाद ॥२०॥
रीझनि विवस होत जब जानौं। तब बहुगुनी कला उर आनौं ॥२१॥
ताही सुरहिं साच कछु बोलौं। प्रेम लपेटी गासनि खोलौं ॥२२॥
बुरी बात हू उघरि परै जब। सो सुख कह्यौ न परत कछू तब ॥२३॥
वृषभानुपुर सुषमा वर्णन

[२] मिश्र जी ने घनानन्द-ग्रंथावली के सम्पादन में प्रस्तुत सामग्री का उपयोग किया है– सुन्दरी तिलक और सुजानशतक (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र) सुजानसागर (जगन्नाथदास रत्नाकर), वियोग वेलि और विरह लीला (काशी प्रसाद जायसवाल), रसखान और घनानंद (अमीरसिंह), घनानन्द (शम्भुप्रसाद बहुगुणा), छतरपुर राज्य का संग्रह, ब्रह्मचारी बिहारीशरण का संग्रह, घनानन्द कवित्त तथा घनानन्द और आनन्दघन (पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र), लन्दन संग्रहालय का हस्तलेख।

१—सुजान-हित
२—कृपाकंद
३—वियोग-वेलि
४—इश्कलता
५—यमुना-यश
६—प्रीतिपावस
७—प्रेम-पत्रिका
८—प्रेम-सरोवर
९—व्रजविलास
१०—सरस-वसत
११—अनुभव-चंद्रिका
१२—रंग-बधाई
१३—प्रेम-पद्धति
१४—वृजभानुपुरसुषमा वर्णन
१५—गोकुल-गीत
१६—नाममाधुरी
१७—गिरि-पूजन
१८—विचार-सार
१९—दानघटा
२०—भावना-प्रकाश
२१—कृष्ण-कौमुदी
२२—धाम-चमत्कार
२३—प्रिया-प्रसाद
२४—वृन्दावन-मुद्रा
२५—व्रजस्वरूप
२६—गोकुल-चरित्र
२७—प्रेम-पहेली
२८—रसना प्रकाश
२९—गोकुल-विनोद
३०—व्रज-प्रसाद
३१—मुरलिका-मोद
३२—मनोरथ-मंजरी
३३—व्रजव्यवहार
३४—गिरिगाथा
३५—व्रजवर्णन
३६—छंदाष्टक
३७—त्रिभंगी-छंद
३८—कवित्त-संग्रह
३९—स्फुट
४०—पदावली
४१—परमहंस-वंशावली

इन रचनाओं में 'व्रजवर्णन' की स्थिति संदिग्ध है। यह रचना केवल छतरपुर वाले हस्तलेख में निर्दिष्ट हैं तो, परन्तु अब तक अप्राप्य हैं। यदि 'व्रज-वर्णन', 'व्रजस्वरूप' का ही नाम है तो इस समस्या का समाधान हो जाता है। छंदाष्टक, त्रिभंगी छंद, कवित्त-संग्रह, स्फुट, वस्तुतः स्वतंत्र रचनाएँ नहीं हैं। इन कृतियों के अतिरिक्त उड़ीसा रिसर्च जर्नल के द्वारा घनानन्द की एक फारसी 'मसनवी' का भी पता चलता है, परन्तु वह अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी है।[१]

रचनाओं का संक्षिप्त विवरण

कृपाकंद : यह १२० छंदों और पदों के अन्तर्गत भगवत-कृपा विषयक रचना है। कृपाकंद के ३७ से ४४ संख्या तक के छंद सुजानहित में प्राप्त हैं।

वियोग-वेलि : यह राग बंगाली बिलावल के अन्तर्गत रचित ८१ पद्यों की संक्षिप्त रचना है। इसमें रासलीला के मध्य कृष्ण के अन्तर्ध्यान हो जाने पर भागवत के आधार पर गोपियों की वियोगावस्था का वर्णन हुआ है।

इश्कलता : इस रचना में ५४ छन्दों के अन्तर्गत फारसी-शैली के अनुरूप रूप, प्रेम और विरह का चित्रण किया गया है। फारसी और पंजाबी शब्दावली के प्रयोग की दृष्टि से इस रचना का अपना महत्व है।

[१] **घनानन्द-ग्रन्थावली,** पृ० ७४

यमुना-यश : यह ६० अर्धालियों और १ दोहे की यमुना महात्मय की प्रतिपादक अत्यन्त संक्षिप्त रचना है।

प्रीतिपावस : इस रचना में १०६ अर्धालियों के अन्तर्गत वर्षा ऋतु में कृष्ण, गोप और गोपियों के वन-विहार का वर्णन किया गया है।

प्रेम-पत्रिका : गोपियों को कृष्ण के लिए प्रेषित प्रेम-पत्र का संदेश इस रचना में वर्णित हुआ है। सम्पूर्ण रचना में कुल ६५ छन्दों का प्रयोग हुआ है, जिनमें २६ प्लवंग, ३८ सवैये, १ छप्पय, १ सोरठा और ३६ कवित्त हैं। डॉ० गौड़ के अनुसार यह रचना २६ प्लवंगों पर ही समाप्त हो जानी चाहिए क्योंकि कवित्त और सवैयों के प्रारम्भ होने के पूर्व ही कवि का नाम आ जाता है—

तुम चाहा सु करौ सु सही कछुव न कहैं,
आनंद घन रस रासि चातकी ह्वै रहैं।[1]

कवित्त, सवैयों और प्लवंगों की विषयवस्तु में साम्य नहीं है। इसके अतिरिक्त इस रचना के ३०,३१,३२,३३ संख्या के कवित्तों की 'वृन्दावन-मुद्रा' की छंद संख्या ५४, ५६,५७ पर आवृत्ति हुई है। लेखक के विचार से डॉ० गौड़ का मत अंशतः ही तर्कसंगत है। वस्तुतः प्लवंग छन्दों का विस्तार विषय की दृष्टि से प्रेम पत्रिका को पूर्णता प्रदान नहीं करता, क्योंकि आगे के कई छंद-प्रेम पत्रिका के अनुकूल ही नहीं है, उनसे प्रेम-पत्रिका की वर्ण्यवस्तु को पूर्णता भी प्राप्त हुई है।[2] ऐसा प्रतीत होता है कि प्रेम-पत्रिका के छन्दों की रचना स्फुट रूप में हुई थी। प्रतिलिपि परम्परा में कवि द्वारा अनूदित अन्य छन्द भी इसके साथ संग्रहीत हो गए। इसीलिए उसके वर्तमान रूप में कोई वस्तुगत क्रम नहीं लक्षित होता।

प्रेम-सरोवर : इस रचना में केवल ८ दोहे हैं, जिनमें राधा-कृष्ण का परस्पर प्रेम-चित्रित हुआ है।

व्रज-विलास : यह ६६ छन्दों की संक्षिप्त रचना है। इसमें व्रजमाहात्म्य और राधा-कृष्ण की माधुर्य भाव प्रधान व्रज-लीलाओं का सरस शैली में वर्णन हुआ है।

सरस-वसंत : ६५ अर्धालियों और १६ दोहों की इस संक्षिप्त रचना के अन्तर्गत वसंत में व्रज की प्रकृति, राधा-कृष्ण का विहार और उनकी वसंत लीला का चित्रण हुआ है।

---

[1] **प्रेम-पत्रिका, प्लवंग २५**

[2] **प्रेम-पत्रिका, छंद, २७,३६, ४०, ५६, ५७, ५८, ५६, ६०, आदि**

अनुभव-चंद्रिका : ५२ अर्धालियों और ३ दोहों की इस रचना में कवि ने व्रजधाम और भगवत-प्रेम विषयक अपने अनुभवों को व्यक्त किया है।

रंग-बधाई : इस रचना में ५२ अर्धालियाँ और ३ दोहे हैं, जिनके अन्तर्गत कृष्ण-जन्म के अवसर पर नन्द, यशोदा और व्रजवासियों का उल्लास वर्णित हुआ है।

प्रेम-पद्धति : यह १०८ अर्धालियों और ३५ दोहों की रचना है। इसमें प्रेमलक्षणा-भक्ति के सन्दर्भ में गोपियों के प्रेम का आदर्श चित्रित किया है।

वृषभानुपुर-सुषमा-वर्णन : इस रचना में एक दोहा और ४० अर्धालियाँ प्रयुक्त हुई हैं। वृषभानुपुर का माहात्म्य, सौंदर्य एवं सखी भावोपासना इसके प्रतिपाद्य विषय हैं।

गोकुल-गीत : ३१ अर्धालियों और दोहों की इस रचना में कवि ने गोकुल का माहात्म्य और अपनी भक्ति-भावना प्रतिपादित की है।

नाम माधुरी : ४२ अर्धालियों के अन्तर्गत राधा के विविध नामों एवं नाम-संकीर्तन का माहात्म्य वर्णित हुआ है।

गिरिपूजन : गोवर्द्धन-पूजा और माहात्म्य के सन्दर्भ में कृष्ण की बाल-लीलाओं का चित्रण इस रचना का प्रतिपाद्य है। इसमें कुल ४४ अर्धालियाँ हैं।

विचार-सार : 'सब विचार को सार है, या निबन्ध को गान। श्री गोपी-पद रेनु-बल बानी कियौ बखान', के अनुसार इस निबन्ध रचना में ८६ अर्धालियों और २ दोहों के अन्तर्गत कृष्ण के नाम, रूप, लीला और धाम के माहात्म्य का सारांश वर्णित हुआ है।

दानघटा : इस रचना में सम्वाद-शैली के अन्तर्गत गोपों सहित कृष्ण तथा गोपियों सहित राधा की दानलीला वर्णित हुई है। आनन्दघन स्वरूप कृष्ण की इस लीला को घटा की संज्ञा दी गयी है। इसमें १३ सवैये और ३ दोहे प्रयुक्त हुए हैं। दानघटा के सवैये लीला से तथा दोहे के माहात्म्य से सम्बद्ध हैं।

भावना-प्रकाश : २२० अर्धालियों की इस रचना में राधा-कृष्ण की माधुर्य लीलाओं और वृन्दावन धाम का माहात्म्य वर्णित हुआ है। भावानुभूति के आधार पर रचना का नाम 'भावना-प्रकाश' रक्खा गया है।

कृष्ण-कौमुदी : इस रचना में ७५ दोहे और ९ अर्धालियों के अन्तर्गत, कृष्ण की नामावली, पर्याय, नखशिख, यौवन-सौंदर्य आदि विषय वर्णित हुए

हैं। इन विषयों के प्रतिपादन में एकसूत्रता लक्षित होती है। सम्भवतः इसीलिए कवि ने कृष्ण-कौमुदी को 'मोहन मधुर प्रबंध' कहा है।

धाम-चमत्कार : यह ७० अर्धालियों की रचना है। इसमें आराध्य युगल के लीला-धाम का अद्भुत माहात्म्य वर्णित हुआ है।

प्रिया-प्रसाद : यह रचना ६५ दोहों और ६५ अर्धालियों में पूर्ण हुई है। राधा के नाम-संकीर्तन के अनन्तर कवि ने अपने को राधा की अभिन्न सहचरी के रूप में चित्रित किया है। आराध्या एवं उनकी कृपा का प्रतिपादन होने के कारण इस रचना का नाम 'प्रिया-प्रसाद' रखा गया है। 'यह प्रबन्ध को नाम है, पायौ प्रिया-प्रसाद।'

वृन्दावन-मुद्रा : इस रचना में ५२ अर्धालियाँ, १ दोहा, और ५ कवित्तों में वृन्दावन की महिमा वर्णित की है। डॉ० गौड़ ने ५३वीं अर्धाली पर कवि का नाम व्यवहृत होने के कारण रचना की समाप्ति मानी है। उन्होंने इस रचना के कवित्त छंदों को प्रकीर्णक के ९१, ९३, ९४, ९५ और ९६ संख्या के छंद बताया है, जो अशुद्ध है।[१] ये वस्तुतः प्रेम-पत्रिका के ३०, ३१, ३२, ३३, और ३४ संख्या के कवित्त हैं।[२] मेरे विचार से इन छन्दों को विषय साम्य के कारण वृन्दावन मुद्रा का ही अंश मानना उचित प्रतीत होता है।

व्रज-स्वरूप : यह १२२ अर्धालियों की संक्षिप्त रचना है। इसमें कृष्ण के लीला-धाम होने के कारण व्रज का माहात्म्य, आराध्य युगल का क्रीड़ा विहार एवं आन्दोल्लास वर्णित हुआ है।

गोकुल-चरित्र : इसमें कुल ४० अर्धालियाँ हैं, जिनमें कृष्ण और गोकुल के अभिन्न सम्बन्ध और गोचारण, पनघट आदि का संकेत रूप में वर्णन हुआ है।

प्रेम-पहेली : इस रचना की केवल ११ अर्धालियाँ प्राप्त हैं। यह अपूर्ण है क्योंकि अन्त में कवि की नाम छाप नहीं है। इसमें किसी गोपी अथवा राधा की प्रेमानुभूति का चित्रण किया गया है।

---

[१] घनानन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा, पृ० ७७

[२] प्रेम-पत्रिका, घनानन्द-ग्रन्थावली, पृ० २८४-२८५०
प्रकीर्णक-छंद संख्या में कुल ८७ ही हैं। अतः इससे आगे की संख्या का प्रश्न ही नहीं उठता। द्रष्टव्य – घनानन्द-ग्रन्थावली, पृ० ६०६

रसना-यश : २८ अर्धालियों की इस रचना में आराध्य के नाम संकीर्तन की भागी होने के कारण रसना की प्रसंशा की गयी है। प्रत्येक अर्धाली का प्रारम्भ 'रसना' शब्द से हुआ है।

गोकुल-विनोद : ६४ पद्यों की इस रचना में कृष्ण और बलराम के राजस विहार, गोकुल के मनोरम वातावरण और जल केलि आदि प्रसंगों का चित्रण किया गया है।

व्रज-प्रसाद : यह रचना १६० अर्धालियों की है। इसमें व्रज के माहात्म्य एव सौंदर्य का वर्णन हुआ है।

मुरलिका मोद : घनानन्द की यही एक ऐसी रचना है, जिसमें उसका रचनाकाल निर्दिष्ट है।[1] कृष्ण का मुरली-वादन, गोपियों का उसके स्वर पर मुग्ध होना, और लज्जा त्याग कर यमुना तट पर एकत्रित होना रचना का वर्ण्य विषय है।

मनोरथ-मंजरी : ३० पद्यों की इस रचना में कवि ने अपने को राधा की निकटतम सहचरी के रूप में चित्रित करते हुए उनकी केलि-क्रीड़ाओं का वर्णन किया है।

व्रज-व्यवहार : ३११ अर्धालियों और २६ दोहों की इस रचना में व्रज माहात्म्य, गोचारण, छाकलीला, दानलीला गोपीप्रेम आदि विषय वर्णित हुए हैं। प्रेम सरोवर नामक ८ दोहों की संक्षिप्त रचना प्रस्तुत रचना का एक भाग ज्ञात होती है, क्योंकि संख्या २२५ से २३२ तक के दोहे प्रेम सरोवर के ही हैं।

गिरिगाथा : ४ दोहों और ५० अर्धालियों की इस रचना में गिरिराज गोवर्द्धन का माहात्म्य वर्णित हुआ है।

छंदाष्टव : यह रचना केवल ८ छंदों की है। इसमें रास के मध्य में कृष्ण के अन्तर्हित होने पर गोपियों की विरहानुभूति और उनके अन्वेषण के यत्नों का चित्रण हुआ है।

त्रिभंगी : केवल ५ त्रिभंगी छंदों के इस संग्रह में भगवद्-भक्ति का उपदेशात्मक शैली में कथन किया गया है।

परमहंस-वंशावली : यह रचना घनानन्द के सम्प्रदाय के इतिहास से सम्बद्ध है। इसमें ५३ दोहों के अन्तर्गत हंस-सनक से लेकर वृन्दावनदेवाचार्य

---

[1] **गोप मास श्रो कृष्ण पक्ष सुचि। संवत्सर अठानबे अति रुचि॥**

—मुरलिका मोद, ५०

तक के निम्बार्कीय आचार्यों की नामावली का उनके गुणकथन के साथ उल्लेख हुआ है।

कवित्त और सवैये : घनानन्द के कृतित्व का अधिकांश कवित्त और सवैया छंदों के रूप में प्राप्त होता है। सुजानहित, प्रकीर्णक एवं प्रबंधरचनाओं में प्रयुक्त कवित्त और सवैयों की संख्या ६८६ है। इनके अन्तर्गत घनानन्द का सुजान के प्रति प्रेम, भक्ति-भावना, संयोग और विप्रलम्भ-प्रेम की विविध दशाएँ, ब्रज-माहात्म्य आदि विषय वर्णित हुए हैं।

पदावली : घनानन्द ने गेय पदों की भी रचना प्रचुर मात्रा में की थी। पदावली और प्रबन्ध रचनाओं में प्रयुक्त पदों की संख्या १०६८ है। पदावली में भक्ति, ब्रज-प्रेम, यमुना-यश, संयोग और विप्रलम्भ-प्रेम, कृष्ण की विविध लीलाएँ, प्रकृति आदि विषय वर्णित हुए हैं। कवित्त-सवैयों और पदावली में विषय की दृष्टि से पर्याप्त साम्य है।

घनानन्द समीक्ष्य युग के कृष्णपरक कवियों में सर्वश्रेष्ठ हैं। सभी सम्प्रदायों में भाव, भाषा और अभिव्यंजना की दृष्टि से उनके जोड़ का कोई अन्य कवि नहीं लक्षित होता। घनानन्द के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विविध पक्षों पर डॉ० मनोहरलाल गौड़ द्वारा शोध-प्रबन्ध लिखा जा चुका है। अतएव पिष्टपेषण से बच कर आगे के अध्यायों में समीक्ष्य कृष्णकाव्य के सन्दर्भ में उनके काव्य का मूल्यांकन किया गया है।

रसिकगोविन्द

रसिकगोविन्द विषयक भ्रान्तियाँ और उनका रचनाकाल—

रसिकगोविन्द का परिचय हिन्दी साहित्य के इतिहासों में अपूर्ण रूप में दिया गया है। शिवसिंह सरोज में हजारा में संकलित रसिगोविन्द के एक पद को उद्धृत करते हुए संवत् १७५० में उनकी विद्यमानता बताई गई है।[१] नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में भी इसके सम्बन्ध में भ्रान्त सूचनाएँ दी गई हैं। रसिकगोविन्द के कुछ पारिवारिक परिचय के साथ इनका नाम-अलि-रसिकगोविन्द, और रचना काल १८वीं शती देते हुए इन्हें हरिव्यास जी का शिष्य बताया गया है।[२] इस रिपोर्ट के अनुसार उनका सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ रसिक

---

१ **शिवसिंह-सरोज, पृ० ६८ और ३७०**

२ **खो० रि० नागरी प्रचारिणी सभा, १६०८ सं० १२८**

गोविन्दानंदघन है। परवर्ती खोज-रिपोर्ट में रसिकगोविन्द के अष्टादेशभाषा, युगल-रसमाधुरी कलियुगरासो, पिंगल-ग्रंथ, समय-प्रबन्ध, श्री रामायण-सूचनिका आदि की सूचनाएँ दी गई हैं। मिश्रबंधुओं ने इसी आधार पर इनका नाम 'अलिरसिक गोविन्द', जयपुर निवासी और हरिव्यासजी का शिष्य माना है।[1] परवर्ती खोज रिपोर्ट में भी इन भ्रान्तियों की पुनरावृत्ति हुई है।[2] पं० राम चन्द्र शुक्ल ने रसिगोविन्द का कविताकाल संवत् १८५० से १८६० तक माना है किन्तु उन्होंने इनका जन्म-संवत् नहीं दिया है।[3] डॉ० नारायणदत्त शर्मा ने रसिक-गोविन्दानंदघन में रामायण-सूचनिका के उपलब्ध दोहों के आधार पर अनुमान किया है कि यदि रामायण सूचनिका की रचना, रसिकगोविन्दानंदघन से १०-१५ वर्ष पूर्व २५ वर्ष की अवस्था में मानें तो संवत् १८५८ में से ४० निकाल देने पर रसिकगोविन्द का जन्म संवत् १८१५-२० के आस-पास ठहरता है।[4] किन्तु इस अनुमानाश्रित साक्ष्य के आधार पर रसिकगोविन्द का निश्चित जन्म-संवत् नहीं दिया जा सकता। उनकी एक अन्य रचना 'रसिकगोविन्द-चन्द्रलोक' का रचनाकाल संवत् १८६० है। इसके उपरान्त इनकी अन्य किसी रचना में काल निर्देश नहीं मिलता। अतः संवत् १८६० के अनन्तर ही रसिक गोविन्द के गोलोकवास का अनुमान करना संगत होगा।

परिचय—रसिक गोविन्द का परिचय उनके ग्रंथ 'रसिकगोविन्दानंदघन' से ज्ञात होता है। रसिकगोविन्दानंदघन के कई छन्दों में उनकी आत्म-परिचयात्मक सूचनाओं की आवृत्ति हुई है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

क—वैष्णव रसिक गोविन्द लेखक कोक काव्य करैया।
सालिग्राम सुत जाति नटाणि, बालमुन्कुद कौ भैया॥

---

[1] मिश्रबन्धु विनोद, भाग २, पृ० ८४८

[2] गोविन्द नए कवि हैं। कहा जाता है कि ये हरिदासजी द्वारा स्थापित टट्टी-सम्प्रदाय के अनुयायी थे। किन्तु इन्होंने अपना ग्रंथ उन शब्दों से आरम्भ किया है जिनका स्वामी हितहरिवंशजी द्वारा राधावल्लभी सम्प्रदाय के वैष्णव प्रयोग करते हैं। इस कवि के गुरु कोई गोवर्द्धनदेव थे। ये साधारण कवि हैं।—खोज रिपोर्ट, नागरी प्रचारिणी सभा, सन् १९१२-१४, सं० ६५

[3] हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३१९-२१

[4] निम्बार्क सम्प्रदाय और उसके हिन्दी कवि, रसिकगोविन्द

जयपुर जनम जुगल पद सेवी नित्य विहार गवैया।
श्री हरिव्यास प्रसाद पाय सो वृन्दाविपिन बसैया॥
पितु ह्वै प्रतिपाल्यौ प्रकट प्रभु कै निज धाम।
गुरु ह्वै अभय किये सदा जय श्री शालिग्राम॥
रामकृष्ण सुत ज्येष्ठ पितु मोती राम अभिराम।
दुग्ध सर दुख हर सुखद सकल गुनन के धाम॥
बानी कंठ हिये जुगल लक्ष्मी ता घर वास।
मुख कविता कर पुस्तिका मृदु हास॥

ख—जादौ साह् को सपूत पूत सालिग्राम, सुत नटाणी बालमुकुन्द कहायौ है।
जैपुर बसैया बिलसैया कोक काव्यनु को ताको लघु-भैया श्रीगोबिन्दकवि गायो है।
सम्पत्ति विलासी तब चित्त में उदासी गई, सुमति प्रकासी याते ब्रज को सिधायो है।
अब हरिव्यास कृपा बिन ही बिलास कास, सब सुख रसिबास वृन्दावन पायो है।

ग—माता गुमाना गुविन्द की पिता जु सालिग्राम।
श्री सर्वेश्वर शरण गुरुवास विंदावन धाम॥
रुच्यो गोविन्दानन्दघन, श्री नारायण हित।
कृष्णदत्त पाण्डेय तिन्हे जानि निज मित्त।

'रसिकगोविन्दानंदघन' के उपर्युक्त उद्धरणों से ज्ञात होता है कि "रसिक गोविन्द मूलतः जयपुर निवासी और नटाणी शाखा के वैश्य थे। इनके पितामह का नाम जादोदास, पिता का नाम शालिग्राम और माता का गुमाना था। रसिकगोविन्द के एक बड़े भाई बालमुकुन्द थे। निम्बार्क-सम्प्रदाय में दीक्षित होने के बाद ये व्रजमण्डल में आकर रहने लगे थे। परशुरामपुरी (सलेमाबाद) गद्दी के आचार्य श्री सर्वेश्वरशरण देव इनके गुरु थे।" नागरी प्रचारिणी सभा की एक खोज रिपोर्ट में इनके गुरु का नाम गोवर्द्धनदेव दिया हुआ है।[१] खोज रिपोर्ट में रसिकगोविन्दानंदघन का निम्न कवित्त भी उद्धृत किया गया है—

पुरान प्रकास वेद विद्या के निवास दास
श्री गोविन्द जासु नाम जस कीन देव हैं।
रसिक अनन्यवर नागर चतुर चारु,
चरन कमल भव सागर के खेव हैं।

---

[१] नागरी प्रचारिणी सभा, खो० रि० १९१२-१४, सं० ६५

जीवन हमारी कुंज महल अधिकारी,
ऐसे अधिकारी स्वामी गोवर्द्धनदेव हैं ॥

परन्तु रिपोर्ट में उद्धृत यह कवित्त अपूर्ण है। अतः उसकी प्रामाणिकता सन्देह से परे नहीं कही जा सकती। अन्यत्र इसका पाठ इस प्रकार भी मिलता है—

जीवन हमारी कुंज भवन अधिकारी,
ऐसे सर्वेश्वरसरन सुखकारी गुरुदेव हैं ॥

रसिकगोविन्द ने प्रायः अपने गुरु का नाम सर्वेश्वरशरण देव ही लिखा है। साम्प्रदायिक स्रोतों से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है।[१] अतः यह निश्चित है कि सर्वेश्वरशरण देव को ही इनका गुरु बताया गया है।[२]

रचनाएँ :—रसिकगोविन्द की रचनाओं के सम्बन्ध में कोई मतभेद नहीं है। पं० रामचन्द शुक्ल,[३] ब्रह्मचारी बिहारीशरण[४] और डॉ० सत्येन्द्र[५] ने रसिकगोविन्द की निम्नलिखित रचनाओं का उल्लेख किया है—

१—रामायण सूचनिका ४—अष्टदेश-भाषा ७—युगल रस-माधुरी
२—रसिकगोविन्दानंदघन ५—पिंगल ८—रसिकगोविन्दचन्द्रलोक
३—लक्ष्मण-चन्द्रिका ६—कलिजुगरासो ९—समय-प्रबन्ध।

इसमें संख्या १, २, ३, ५ और ८ की रचनाएँ कृष्णपरक नहीं हैं, अतः यहाँ उनका परिचय नहीं दिया जा रहा है। इन रचनाओं के अतिरिक्त रसिकगोविन्द द्वारा रचित रासलीला, होली, बधाई आदि के स्फुट पद साम्प्रदायिक हस्तलिखित ग्रन्थों में संगृहीत हुए हैं।[६]

अष्टदेश-भाषा – इस रचना में व्रजभाषा के अतिरिक्त खड़ीबोली, पंजाबी, पूर्वी आदि आठ बोलियों में राधा-कृष्ण की लीलाएँ वर्णित हुई हैं। भक्तिभाव की अपेक्षा भाषा प्रयोग की विचित्रता इस रचना की मूल प्रेरणा प्रतीत होती है।

---

[१] सर्वेश्वर वृन्दावनांक, पृ० २२५
[२] नागरी प्रचारिणी सभा, खो० रि० संवत् १९३२-३४, पृ० १८८
[३] हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३१९-२१
[४] निम्बार्क-माधुरी, पृ० ४८८-८९
[५] पोद्दार अभिनन्दन-ग्रन्थ, पृ० ३८८
[६] श्री निकुंज वृन्दावन के हस्तलिखित पद-संग्रह से लेखक को रसिकगोविन्द कृत कुछ पद प्राप्त हुए हैं। बाबा वंशीदास द्वारा सम्पादित 'श्रृंगार रस-सागर' में भी रसिकगोविन्द के पद संकलित किए गए हैं।

कलिजुगरासो :—इसका रचनाकाल संवत् १८९५ है। इसमें १६ कवित्तों में कलियुग के प्रभाव का वर्णन है। प्रत्येक कवित्त 'कीजिए सहाय जू कृपाल श्री गोविन्दराय कठिन कराल कलिकाल चलि आयो है' की स्तुत्यात्मक पंक्ति से समाप्त होता है।

युगल रस-माधुरी :—इसके अन्तर्गत २०० रोला छन्दों में राधा-कृष्ण और उनके लीलाधाम वृन्दावन का सरस एवं काव्यात्मक शैली में वर्णन हुआ है।

समय-प्रबन्ध :—इस रचना में राधा-कृष्ण की ऋतुचर्या ८५ पद्यों में वर्णित हुई है।

रसिकगोविन्द का व्यक्तित्व कृष्णभक्ति-काव्य की परम्परा में सबसे विलक्षण है। निम्बार्क-सम्प्रदाय में दीक्षित होते हुए भी रसिकगोविन्द ने अपने युग की प्रवृत्ति के अनुरूप रीतिग्रन्थों का प्रणयन किया। उन्होंने राधा-कृष्ण के रूप और लीलाओं का जो चित्रण किया है, उस पर भी रीतिकाव्य की अलंकरण वृति का प्रभाव स्पष्टतया परिलक्षित होता है। यथार्थतः रसिकगोविन्द रीति-कवि हैं, किन्तु निम्बार्क-सम्प्रदाय से प्रत्यक्षतः सम्बद्ध होने के कारण उन्हें साम्प्रदायिक कवियों की कोटि में रखा गया है।

ब्रजदासी

परिचय :—इनका वास्तविक नाम ब्रजकुंवरि था। ब्रजदासी का जन्म संवत् १७९० के आस-पास माना जाता है। ये जयपुर के लिवान नरेश आनन्द सिंह की पुत्री थीं। संवत् १७८६ में इनका विवाह किशनगढ़ नरेश राजसिंह के साथ हुआ था। रानी ब्रजकुंवरि ने निम्बार्क-सम्प्रदाय के प्रसिद्ध आचार्य वृन्दावनदेव से दीक्षा ली थी। इसका निर्देश उन्होंने अपने भागवत के अनुवाद में स्पष्ट रूप से किया है :—

> **नमो नमो गोपाल लाल गोबरधन धारी।**
> **नमो नमो वृषभान कुंवरि, प्रिय प्रान पियारी।**
> **नमो नमो मम गुरु प्रसिद्ध 'वृन्दावन' नामं।**
> **नमो नमो हरिभक्त, रसिक जे अति अभिरामं।**
> **नमो नमो श्री भागवत, कृपासिंधु मंगल करन।**
> **दिनकर-समान झलमलत मो, प्रघट जगत अय तम हरत।**[1]

---

[1] **ब्रजदासी भागवत, प्रति वृन्दावन श्री निकुंज**

रचना :—ब्रजदासी कृत किसी मौलिक काव्य ग्रन्थ का उल्लेख नहीं मिलता। उनका भागवत का केवल एक ब्रजभाषा अनुवाद प्राप्त है। यह अनुवाद ब्रजदासी भागवत नाम से विख्यात है।

भागवत के अनुवादों की परम्परा में ब्रजदासी के इस अनुवाद का महत्वपूर्ण स्थान है।[१]

सुन्दर कुंवरि

परिचय :—सुन्दर कुंवरि किशनगढ़ राज्य के महाराजा राजसिंह की पुत्री तथा सावंत सिंह उपनाम 'नागरीदास' की छोटी बहन थीं। सुन्दर कुंवरि का जन्म संवत् १७९१ में हुआ था।[२] जब सुन्दर कुंवरि केवल चौदह वर्ष की थीं तभी उनके पिता का देहावसान हो गया था। किशनगढ़ के राजकीय संघर्षों के परिणामस्वरूप ये इकतीस वर्ष की अवस्था तक अविवाहित रहीं। जब सुन्दर-कुंवरि के भतीजे सरदार सिंह सिंहासनारूढ़ हुए, तो उन्होंने इनका विवाह संवत् १८२२ में राघवगढ़ नरेश बलवंत सिंह के साथ कर दिया। विवाहोपरान्त इनका जीवन सुखपूर्वक नहीं बीता। सुन्दर कुंवरि के पति सिंधियों द्वारा बंदी बना लिये गए तथा राघवगढ़ का किला सिंधिया के अधिकार में चला गया। आगे चलकर यह किला जयपुर, जोधपुर और खीची सरदार शेरसिंह की सहायता से जीता गया।[३] सुन्दर कुंवरि का इससे आगे का जीवनवृत्त स्पष्ट नहीं है।

जीवन विषयक कुछ नवीन तथ्य :—सुन्दर कुंवरि के ब्रजवास के सम्बन्ध में एक पत्र का उल्लेख मिलता है। यह पत्र सुन्दर कुंवरि ने आषाढ़ शुक्ल १५ भौमवार संवत् १८७७ वि० को छत्रसाल सिंह नामक एक खींची सरदार के द्वारा जोधपुर नरेश महाराज मानसिंह के पास भेजा था। इस पत्र से ज्ञात होता है कि प्रथम तो उनका अवारखेड़ी में डाकुओं के द्वारा सर्वस्व हरण हुआ और तदनन्तर उन्हें पितृ-गृह से सहायता प्राप्त हुई। इस पत्र से यह भी सूचना मिलती है कि लाल जयसिंह की इच्छानुसार वे संवत् १८६५ से वृन्दावन में रहने लगी थीं। इसके उपरान्त भी उनका ब्रजवास चलता रहा। श्री निकुंज वृन्दावन के बही-खातों में खीची वाली कुंज का किराया संवत् १८८० से

---

[१] प्रस्तुत प्रबन्ध : अनूदित साहित्य, भागवत के अनुवाद

[२] सर्वेश्वर वृन्दावनांक, पृ० २८५

[३] महिला मृदुवाणी, पृ० १०७

संवत् १८८२ तक जमा है ।[१] यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि उस समय वे वृन्दावन में थीं अथवा पितृ-गृह चली गयी थीं।

सुन्दर कुंवरि के गोलोकवास संवत् के विषय में मतभेद है। मुंशी देवी-प्रसाद ने सुन्दर कुंवरि का मृत्यु संवत् १८५३ माना है ।[२] उन्हीं के उल्लेखानुसार मोतीलाल मेनारिया ने भी सुन्दर कुंवरि का मृत्यु संवत् १८५३ दिया है।[३] परन्तु सम्प्रदायिक स्रोतों के परीक्षण से यह संवत् और भी परवर्ती सिद्ध होता है। किशनगढ़ राज्य में सं० १८७९ में उनकी बरसी का उल्लेख हुआ है। इससे यह अनुमान असंगत न होगा कि सं० १८७८ में सुन्दर कुंवरि का गोलोकवास हुआ तथा उनके कुंज का किराया दो एक वर्षों के बाद तक जमा होता रहा ।[४] इस प्रकार सुन्दर कुंवरि का गोलोकवास संवत् १८५३ मानना तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता।

सुन्दर कुंवरि ने निम्बार्काचार्य पीठ सलेमाबाद के आचार्य वृन्दावनदेव से दीक्षा ली थी। वृन्दावनदेव का समय निम्बार्क-सम्प्रदाय में संवत् १७३५ से १७९७ तक निश्चित है। इससे स्पष्ट है कि सम्प्रदाय में दीक्षित होने के समय सुन्दर कुंवरि की अवस्था केवल पाँच वर्ष की ही रही होगी। सुन्दर कुंवरि ने अपनी रचनाओं में वृन्दावनदेव द्वारा दीक्षा लेने का स्वयं उल्लेख किया है—

> श्री वृन्दावन मम प्रभु बंदौ जिन पद रैन।
> इन प्रभाव सादर कहत वृन्दावन जस बैन।
> जुगल उपासक रसिक मणि निंबायत संप्रदाय।
> जिन दास्युतता दीन मै लई भाग्य वर पाय ॥[५]

किन्तु वृन्दावनदेव के संवत् १७९७ में देहावसान हो जाने के कारण उनके शिष्य सर्वेश्वरशरणदेव ने उन्हें विद्यादान दिया था—

> श्री वृन्दावनदेव प्रभु जिन्ह की दासि जु छाप।
> लही बाल-वय में तबहि उदए भाग अभाग ॥

---

[१] सर्वेश्वर, वर्ष ६, अंक १२, पृ०१७-१८

[२] महिला मृदुवाणी, पृ० १०७

[३] राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० १४५

[४] सर्वेश्वर, वर्ष ६, अंक १२, पृ० १७-२०

[५] वृन्दावन गोपी माहात्म्य, दो० ३ और ५

सो अब दे दासी प्रगट, महाभाग की ओप।
श्री सर्वेश्वर सरन प्रभु, दिए सुर्भव निज गोप ॥

सुन्दर कुंवरि के पितृगृह के निकट निम्बार्क-सम्प्रदाय की सलेमाबाद की गद्दी थी और उसी में उनका पितृकुल परम्परा से दीक्षित होता आ रहा था। परन्तु डॉ० सावित्री सिन्हा ने सुन्दरकुंवरि की 'रसपुंज' नामक रचना का विवरण देते हुए लिखा है कि "राधावल्लभ सम्प्रदाय में राधा का स्थान कृष्ण से उच्च है। इसी मान्यता का स्पष्ट आभास सुन्दर कुंवरि के इस ग्रन्थ में मिलता है"।[१] आगे चल कर सुन्दर कुंवरि की रचनाओं के प्रसंग में उन्होंने उनकी माता बांकावती, भाई नागरीदास (सावंतसिंह) और उनकी उपपत्नी बनीठनी को भी राधावल्लभी घोषित किया है, जो भ्रान्त है।[२]

वास्तव में वल्लभ-सम्प्रदाय के अतिरिक्त कृष्णभक्ति के सभी सम्प्रदायों में माधुर्यभाव की प्रधानता है। कृष्ण के रसिक रूप की कल्पना राधा के अभाव में असम्भव-सी है। निम्बार्क-सम्प्रदाय में राधा ही मूल शक्ति मानी जाती हैं। अपने व्यापक रूप में राधा की वन्दना करते हुए उनके माध्यम से रसिकेश्वर कृष्ण की माधुर्य उपासना की व्यवस्था केवल राधावल्लभ सम्प्रदाय की ही विशेषता नहीं कही जा सकती। अतः राधा विषयक मंगलाचरण को आधार मानकर सुन्दर कुंवरि को राधावल्लभी कहना उचित नहीं प्रतीत होता। इसके अतिरिक्त उनकी माता बांकावती, भाई नागरीदास (सावंतसिंह) और उनकी उपपत्नी बनीठनी जी को राधावल्लभी कहना भी असंगत है। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखिका को सुन्दर कुंवरि को राधावल्लभी कहते हुए भी उनके निम्बार्क-सम्प्रदाय में दीक्षित होने का सन्देह बना रहता है। इसीलिए डॉ० सिन्हा ने अन्यत्र लिखा है कि "निम्बार्क-सम्प्रदाय में राधा ही मूल शक्ति मानी जाती हैं। यहाँ तक कि ब्रह्मस्वरूप कृष्ण की लीलाएँ भी उसी पर आधृत रहती हैं। जीवात्मा की प्रतीक गोपिकाएँ ही ब्रह्म में लय होने के लिए आतुर नहीं रहतीं, बल्कि ब्रह्म भी अपनी शक्ति प्रसारण के लिए राधा की इसी प्रसारिणी शक्ति पर निर्भर रहता है। सुन्दर कँवरि के पदों में कृष्ण की भावुकता की यही पृष्ठभूमि हैं"।[३] इसके अतिरिक्त वृन्दावन-गोपी-माहात्म्य की खोज रिपोर्ट में

---

[१] मध्यकालीन हिन्दी कवियित्रियाँ, पृ० १०६

[२] वही, पृ० १७८

[३] मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ, पृ० १८१

उद्धृत छन्दों के आधार पर लेखिका ने उन्हें स्वयं अन्यत्र निम्बार्क मतानुयायी भी कहा है।[१]

रचनाएँ :—नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों[२] के आधार पर मिश्रबन्धुओं ने सुन्दर कुंवरि के ११ ग्रन्थों का उल्लेख किया है। उनमें स्फुट पदों और कवित्तों को भी सम्मिलित कर लिया गया है।[३] डॉ० सावित्री सिन्हा के अनुसार सुन्दर कुंवरि की खोज रिपोर्टों में निर्दिष्ट ११ रचनाएँ मिलती हैं।[४] मेनारिया ने भी उनकी ११ रचनाएँ बतायी हैं।[५] व्रजवल्लभशरण ने सुन्दर कुंवरि की 'मित्र-शिक्षा' नामक एक अन्य रचना का भी उल्लेख किया है।[६] सुन्दर कुंवरि की समस्त रचनाओं का संग्रह बूँदी नरेश रघुवीर सिंह की माता, रानी शुभनाथ कुमारी ने 'द्वादश-ग्रन्थ' नाम से प्रकाशित कराया था, जो अब अप्राप्य है। सुन्दर कुंवरि की कृतियों में उनका रचनाकाल दिया हुआ है। 'राम-रहस्य' कृष्णपरक नहीं हैं। अतः उसे प्रस्तुत अध्ययन में सम्मिलित नहीं किया गया है।

नेह-निधि :—(संवत् १८१०) इस रचना में राधा-कृष्ण की विलास लीलाओं का वर्णन हुआ है।

वृन्दावन-गोपी-माहात्म्य :—(सं० १८२३) इसमें आदिपुराण के आधार पर वृन्दावन और गोपियों के माहात्म्य का उल्लेख किया गया है।

संकेत-युगल :—(सं० १८३०) इस रचना में आराध्य युगल के विनोद का चित्रण हुआ है।

भावना-प्रकाश :—(सं० १८४०) इस रचना में राधा-कृष्ण का नित्य विहार वर्णित है।

रंगझर :—(सं० १८४५) इस रचना का प्रतिपाद्य राधा-कृष्ण की प्रेम-क्रीड़ाओं का सरस चित्रण है।

---

[१] वही, पृ० १७८

[२] खो०रि०, ना०प्र०स०, १९०४, सं० ९५ से १०४ और स्फुट पद

[३] मिश्रबन्धु-विनोद, भाग २, पृ० ७२३-२४

[४] मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ, पृ० १७५-७८

[५] क–राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २४९
ख–राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० १४६

[६] सर्वेश्वर वृन्दावनांक, पृ० २८६

प्रेमसम्पुट :—(सं० १८४८) इसमें राधा-कृष्ण की नित्य-लीलाओं का चित्रण हुआ है।

गोपी-माहात्म्य :—(सं० १८४६) इस रचना में स्कन्दपुराण के आधार पर वृन्दावन और गोपी-माहात्म्य वर्णित है।

रसपुंज :—(सं० १८३४) इसमें राधा-कृष्ण के प्रेम एवं रस का वर्णन हुआ है।

सुन्दर कुँवरि की सभी रचनाओं की प्रेरणा कृष्ण-भक्ति है। किन्तु उसकी अभिव्यक्ति में उन्होंने कृष्णलीला के माधुर्यपरक प्रसंगों का ही आधार लिया है। भाव पक्ष के साथ ही उनके काव्य का कलापक्ष भी सम्पन्न है। विवेच्ययुग की कृष्ण-काव्यधारा की कवयित्रियों में सुन्दर कुंवरि का स्थान सर्वोपरि है।

कृष्णदास

परिचय :—कृष्णदास के सम्बन्ध में उनकी रचनाओं से बहुत कम सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। कृष्णदास की कृतियों में माधुर्यलहरी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस रचना में कृष्णदास ने अपने को निम्बार्क-सम्प्रदाय के महात्मा हरिभक्तदास का शिष्य बताया है।

> **हरिहित भक्त सुदास के पद नख छटा प्रकास। ३।**
> **हरिहित भक्त सुदास हित कृष्णदास के इष्ट ॥ ४ ॥**
>
> **—माधुर्यलहरी**

माधुर्यलहरी के अन्त में कृष्णदास ने चार दोहों के अन्तर्गत ग्रन्थ का रचनाकाल और आत्म परिचय भी दिया है—

> **बिन्ध्य निकट तट सुर्धुनी, गिरिजापत्तन ग्राम,**
> **हरि भक्तन कै आश्रै कृष्णदास विश्राम ॥ ४७ ॥**
> **ग्रन्थ माधुर्यसुलहरी अस कहिहै जाको नाम।**
> **कृष्णदास सुख की कृपा प्रगट भयो ता ठाम ॥४८॥**
>
> **—माधुर्यलहरी, पृ० ३९५**

इन दोहों से ज्ञात होता है कि कृष्णदास विन्ध्य के निकट गंगातट पर गिरिजापत्तन नामक ग्राम के निवासी थे। परन्तु 'गिरिजापत्तन' शब्द को लेकर कृष्णदास के निवासस्थान के विषय में पर्याप्त मतभेद रहा है। 'गिरिजापत्तन'

की स्थिति के सम्बन्ध में विचार करते हुए पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने माधुर्यलहरी के परिचय में लिखा है—"गिरिजापत्तन या गिरिजापुर ग्राम मात्र था या कोई बड़ा जनपद रहा होगा, मिर्जापुर या गाजीपुर से उसका कोई सम्बन्ध नहीं जान पड़ता। समुचित सामग्री के अभाव में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता।" इसके अनन्तर उन्होंने अपने एक लेख में 'गिरिजा-पत्तन' से ध्वनित होने वाले स्थानों की समस्या पर विचार करते हुए अपने उक्त निष्कर्ष की पुनरावृत्ति की है।[१] परन्तु वेदप्रकाश गर्ग के अनुसार यह स्थान 'गिरजापुर' न होकर मिर्जापुर अथवा 'मिरिजापत्तन' है। कृष्णदास ने माधुर्यलहरी के अतिरिक्त अपनी दो अन्य रचनाओं भागवत-भाषा और भागवत-माहात्म्य में भी अपने निवास स्थान का उल्लेख किया है:—

१—विन्ध्य निकट तट सुरधुनी 'गिरिजापत्तन ग्राम'।

—भागवतभाषा

२—विन्ध्य निकट सुरधुनी 'गिरिजापुर वर नाम'।

—भागवत-माहात्म्य

३—विन्ध्य के निकट तट सुरधुनी 'गिरिजापत्तन ग्राम'।

—माधुर्य लहरी

भागवतभाषा की उपर्युक्त पंक्ति में 'गिरिजापुर वर नाम' को मिश्र जी ने प्रतिलिपिकार की भूल मानते हुए इस बात की सम्भावना व्यक्त की है कि प्रति में इन शब्दों के बदले 'गिरिजापत्तन' ही रहा होगा।[२] परन्तु वेदप्रकाश गर्ग के अनुसार 'गिरिजापत्तन' की स्थिति गंगा के निकट नहीं बैठती। भूगोल के साक्ष्य के आधार पर गंगा 'गिरिजापत्तन' नामक किसी तटवर्ती ग्राम का उल्लेख नहीं मिलता। वस्तुतः 'गिरिजापत्तन' में 'पत्तन' शब्द का अर्थ पुर अथवा ग्राम है।[३] वेदप्रकाश गर्ग का मत अधिक समीचीन जान पड़ता है, क्योंकि प्रतिलिपि में 'गिरजापत्तन' का 'गिरजापुर' और 'मिरजापत्तन' का 'मिरजापुर' हो जाना अधिक सम्भावित प्रतीत होता है। प्रतिलिपि परम्परा में 'म' के स्थान पर 'ग' का और 'ग' के स्थान पर 'म' का भ्रम होना

---

[१] **नागरी प्रचारिणी पत्रिका, ६२ अंक १, पृ० ८०–८१**

[२] **नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५६, अंक २, पृ० १६०**

[३] **वही, वर्ष ६२, अंक १, पृ० ८०–८१**

अस्वाभाविक नहीं है। उपर्युक्त तीनों उद्धरणों में केवल एक वर्ण के परिवर्तन से सम्पूर्ण शब्द की समस्या का समाधान हो जाता है। बिहारीशरण के अनुसार वृन्दावन में कृष्णदास ने एक स्थान भी बनवाया, जो 'मिरजापुर वाली कुंज' के नाम से अब तक प्रसिद्ध है।[1] अतः कृष्णदास का वासस्थान 'मिरजापुर' अथवा 'मिरजापत्तन' ही मानना अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

कृष्णदास के जीवन-चरित की कोई अन्य सूचना प्राप्त नहीं है। रचनाओं के आधार पर कृष्णदास का रचनाकाल संवत् १८५२ से १८५५ तक निर्धारित किया जा सकता है।

रचनाएँ :—कृष्णदास की तीन रचनाएँ प्राप्त हैं—माधुर्यलहरी, भागवत-भाषा और भागवत-माहात्म्य। मिश्रबन्धुओं ने इनके द्वारा रचित एक 'मंगल' का भी उल्लेख किया है।[2] परन्तु यह रचना कृष्णदास की न होकर विहारिनदास के शिष्य नागरीदास की है।[3]

माधुर्यलहरी :—इसका रचनाकाल सं० १८५२ से १८५३ है। माधुर्यलहरी में राधाकृष्ण की अष्टयाम लीलाओं का विविध छन्दों के अन्तर्गत प्रबन्ध शैली में वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त व्रजप्रदेश के पतनोन्मुख धार्मिक वातावरण का भी चित्रण हुआ है।

भागवत-भाषा :—इसका रचनाकाल संवत् १८५२ से १८५३ तक है। रचना भागवत का व्रजभाषा में भावानुवाद है।

भागवत-माहात्म्य :—इस रचनाकाल संवत् १८५५ है। इसमें भागवत के महत्त्व का वर्णन किया गया है।

कृष्णदास की रचनाएँ मुख्य रूप से उनके अनुवादक एवं सम्प्रदाय प्रचारक के व्यक्तित्व को ही उद्घाटित करती हैं।

नारायणस्वामी

परिचय :—नारायणस्वामी का जन्म संवत् १८८५ में रावलपिंडी में हुआ था। वे सारस्वत ब्राह्मण थे। और संवत् १९१६ के लगभग वृन्दावन में

---

[1] निम्बार्क-माधुरी, पृ० ५३९

[2] मिश्रबन्धु विनोद, भाग २, पृ० ८१०

[3] माधुर्यलहरी, परिचय, पृ० ३

आकर निवास करने लगे। यहाँ उन्होंने लालबाबू के कार्यालय में नौकरी करना प्रारम्भ की।[1] वृन्दावन में रसिक भक्तों के सत्संग में उनकी भक्तिभावना पल्लवित हुई। रासलीलाओं की प्रेरणा से नारायण स्वामी ने काव्य-रचना प्रारम्भ की। वृन्दावन के टीकरी वाले मन्दिर की रासमण्डली इनके पदों का अभिनय करती थी। कुछ समय उपरान्त नारायणस्वामी ने नौकरी छोड़कर सन्यास ग्रहण कर लिया और यमुना तटवर्ती केशीघाट में खपटिया बाबा के घेरे में रहने लगे। नारायण स्वामी की चारित्रिक महानता विषयक अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। कालान्तर में इनकी ख्याति से आश्रितों ने अनुचित लाभ उठाना आरम्भ कर दिया। अतः वे केशीघाट छोड़कर कुसुम-सरोवर पर रहने लगे। वहीं संवत् १९५७ में उद्धव जी के मन्दिर में उनका गोलोकवास हुआ। नारायणस्वामी के समसामयिक राधाचरण गोस्वामी ने भी अपने 'भक्तमाल' में उनके व्यक्तित्व और कृतित्व की प्रशंसा की है, जिससे ज्ञात होता है कि वे काव्य-रचना में प्रवीण थे और रासमण्डलियों में उनके पदों का विशेष आदर था।[2]

रचनाएँ :—नारायणस्वामी ने सर्वप्रथम भागवत सम्बन्धी गज़लों की एक पुस्तक प्रकाशित की। संवत् १९४० में लाला गनेशीलाल ने इनके पदों का संग्रह 'व्रजविहार' के नाम से प्रकाशित करवाया था। इसके अनन्तर सं० १९९५ में वेंकेटेश्वर प्रेस, बम्बई से भी इसका एक संस्करण प्रकाशित हुआ। यद्यपि नारायणस्वामी का साधनागत नाम 'नवलसखी' था, परन्तु पदों में उन्होंने अपनी छाप 'नारायण स्वामी' ही रक्खी है। व्रजविहार के प्रारम्भ और अन्त में 'गोपालाष्टक' और 'अनुरागरस' नामक दो अन्य संक्षिप्त रचानाएँ भी संकलित हैं।

---

[1] निम्बार्क माधुरी, पृ० ७११

[2] अक्षर अर्थ अनूप अलंकारन सु अलंकृत।
भाव हृदय गंभीर अनुप्रासन गन गुंफित।
राग नवीन नवीन प्रवीनन को मन मोहै।
नृत्य करत गति भरत रास मंडल अति सोहै।
देश बिदेश प्रचार श्री वृन्दावन विश्राम।
श्री नारायणस्वामी नवल पद रचना ललित ललाम॥

—भक्तमाल, (राधाचरण गोस्वामी)

गोपालाष्टक :—यह आठ स्तोत्रों की एक संक्षिप्त रचना है, प्रत्येक स्तोत्र 'श्री गोपाल दीनदयालं वचन रसालं ताप हरम्' से समाप्त हुआ है।

व्रजविहार :—नारायणस्वामी की यह कृति राधा-कृष्ण की विविध लीलाओं सम्बन्धी दोहों और पदों का संग्रह है। इन लीलाओं का स्वरूप निरपेक्ष है। अतएव उन्हें स्वतन्त्र रचना माना जा सकता है। प्रत्येक लीला के अन्त में उसकी पुष्पिका दी गई हैं, जिससे इस तथ्य की पुष्टि होती है। रास-मण्डलियों के लिए रचे जाने के कारण इनके अन्तर्गत कथोपकथनों की भी योजना हुई है। 'व्रजविहार' में संकलित लीलाओं की सूची इस प्रकार है :—

माखनचोरी-लीला, उराइनों-लीला, आँखमिचौनी-लीला, उत्थापन-लीला, पनघट-लीला, नवलसखी की दान-लीला, दान-लीला, श्री देवीपूजन-लीला नव दुलहिनि-लीला, मान-लीला दोहावली, खण्डिता मान-लीला, संभ्रम मान-लीला, रूपगर्विता मान-लीला, नवलविहारी-लीला, श्री श्यामविहारिनी-लीला, युगल छद्म-लीला, प्रथम अनुराग-लीला, चौसर-लीला, सखी खण्डिता-लीला, वंशी-लीला, निकुंज हिंडोरा-लीला, शयन-लीला, साँवरी छद्म झूलन-लीला, वनझूलन-लीला, वसंत-लीला, होरी-लीला, गली होरी-लीला, छद्म होरी-लीला, प्रेम परीक्षा-लीला, रासपंचाध्यायी-लीला, सखी अनुराग-लीला और सांझी-लीला।

पद :—यद्यपि नारायणस्वामी ने कृष्ण की विविध लीलाओं की रचना पदशैली में की है, तथापि व्रजविहार में संकलित पदों को स्वतन्त्र कोटि में रक्खा जा सकता है। विषय की दृष्टि से ये पद चार प्रकार के हैं। १–सिद्धान्त के पद, २–बधाई के भजन, ३–यमालर्जुन की स्तुति विषयक पद और ४–स्फुट पद।

श्री अनुराग रस :—यह १८४ दोहों की नीतिपरक शैली में रची हुई संक्षिप्त रचना है। इन दोहों का महत्व भक्ति और नीति के युगपद् प्रतिपादन में हैं। समस्त दोहे, मंगलाचरण, चेतावनी पुनि गुणदोष लक्षण, सन्त लक्षण, कृपानिधान की शोभा और प्रेमलक्षण शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित हैं।

निम्बार्क-सम्प्रदाय के कवियों में राधा-कृष्ण की लीलाओं को विविधता की दृष्टि से नारायणस्वामी का स्थान वृन्दावनदेव के समकक्ष माना जा सकता है। नारायणस्वामी की व्यक्तिगत रुचि और उनका रासमण्डलियों के अभिनेयार्थ रचा जाना व्रजविहार में वर्णित लीलाओं की विविधता के कारण कहा जा सकता है।

नारायणस्वामी द्वारा रचित कृष्णलीलाओं के बीच-बीच में वार्ता का भी प्रयोग हुआ है, जो इनके लोकनाट्य रूप को पूर्णता प्रदान करता है। ब्रजप्रदेश की रासमण्डलियों में नारायणस्वामी द्वारा रचित कृष्ण-लीलाएँ आज भी अत्यन्त लोकप्रिय हैं।

वल्लभ-सम्प्रदाय

इस युग में वल्लभ-सम्प्रदाय के बहुत कम रचनाकारों और उनकी कृतियों के उल्लेख मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अष्टछापी कवियों के कृष्णलीला काव्य की लोकप्रियता एवं रसमयता के परिणामस्वरूप वल्लभ-सम्प्रदाय के उनके परवर्ती कवियों के लिए काव्य-रचना के क्षेत्र में मौलिक उद्भावनाओं का पथ अवरुद्ध-सा हो गया था। गोस्वामी हरिराय के उपरान्त वल्लभ-सम्प्रदाय में कोई प्रतिभा-सम्पन्न आचार्य नहीं हुआ। अतः एक सीमा तक साम्प्रदायिक संरक्षण का अभाव भी वल्लभ-सम्प्रदाय के साहित्य की न्यूनता का कारण ज्ञात होता है।

गोस्वामी हरिराय आलोच्य युग के वल्लभ-सम्प्रदाय के प्रमुख कवि हैं। उनके अतिरिक्त व्रजवासीदास, नागरीदास, और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को भी प्रस्तुत अध्ययन में सम्मिलित किया गया है।

गोस्वामी हरिराय

परिचय :—गोस्वामी हरिराय वल्लभ-सम्प्रदाय के आचार्य और वार्ता-साहित्य के टीकाकार के रूप में विख्यात हैं। परन्तु उन्होंने ब्रजभाषा गद्य-साहित्य के अतिरिक्त काव्य-साहित्य को भी सम्पन्न बनाने में महत्वपूर्ण योग दिया।

गो० हरिराय के जीवन वृत का विवेचन प्रस्तुत करने वाला कोई प्राचीन ग्रन्थ प्राप्त नहीं है। उनके द्वारा रचित वार्ता-साहित्य, शिक्षा-पत्र, कीर्तन के पदों के अंतः साक्ष्य तथा गोकुलनाथ कृत 'वचनामृत' और विट्ठलनाथ कृत 'सम्प्रदाय-कल्पद्रुम' के वाह्य साक्ष्य से उनकी जीवनी विषयक कुछ सूत्र प्राप्त होते हैं। इन ग्रंथों के आधार पर गो० हरिराय विट्ठलनाथ के प्रपौत्र और गो० कल्याण राय के पुत्र थे। उनका जन्म भाद्रपद (गुर्जर : ५) संवत् १६४७ में गोकुल में हुआ था। गो० गोकुलनाथ उनके दीक्षा गुरु थे। २४ वर्ष की अवस्था में गो० हरिराय का विवाह सुन्दरवंता बहू के साथ हुआ था। हरिराय

जी के गोविन्द जी, विट्ठलरा, छोटा जी और गोरा जी नाम के चार पुत्र हुए थे। अपने जीवन-काल में उन्होंने व्रज, राजस्थान और गुजरात की अनेक यात्राएँ की थीं। संवत् १७२६ में औरंगजेब की विध्वंस नीति के फलस्वरूप गोवर्धन से श्रीनाथ जी की मूर्ति उदयपुर ले जाई गई थी। गोस्वामी हरिराय जी भी श्रीनाथ जी की प्रतिमा के साथ उदयपुर गये थे।[१] उनका संवत् १७२६ के उपरान्त का जीवन श्रीनाथ जी की सेवा करते हुए उदयपुर में ही व्यतीत हुआ। गो० हरिराय के शिष्यों में विट्ठलनाथ भट्ट, हरिजीवनदास, प्रेमी जी और शोभा माँ का नाम उल्लेखनीय है। संवत् १७७२ में मेवाड़ के खिममौर नामक ग्राम में १२५ वर्ष की अवस्था प्राप्त करने के उपरान्त गो० हरिराय का देहान्त हुआ। वहाँ बावड़ी के ऊपर उसकी छतरी बनी हुई है।[२]

रचनाएँ :—हरिराय जी की प्रतिष्ठा का मूलाधार चौरासी और दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता पर उनके द्वारा लिखित 'भाव-प्रकाश' नामक टीका है। साम्प्रदायिक स्रोतों से ज्ञात होता है कि उन्होंने १६६ ग्रन्थ संस्कृत भाषा में तथा ४ वार्ता ग्रन्थ ब्रजभाषा में लिखे थे। संस्कृत और व्रजभाषा के अतिरिक्त हरिराय की गुजराती, राजस्थानी और पंजाबी भाषाओं में कीर्तन, धमार, धोल, ख्याल, रेखता आदि रचनाएँ भी प्राप्त होती हैं।[३] हमारा सम्बन्ध हरिराय द्वारा रचित व्रजभाषा-काव्य से ही है। अतएव प्रस्तुत विवेचन में हमने उनके संस्कृत, गुजराती और व्रजभाषा गद्य साहित्य को सम्मिलित नहीं किया है।

नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में गोस्वामी हरिराय की वार्ताओं[४] के अतिरिक्त नित्य-लीला और रसिक-लहरी नामक दो काव्य रचनाओं

---

[१] हरिराय जी की इस यात्रा का विवरण उनके द्वारा रचित 'गोवर्धन-नाथ जी के प्राकट्य की वार्ता' में प्राप्त है। इसके अतिरिक्त 'चलो चलो वैस्नवो वल्लभ साथ सखी मेवाड़ पधारयां श्री गोवर्धननाथ' वाले पद में भी इस यात्रा का सन्दर्भ मिलता है। देखिए—गो० हरिराय जी का पद साहित्य, पृ० १९८

[२] हरिराय जी का पद साहित्य, पृ० ५–१० तक

[३] वही, पृ० ५–१० तक

[४] खोज रिपोर्ट, ना० प्र० सभा सन् १९००, सं० ३८, १९०९–११ सं ११५, १९१७–१९। सं० ७४, १९२३–२५। सं० ६० तथा १९३२–३४। सं० ८३ आदि।

का उल्लेल मिलता है।[१] गुजराती लेखकों ने हरिराय जी के संस्कृत ग्रंथों के अतिरिक्त व्रजभाषा के स्फुट पद, कविता और घोल आदि का उल्लेख किया है।[२] गोस्वामी हरिराय कृत निम्नलिखित सात व्रजभाषा काव्य-रचनाएँ कही जाती हैं :—

१—स्नेह-लीला	४—दामोदर-लीला
२—नित्य-लीला	५—दान-लीला
३—स्याम सगाई	६—रसिक लहरी

७—वनयात्रा

ये समस्त रचनाएँ वस्तुतः कृष्ण लीलाओं, उत्सवों आदि से सम्बद्ध विस्तृत पदों के शीर्षक मात्र हैं। इसमें 'सनेह-लीला' और 'दान-लीला' सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

सनेह-लीला :—इस रचना की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ रसिकराय कृत 'उद्धव-लीला' जगमोहन कृत 'सनेह-लीला' तथा मुकुन्ददास कृत 'सनेह-लीला' के नाम से मिलती हैं। वस्तुतः जगमोहन और मुकुन्ददास सनेह-लीला के रचयिता न होकर प्रतिलिपिकार हैं। सनेह-लीला का प्रतिपाद्य भ्रमरगीत का प्रसंग है। इसमें कुल १२९ दोहे हैं।[३]

दान-लीला :—यह ३६ दोहों की संक्षिप्त रचना है। प्रत्येक दोहे के अन्त में 'नागरि दान दै' जोड़ दिया गया है।[४]

---

[१] वही १९०९-११। सं० ३८ तथा खोज रिपोर्ट १९३८—४०, सं० ५९।

[२] संस्कृत न जाणनाराने अर्थे भाषामां पण केटलाक पदो आप श्री ए रच्यो छे, अने ए मार्ग पण भावनुं मान कर्युं छे। धोलो पण प्रकट कर्या छे। ते ज रीतिए आपना केटलाक ख्यालादि पण सम्प्रदाय मा प्रसिद्ध छे।
—श्री हरिराय जी जीवन अने—बोध, पृ० २१—२२

[३] लेखक को सनेह-लीला की एक हस्तलिखित प्रति सत्यनारायण जी के मन्दिर वृन्दावन में देखने को मिली। प्रयाग संग्रहालय में भी इसकी एक हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है।

[४] दानलीला की एक हस्त प्रति विद्या विभाग, कांकरोली में है। यह लीला गो० हरिराय जी के पद (पृ० ६७—८०) तथा शृंगाररससागर (पृ० ३१०—१२, भाग ३) में भी संग्रहीत है।

हरिराय जी का पद साहित्य :—हरिराय जी के कृष्ण-लीलाओं, उत्सव, बधाई आदि विषयों से सम्बद्ध पदों के स्वतन्त्र संकलन भी प्राप्त होते हैं।

प्रभुदयाल मीतल ने हरिराय के पदों का सम्पादन 'हरिराय जी का पद साहित्य' नाम से किया है[१]। इनमें से कुछ पद राजस्थानी, पंजाबी, गुजराती और संस्कृत में भी हैं। इनमें से अधिकांश पद 'रसिक-प्रीतम', 'रसिक', 'रासिकराय,' 'रसिक-शिरोमणि', रसिकदास', 'हरिदास' आदि छापों से युक्त हैं। कुछ पद छापविहीन भी हैं। विषय और छापक्रमानुकार पदों का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है [२] :—

छाप	पद-संख्या	छाप	पद-संख्या
रसिक प्रीतम	२१६	रसिक	२०६
रसिकराय	२६	रसिक शिरोमणि	१२
रसिकदास	६७	हरिदास	४१
अन्य	१६	छापविहीन	१०
			कुल योग-७००

हरिराय जी के आत्मोल्लेखों से ज्ञात होता है कि 'रसिकराय' और 'रसिक दास' उनकी छाप थी। [३] पदों में प्राप्त विविध छापों के सम्बन्ध में प्रभुदयाल मीतल ने लिखा है कि "सबसे अधिक पद 'रसिक प्रीतम' और 'रसिक छाप' के हैं, जिनकी संख्या क्रमशः ३१६ और २०६ है। 'रसिकदास' छाप के अधि-

---

[१] "हरिराय जी के पदों का यह संग्रह मथुरा संग्रहालय, वृन्दावन के गो० रतनलाल की हरिराय जी के पदों की हस्तलिखित प्रतियों, कीर्तन संग्रह, कीर्तन कुसुमाकर, संगीत रागकल्पद्रुम तथा वल्लभ सम्प्रदायी पद संकलनों, पर आधारित है।"

—हरिरायजी का पद साहित्य, भूमिका, पृ० ६

[२] हरिराय जी का पद साहित्य, भूमिका, पृ० ८

[३] 'रसिकराय' विनती कीन्हीं 'रसिकदास' छाप दीन्हीं,
श्री वल्लभ रटत हिए और पंथ त्यागे।

—हरिराय जी का पद साहित्य, पद सं० ५४८

कांश पद सम्प्रदाय सम्बन्धी हैं और 'हरिदास' छाप के पद अधिकतर गुजराती और संस्कृत भाषाओं के हैं। अन्य छापों के केवल १६ पद हैं। इनमें ४ हरि-राध के, ३ हरिजन के, ४ रसनिधि के तथा १-१ प्रीतम और दास छापों के हैं। १० पद बिना नाम के भी हैं। इनमें से पाँच संस्कृत के भी हैं। इस पुस्तक के पदों की सभी नाम छाप गोस्वामी हरिराय जी की हैं। इसका निश्चय हरिराय जी कृत पदों की परम्परागत संकलन पोथियों तथा सम्प्रदाय के प्रामाणिक ग्रन्थों से होता है।"[१] मीतल जी ने केवल 'रसिकदास' की छाप वाले पदों में हरिराय जी के परवर्ती गोपिकालंकार के पदों के मिश्रण की सम्भावना बताई है।

मेरे विचार से गो० हरिराय बल्लभ-सम्प्रदाय के प्रतिष्ठित आचार्य थे। अतएव 'रसिकदास' की छाप से मिलने वाले सम्प्रदाय विषयक अधिकतर पदों के गोस्वामी हरिराय द्वारा विरचित होने की ही अधिक सम्भवना ज्ञात होती है। हरिराय के पद वल्लभ-सम्प्रदाय में अत्यन्त लोकप्रिय हैं। साम्प्रदायिक उत्सवों पर उनके पद गाए जाते हैं। इनके अन्तर्गत कृष्णलीलाओं के स्फुट प्रसंगों की अभिव्यक्ति हुई है।

ब्रजवासीदास

परिचय :– ब्रजवासीदास वल्लभ-सम्प्रदाय के अनुयायी थे। इस सम्प्रदाय में दीक्षित होने के उल्लेख उनकी रचना 'ब्रजविलास' में प्राप्त हैं।[२] इन्होंने वल्लभ सम्प्रदायी मोहन गुसांई को अपना गुरु बताया है।

रचनाएँ :—ब्रजवासीदास की दो कृतियाँ ब्रजविलास और प्रबोधचन्द्रोदय नाटक प्राप्त हैं। इन रचनाओं में ब्रजवासीदास के अनुवादक के व्यक्तित्व का परिचय मिलता है। प्रस्तुत अध्ययन में केवल ब्रजविलास को ही कृष्णपरक होने के कारण सम्मिलित किया गया है।

---

[१] हरिराय जी का पद साहित्य, भूमिका पृ० ८–९

[२] पुनि बल्लभ कुलहिं मनाऊँ, चरण कमल तिनके शिर नाऊँ।
मन वच क्रम सों चित, श्री बल्लभचरण लग्यों ॥

—ब्रजविलास, पृ० १०

ब्रजविलास :—यह संवत् १८२७ की रचना है।[1] ब्रजविलास में कृष्ण के मथुरा प्रवास तथा उद्धव के ब्रज आगमन तक की कथा प्रबन्धात्मक शैली में वर्णित हुई है। कवि के आत्मोल्लेख से ज्ञात होता है कि ब्रजविलास में ८८९ दोहों, इतने ही सोरठों, १०१६ से अधिक चौपाइयों तथा १०६ छन्दों का प्रयोग हुआ है।[2] ब्रजवासीदास के उल्लेख से ज्ञात होता है कि ब्रजविलास में उन्होंने सूरसागर की कृष्णकथा का रूपान्तर किया है। "यामे कछुक बुद्धि नहि मेरी। उक्ति-युक्ति सब सूरहि केरी।" किन्तु अनेक स्थलों पर उन्होंने भागवत से भी अपना सीधा सम्बन्ध स्थापित किया है, जिसका निर्देश आगे कृष्णकथा के विवेचन के अन्तर्गत किया गया है। कृष्णकाव्य की परम्परा में प्रबन्धकार के रूप में ब्रजवासीदास का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

नागरीदास

नागरीदास नामधारी विविध कवि :—नागरीदास नाम माधुर्य भक्ति की अधिष्ठात्री वृन्दावनेश्वरी राधा के प्रति भक्तिभाव की अनन्यता का व्यंजक होने के कारण इतना लोकप्रिय हुआ कि कृष्णभक्तों में नागरीदास नाम रखने की एक परम्परा ही प्राप्त होती है। यद्यपि कृष्णगढ़ नरेश सावंतसिंह उपनाम 'नागरीदास' के व्यक्तित्व और कृतित्व विषयक इतने तथ्य प्रकाश में आ चुके हैं कि उनके सम्बन्ध में भ्रम के लिए कोई स्थान नहीं है, तथापि नागरीदास नामधारी अन्य भक्त कवियों पर संक्षेप में विचार कर लेना उचित प्रतीत होता है। मध्ययुगीन कृष्णभक्त कवियों में इस नाम के चार भक्त कवियों का उल्लेख मिलता है। विवेच्य नागरीदास ने अपनी 'पद प्रबोध' (सं० १८०५) नामक रचना में अपने पूर्ववर्ती दो नागरीदास भक्त कवियों का संकेत किया है।[3] इनमें से प्रथम राधावल्लभीय नागरीदास हैं और दूसरे हरिदासी सम्प्रदाय के आचार्य नागरीदेव हैं, जो नागरीदास के नाम से अपेक्षाकृत अधिक विख्यात हैं।

---

[1] संवत शुभ पुराण सत जानौं। तापर अभैर नक्षत्रन आनौं॥

—ब्रजविलास, पृ० ९

[2] ब्रजविलास, पृ० ५२७

[3] तुलसी मीरा माधव अरु उभै नागरीदास।
आस करन नरसी, वृन्दावन रुचि माधुरी सुखदास॥

—पदप्रबोध माला, पद सं० १

नेही नागरीदास :—इनका समय विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी का मध्य भाग है। इन नागरीदास कृत राधाष्टक, सिद्धान्त दोहावली, पदावली और रस पदावली नामक चार रचनाएँ प्राप्त हैं।[१]

हरिदासी नागरीदास :—हरिदासी सम्प्रदाय के टट्टी-स्थान के अष्टाचार्यों की परम्परा में तीसरे आचार्य थे।[२] इनका वास्तविक नाम नागरीदेव था तथा आविर्भाव काल संवत् १६५६ से १६७० था। ये विहारिन देव (संवत् १६३२–१६५६) के शिष्य थे। नाभादास कृत भक्तमाल[३] और ध्रुवदास जी की भक्त नामावली[४] में भी इनका उल्लेख मिलता है। इनकी 'नागरीदास की बानी' और 'स्वामी हरिदास जी कौ मंगल' नामक दो रचनाएँ प्राप्त होती हैं।[५] नागरीदास के पदों में 'नवल नागरीदास' और 'नव नागरीदास' की छापों के सम्बन्ध में डॉ० किशोरीलाल गुप्त का अनुमान है कि उन्होंने राधावल्लभी नेही नागरीदास से अपने नाम के पार्थक्य निदर्शन हेतु ऐसा किया है। 'नागर-सामुच्चय' में 'नवल नागरीदास' की छाप वाले पदों के सम्बन्ध में उन्होंने अनुमान किया है कि ये पद कदाचित् नागरीदास के हैं।[६] दोनों कवियों की समसामयिकता से इस सम्भावना की पुष्टि तो अवश्य होती है, परन्तु जब तक 'नागर-समुच्चय' का वैज्ञानिक सम्पादन नहीं हो जाता तब तक इस सम्बन्ध में कुछ भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

---

[१] राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य, पृ० ४७६-७७

[२] निम्बार्क-माधुरी, पृ० २६७

[३] श्री नागरीदास भीज्यौ हियो, कुंजविहारी सर गंभीर।
अनन्य नृपति श्री हरिदास कुल भयो धुरंधर धर्मवीर॥

—भक्तमाल सटीक

[४] कहा कहौं मृदुल स्वभाव अलि, सरस नागरीदास।
श्री विहारी विहारिन कौ सुजस गायौ हरि हुलास॥

—भक्तनामावली

[५] नागरी प्रचारिणी सभा : खोज रिपोर्ट, सन् १९०५ ; सं० ३१, १९२३, सं० २९१, ४०

[६] हरिऔध, पृ० ४३ और अप्रैल १९५८

विप्र नागरीदास :—ये चरणदासी सम्प्रदाय के प्रवर्तक चरणदास के शिष्य थे। इनका समय विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य सम्भावित है।[१] विप्र नगरीदास के नाम से भागवत के भाषानुवाद का उल्लेख मिलता है।[२] ये राजगढ़ के राजा राव प्रतापसिंह के दीवान छाजू के आश्रित थे तथा उन्हीं के लिए उन्होंने भागवत का अनुवाद किया था। चरणदास के बावन प्रख्यात शिष्यों में विप्र नागरीदास का भी नामोल्लेख हुआ है।[३]

नागरीदास (सावंतसिंह) :—कृष्णगढ के संस्थापक नागरीदास के पूर्वज कृष्णसिंह थे। नागरीदास के पिता राजसिंह, पितामह मानसिंह और प्रपितामह रूपसिंह थे। नागरीदास का जन्म संवत् १७५६ में हुआ था। किन्तु भ्रमवश शिवसिंह[४] और ग्रियर्सन[५] ने इनका जन्म-सवत् १६४८ बताया है। नागरीदास के पिता राजसिंह का जन्म संवत् १७३१ और उनका राज्यकाल संवत् १७६३ से १८०५ तक माना गया है। राजसिंह का प्रथम विवाह चतुर कुमारी से संवत् १७५० में हुआ था। उनसे संवत् १७५१ में सुखसिंह, संवत् १७५३ में फतहसिंह, संवत् १७५६ में सावंतसिंह और संवत् १७६८ में बहादुर सिंह नाम के चार पुत्र उत्पन्न हुए। नागरीदास के सर्वप्रथम प्राप्त ग्रन्थ 'मनोरथ मंजरी' का रचनाकाल संवत् १७८० है।[६] अतएव उनका जन्म संवत् १७५६ मानना तर्कसंगत प्रतीत होता है। ब्रह्मचारी

---

१ भारतीय साहित्य ; चरणदासी सम्प्रदाय का अज्ञात हिन्दी-साहित्य : मुनिकांत सागर, जनवरी १९५६

२ ना० प्र० सभा : खोज रिपोर्ट, सन् १९१७ (सं० ११८ और १९२९। सं० २४१)

३ भारतीय साहित्य; चरणदासी सम्प्रदाय का अज्ञात हिन्दी साहित्य : मुनिकांत सागर, जनवरी १९५६

४ शिवसिंह सरोज, पृ० १७२

५ माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान, पृ० ३३

६ संवत् सत्तरा सौ असी चौदह मंगलवार।
प्रगट मनोरथ मंजरी वहि आसु अवतार ॥ —मनोरथमंजरी

बिहारीशरण[१], मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या[२], रामचन्द्र शुक्ल[३] आदि ने नागरीदास का यही जन्म संवत् माना है।

नागरीदास का विवाह २१ वर्ष की अवस्था में मनगढ़ के राजा यशवन्त-सिंह की कन्या से संवत् १७७७ में हुआ था। नागरीदास की वीरता और शौर्य की अनेक कथाएँ प्राप्त होती हैं। संवत् १७६६ में १० वर्ष की अवस्था में इन्होंने अपने कृपाण के प्रहार से एक हाथी को पछाड़ दिया था। संवत् १७६९ में १३ वर्ष की अल्प आयु में बूंदी के हाड़ा जैतसिंह को मारा था। संवत १७७४ में जब ये १८ वर्ष के थे तो इन्होंने भरतपुर के जाट राजा बदनसिंह से थूण की सत्ता दिल्ली के तत्कालीन शासक फरुखसियर के लिए प्राप्त की थी। संवत् १७८६ में नागरीदास ने २० वर्ष की अवस्था में सिंह का शिकार किया था। संवत् १७९३ में इनके कर न देने पर मराठा सरदार भल्लाराव से इनका युद्ध हुआ था।

महाराजा राजसिंह की मृत्यु के अनन्तर सावंतसिंह को किशनगढ़ का राज्य प्राप्त करने में संघर्ष करना पड़ा। पिता के देहावसान के समय इनके ज्येष्ठ भ्राता सुखसिंह ने राज्य-लिप्सा त्याग कर साधु वृत्ति ग्रहण कर ली, दूसरे भाई फतेहसिंह का देहान्त पिता के जीवन-काल में ही हो गया था। अतः किशनगढ़ राज्य के वास्तविक अधिकारी सावंतसिंह ही ठहरते थे। राज-सिंह की मृत्यु के समय सावंतसिंह सपरिवार दिल्ली में थे। इनकी प्रेरणा से तत्कालीन मुगल शासक अहमदशाह ने इन्हें राज्य का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। किन्तु सावंतसिंह के किशनगढ़ पहुँचने के पूर्व ही इनका छोटा भाई बहादुर सिंह अपने को किशनगढ़ का शासक घोषित कर चुका था। सावंतसिंह को राज्य पर अधिकार करने के लिए भीषण संघर्ष करना पड़ा। फिर भी उन्हें सफलता नहीं मिली। इस काल में मरहठों से सहायता प्राप्त करते के उद्देश्य से दक्षिण जाते समय इन्होंने कुछ समय के लिए वृन्दावनवास किया। वृन्दावन में हरिदास नाम के किसी वैष्णव के परामर्श पर वे भगवत्-भक्ति की ओर उन्मुख हुए। सावंतसिंह तो वृन्दावन में ही रुक गए तथा अपने पुत्र सरदारसिंह को कुछ सेना के साथ बहादुर सिंह से संघर्ष के लिए भेजा। अन्ततः सरदारसिंह को आधा राज्य

[१] निम्बार्क-माधुरी, पृ० ६१४

[२] एण्टीक्वेरी आव दि पोएट नागरीदास—रायल एशियाटिक सोसाइटी जर्नल

[३] हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३४६

मिल गया। नागरीदास ने वृन्दावन से आकर आश्विन सुदी १० सवंत् १८१४ के दिन सरदारसिंह का राज्याभिषेक किया।[1] इसके उपरान्त वे पुनः वृन्दावन चले आए और राधा-कृष्ण की उपासना में लीन रहने लगे। उन्होंने अपना नाम बदल कर नागरीदास रख लिया।

ऐसा प्रसिद्ध है कि एक बार वृन्दावन से कृष्णगढ़ आते हुए एक दिन के लिए नागरीदास जयपुर में ठहरे थे। उस समय के जयपुर नरेश सँवाई माधोसिंह इनसे मिलने आए और उन्होंने बहुत से प्रश्न पूछे। भक्तनिष्ठ नागरीदास ने उनके प्रश्नों का उत्तर प्रस्तुत सवैया में दिया:—

जाति के हैं हम तौ ब्रजवासी जू ना रही औरहु जाति की बाधा।
देश है घोष नै चाहत मोख को तीरथ श्रो जमुना सुख साधा॥
संतन को संत-संग आजीविका कुंजविहार अहार अगाधा।
नागर के कुलदेव गोवर्धन मोहन मंत्र अरु इष्ट हैं राधा॥[2]

नागरीदास का किशनगढ़ राज्य से सम्बन्ध तो अंत तक बना रहा, किन्तु ब्रजभूमि के प्रति अनन्य निष्ठा होने के कारण वे आजन्म वहीं के होकर रहे। मुंशी देवीप्रसाद ने नागरीदास के सवंत् १८१८ में अन्तिम बार किशनगढ़ आने का उल्लेख किया है, किन्तु यहाँ उनका मन नहीं लगा और पुनः आजीवन ब्रजवास के उद्देश्य से लौट गए।

वृन्दावन में नागरीदास के साथ उनकी उपपत्नी बनीठनी जी भी रहती थीं। उनके पद 'रसिकविहारी' को छाप से मिलते हैं। नागरीदास का व्यक्तित्व अत्यन्त उदार और प्रभावशाली था। उनके आश्रय में बहुत से कवि रहते थे, जिनमें वल्लभ जी, हरिचरणदास, हीरालाल, मनीराम, पन्नालाल और विजयराम के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। रससिद्ध कवि घनानन्द नागरीदास के परम मित्रों में से थे।

नगरीदास का देहावसान संवत् १८२१ में वृन्दावन स्थित किशनगढ़ राज्य की कुञ्ज में हुआ। यह स्थान आजकल नागर-कुंज के नाम से विख्यात है।

सम्प्रदाय विषयक विवाद:—नागरीदास वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित थे। परन्तु निम्बार्क-सम्प्रदाय के समर्थक उन्हें अपनी गद्दी का दीक्षित शिष्य बताते

---

[1] राजरसनामृत, पृ० ५७

[2] निम्बार्क-माधुरी, पृ० ६२०

हैं। उनके सम्प्रदाय के प्रश्न को लेकर दोनों में काफी विवाद रहा है। इस विषय में किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने के पूर्व दोनों पक्षों द्वारा दिए गए तथ्यों से अवगत हो लेना आवश्यक है।

वल्लभ-सम्प्रदाय के पक्ष का विवेचन :—हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों तथा नागरीदास की जीवनी और कृतियों के अधिकांश अध्येताओं ने उन्हें वल्लभ सम्प्रदायानुयायी बताया है। नागर-समुच्चय की भूमिका में श्री राधाकृष्णदास ने उन्हें वल्लभ-कुल से सम्बद्ध माना है।[१] राधाकृष्णदास के कथन का आधार कृष्णगढ़ राज्य के इतिहास लेखक कवीश्वर जयलाल का उल्लेख है। ये राधाकृष्णदास के समसामयिक एवं नागर समुच्चय के संशोधक थे। इनके अनुसार कृष्णगढ़ के संस्थापक महाराज कृष्णसिंह अपने मामा और वल्लभाचार्य जी की शिष्य परम्परा के नरवरगढ़ नरेश महाराज आसाकरण सिंह कछवाहा के सहयोग से वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने इस विषय में केवल इतना ही लिखा है कि, 'वृन्दावन में उस समय वल्लभाचार्य की पाँचवीं पीढ़ी थी।[२] वियोगी हरि ने नागरीदास के सम्प्रदाय की चर्चा करते हुए लिखा है कि "नागरीदास वल्लभ-कुल के गोस्वामी रणछोड़ जी के शिष्य थे।' रणछोड़ जी वल्लाचार्य की पाँचवीं पीढ़ी में आते हैं। श्री आचार्य जी के पुत्र गोस्वामी विट्ठल जी, तिनके श्री गिरधर जी टीकैत, तिनके श्री गोपीनाथ जी और तिनके रणछोड़ जी थे। यह गद्दी कोटा की हैं। नागरीदास के सेव्य ठाकुर श्री कल्याणराय जी थे, पर बाहर साथ में श्री नृत्यगोपाल का स्वरूप रखते थे। आज भी कृष्णगढ़ में श्री कल्याणराय और श्री नृत्यगोपाल के विग्रह विराजमान हैं। नागरीदास का भक्तिभाव आज भी वहाँ कुछ-कुछ झलकता है"।[३] 'नागरीदास के विशेषज्ञ डॉ० फैयाजअली ने भी उनके सम्प्रदाय का विवेचन करते हुए उन्हें परम पुष्टिमार्गीय बताया है।[४] वृन्दावन के नागर-कुञ्ज में स्थित नागरीदास की समाधि पर अंकित लेख से उनका वल्लभ सम्प्रदायानुयायी होना सिद्ध होता है।[५]

---

१ नागर-समुच्चय, भूमिका, पृ० ११

२ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३४७

३ व्रजमाधुरीसार, पृ० १८७

४ भक्तप्रवर नागरीदास: उनके काव्य विकास से सम्बन्धित प्रभावों और प्रतिक्रियाओं का एक अध्ययन (अप्रकाशित), पृ० ११६

५ श्री राधाकृष्ण गोवर्धनधारी। वृन्दावन यमुना तट चारी।
ललितादिक वल्लभ विठलेश। मोहन करो कृपा आवेस॥

नागरीदास के आत्मोल्लेखों में उनका वल्लभ-सम्प्रदाय तथा उसके आचार्यों के प्रति अनन्य भाव अभिव्यक्त हुआ है । महाप्रभु वल्लभाचार्य और गोस्वामी विट्ठलदास की स्तुति में उनके द्वारा रचे गये बधाई के पद मिलते हैं। इस प्रकार के कुछ अंश नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं :—

१—नागरीदास न और कुछ त्रिविध ताप सीतल करन ।
परहित बल्लभ पदन तिहि सरन मंत्र की हौं सरन ।।

—उत्सव माला, पद सं० २३१

२—धन श्री बल्लभ विदित धन्य धनि कुंवर बिभूषन ।
बिट्ठलेस सुत सात धन्य हरि अंस बंस धन ।।

—बैराग्यवल्ली छप्पय २

३—श्री वल्लभकुल बंदौं । करि ध्यान परम अनन्दौं ।

—व्रजलीला, पद सं० १

४—वेइ नन्द बल्लभ सुत भए हैं प्रगति बल्लभ,
गृह सोभित दुज कुल ललाम धाम ब्रजविहारी ।।
× × ×
वेई दास नागर के प्रेरक मन सु वेई,
विट्ठलेस वेइ गोवर्द्धन धारी ।।

—पद सागर, पद सं० ७

निम्बार्क-सम्प्रदाय के पक्ष का विवेचन :—नागरीदास को निम्बार्क सम्प्रदाय से सम्बद्ध करने का सर्वप्रथम प्रयास ब्रह्मचारी विहारीशरण ने किया। उनके अनुसार नागरीदास ने बाल्यावस्था में भले ही वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षा ली हो, किन्तु वृन्दावन प्रवास की कामना के उदय होने पर वे निम्बार्क

शेष :—

सुत कौ दै युवराजपद आप वृन्दावन आये ।
रूपनगर पति भक्ति वृन्द बहु लाड़ लड़ाये ।
सूरवीर गंभीर रसिक रिझवार अमानी ।
सन्त चरनामृत नेत्र उदधि लौं गावैं बानी ।
नागरीदास विदित सौ कृपा टार नागर ढरिय ।
सावंत सिंह नृप कलि विषै सत त्रेता विधि आचरिय ।।

—नागरकुन्ज वृन्दावन के प्रकीर्ण लेख की प्रतिलिपि

इसमें चौपाई के प्रथम चार चरण नागर समुच्चय में 'महाप्रभु जू कौ उत्सव' के अन्तर्गत रचित पद सं० १ से उद्धृत हैं। अतएव इन पंक्तियों को नागरीदास का आत्मोल्लेख कहा जायगा।

सम्प्रदाय की सलेमाबाद की गद्दी के आचार्य गोविन्ददेव के शिष्य हो गये। इसके उपरान्त ब्रजवल्लभशरण वेदान्ताचार्य[1] और डॉ० नारायणदत्त शर्मा[2] ने नागरीदास को निम्बार्कीय सिद्ध करने के प्रयोजन से बाह्य साक्ष्य पर आधारित निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए हैं :—

१—नागरीदास के पूर्वजों और समसामयिकों में से किसी के वल्लभ-सम्प्रदाय के अनुयायी होने का प्रमाण नहीं मिलता। उनके पिता राजसिंह और माता दोनों ही निम्बार्क-सम्प्रदाय में दीक्षित थे।

२—निम्बार्क-सम्प्रदाय के आचार्यों के किशनगढ़ राज्य से बढ़ते हुए सम्बन्ध से वल्लभ-सम्प्रदाय के गोस्वामियों को ईर्ष्या हुई। अतएव उन्होंने गुप्तचरों से काम लेना प्रारम्भ कर दिया। ऐसे गुप्तचरों का उल्लेख कवीश्वर जयलाल ने किया है। इसी ईर्ष्या के कारण किशनगढ़ राज्य में संवत् १७९७–९८ के विवरण के अन्तर्गत अग्रिम उल्लेख ने किसी प्रकार स्थान प्राप्त कर लिया :—

"श्री जी गोसाईं जी श्री रणछोड़लाल जी श्री साहिबा का दिखा गुरु नाव सुनायो।"

इस उल्लेख से स्पष्ट नहीं होता कि किसको मंत्र उपदिष्ट कर वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित किया गया? यदि राजसिंह अथवा नागरीदास को उस समय मन्त्र उपदिष्ट किया गया होता तो सुन्दर कुंवरि को केवल पाँच वर्ष की अवस्था में वृन्दावनदेव से दीक्षा दिलाने की क्या आवश्यकता थी?

३—नागर-समुच्चय के एक पद के प्रथम चरण 'श्री बल्लभकुल बंदौं' में 'बल्लभ' शब्द 'बल्लव' का प्रक्षिप्त रूप है। नागर-समुच्चय की किशनगढ़ के सरस्वती भवन की प्रति में 'बल्लव' शब्द ही प्रयुक्त हुआ है।

४—किशनगढ़ राज्य की पुरातत्त्व सामग्री में नागरीदास के नाम की तीन मुद्राएँ मिलती हैं। इनमें से प्रथम मुद्रा (संवत् १७८५) पर प्रकीर्ण शब्दावली इस प्रकार है :—

श्री मोहन पादाब्ज, भृङ्ग भक्ति मतः शुभाः।
राजसिंह कुमारस्य, सामन्त सिंहस्य मुद्रिका॥

---

[1] **सर्वेश्वर, वर्ष ३ अंक १ और २, ब्रजवल्लभशरण का नागरीदास विषयक लेख**

[2] **निम्बार्क-सम्प्रदाय के हिन्दी कवि (अप्रकाशित), पृ० ४२**

दूसरी मुद्रिका पर अंकित व्रजभाषा शब्दावली उनके वल्लभ-कुल में दीक्षित होने का संकेत करती है :—

श्री नगेन्द्र धर नागर नायक। निज वल्लभ कुल पुष्टि प्रदायक।
तस्य कृपा व्रजधाम उपासी। सावंतेस वृन्दावनवासी॥

तीसरी मुद्रा नागरीदास के सम्प्रदाय की बोधक न होकर उनके मुग़ल शासक बहादुरशाह से घनिष्ट सम्बन्ध की प्रतीक है।

व्रजवल्लभशरण ने इन तीनों में से केवल प्रथम मुद्रा को प्रामाणिक माना है, क्योंकि तत्कालीन लेखों में इसका प्रयोग किया गया है। शेष दो को उन्होंने अप्रामाणिक माना है। अतएव प्रथम मुद्रा के आधार पर निम्बार्क मतानुयायी मोहनदास नागरीदास के गुरु सिद्ध होते हैं।

५—नागर-समुच्चय में प्रकाशित नागरीदास के चित्र में अंकित तिलक इन्हें इसी सम्प्रदाय का सिद्ध करता है।

वस्तुतः नागरीदास की कृतियों के अन्तःसाक्ष्य और किशनगढ़ राज्य की सामग्री से प्राप्त सूचनाओं में परस्पर विरोध इस विवाद के मूल कारण हैं। नागरीदास को निम्बार्कीय सिद्ध करने के उपर्युक्त समस्त तर्क साहित्येत्तर बाह्य साक्ष्यों पर आधारित हैं। अतएव उनकी प्रामाणिकता तर्क से परे नहीं कही जा सकती।

मेरे विचार से निम्नलिखित कारणों से नागरीदास को वल्लभ सम्प्रदायानुयायी मानना उचित प्रतीत होता है :—

(१) नागरीदास का वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षा लेना उनकी स्वतन्त्र मनोवृत्ति का प्रतीक है। नागरीदास की रचनाओं में उनके व्यक्तित्व की स्वच्छन्दता अभिव्यक्त हुई है तथा उनकी अनुभूति का विस्तार अनेक रूपों में देखा जा सकता है।

(२) नागरीदास कृत 'बल्लभ कुल वंदौं' वाले पद[१] में यदि 'बल्लभ' को 'बल्लव' का प्रक्षिप्त रूप मान भी लें, तो भी 'बल्लव' शब्द के अर्थ 'गोप' से उनके वल्लभ सम्प्रदायानुयायी होने के तथ्य की व्यंजना होती है। सख्य (गोप) भाव की भक्ति केवल वल्लभ-सम्प्रदाय की ही विशेषता है। नागर-समुच्चय में सखाभाव के पद उनके वल्लभ सम्प्रदायानुयायी होने के तथ्य की पुष्टि करते हैं।

---

[१] **महाप्रभु जू कौ उत्सव, पद सं० १**

(३) ब्रजवल्लभशरण ने नागरीदास के नाम की जिन मुद्राओं का उल्लेख किया है, उनमें से नागरीदास के वल्लभ-सम्प्रदाय से सम्बन्ध की द्योतक मुद्रा को तत्कालीन लेखों में प्रयुक्त न होने के कारण अप्रामाणिक माना है, जो उचित नहीं प्रतीत होता। इस मुद्रा पर अंकित पंक्तियाँ नागर-समुच्चय के प्रस्तुत पद से उद्धृत की गयी हैं :—

श्री राधा गोवर्द्धन धारी। वृन्दावन यमुना तट चारी ॥
ललितादिक वल्लभ बिट्ठलेस। मो मन करो कृपा आवेस ॥
श्री नगेन्द्र धर नागर नायक। जिन वल्लभ रस पुष्टि प्रदायक।
तस्य कृपा ब्रज भक्त उपासी। सावंतेस वृन्दावन बासी ॥[1]

(४) जिस मुद्रा को ब्रजवल्लभशरण ने प्रामाणिक माना है, उसमें प्रयुक्त 'मोहन' शब्द को गुरु की अपेक्षा कृष्णवाचक मानना अधिक समीचीन प्रतीत होता है। निम्बार्कीय आचार्यों की परम्परा में 'मोहनदेव' नाम के किसी आचार्य का उल्लेख नहीं मिलता। पर उक्त नाम के किसी सामान्य निम्बार्कीय साधु से नागरीदास के दीक्षा लेने की कल्पना भी असंगत ही होगी।

(५) नागर-समुच्चय में संग्रहीत वल्लभ-सम्प्रदाय के अनेक पदकारों के पदों में उनके वल्लभ-सम्प्रदायी होने के तथ्य की पुष्टि होती है। यदि नागरीदास निम्बार्क-सम्प्रदाय में दीक्षित होते, तो नागर-समुच्चय में निम्बार्कीय पदकारों के पदों को प्रचुर संख्या में स्थान मिलता।

रचनाकारों के आत्मोल्लेखों की प्रामाणिकता स्वयं सिद्ध होती है। अतएव साहित्येत्तर बाह्य साक्ष्य की सामग्री की अपेक्षा नागरीदास के सम्प्रदाय

---

१ **भारतेन्दु ने भी उत्तरार्द्ध भक्तमाल में नागरीदास को वल्लभ-सम्प्रदायी मानते हुए लिखा है :—**

'बल्लभ पथहि दृढ़ाइ कृष्णगढ़ राजहि छोड़्यौ।
धन जन मान कुटुम्बहि बाधक लखि सुख मोड़्यौ ॥

× × ×

करि कुटी रमन रेती बसत संपद भक्ति कुबेर भे।
हरि-प्रेम-माल रस जाल के नागरीदास सुमेर भे ॥

—उत्तरार्द्ध भक्तमाल, छन्द १०८

विषयक आत्मोल्लेखों के आधार पर उन्हें वल्लभ-सम्प्रदायी मानना उचित प्रतीत होता है।

रचनाएँ:—नागरीदास की समस्त रचनाओं का संग्रह 'नागर-समुच्चय' के नाम से संवत् १९५५ [सन् १८९८ ई०] में ज्ञानसागर प्रेस, काशी से प्रकाशित हुआ था। नागर-समुच्चय का वर्तमान रूप निर्धारित करने का श्रेय कृष्णगढ़ दरबार के कवि वृन्द के वंशज कवीश्वर जयलाल को है। इस रचना में नागरीदास की प्रेयसी बनीठनी तथा सूरदास, नन्ददास आदि अनेक भक्त पदकारों के भी पद संग्रहीत हैं। इसलिए वर्तमान नागर-समुच्चय को नागरीदास का कृतित्व न कह कर एक संकलन ही मानना उचित होगा। 'नागर-समुच्चय' में संग्रहीत नागरीदास की अधिकांश रचनाएँ नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में निर्दिष्ट हैं।[१] नागरीदास की रचनाओं की विविध प्रतियों के आधार पर उनके वैज्ञानिक सम्पादन की आवश्यकता है। यह कार्य अब नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के द्वारा सम्पन्न हो गया है, परन्तु यह सम्पादन पूर्णतया वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता।[२]

नागर-समुच्चय तीन खण्डों में विभाजित है:—

क— वैराग्य सागर ख—शृंगार सागर ग-- पद सागर

इन तीन खण्डों में संकलित रचनाओं की सूची इस प्रकार है:—

वैराग्य सागार:—

१—भक्तिमग दीपिका	६—अरिल्ल पचीसी	११—मनोरथ मंजरी
२—देहदसा	७—छूटक पद	१२—पद प्रबोधमाला
३—वैराग्यवटी	८—छूटक दोहा	१३—जुगल भक्ति विनोद
४—रसिक रत्नावली	९—तीर्थानन्द	१४—भक्तिसागर और
५—वैराग्यवल्ली	१०—रामचरित्र माला	१५—श्रीमद्भागवत पारायण विधि प्रकार

---

[१] नागरी प्रचारिणी सभा, खोज रिपोर्ट १९०१ सं० ११२ से १३१ तक की रचनाएँ, १९०६ सं० १९८, १९१२ सं० ११८, १९२२ सं ६९, १९२३ सं० २९०

[२] श्री कुंज वृन्दावन से भी 'नागरीदास की वाणी' शीर्षक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है।

श्रृंगार सागर :—

१–ब्रज लीला
२–गोपी-प्रेम प्रकाश
३–पद प्रसंग माला
४–ब्रज बैकुंठ तुला
५–भोर लीला
६–ब्रज सार
७–बिहार चन्द्रिका
८–प्रात रसमंजरी
९–भोजनानंद अष्टक
१०–जुगल रस माधुरी
११–फूल विलास
१२–गोधन आगम
१३–दोहानानंद अष्टक
१४–लगनाष्टक
१५–फाग विलास
१६–ग्रीष्म विहार
१७–पावन पचीसी
१८–गोपी वैन विलास
१९–रास रसलता
२०–नैन रूप रस
२१–सीत सार
२२–इश्क चमन
२३–छूटक दोहा मजलिस-मन्डन
२४–रास अनुक्रम के दोहे
२५–अरिल्लाष्टक
२६–सदा की मांझ
२७–वर्षा ऋतु की मांझ
२८–होरी की मांझ
२९–शरद की मांझ
३०–श्रीठाकुर जी के जन्मोत्सव के कवित्त
३१–श्री ठकुरानी जी के जन्मोत्सव के कवित्त
३२–सांझी के कवित्त
३३–सांझी फूल बीननि समैं संवाद अनुक्रम
३४–रास के कवित्त
३५–चाँदनी के कवित्त
३६–दिवारी के कवित्त
३७–गोवर्धनधारन के कवित्त
३८–होरी के कवित्त
३९–फाग खेलन समै अनुक्रम
४०–वसंत वर्णन के कवित्त
४१–फाग विहार
४२–फाग गोकुलाष्टक
४३–हिंडोरा के कवित्त
४४–वर्षा के कवित्त
४५–छूटक कवित्त
४६–बन विनोद
४७–सुजानानन्द
४८–बाल विनोद
४९–रास अनुक्रम के कवित्त
५०–निकुंज विलास और
५१–गोविन्द परचई

पद सागर :—

१–वन जन प्रशंसा २–पद-मुक्तावली ३–उत्सव-माला

वैराग्य सागर, श्रृगार सागर और पद सागर की उपर्युक्त ६९ रचनाओं के अतिरिक्त नागरीदास-कृत निम्नलिखित ६ रचनाएँ और बताई जाती हैं :—

१–नखशिख २–शिखनख ३–परचरियाँ ४–रेखता ५–बैन-विलास ७–गुप्तरस प्रकाश।

इनमें 'बैन विलास' और 'गुप्तरस प्रकाश' अप्राप्य हैं। नागरीदास की ये रचनाएं स्वतंत्र काव्यग्रन्थ न होकर उनमें वर्णित विविध प्रसंगों के शीर्षक मात्र हैं। सभी कृतियों में रचनाकाल का निर्देश न होने के कारण

उनका रचनाक्रम नहीं निर्धारित किया जा सका है। जिन रचनाओं में रचना-काल निर्दिष्ट है उनकी सूची प्रस्तुत की जा रही है :—

१–गोपी प्रेम प्रकाश (संवत् १८००)
२–ब्रजसार (सं० १७९९)
३-विहार चंद्रिका (सं० १७८८)
४–भक्तिमग-दीपिका (सं० १८०२)
५–तीर्थानन्द (सं० १८१०)
६–फाग विहार (सं० १८०८)
७–वन विनोद (सं० १८०९)
८–सुजानानन्द (सं० १८१०)
९–भक्ति सार (सं० १७९९)
१०–रसिक रत्नावली (सं० १७८२)
११–कलि वैराग्य वल्लरी (सं० १७९५)
१२–पारायण विधि प्रकाश (सं० १७९९)
१३–जुगल भक्ति विनोद (सं० १८०८)
१४–मनोरथ मंजरी (सं० १७८०)
१५–निकुंज विलास (सं० १७९४)
१६–वन जन प्रशंसक (सं० १८१९)

निर्दिष्ट रचनाकाल के अनुसार 'मनोरथ मंजरी' (सं० १७८०) नागरीदास जी की सर्वप्रथम तथा 'वनजन प्रशंसक' (सं० १८१९) अन्तिम रचना सिद्ध होती है। इस प्रकार नागरीदास का रचनाकाल सं० १७८० से १८१९ तक निश्चित होता है।

नागरीदास की रचनाओं में कृष्णलीला के परम्परागत प्रसंगों की ही अभिव्यक्ति हुई है, किन्तु भाषा और शैली की दृष्टि से इन्होंने कृष्ण-काव्य की परम्परा में नवीन प्रयोग किये। ब्रजभाषा के साथ ही नागरीदास ने खड़ी-बोली में भी काव्य रचना की तथा कहीं-कहीं प्रेमाभिव्यक्ति में सूफी प्रेम-भावना एवं फ़ारसी उपमानों का भी आधार लिया है। परम्परा-संवहन के साथ कृष्ण काव्य की परम्परा में नवीन प्रयोगों की दृष्टि से उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु संवत् १९०७ से संवत् १९४१ तक जीवित रहे। भारतेन्दु ने महाप्रभु वल्लभाचार्य और गोस्वामी विट्ठलनाथ की स्तुति में अनेक पदों की रचना की है[१] जिससे वे वल्लभ-सम्प्रदायी सिद्ध होते हैं।

---

[१] क–कहु रे बल्लभ राजकुमार।
दीन उधारन आरति नासन प्रगट कृष्ण अवतार ॥४८॥
जो पौ बल्लभ सुतहि न जान्यौ।
× × ×
हरीचन्द श्री बिट्ठल बिनु सब जगह झूठ कर मान्यौ ॥४९॥
—प्रेम प्रलाप

रचनाएँ :— भारतेन्दु की काव्य-कृतियाँ श्री ब्रजरत्नदास द्वारा सम्पादित भारतेन्दु-ग्रन्थावली, भाग २ में संग्रहीत हैं। प्रस्तुत विवेचन में केवल उनकी कृष्णपरक कृतियों को ही सम्मिलित किया जा रहा है। भारतेन्दु की कृष्णपरक रचनाओं को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—क–सिद्धान्त और स्तोत्र-ग्रन्थ, ख–कृष्ण लीलापरक रचनाएँ और ग–भक्तचरित।

(क) सिद्धान्त और स्तोत्र-ग्रन्थ : — इस वर्ग में भक्त सर्वस्व, वैशाख महात्म्य, प्रेमसरोवर, प्रातः स्मरण मंगलपाठ, श्री सर्वोत्तम स्तोत्र, निवेदन पंचक, प्रातः स्मरणस्तोत्र, श्रीनाथ स्तुति, स्वरूपचिन्तन, अपवर्गदाष्टक, अपवर्ग पंचक और पुरुषोत्तम पंचक नामक कृतियाँ आती हैं। इन रचनाओं में साम्प्रदायिक सिद्धान्त एवं स्तुति कथन की प्रवृत्ति पल्लवित हुई है।

(ख) कृष्ण लीलापरक :— इस वर्ग में प्रेममालिका, प्रेम सरोवर, प्रेमाश्रु-वर्णन, प्रेममाधुरी, प्रेम तरंग, प्रेम प्रलाप, गीत गोविन्दानन्द, सतसई शृङ्गार, होली, मधु-मुकुल, रागसंग्रह, वर्षा विनोद, प्रेम फुलवारी, कृष्णचरित, देवी छद्मलीला, तन्मयलीला, दानलीला, रानी छद्मलीला, वेणुगीत, मानलीला, फूल बुझौवल और स्फुट कवित्त नामक रचनाएँ आती हैं।

प्रेम मालिका :—(संवत् १९२८)–इसमें १०० पदों में राधाकृष्ण के रूप, सौन्दर्य और लीलाओं का चित्रण किया गया है।

कार्तिक स्नान :—(संवत् १९२९)–२५ पदों की इस रचना में व्रज की दीपावली का वर्णन किया गया है।

शेष :—

ख–मंगल बल्लभ नाम जगत उधरयौ जेहि गाए।
विष्णुस्वामि पथ परम महामंगल दरसाए ॥१०॥
नाम आनंदनिधि बल्लभाधीश को विट्ठलेश्वर प्रकट करि दिखायौ ॥२७॥

—प्रातःस्मरण मंगल पाठ।

× × ×

श्री वल्लभ सुमिरौ अरु श्रीगोपीनाथ पियारे।
श्री बिट्ठल पुरुषोत्तम जगहित नर वपु धारे॥

× × ×

श्री बल्लभकुल को ध्यान मन कबहूँ नाहि बिसारिए।

—प्रातःस्मरण स्तोत्र, पद सं० ११

प्रेमाश्रु वर्णन :—(संवत् १९३०)–४५ पदों और छंदों की इस कृति में राधाकृष्ण के वर्षा ऋतु में हिंडोला झूलने का वर्णन किया गया है।

प्रेम माधुरी :—(संवत् १९३२)–इस रचना में १३१ पदों में कृष्ण के मथुरा प्रयाण से गोपियों को जो विरहानुभूति हुई थी उसका वर्णन प्रस्तुत करना रचना का प्रतिपाद्य है।

प्रेम तरंग :—(संवत् १९३४)–पद, छन्द, रेखता, गज़ल आदि शैलियों में रची गई इस रचना के अन्तर्गत राधा और गोपियों का कृष्ण-वियोग वर्णित हुआ है।

प्रेम प्रलाप :—(संवत् १९३४)–७६ पदों और छन्दों की इस रचना में आत्मपरक शैली में राधाकृष्ण और वल्लभ-सम्प्रदाय के आचार्यों के प्रति प्रेम भाव वर्णित हुआ है।

गीतगोविन्दानन्द :—(संवत् १९३५)–यह रचना जयदेव के गीतगोविन्द का अनुवाद है।

सतसई सिंगार :—(संवत् १९३५)–बिहारी के भक्ति और शृंगार विषयक ८५ दोहों की टीका है।

होली :—(सं० १९३५)–७९ पदों की इस रचना में राधाकृष्ण की फाग-क्रीड़ा का वर्णन हुआ है।

मधु मुकुल :—(सं० १९३७)–इस रचना में ८१ दोहों में राधा-कृष्ण की फाग-क्रीड़ा का चित्रण किया गया है।

राग संग्रह :—(सं० १९३७)–विविध राग-रागनियों में रचित १३१ पदों के अन्तर्गत राधाकृष्ण की प्रेम-क्रीड़ाओं और वल्लभ सम्प्रदायी आचार्यों का माहात्म्य वर्णित हुआ है।

वर्षा विनोद :—(सं० १९३७)–इस रचना में १३० पदों और लोकगीतों के अन्तर्गत वर्षाऋतु का उल्लास तथा राधा और गोपियों का कृष्ण वियोग वर्णित है।

विनय प्रेम पचासा :—(सं० १९३८)–५० पदों और गज़लों की इस रचना में कवि की राधाकृष्ण के प्रति दैन्यानुभूति अभिव्यक्त हुई है।

प्रेम फुलवारी :—(सं० १९४०)–इस रचना में ९३ पदों के अन्तर्गत राधा-कृष्ण के प्रति प्रेमानुभूति वर्णित हुई है।

कृष्णचरित :—(सं० १९४०)–इस रचना में कुल ५१ पद हैं जिनके अन्तर्गत राधाकृष्ण की प्रेम-लीलाओं का वर्णन हुआ है।

देवी छद्म लीला : -(सं० १६३०)-अट्ठारह पदों की इस रचना में राधा का सखियों सहित देवी का छद्मवेश धारण करना वर्णित हुआ है।

तन्मय लीला :—(सं० १६३०)-केवल ७ पदों की इस रचना में राधा-कृष्ण के परस्पर अनुराग का चित्रण हुआ है।

दान लीला :—(सं० १६३०)-यह वस्तुतः एक लम्बा पद है, जिसमें दान लीला की घटना वर्णित हुई है।

रानी छद्म लीला :—इस वर्णनात्मक रचना में राधा का गोपियों सहित रानी का छद्मवेश धारण करना वर्णित है।

वेणु गीत : -(सं० १६३४)-इसमें मुरली विषयक १५ पद संकलित हैं।

मान लीला फूल बुझौवल :— सं० १६३६)-एक पहेली के माध्यम से राधा के मान धारण करने का ३१ दोहों में वर्णन हुआ है।

स्फुट कविताएँ :—इनका कोई निश्चित रचना काल नहीं ज्ञात होता। इस शीर्षक की रचना में छन्दों और पदों में राधाकृष्ण की विविध लीलाओं और कवि के आत्मनिवेदन का चित्रण हुआ है।

(ग) भक्त चरित :—उत्तरार्द्ध भक्तमाल मे भक्तमालों की परम्परागत प्रशंसात्मक पद्धति के अनुकरण पर कुल १६६ दोहों और छप्पय छन्दों के अन्तर्गत विविध वैष्णव भक्ति सम्प्रदायों और भक्तों का चरित वर्णित हुआ है।

भारतेन्दु की कृष्णपरक रचनाओं में भक्तिकालीन कृष्णकाव्य की वर्ण्य-वस्तु एवं शैली के प्रति विशेष आकर्षण दिखाई पड़ता है, किन्तु रीति-परम्परा के प्रभाव का भी वे सर्वथा परित्याग नहीं कर सके हैं। इसके अतिरिक्त भाषा, शैली और छन्द प्रयोग के क्षेत्र में भी उन्होंने अनेक नवीन प्रयोग किये, जो यथास्थान विवेचित हुए हैं। वे वल्लभ-सम्प्रदाय के अंतिम प्रतिष्ठित कवि हैं।

चैतन्य-सम्प्रदाय

व्रजप्रदेश चैतन्य सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र रहा है। अभी तक ऐसा विश्वास था कि चैतन्य मत का व्रजभाषा साहित्य परिमाण में बहुत कम है। किन्तु आलोच्य युग में अनेक गौड़ीय कवियों और उनकी कृतियों के उल्लेख

मिलते हैं। परिमाण की दृष्टि से राधावल्लभ-सम्प्रदाय के उपरान्त चैतन्य-सम्प्रदाय के साहित्य का स्थान आता है। प्रस्तुत अध्ययन में चैतन्यमत के निम्नलिखित कवियों को सम्मिलित किया गया है—

मनोहरराय	गौरगणदास
प्रियादास	ललित सखी
वृन्दावनचन्द्र	दक्ष सखी
वृन्दावनदास	रामहरि
वैष्णवदास रसजानि	ललित किशोरी
सुबल स्याम	

मनोहरराय

मनोहर नामधारी विविध कवि :—मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में मनोहर नाम के कई कवियों का उल्लेख मिलता है। यद्यपि चैतन्य मतानुयायी 'मनोहर-राय' अन्य सभी मनोहर नामधारी कवियों से प्रियादास प्रदत्त 'राय' उपाधि के कारण सहज ही पृथक् हो जाते हैं, तथापि मिश्रबन्धुओं ने इन्हें और जैन मतानुयायी मनोहर कवि को भ्रांतिवश एक ही समझ कर त्रुटिपूर्ण सूचनाएँ दी हैं। अतएव मध्ययुग के मनोहर नामधारी कवियों पर संक्षेप में विचार कर लेना उपयुक्त प्रतीत होता है।

(१) प्रथम मनोहरदास मालवा निवासी हैं। इन्होंने संवत् १७०० के लगभग 'अवध-विलास' नामक ग्रन्थ की रचना की थी।[२]

(२) दूसरे मनोहर दास निरंजनी हैं। ये निरंजनी सम्प्रदाय के सन्त थे। इनका समय संवत् १७१७ के लगभग बताया जाता है। इनके द्वारा रचित षट्प्रश्नी, शत प्रश्नोत्तरी, ज्ञानमंजरी, वेदान्त परिभाषा और ज्ञानवचन चूर्णिका नामक पाँच रचनाएँ प्राप्त होती हैं।[३]

---

[१] नाम (६११) मनोहर। कविताकाल—सं० १७५७ (द्वि०त्रै०रि०) ग्रन्थ—१ राधारमण रससागर, २—नामलीला पृ० ३८, ३—धर्मपरीक्षा। मिश्रबन्धु विनोद, भाग २, पृ० ४६६

[२] खोज रिपोर्ट, नागरी प्रचारिणी सभा, सन् १९०९—११

[३] वही, सन् १९०३

(३) तीसरे मनोहर लाल खण्डेलवाल हैं, जो संवत् १७१७ के लगभग विद्यमान थे। ये जैन मतानुयायी सांगानेर निवासी थे। इनका जैन मत सम्बन्धी 'धर्म परीक्षा' नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध है।[१]

(४) चौथे मनोहरदास संवत् १८५७ के आस-पास हुए थे। ये सेवक जाति के चारण तथा जोधपुर के नरेश महाराज मानसिंह के आश्रित थे। इनको गुरु आयसु लाड़लूनाथ ने एक लाख रुपया दिया था तथा एक ग्राम मानसिंह की ओर से पुरस्कार स्वरूप मिला था। इनके 'जस आभूषण-भाषा-चन्द्रिका' और 'फूल चरित्र' दो ग्रन्थ मिलते हैं।[२]

(५) पाँचवें एक कबीरपंथी मनोहरदास का भी उल्लेख मिलता है। इनके रेखते और झूलने हस्तलिखित प्रतियों में पाये जाते हैं।[३]

(६) छठवें चैतन्य मतानुयायी विवेच्य मनोहरराय हैं। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट की सूचना के अनुसार ये संवत् १७५७ के लगभग विद्यमान थे।[४] इन्होंने राधारमण रससागर की रचना की। शिवसिंह सरोज में इनका जन्म संवत् १७८० दिया गया है, जो अशुद्ध है। ग्रियर्सन ने भी इसी संवत् की पुनरावृत्ति की हैं।

---

[१] खोज रिपोर्ट, नागरीप्रचारिणी सभा, सन् १९०२। सं० १३ तथा उसके निर्देश

[२] वही

[३] कबीर–ग्रन्थावली, भूमिका (हिन्दी परिषद संस्करण), पृ० ४३०

[४] "Manohar wrote the Radharaman Ras Sagar Lila dealing with pleasures of Krishna in Samvat 1757 (1700 A. D.). Shiva Singh says that the poet was born in Samvat 1780 (1723 A. D.), which date is accordingly reported by Grierson also, but in view of the above authentic date 1700 A.D. as that of the composition of work, this unverified alleged date of the poet must be rejected. No other poet of this name flourished about this time."

–Search report, N.P. Sabha, 1909-11, No. 192

मनोहरराय का परिचय और रचना-काल :—मनोहरराय के प्रामाणिक जीवनवृत्त और व्यक्तित्व के सम्बन्ध में थोड़ी बहुत जानकारी उनकी रचनाओं के ही द्वारा प्राप्त होती है। वाह्य स्रोतों में मनोहरराय के शिष्य प्रियादास कृत भक्तमाल की टीका से उनके विषय में स्फुट प्रशंसात्मक संकेत प्राप्त होते हैं। मनोहरराय की रचनाओं के अन्तःसाक्ष्य से ज्ञात होता है कि वे चैतन्य मत के गोपाल भट्ट (संवत् १५५७) की परम्परा में रामचरण भट्टराज के शिष्य थे।[१] राधारमण रससागर के अनुसार चैतन्य महाप्रभु के कृपापात्र गोपाल भट्ट के शिष्य श्रीनिवासाचार्य थे और उनके शिष्य रामचरण चक्रवर्ती थे। मनोहरराय के गुरु रामचरन चट्टराज इन्हीं रामचरण चक्रवर्ती के शिष्य थे। मनोहरराय की एक अन्य रचना 'सम्प्रदायबोधिनी' से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है।[२] अन्तःसाक्ष्य से इसके अतिरिक्त मनोहरराय की जीवनी विषयक अन्य तथ्य प्राप्त नहीं होते। सामग्री के अभाव में उनके समुचित जन्म और देहावसान संवतों का भी निर्धारण नहीं हो सका है।

मनोहरराय की कृतियों में निर्दिष्ट रचनाकाल से उनके समय निर्धारण में कुछ सहायता मिलती है। उनके द्वारा रचित 'सम्प्रदायबोधिनी' तथा 'राधा-रमण रससागर' के रचनाकाल क्रमशः संवत् १७०७[३] और संवत् १७५७[४] हैं। संवत् १७६९ में रचित भक्तमाल की टीका में प्रियादास ने उसे अपने गुरु

---

[१] श्री चैतन्य कृपाल कृपा करि भट्ट गोपालौ।
तिन श्रीनिवासाचार्य वर्य, करुणा को आलै।
रामचरन तिन कृपा, चक्रवर्ती विख्याता।
रामसरन भट्टराज कृपा तिन सारहि ज्ञाता॥
सुद्ध-भक्ति रस राग तिन करुना कर दीक्षा दई।
दास मनोहर नित्य गुरु पद फूली सिर पर लई॥

—राधारमण रससागर, छ० सं० २

[२] चट्टराज कुल कमल रवि, छवि कवि परम उदार।
रामशरण गुरु चरण पर मनोहर प्रान अधार॥

—सम्प्रदायबोधिनी, दो० १

[३] सम्प्रदाय-बोधिनी, पृ० १२

[४] संवत् सत्रह सौ सत्तावन जानि कै।
सावन बदि पंचमी महोत्सव मानि कै।
निरखि श्री राधारमण लड़ैती लाल कौ।
'मनोहर' संपूरन बनराज बिचार्यौ ख्याल कौ॥

—राधारमण रससागर, सं० ११३

मनोहर की प्रेरणा का प्रसाद माना है। अतः संवत् १७६०-६५ तक मनोहर राय की विद्यमानता की सम्भावना की जा सकती है।[१] इस प्रकार मनोहरराय का रचनाकाल संवत् १७०० के लगभग से लेकर १७७० पर्यन्त मानना अनुचित न होगा। प्रियादास कृत भक्तमाल की टीका से यह भी ज्ञात होता है कि उस समय वे वृन्दावन में प्रचलित रसोपासना के प्रतिष्ठित गौड़ीय आचार्य थे :—

> रसिकाई-कविताई जाहि दीनी तिन पाई,
> भई सरसाई हिये नव नव पाय हैं।
> रसरंगभवन में राधिका रमन बसें,
> लसें ज्यों मुकुर मध्य प्रतिबिम्ब भाय हैं।
> रसिक समाज में बिराज रसराज करें,
> चहें मुख सब फूलें सुख समुदाय हैं।
> जन मन हरि लाल नाम मनोहर पायौं,
> जनहूँ कौ मन हरि लीनों तातै 'राय' हैं।[२]

मनोहरराय उपाधि अथवा वास्तविक नाम :— राधारमण रससागर से ज्ञात होता है कि मनोहरदास इनका गुरु-प्रदत्त नाम था।[३] मनोहरराय के वास्तविक नाम का न तो कोई संकेत उनकी रचनाओं द्वारा ही प्राप्त होता है और न प्रियादास कृत भक्तमाल रसबोधिनी टीका ही, एतद्विषयक कोई सामग्री

---

[१] महाप्रभु कृष्ण चैतन्य मनहरण जू के,
चरण को ध्यान मेरे नाम मुख गाइये।
ताही समै नाभा जी ने आज्ञा दई लई,
धारि टीका विस्तार भक्तमाल की सुनाइये ॥
—भक्तमाल सटीक, पृ० ११ कवित्त १

[२] भक्तमाल सटीक, पृ० ३५०, कवित्त ६२७

[३] सद्गुन समुद्र सिंधु प्रेम पारावार,
सील सदाचार कौ कवित्त जग छायौ है।
ता दिन सफल जन्म भयौ है अनाथ बंधु,
मनोहर नाम राखि मोहि अपनायौ है।
—राधारमण रससागर, छं० सं० १

प्रस्तुत करती है। प्रियादास ने अपने गुरु के लिए 'मनहरनजू' और 'मनोहरराय' नामों का प्रयोग किया है। अपनी रचनाओं में उन्होंने 'मनोहरदास', 'मनहरण-दास', 'मनोहर' और 'दासमनोहर' छापों का प्रयोग किया है।[१] प्रियादास द्वारा निर्दिष्ट 'राय' उपाधि उनके उद्भट रसिक आचार्य के व्यक्तित्व की प्रतीक है। कदाचित् इसीलिए गुरु प्रदत्त नाम मनोहरदास के साथ ही वे मनोहरराय नाम से भी विख्यात थे।

रचनाएँ :— मिश्रबन्धुओं ने मनोहरदास के नाम से राधारमण रससागर, नामलीला और धर्मपरीक्षा नामक तीन रचनाओं का उल्लेख किया है।[२] परन्तु बाबा कृष्णदास के अनुसार राधारमण रससागर के अतिरिक्त सम्प्रदाय-बोधिनी, रसिक जीवनी और क्षणदा गीति चिन्तामणि भी मनोहरदास की ही रचनाएँ हैं।[३] वेद प्रकाश गर्ग ने अपने एक लेख में उनके स्फुट पदों का भी स्वतंत्र रचना के रूप में उल्लेख किया है।[४] वास्तव में मिश्रबन्धुओं द्वारा निर्दिष्ट धर्मपरीक्षा विवेच्य मनोहरराय की रचना न होकर उपर्युक्त विवेचित जैन मतानुयायी सांगानेर निवासी मनोहरलाल की रचना है।[५] धर्मपरीक्षा के रचनाकार के रूप में जैन मतावलम्बी मनोहरलाल का उल्लेख मिश्रबन्धु-विनोद में दो स्थानों पर मिलता है।[६] अत: स्पष्ट है कि प्रथम विवरण के अन्तर्गत मनोहर के नाम पर धर्मपरीक्षा नामक ग्रन्थ को भ्रमवश लिख दिया गया है। इसके अतिरिक्त मिश्रबन्धुओं को राधारमण रससागर के प्रारम्भिक शब्दों के आधार पर राधारमण रससागर और नामलीला के दो पृथक ग्रन्थ होने का भ्रम हो गया था। राधारमण रससागर की प्रतियों के प्रारम्भ में ऐसा उल्लेख मिलता है—

---

१ द्रष्टव्य :—राधारमण रससागर छं० सं० १,२,४,७,८,६ आदि, सम्प्रदायबोधिनी पृ० ११ दो० १६, क्षणदा गीति चिन्तामणि पृ० १ पद २

२ मिश्रबन्धु-विनोद, भाग २, पृ० ४६६

३ क्षणदा गीति चिन्तामणि, भूमिका, पृ० ७

४ साहित्य, वर्ष १२, अंक २

५ खोज रिपोर्ट, नागरीप्रचारिणी सभा, सन् १६००, सं० १२१

६ मिश्रबन्धु-विनोद, भाग २, पृ० ४३० तथा भाग ४, पृ० ८३

अथ श्री राधारमण रससागर नामलीला लिख्यते ।

अथवा :—

श्री राधारमण जयति अथ श्री राधारमण रससागर नामलीला मनोहरदास कृत लिख्यते ।

ऐसा ज्ञात होता है कि इस उल्लेख के ही आधार पर मिश्रबन्धुओं ने 'राधारमण रससागर' और 'नामलीला' को दो भिन्न रचनाएँ मान लिया था। मनोहरराय की कृतियों को प्रकाश में लाने वाले बाबा कृष्णदास ने इनकी नामलीला विषयक किसी भी रचना का उल्लेख नहीं किया है और न किसी अन्य साम्प्रदायिक स्रोत से ही नामलीला का मनोहरराय कृत होने का कोई विवरण प्राप्त होता है।

मनोहरराय के पदों का कोई स्वतंत्र संग्रह अब तक लेखक के देखने में नहीं आया है । मनोहरराय द्वारा संकलित 'क्षणदा गीति चिन्तामणि' में ब्रज-भाषा के अन्य वाणीकारों के पदों के साथ उनके भी २१ पद मिलते हैं । 'क्षणदा गीति चिन्तामणि' के पदों के अतिरिक्त बाबा कृष्णदास ने मनोहरराय के चैतन्य महाप्रभु विषयक पदों का भी उल्लेख किया है । किन्तु उन्होंने पदों के निश्चित प्राप्ति स्रोत का कोई संकेत नहीं दिया है।[१] कदाचित् बाबा कृष्ण-दास के उल्लेख एवं 'क्षणदा गीति चिन्तामणि' के आधार पर ही गर्ग जी ने स्फुट पदावली का मनोहरराय की स्वन्तत्र रचना के रूप में उल्लेख किया है। इस प्रकार मनोहरराय कृत निम्नलिखित रचनाएँ सिद्ध होती हैं—

१—सम्प्रदायबोधिनी
२—रसिक जीवनी[२]
३—क्षणदा गीति चिन्तामणि
४—राधारमण रससागर

सम्प्रदायबोधनी :—यह मनोहरराय की सर्वप्रथम कृति ज्ञात होती है, क्योंकि इसके पूर्व इनकी किसी भी रचना का उल्लेख नहीं मिलता। सम्प्रदाय-बोधिनी की पुष्पिका में उसका संवत् १७०७ की प्रति से लिखा जाना बताया गया है। रचनाकाल एवं प्रतिलिपिकार का कोई उल्लेख नहीं मिलता।[३]

---

[१] क्षणदा गीति चिन्तामणि, भूमिका—बाबा कृष्णदास

[२] रसिक जीवनी नामक रचना लेखक के यत्न करने पर भी सुलभ नहीं हो सकी । अतएव प्रस्तुत विवेचन के अन्तर्गत उसके सम्बन्ध में विचार नहीं किया जा सका है।

[३] इति श्री रसिकसिरोमनि स्वामी मनोहरदास विरचित सम्प्रदाय चतुष्ट्य वर्णनमयी सम्प्रदायबोधिनी सम्पूर्ण । —सम्प्रदायबोधिनी, पृ० १२

प्रामाणिकता का प्रश्न :—श्री प्रभुदयाल मीतल ने सम्प्रदायबोधिनी की प्रामाणिकता में सन्देह प्रकट करते हुए लिखा है कि "ऐसा प्रतीत होता है कि यह रचना मनोहरराय की न होकर इसी नाम के चैतन्य मतानुयायी किसी अन्य कवि की है। इसका रचनाकाल भी प्रामाणिक नहीं जान पड़ता। जब राधारमण रससागर की रचना संवत् १७५७ में हुई, तब इसकी रचना १७०७ में नहीं हो सकती। इसकी रचना शैली अत्यन्त शिथिल है और इसमें आधुनिकता की छाप है"।[१]

मेरे विचार से निम्नलिखित कारणों से सम्प्रदायबोधिनी विवेच्य मनोहरराय की ही रचना ज्ञात होती है :—

(१) सम्प्रदायबोधिनी और राधारमण रससागर के रचनाकालों में ५० वर्षों का अन्तर लम्बी अवधि अवश्य है, परन्तु क्षणदा गीति चिन्तामणि के संकलन-काल तथा रसिक जीवनी एवं स्फुट पदों के रचना कालों की जानकारी के अभाव में एतद्विषयक कोई भी निर्णय नहीं लिया जा सकता। सम्प्रदायबोधिनी के पूर्व और राधारमण रससागर के पश्चात् मनोहरराय की किसी अन्य रचना का उल्लेख नहीं मिलता। अतः इस अवधि में ही इन दोनों कृतियों का रचनाकाल एवं संकलन काल पड़ना चाहिए। तात्पर्य यह है कि संवत् १७०७ से सं० १७५७ की अवधि मनोहरराय के कृतित्व से शून्य नहीं कही जा सकती।

(२) सम्प्रदायबोधिनी यदि किसी अन्य मनोहरराय की रचना होती तो राधारमण रससागर तथा उससे प्राप्त कवि विषयक सूचनाओं में अन्तर अवश्य होता। परन्तु दोनों रचनाओं की कवि परिचय की सामग्री में पूर्ण साम्य है। इनसे प्राप्त सूचानाएँ एक ही मनोहर के आत्मोल्लेख हैं।

(३) यह कहना तर्कसंगत नहीं है कि सम्प्रदायबोधिनी में आधुनिकता की छाप है। कवि ने जिस सन्दर्भ में इस शब्द का प्रयोग किया है, वह चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रवर्तित रस-साधना की श्रेष्ठता एवं समसामयिक मत-मतान्तरों की सारहीनता को निर्दिष्ट करने के प्रयोजन

---

[१] चैतन्य मत और व्रज साहित्य, पृ० २३६

में प्रयुक्त हुआ है ।[१] अतएव 'आधुनिक' शब्द के आधार पर सम्प्रदायबोधिनी को परवर्ती अथवा अन्य मनोहरराय की रचना नहीं माना जा सकता है ।

(४) सम्प्रदायबोधिनी में वैष्णव सम्प्रदायों एवं भक्ति-सिद्धान्तों का सरल शैली में कथन मात्र हुआ है । कवि ने विविध सम्प्रदायों की गुरु और शिष्य परम्पराओं के निरूपण में उनके आधारभूत ग्रन्थों का आश्रय नहीं लिया है । अतः उसमें आचार्य अथवा शिष्य परम्परा की पूर्ण समाग्री खोजना असंगत होगा । वैष्णव भक्ति सम्प्रदायों तथा उनके सिद्धान्तों की सूचनात्मक रचना होने के कारण सम्प्रदाय-बोधिनी और राधारमण रससागर के कलापक्ष की तुलना करना भी समीचीन नहीं ज्ञात होता । क्योंकि एक सिद्धान्त-ग्रन्थ है और दूसरा काव्य-ग्रन्थ ।

(५) चैतन्यमत के अद्यावधि ज्ञात मनोहर नाम के किसी भी अन्य ब्रज-भाषा कवि द्वारा रचित सम्प्रदायबोधिनी नाम की कृत का उल्लेख नहीं मिलता ।[२]

क्षणदा गीति चिन्तामणि :—प्रस्तुत रचना निम्बार्क, वल्लभ, चैतन्य, राधावल्लभ और हरिदासी सम्प्रदायों के ४४ पदकारों के उत्कृष्ट पदों का संग्रह है । क्षणदा गीति चिन्तामणि के संग्रह का आदर्श १८वीं शती के बंगला कवि विश्वनाथ चक्रवर्ती का वैष्णव पदकारों का इसी नाम से प्राप्त संग्रह है ।[३] इस संग्रह में कृष्ण प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा पर्यन्त तीस क्षणदा हैं, जो राधा-माधव की विविध कृष्णलीलाओं पर आधारित हैं । सम्पूर्ण रचना दो भागों में विभक्त है, कृष्ण-क्षणदा और शुक्ल-क्षणदा । इनमें से प्रत्येक के अन्तर्गत १५ उप क्षणदाएँ हैं । अन्य माधुर्यलीलाओं की अपेक्षा रासलीला विषयक पद अधिक संख्या में संकलित हुए हैं । रासलीला का विस्तार आठवीं क्षणदा से पन्द्रहवीं क्षणदा पर्यन्त है ।

---

[१] श्री गौड़ देश अति पूर्व ते अद्यावधि सब होय ।
माध्व सम्प्रदया कहत हे बाल वृद्ध अरु जोय ।।७२।।
अब नवीन आधुनिक मत सुन कै भक्त समाज ।
दिविधा मन में मत करौ पूर्वापर मत राज ।।—सम्प्रदायबोधिनी, पृ० २

[२] चैतन्य मत और ब्रज साहित्य, पृ० १८४, २३४, ३४९ ।

[३] बंगला साहित्य की कथा, पृ० ९१—सुकुमार सेन

क्षणदा गीति चिन्तामणि में मनोहरराय के २२ पद संकलित हैं। अन्य पदकारों के पदों की संख्या इस प्रकार है :—

नाम	पद सं०	नाम	पद सं०
चतुर्भुजदास	१०	हरिवल्लभ	६
कृष्णदास	१५	गोपाल	१
नन्ददास	१४	दामोदर हित	४
विहारिणीदास	४	हितहरिवंश	२४
जगन्नाथ कविराय	४	कुम्भनदास	५
नरवाहन	१	हितब्रजलाल	१
कविमण्डन	१	हरिदास	५
किशोरदास	२	सदानन्द प्रभु	३
मथुराहित	२	हितमोहन	१
हित अनूप	१	परमानन्द	७
गिरधर	१	व्यास जी	३
जादौ प्रभु	१	चतुर बिहारी	१
विट्ठल विपुल	३	वल्लभ जी	६
गदाधर भट्ट	४	विद्यापति श्रीगोपाल	२
रामराय	४	गोवर्द्धनेश	१
हरिनारायण श्यामूदास	१	बनवारी	२
गोविन्द प्रभु	१३	सीलचन्द्र	१
स्यामसखी	१	हितभगवान	१
नागरीदास	१	नवलसखी	२
सूरदास	६	नामदेव	२
सूरदास मदनमोहन	१७	जनहरिया	१
मुरारीदास	६		

क्षणदा गीति चिन्तामणि में कुल २२२ पद संकलित हैं। इस संग्रह का प्रयोजन राधाकृष्ण की माधुर्यलीलाओं तथा विविध कृष्णभक्ति सम्प्रदायों में प्रचलित माधुर्योपासना के सामान्य रूप का निर्देश है। मनोहरराय ने निम्बार्क, वल्लभ, राधावल्लभ और हरिदासी सम्प्रदायों के पदकारों को भी यथास्थान

महत्व दिया है। व्यक्तिगत दृष्टि से हित हरिवंश के पद सबसे अधिक हैं। किन्तु सम्प्रदायों के अनुसार चैतन्य मत के ही व्रजभाषा कवियों के पदों को प्राथमिकता मिली है। 'क्षणदा गीति चिन्तामणि' का इस दृष्टि से भी अपना महत्व है कि इसमें अनेक अप्रसिद्ध पदकारों के पद संकलित हुए हैं। ऐसे पदकारों के जीवन वृत्त एवं पदों का स्वतंत्र आलोचनात्मक अध्ययन अपेक्षित है। सम्पूर्ण व्रजभाषा साहित्य में क्षणदा गीति चिन्तामणि ही एक मात्र ऐसा पद संग्रह है, जिसका आदर्श बंगला का उसी नाम का समसामयिक पद संग्रह है।

राधारमण रससागर :—राधारमण रससागर का रचना-काल संवत् १७५७ है। इसमें कुल ११३ छन्द हैं। रचयिता ने अपने गुरु रामशरण और गोपालभट्ट की वन्दना के अनन्तर विविध ऋतुओं के क्रमानुसार राधाकृष्ण की लीलाओं का सरस शैली में कवित्त छन्दों के अन्तर्गत वर्णन किया है।

मनोहरराय का कृतित्व उनके व्यक्तित्व की विविधता का परिचायक है। चैतन्यमत के व्रजभाषा कवियों में मनोहरराय ही एकमात्र ऐसे कवि हैं, जो एक साथ भक्त, सम्प्रदाय प्रचारक, इतिहासकार और संग्रहकर्ता हैं।

प्रियादास

प्रियादास नामधारी विविध कवि :— आलोच्ययुग में प्रियादास नाम के तीन कृष्णभक्त कवियों का उल्लेख मिलता है —

(१) प्रथम प्रियादास नाभादास कृत भक्तमाल के प्रसिद्ध टीकाकार हैं। इन्होंने नाभादास के भक्तमाल की 'भक्ति रसबोधिनी' नामक टीका की रचना की थी। इनका समय विक्रम की अठारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है।

(२) दूसरे प्रियादास राधावल्लभ-सम्प्रदाय के भक्त थे। ये रीवाँ निवासी थे। इनके द्वारा रचित राधावल्लभ-भाष्य, सिद्धान्तोत्तम, पद-रत्नावली और वैष्णव-सिद्धान्त नामक चार ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। इनका समय विक्रम की १९वीं शती का उत्तरार्द्ध है।[१]

(३) तीसरे प्रियादास भी राधावल्लभ सम्प्रदायानुयायी थे। इनका समय २०वीं शती का पूर्वार्द्ध है। ये पटना निवासी थे। इनके लिखे हुए ३७ ग्रन्थ बताये जाते हैं।[२]

---

[१] साहित्य-रत्नावली, पृ० ७२, कवि सं० १७५

[२] वही, पृ० ७३-७४, कवि सं० १८३

परिचय :—इसमें से प्रथम चैतन्य मतानुयायी प्रियादास ही हमारे विवेच्य कवि हैं। प्रियादास की जीवनवृत्त सम्बन्धी सामग्री का अभाव है। गुजराती भक्तमाल के आधार पर प्रियादास सूरत नगर के रामपुरा नामक ग्राम के निवासी थे। उनके पिता का नाम वासुदेव और माता का नाम गंगाबाई था।[१] बाबा कृष्णदास ने प्रियादास का परिचय देते हुए उन्हें सूरत नगर के राजपुरा ग्राम का निवासी तथा वासुदेव का पुत्र कहा है। वस्तुतः बाबा कृष्णदास के विवरण का आधार उल्लिखित गुजराती भक्तमाल ही है। उन्होंने भ्रमवश 'रामपुरा' को 'राजपुरा' और 'वामदेव' को वासुदेव लिख दिया है।[२] प्रियादास के गुरु का नाम मनोहरराय था।[३] सम्भवतः उन्होंने किशोरावस्था में ही वृन्दावन आकर मनोहरराय से चैतन्यमत में दीक्षा ले ली थी। उनके जीवन के कुछ वर्ष तीर्थाटन में व्यतीत हुए थे। प्रयाग, चित्रकूट आदि तीर्थ स्थानों की यात्रा करने के अनन्तर वे जयपुर पहुँचे। वहाँ नाभादास के भक्तमाल के रचनास्थान (गलता गद्दी) पर रह कर प्रियादास ने उनके भक्तमाल की 'भक्तमाल-रसबोधिनी' नामक प्रसिद्ध टीका का प्रणयन किया।[४]

प्रियादास के निश्चित जन्म और देहावसान संवतों की जानकारी नहीं हो सकी है। उनकी कृतियों के आधार पर उनका रचनाकाल निर्धारित करने में अवश्य सहायता मिलती है। प्रियादास ने 'भक्तमाल-रसबोधिनी' की रचना

---

[१] भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास—भक्तभारत

[२] प्रियादास-ग्रन्थावली, भूमिका, पृ० १

[३] जन मनहरि लाल नाम मनोहर पायौ,
उनहूँ को मन हरि लीन्हों ताते राय हैं।
इन्हीं के दासादास प्रियादास जानौ
तिन लै बखानौ मानौं टीका सुखदाई है।

—भक्तमाल टीका, पृ० ३५०, कवित ६२७

महाप्रभु चैतन्य हरि रसिक मनोहर नाम।
सुमिरि चरन अरविन्द नर बरनो महिमाधाम ॥—रसिक मोहिनी दो० १

[४] भक्तमाल सटीक, पृ० ३, कवित सं० १२

संवत् १७६९[1] और रसिक मोहिनी[2] की संवत् १७९४ में की थी। संवत् १७९४ के उपरान्त उनकी किसी रचना का उल्लेख नहीं मिलता है। 'भक्तमाल रसबोधिनी' एक प्रौढ़ कृति है, जिसकी रचना उन्होंने पर्याप्त अनुभव के अनन्तर की होगी। अतः उनका समय सम्वत् १७३०-१७३५ के आसपास से लेकर १८०० पर्यन्त मानना असंगत न होगा। मीतल जी ने भी इन्हीं दो रचनाओं के ही आधार पर प्रियादास का समय संवत् १७३० से १८०० तक माना है।[3]

रचनाएँ :—प्रियादास कृत नाभादास के भक्तमाल की 'भक्तमाल रसबोधिनी' नामक टीका ही उनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना है। इसके अतिरिक्त बाबा कृष्णदास ने उनकी रसिकमोहनी, अनन्यमोहिनी, चाहवेलि, और भक्तमाल सुमिरिणी नाम की चार अन्य रचनाएँ 'प्रियादास-ग्रन्थावली' के अन्तर्गत प्रकाशित की हैं।

भक्तमाल रसबोधिनी टीका :—प्रस्तुत रचना नाभादास कृत भक्तमाल की ६३४ छन्दों के अन्तर्गत रची हुई टीका है। इसकी रचना उन्होंने संवत् १७६९ में की थी। टीका की प्रकृति तथ्यात्मक की अपेक्षा प्रशंसात्मक अधिक है।

रसिक मोहिनी :—यह १११ दोहों की रचना है। इसमें ब्रज माहात्म्य, माधुर्योपासना और रसिक भक्त के लक्षणों का कथन किया गया है। रसिक मोहिनी का रचनाकाल संवत् १७९४ है।

अनन्य मोहिनी :—इस रचना में ८२ दोहे और ७ कवित्त हैं। इसमें रसिकोपासना की अनन्यता, राधाकृष्ण की लीलाओं, वृन्दावन माहात्म्य आदि विषयों का वर्णन हुआ है। इसके अतिरिक्त हरिराम व्यास के पदों को भी प्रतिपाद्य विषय के प्रमाण हेतु संकलित किया गया है।

---

[1] संवत् प्रसिद्ध दस सात उन्हत्तर,
फाल्गुन ही मास बदी सप्तमी बिताय कै
नारायणदास सुखरास भक्तमाल लैके,
प्रियादास दास, उर बसौ रहौ छाय कै ॥

—भक्तमाल सटीक, कवित्त सं० ६३३

[2] संवत् दस सौ सात सै, नब्बे औ बढ़ि चार।
तिथि त्रितिया वैशाखसुदी, प्रगट्यौ सत मनिहार ॥

—रसिक मोहिनी, दो० १०४

[3] चैतन्यमत और व्रज साहित्य, पृ० २४३

चाहवेलि :—एक कवित्त और ५० अरिल्ल छन्दों की इस रचना में कृष्ण, राधा और उनकी सखियों के परिवार के सान्निध्य तथा व्रजवास की कामना का वर्णन हुआ है।

भक्त-सुमिरिनी :—इस रचना में २३५ अर्द्धालियाँ हैं। इसमें भक्तमाल और 'भक्तमाल रसबोधिनी टीका' में निर्दिष्ट भक्तों की नामावली, नित्य उपासना में उनके स्मरण हेतु वर्णित हुई है। भक्त-सुमिरिनी की रचना राधारमण नामक किसी पुजारी के आग्रह पर हुई है। गौड़ीय भक्तों में भक्त-सुमिरिनी का नित्य-पाठ प्रचलित है। डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह ने भक्ति-सुमिरिनी को प्रियादास के शिष्य चैतराय की रचना माना है। परन्तु वास्तव में यह रचना चैतराय की न होकर उनके गुरु प्रियादास की ही है।[1]

चैतन्य मत के व्रजभाषा कवियों में प्रियादास का महत्व उनकी नाभादास कृत भक्तमाल की टीका के कारण है। प्रियादास की अन्य रचनाओं से उनके उपदेशक के व्यक्तित्व का बोध होता है। उनकी रचनाएँ व्रज के गौड़ीय भक्तों में पर्याप्त लोकप्रिय हैं।

वृन्दावनचन्द्र

परिचय :—वृन्दावन चन्द्र कृत 'अष्टयाम' नामक रचना से उनके जीवनवृत के निर्धारण में कुछ सहायता मिलती है। 'अष्टयाम' में वृन्दावनचन्द्र ने कृष्ण और चैतन्य की स्तुति तथा प्रमुख चैतन्य मतानुयायी भक्तों की महिमा का कथन किया है।[2] इससे उनका चैतन्य मतानुयायी होना असंदिग्ध है। 'अष्टयाम' के दो कवित्तों के अंतिम चरणों से ज्ञात होता है कि वृन्दावन-

---

[1] दिग्विजयभूषण, कवि-परिचय, पृ० ३५

[2] अष्टयाम व्रजवर्णन, पृ० १–२

श्री राधा दामोदर शिष्यो वृन्दावनाभिधो विप्रः ॥
अष्टोत्तर शतनाम्नि व्यधात सतां प्रीत भाष्यम् ॥

--श्री कृष्णाष्टोत्तर शतनाम स्तोत्र।

श्री राधा दामोदर शिष्यों वृन्दावनाभिधो विप्रः।
गोपाल स्तव राजे भाष्यं व्यततनोत्सतां प्रीत्यै ॥

—श्रीगोपाल स्तवराज

चन्द्र प्रियादास के समकालीन थे ।[१] प्रियादास का रचनाकाल विक्रम की अठारहवीं शती का उत्तरार्द्ध निश्चित है । 'अष्टयाम' के साक्ष्य के आधार पर वृन्दावनचन्द्र का रचनाकाल भी उन्नीसवीं शती का उत्तरार्द्ध मानना समीचीन प्रतीत होता है ।

अष्टयाम की भूमिका में वृन्दावनचन्द्र को राधादामोदर का शिष्य तथा गोविन्दभाष्यकार बलदेव विद्याभूषण का गुरु-भ्राता बताया गया है । इस कथन का आधार 'कृष्णाष्टोत्तर शतनाम' और 'गोपाल स्तवराज' नामक संस्कृत भाष्यों की पुष्पिकाएँ हैं । अष्टयाम की भूमिका में इन दोनों भाष्यों के रचनाकार वृन्दावन और अष्टयाम के प्रणेता वृन्दावनचन्द्र को एक ही व्यक्ति माना गया है । बलदेव विद्याभूषण का रचनाकाल संवत् १७७५ से १८०० पर्यन्त है ।[२] अष्टयाम के अन्तःसाक्ष्य से भी इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है ।

रचनाएँ :—वृन्दावनचन्द्र कृत 'कृष्णाष्टोत्तर शतनाम' और 'गोपाल स्तवराज' के संस्कृत भाष्य, अष्टयाम और 'गोपाल स्तवराज भाषा' नामक चार रचनाएँ प्राप्त हैं । यहाँ उनकी व्रजभाषा रचनाओं का परिचय दिया जा रहा है :—

अष्टयाम :—अष्टयाम में राधाकृष्ण की अष्टकालिक दैनन्दिनी लीलाएँ रूप गोस्वामी कृत 'स्मरण मंगल' और कृष्णदास कृत 'श्री गोविन्द लीलामृत' के आधार पर वर्णित की गई हैं ।[३] अष्टयाम की छन्द संख्या ९२० है । सम्पूर्ण

---

[१] जहाँ प्रियादास जू की नैक हूँ चितौ न होत,
पंडित ह्वै को कवि रसिक ह्वै जात हैं ।
× × ×
प्रियादास जू के मिले भावत न आन कछु, भई पहिचानि हरि रूप रसराजतें ।
—अष्टयामः व्रजवर्णन, पृ० ३

[२] अष्टयाम, भूमिका, पृ० १-२

[३] श्री रूप रस-कूप राग-मार्ग के हैं भूप,
सुमिरन मंगल नाम सों रचौ ग्रन्थ है ।
जुगल विलास केली नित्य महारास वेली,
रसिक जनन सुमिरन महाकथ है ।
कृष्णदास करुना वरनालय रस बस भये,
कविराज ख्यात और महा रसवंत हैं ।
श्री गोविन्दलीलामृत मधिरस के
वारिध लीला अष्टयाम करनी जामें भगवंत है
—अष्टयाम लीला वर्णन, पृ० ९२

अष्टयाम व्रजवर्णन, सखी-स्वरूप वर्णन और लीला वर्णन के अन्तर्गत विभाजित हैं।

गोपाल स्तवराज भाषा :—यह संस्कृत 'गोपाल स्तवराज' का व्रजभाषा-अनुवाद है। वृन्दावनचन्द्र की व्रजभाषा रचनाएँ उनके सफल अनुवादक के व्यक्तित्व का ही बोध कराती हैं।

वृन्दावनदास

परिचय :—वृन्दावनदास की रचना 'प्रेमभक्तिचन्द्रिका-भाषा' से ज्ञात होता है कि वे अद्वैताचार्य जी की शिष्य परम्परा में हुए थे। वृन्दावनदास यमुना तट पर भ्रमरकुंज में निवास करते थे।[१] प्रेमभक्तिचन्द्रिका के भाषा विषयक आत्मोल्लेख के आधार पर वे व्रजवासी ज्ञात होते हैं।[२] प्रामाणिक सामग्री के अभाव में वृन्दावनदास के निश्चित जन्म और देहावसान संवतों का निर्धारण नहीं किया जा सका है। 'प्रेमभक्तिचन्द्रिका भाषा' (संवत् १८१३) और 'बिलापकुसुमांजलि' (संवत् १८१४) के आधार पर उनका रचनाकाल विक्रम की उन्नसवीं शती के पूर्वार्द्ध में माना जा सकता है।

रचनाएँ :—वृन्दावनदास कृत भक्तनामावली, प्रेमभक्तिचंद्रिका भाषा और विलापकुसुमांजलि नामक तीन रचनाएँ प्राप्त हैं। मीतल जी ने वृन्दावनदास की इन रचनाओं के अतिरिक्त उनके कुछ स्फुट पदों का भी उल्लेख किया है।[३] परन्तु लेखक के देखने में वृन्दावनदास कृत कोई भी पद-संग्रह नहीं आया।

---

[१] कलि प्रगटायो प्रश्न जिमि सीतापति मम ईश।
जयति जयति अद्वैत प्रभु दे पद रज मम सीस॥
—प्रेमभक्तिचन्द्रिका, दो० ४

भ्रमरकुंज रसकुंज मधि भानसुता के कूल।
नव राधागोविन्द जहँ जुग जुग जीवन मूल॥ वही दो० २५७

[२] बढ़ी अमित अभिलाषा। ए पै सुगम न भाषा।
तव निदेश सुखकारी। निज भाषा हित भारी॥—प्रेमचंद्रिका, दो० २४

[३] चैतन्य मत और व्रज साहित्य, पृ० २८०

प्रेमभक्तिचन्द्रिका :—इसकी पूर्ति संवत् १८१३ की पौष शु० ५ को हुई थी।[1] प्रेमभक्ति चन्द्रिका गौड़ीय भक्त नरोत्तमदास ठाकुर की इसी नाम से प्राप्त बंगला रचना का ब्रजभाषा में पद्यानुवाद है। इसमें साम्प्रदायिक उपासना पद्धति के साथ राधारमण कृष्ण की माधुर्य लीलाओं का दोहा, चौपाई एवं छन्दों में वर्णन हुआ है।

विलाप कुसुमांजलि :—इसका पूर्तिकाल संवत् १८१४ है।[2] यह वृन्दावनदास के पूर्ववर्ती आचार्य रघुनाथदास गोस्वामी की संस्कृत रचना 'विलास कुसुमांजलि' का ब्रजभाषा अनुवाद है। राधाकृष्ण का रूपचित्रण तथा उनकी माधुर्य क्रीड़ाएँ विलाप कुसुमांजलि का प्रतिपाद्य हैं।

भक्त-नामावली :—इसका रचनाकाल अज्ञात है। भक्तनामावली देवकी नन्दन की 'वैष्णववन्दना' नामक बंगला रचना का ब्रजभाषा पद्यानुवाद है। वैष्णव भक्तों से सम्बन्ध होने के कारण अनुवाद में इसका नाम 'भक्तनामावली रखा गया है।

वृन्दावनदास की सभी रचनाएं अनूदित हैं। इनके सृजन का मूल प्रयोजन सम्प्रदाय प्रचार ज्ञात होता है। उपर्युक्त अनुवादों से वृन्दावनदास का ब्रजभाषा के साथ ही संस्कृत और बंगला भाषाओं पर समानाधिकार सिद्ध होता है।

वैष्णवदास रसजानि

परिचय :—वैष्णवदास रसजानि का चैतन्य सम्प्रदाय के ब्रजभाषा कवियों में एक अनुवादक के रूप में महत्वपूर्ण स्थान है। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों से वैष्णवदास रसजानि के सम्बन्ध में अनेक भ्रमात्मक सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। सन् १९०१ की खोज रिपोर्ट में उन्हें संवत् १८२९ में विद्यमान प्रियादास का शिष्य और भक्तमाल-प्रसंग का रचनाकार बताया गया है।[3] सन् १९०४ की खोज रिपोर्ट में वैष्णवदास और रसजानि की रचना भक्तमाल प्रसंग को उनकी और अग्रनारायणदास की संयुक्त कृति

---

[1] अधिक त्रयोदस जानि संवत सतदस आठ महि।
पूरण ग्रन्थ सु मानि पूश विदित सित पंचमी॥
प्रेमभक्तिचन्द्रिका, पृ० २३, दो०२६२

[2] संवत सत दस आठ अस बरष चतुर्दश जानि।
पूस सरस सित पंचमी पूरन ग्रन्थ बखानि॥
—विलाप कुसुमांजलि, पृ० १६, दो० १०१

[3] नागरी प्रचारिणी सभा, खोज रिपोर्ट १९०१। सं० ९४

बताते हुए उसका रचनाकाल संवत् १८४४ माना गया है।[1] सन् १६०६-८ की खोज रिपोर्ट में उन्हें प्रियादास का पुत्र, वृन्दावनवासी और भक्तमाल-माहात्म्य का रचनाकार लिखा गया है।[2] सन् १६०६-११ की खोज रिपोर्ट में प्रियादास की एक अन्य कृति 'गीतगोविन्द-भाषा' का परिचय देते हुए उनके प्रियादास के पुत्र होने की सूचना की पुनरावृत्ति हुई है।[3] आगे की खोज रिपोर्ट में रसजानि और वैष्णवदास को दो पृथक्-पृथक् कवि मान लिया गया है।[4] परवर्ती खोज रिपोर्टों में भी इसी प्रकार के भ्रमात्मक विवरण दिए गए हैं। खोज रिपोर्ट के विवरण के ही आधार पर मिश्रबन्धुओं ने तीन वैष्णवदास और दो रसजानि नामक कवियों का विवरण दिया है। उन्होंने वैष्णवदास के गुरु का नाम भ्रान्तिवश नरहरिदास लिख दिया है।[5] वस्तुतः वैष्णवदास और रसजानि विषयक अपूर्ण और त्रुटिपूर्ण रचनाओं का कारण सामग्री के समुचित पर्यवेक्षण का अभाव ज्ञात होता है।

वैष्णवदास रसजानि के जीवन वृत्त का सर्वाधिक प्रामाणिक साक्ष्य उनका कृतित्व ही है। वैष्णवदास की रचनाओं से ज्ञात होता है कि वे नाभादास कृत भक्तमाल के यशस्वी टीकाकार प्रियादास के पौत्र थे और हरिजीवन नामक किसी चैतन्य मतानुयायी भक्त के शिष्य थे।[6] किन्तु श्री मीतल जी ने वैष्णवदास

---

[1] नागरी-प्रचारिणी सभा, खोज रिपोर्ट १६०४। सं० ८८

[2] वही, १६०६-८। सं० २४७

[3] वही, १६०६-११। सं० ३२४

[4] वही, १६२६-३१। सं० १५०

[5] मिश्रबन्धु विनोद, भाग २, पृ० ८२६, कवि सं० ३७२

[6] प्रियादास रस रासि को पौत्र वैष्णवदास।
ताही को रस रसजानि तिन कीनो नाम प्रकास॥

—भागवत-माहात्म्य, परिशिष्ट अंश,

श्री प्रियादास रस रासि की पाय कृपा रसजानि।
अगम कियो निपटै सुगम, एकदशहिं बखानि॥

—भागवत-माहात्म्य, एकादश स्कंध, दो० २६

हरिजीवन गुरु कृपा पाय सोइ रसजानि।
श्री भागवत-माहात्म्य की भाषा करी बखानि॥

—भागवत-माहात्म्य, परिशिष्ट अंश

के रचनाकाल के आधार पर उनके प्रियादास के वास्तविक पौत्र होने में सन्देह प्रकट किया है।

बाबा कृष्णदास द्वारा प्रकाशित वैष्णवदास-कृत गीतगोविन्द-भाषा की पुष्पिका में उसका रचनाकाल संवत् १७१७ दिया गया है।[१] खोज रिपोर्ट में विवेचित हस्तलिखित प्रतियों में गीतगोविन्द-भाषा का रचनाकाल संवत् १८१४ वि० दिया गया है।[२] ऐसा ज्ञात होता है कि बाबा कृष्णदास द्वारा निर्दिष्ट संवत् १७१७ गीतगोविन्द-भाषा का मूल संवत् १८१७ रहा होगा। प्रतिलिपि परम्परा में भ्रान्तिवश वह सं० १७१७ हो गया। क्योंकि किसी भी रचना की प्रतिलिपि उसकी पूर्ववर्ती नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त उनकी एक अन्य रचना 'भागवत-भाषा' के पूर्तिकाल[३] संवत् १८०७ के आधार पर प्रतिलिपि परम्परा में संवत् १८१७ के स्थान पर संवत् १७१७ हो जाना ही अधिक सम्भावित एवं तर्कसंगत प्रतीत होता है। पीछे प्रियादास का समय संवत् १८०० तक निश्चित किया गया है। अतः गीतगोविन्द-भाषा और भागवत-भाषा के रचनाकालों को देखते हुए उनके प्रियादास के पौत्र विषयक आत्मोल्लेख में सन्देह के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता।

समय :—प्रियादास के समय और वैष्णवदास की रचनाओं में निर्दिष्ट रचनाकालों से उनके समय के निर्धारण में सहायता मिलती है। विगत विवेचन में प्रियादास का जन्म संवत् १७३०–३५ के लगभग अनुमानित किया है। यदि

---

[१] इति श्री गीत गोविन्द कविराज जयदव कृत भाषायां वैष्णवदास रसजानि कृतायां द्वादश सर्ग : संवत् १७७७ पौष वदी २ लिखितं। जयदेव।

[२] अष्टादश शत जान चौदह अधिक यही।
संवत् सरस प्रयान मगसिर मास सही।
जैत गीत गोविन्द गावहु रसिक अहो।
कृष्ण आठै सार ता दिन पूरन भई।
वारन में रविवार सवरे सुषन छई।
जैत गोविन्द गावहु रसिक अहो॥

—नागरी-प्रचारिणी सभा, खो० रि० १६०६-११। सं० ३२४

[३] संवत् अष्टादस सत सात। जेठ वदी छठ मंगल गात॥

—भागवत-भाषा, पृ० १२४

वैष्णवदास को प्रियादास से ३५-४० वर्ष अवस्था में छोटा मानें तो वैष्णवदास का आविर्भाव काल संवत् १७६५ अथवा १७७० के लगभग पड़ना चाहिए। बाबा कृष्णदास ने भागवत-भाषा के पूर्तिकाल (सं० १८०७) विषयक उल्लेख की उपेक्षा करते हुए लिखा है, "भागवत-भाषा का रचनाकाल संवत् १८२२, से लेकर संवत् १८३१ पर्यन्त है। यह श्री भागवत के समस्त स्कन्धों के अन्त में निर्दिष्ट कर दिया गया है।"[१] परन्तु बाबा जी का प्रस्तुत उल्लेख अनुमानाश्रित है, क्योंकि भागवत-भाषा के किसी भी स्कन्ध के अन्त में उसका रचना-काल नहीं दिया गया है।[२] वैष्णवदास रसजानि के नाम से प्राप्त 'भक्तमाल-माहात्म्य' और 'भक्त उरवसी' का रचनाकाल संवत् १८०० है।[३] अतः संवत् १८१४ में रचित गीतगोविन्द-भाषा उनकी अन्तिम रचना सिद्ध होती है। संवत् १८१४ के अनन्तर उनकी किसी भी रचना का उल्लेख नहीं मिलता है। परन्तु चैतन्य मत के उनके परवर्ती कवि रामहरि की 'सतहंसी' नामक रचना में संवत् १८३३ के लगभग उनकी विद्यमानता का उल्लेख प्राप्त होता है।[४] इस आधार पर वैष्णवदास रसजानि का समय संवत् १७६५ के लगभग से लेकर १८४० के लगभग तक निर्धारित किया जा सकता है।

रचनाएँ :—वैष्णदास रसजानि की भक्तमाल-महात्म्य, भक्तमाल-प्रसंग, भक्तमाल रसबोधिनी टीका, भागवत-भाषा, भागवत-माहात्म्य-भाषा, गीत-गोविन्द-भाषा और भक्ति-रत्नावली-भाषा नामक रचनाएँ कही जाती हैं। इनमें से भक्तमाल-प्रसंग, भक्तमाल रसबोधिनी टीका तथा भक्तमाल टिप्पणी एक ही रचना के विविध नाम हैं। मीतल जी के अनुसार यह विवेच्य वैष्णवदास की कृति न होकर निम्बार्क सम्प्रदायी वैष्णवदास की रचना है।[५] नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में प्रस्तुत रचना को

---

१ गीतगोविन्द पद : व्रजभाषा भूमिका, पृ० ४

२ भागवत-भाषा, दूसरा खण्ड, दशम, एकादश और द्वादश स्कन्ध।

३ चैतन्य मत और व्रजसाहित्य, पृ० २६६

४ रुचि-सून की कृपा बल, 'संतहंसी' बल नाम।
करी वैष्णवदास बल, बल वृन्दावन धाम॥ —सतहंसी, दो० ६८

५ रूपकला कृत भक्तमाल टीका, पृ० ३५। इसका समय संवत् १८०० के लगभग माना गया है। उदयशंकर शास्त्री ने इनका समय सं० १७८२ से सं० १८८४ तक माना है। —श्री भक्तमाल। वृन्दावन, पृ० २०

वैष्णवदास और अग्रनारायणदास का संयुक्त कृतित्व माना गया है।[१] इस भ्रम का मूल कारण उद्धृत पद में 'अग्रनारायण' नाम का प्रयोग और पाठ विकृति है। वस्तुतः अग्रनारायण विषयक पद भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास का है, जो भक्तमाल के प्रणेता नाभादास की स्तुति में लिखा गया था। अग्रनारायण का पूर्वांश 'अग्र' भक्तमाल के रचयिता के गुरु अग्रदास और नारायण भक्तमाल के रचयिता नारायणदास (नाभादास) से सम्बद्ध[२] है। परन्तु सन् १९०४ की खोज रिपोर्ट में इस रचना के उद्धृत अंश की पुष्पिका से प्रस्तुत रचना प्रियादास के पौत्र वैष्णवदास रसजानि कृत ही सिद्ध होती है।[३] यह रचना रूपकला द्वारा सम्पादित 'भक्तमाल' के अन्त में प्रकाशित है। वृन्दावन से प्रकाशित भक्तमाल के एक संस्करण में वैष्णवदास रसजानि कृत प्रस्तुत टीका भी सम्मिलित की गई है। 'भागवत-भाषा-माहात्म्य' कोई स्वतन्त्र रचना न होकर भागवत-भाषा का ही अंश है। पद्मपुराण के उत्तरखण्ड में वर्णित भागवत-माहात्म्य का प्रसंग मूल भागवत के साथ ही प्राप्त होता है। अतएव उसके अनूदित अंश को भी भागवत-भाषा से ही सम्बद्ध करना समीचीन प्रतीत होता है। 'भक्त उरवसी' भक्तमाल की प्रियादास कृत टीका पर वैष्णवदास रसजानि की टिप्पणी कही जाती है। कदाचित् यह रचना भी कवि की भक्तमाल सम्बन्धी रचनाओं के ही समान भक्तमाल रसबोधिनी टीका का ही अन्य

---

[१] नागरी प्रचारिणी सभा, खोज रिपोर्ट १९४१-४३। सं० ८८

[२] रसजानि वैष्णवदास, वेदप्रकाश गर्ग। परिषद् पत्रिका, वर्ष १, अंक २

[३] रसिक रूप हरि रूप पुनि श्री चैतन्य स्वरूप।
हृदय कूप अनुरूप रस, उझल्यौ उहै अनूप।
श्री नारायणदास जी की कही भक्त सुमाल।
पुनि ताकी टीका करी, प्रियादास सु रसाल॥
ताकौ साधुन के कहै, करौ माहात्म्य बखान।
लै ग्रन्थन मत साधुनक, परचै रस की खान॥

—भक्त-माल, रूपकला संस्करण

प्रियादास अति ही सुखकारी। भक्त-माल टीका विस्तारी।
तिनकौ पौत्र परम रंग भीनौ। भक्तन हित महातम यह कीनौ॥

—भक्त-माल (रूपकला संस्करण)

नाम है। भक्तमाल की इसी नाम की संवत् १८०० की एक टीका लालचन्द्र दासकृत भी प्राप्त है।[1] इस प्रकार वैष्णवदास की निम्नलिखित प्रामाणिक कृतियाँ सिद्ध होती हैं :—

१–भागवत-भाषा २–गीतागोविन्द-भाषा ३–भक्तरत्नावली और ४–भक्तमाल-माहात्म्य। मीतल जी ने वैष्णवदास के स्फुट पदों का भी उल्लेख करते हुए उनका एक पद उद्धृत किया है।[2] किन्तु वैष्णवदास विरचित पदों की प्राप्ति का कोई अन्य उल्लेख नहीं मिलता।

भागवत-भाषा :—प्रस्तुत रचना भागवत का स्कन्ध क्रमानुसार व्रजभाषा में अनुवाद है। यह लगभग १५ हजार छन्दों में पूरा हुआ है। भागवत-भाषा का पूर्तिकाल संवत् १८०७ है।

गीतगोविन्द-भाषा :—गीतागोविन्द-भाषा का रचनाकाल संवत् १८१४ है। जयदेव-कृत गीतगोविन्द का यह विवधि छन्दों के अन्तर्गत रचित अनुवाद है। इसमें द्वादश सर्गों के अन्तर्गत कृष्ण और राधिका विहार वर्णित है।

भक्तरत्नावली-भाषा :—यह चैतन्य मत के प्रसिद्ध भक्त विष्णुपुरी द्वारा संकलित भक्ति-रत्नावली (संस्कृत) का व्रजभाषा अनुवाद है।

भक्तमाल-माहात्म्य :—भक्तमाल-माहात्म्य में उसके रचनाकाल का कोई निर्देश नहीं है। रूपकला ने वैष्णवदासकृत इस टीका का समय संवत् १८०० के लगभग अनुमानित किया है।

वैष्णवदास रसजानि की सभी रचनाएँ उनके समर्थ अनुवादक के व्यक्तित्व की परिचायक हैं। चैतन्य मत के अन्य अनुवादकों से भिन्न उनकी दृष्टि साम्प्रदायिक न होकर रसवादी भी रही है, जिसका प्रमाण उनका गीतगोविन्द का व्रजभाषा अनुवाद है।

सुबल श्याम

परिचय और रचनाकाल :—सुबलश्याम-कृत चैतन्य चरितामृत के व्रजभाषा अनुवाद से उनकी जीवनी विषयक तथ्य प्राप्र होते हैं। चैतन्य चरितामृत के अनुसार सुबल श्याम चैतन्य मत के नारायण भट्ट की वंश परम्परा के

---

[1] भक्तमाल रूपकला संस्करण, पृ० ३५

[2] चैतन्य मत और व्रज साहित्य, पृ० २७६

यदुपति भट्ट के शिष्य थे।[१] अपने उपास्यदेव की वन्दना के सन्दर्भ में सुबल-श्याम ने अपने समकालीन गोस्वामी जगन्नाथ और श्यामचरण का भी सश्रद्धा स्मरण किया है।[२] मीतल जी ने नारायण भट्ट से यदुपति भट्ट तक की परम्परा तथा जगन्नाथ और श्यामचरण के समय के आधार पर सुबल श्याम का समय अठारहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध तथा जन्म सं० १७४० लिखा है।[३] बाबा कृष्ण-दास ने उनका अस्तित्व काल लगभग २५० वर्ष पूर्व अनुमानित किया है। चैतन्य चरितामृत की प्राप्त हस्तप्रति का लिपि काल सं० १८२८-२९ है।[४] इसके आधार पर भी सुबल श्याम को अठारहवीं शताब्दी में मनाने का अनुमान उचित प्रतीत होता है।

सुबल श्याम कदाचित् रचनाकार का उपनाम था। यद्यपि चैतन्य चरितामृत (व्रजभाषा) के प्रत्येक परिच्छेद के अंत में कवि ने 'सुबल श्याम' छाप का प्रयोग किया है,[५] तथापि अनेक स्थलों पर उसका नाम 'बेनीकृष्ण' भी प्राप्त होता है, जिससे उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि होती है। चैतन्य चरितामृत की भाषा को सुबल श्याम ने 'निज भाषा' कहा है। इससे ज्ञात होता है कि वे व्रजप्रदेश के निवासी थे।

---

१ मनहू को दुरलभ जे, सुलभ करी ते जिन्हौं,
तेई श्री यदुपति जू सिर पै सहाइ हैं।
—चैतन्य चरितामृत, व्रजभाषा, पृ० १६४

२ तिनहीं कौ रूप आप श्री गुसाईं जगन्नाथ,
प्रगट विराजमान जग हित कारी हैं॥
—चैतन्य चरितामृत, व्रजभाषा, पृ० ६०९

भयौ श्री श्यामचरण नाम अभिराम,
तातें आठ जाम हियें रहैं श्याम के चरन हैं।
—चैतन्य चरितामृत, व्रजभाषा, पृ० ३, छन्द १३

३ चैतन्य मत और व्रजसाहित्य, पृ० २५८

४ चैतन्य चरितामृत, व्रजभाषा, भूमिका—ख

५ ऐसे मैन सैंन जिहि सैन आगे गजै तजे, सर पाँच छूटैं जाहि छूटे छल-बल हैं।
मोहन मदन ताहैं अभिराम राम, नाम तिन्हौं बस किये जिन्हौं ताहि ते सुबल हैं॥
—चैतन्य चरितामृत, आदि लीला, पृ० २, छं० ११

रचना :—सुबल श्याम-कृत केवल एक ही रचना चैतन्य चरितामृत (व्रज-भाषा) प्राप्त है। मूल चैतन्य चरितामृत बंगला कवि कृष्णदास द्वारा रचा गया था। व्रजमण्डल में चैतन्य महाप्रभु की जीवन-गाथा और भक्ति-सिद्धान्तों को प्रचारित करने के उद्देश्य से सुबल श्याम ने इसका व्रजभाषा में अनुवाद किया।[१] इसका निश्चित रचनाकाल अज्ञात है। सुबल श्याम के महत्त्व का एक मात्र आधार उनका यही अनुवाद है।

गौरगणदास

परिचय :—गौरगणदास के सम्बन्ध में उनकी रचनाओं से ज्ञात होता है कि वे चैतन्य मत में दीक्षित थे। उन्होंने अपनी प्रार्थना नामक रचना में रूप गोस्वामी और सनातन गोस्वामी को अपना गुरु कहा है।[२] इस आधार पर गौरगणदास का समय सोलहवीं शती का अन्त और सत्रहवीं शती का प्रारम्भ होना चाहिए। मीतल जी ने गौरगणदास की 'सिद्धान्त प्रनाली शाखा' नामक रचना और मांझ शैली के आधार पर उनका समय अठरहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना है।[३] कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह ने गौरगणदास का समय कबीर के कुछ ही बाद बताया है।[४] किन्तु गौरगणदास की रचनाओं की भाषा में फारसी शब्दावली की प्रचुरता और मांझ शैली के प्रयोग को देखते हुए उनका समय अठारहवीं शती मनाना ही उचित प्रतीत होता है, क्योंकि सोलहवीं और सत्रहवीं शती तक न तो मांझ शैली का प्रयोग मिलता है और न व्रजभाषा पर खड़ी-बोली के शब्द-विन्यास का प्रभाव ही दिखाई पड़ता है। गौरगणदास-कृत सिद्धान्त-प्रणाली शाखा के अन्तर्गत चैतन्य मत की शाखाओं-प्रशाखाओं और चौसठ महंतों के विवरण के आधार पर भी उन्हें रूप और सनातन गोस्वामियों का शिष्य एवं समसामयिक मानना उचित नहीं प्रतीत होता।

---

१ चैतन्य चरितामृत, व्रजभाषा आदि लीला, छन्द सं० ९,१४,१५

२ गौर पारषद नमो रहे प्रेम बस मत सदा ही।
नमो श्री गुरुदेव सनातन रूप दोउ भाई॥
—गौरांगभूषण विलास, छन्द० सं० २१

३ चैतन्य मत और व्रजसाहित्य, पृ० २१७

४ चैतन्य सम्प्रदाय की हिन्दी कविता—कुंवर चन्द्रप्रकाश सिंह, त्रिपथगा, पृ० ११, सितम्बर १९५९।

रचनाएँ :—गौरगणदास की तीन रचनाएँ प्राप्त हैं—गौरांगभूषण-विलास, शृंगार मंझावली और सिद्धान्त-प्रणाली शाखा, जो बाबा कृष्णदास द्वारा प्रकाशित 'गौरांगभूषण मंझावली' में संकलित हैं।

गौरांगभूषण-विलास :—इसमें ८६ मांझ, १ कुण्डलिया और ६ दोहा के अन्तर्गत राधाकृष्ण की माधुर्य भक्ति, रूप और लीलाओं का चित्रण किया गया है।[१]

शृंगार मंझावली :—यह रचना दो खण्डों में विभाजित है। पूर्वार्द्ध में एक छप्पय और ३१ मांझों के अन्तर्गत राधाकृष्ण का रूप चित्रण हुआ है तथा ३७ मांझों में राधाकृष्ण की माधुर्य-भक्ति के प्रतिपादन के साथ वन्दना की गई है।[२]

सिद्धान्त-प्रणाली शाखा :—इसमें चैतन्यमत के आचार्यों का नामोल्लेख करते हुए रूप और सनातन गोस्वामियों द्वारा प्रतिपादित माधुर्य भक्ति का कथन किया गया है।[३]

समीक्ष्य युग के मांझकारों में गौरगणदास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनकी मांझों में राधा-कृष्ण के रूप एवं लीलाओं का चित्रण हुआ है।

ललित सखी

परिचय :—ललित सखी के सम्बन्ध में उनकी रचनाओं तथा बाह्य साक्ष्य से बहुत कम सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। ललित सखी चैतन्य मत के नारायण भट्ट की नवम् पीढ़ी में होने वाले मुरलीधर भट्ट के शिष्य थे।[४] ललित सखी उनका उपनाम था, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। ललित सखी की एक रचना 'कुंवरिकेलि' का पूर्तिकाल संवत् १८३६ है।[५] इसके आधार पर उनका रचना-

---

[१] गौरांगभूषण मंझावली, पृ० ४–१६ तक

[२] वही, पृ० १६–३१ तक

[३] वही, पृ० ३२–३४ तक

[४] श्रीनारायण कृपा करि कहौं जी...कहानी रहसि, दो० १
श्री गुरु मुरलीधर दया करिकै देहु मोहि उपदेस, दो० ३

[५] संवत् दससै आठ सौ और छतीस विचारि।
यह प्रबन्ध पूरण भयौ रतनागिरि की पारि॥
—कुंवरिकेलि, दो० ११७

काल विक्रम की उन्नीसवीं शती का मध्य स्वीकार करना तर्कसंगत प्रतीत होता है।

रचनाएँ :—ललित सखी की दो रचनाएँ 'कुंवरिकेलि' और 'कहानी-रहसि' प्राप्त हैं। मीतल जी ने उनके 'ललितप्रिया' की छाप से प्राप्त कुछ संदिग्ध पदों का भी उल्लेख किया है। परन्तु उन्होंने इन पदों की प्राप्ति का कोई प्रामाणिक विवरण नहीं दिया है।[1] 'कुंवरिकेलि' और 'कहानी-रहसि' में उनकी 'ललितसखी', 'ललितसखी मुरलीधर' और 'मुरलीधर' छापों का प्रयोग हुआ है।

कहानी-रहसि :—इसका रचना-काल अज्ञात है। बाबा कृष्णदास ने संवत् २००१ की हस्त-प्रति के आधार पर इसका प्रकाशन किया है। इसमें ५३ छन्दों के अन्तर्गत लाडिली (राधा) और उसकी माता का वार्तालाप वर्णित हुआ है। राधा अपनी माता से कहानी कहने का आग्रह करती हैं। माता उसे उसके जन्म एवं तदनन्तर होने वाले विविध संस्कारों की कथा सुनाती हैं।

कुंवरिकेलि :—११६ छन्दों की इस रचना में सखियों सहित राधा की विविध क्रीड़ाओं का चित्रण हुआ है। कुंवरिकेलि का पूर्तिकाल संवत् १८३६ है।

चैतन्य मत में ललितसखी ही एकमात्र लीला नाट्यकार हुए। उनकी 'कहानी-रहसि' का समीक्ष्य युग के लीला नाट्यों में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

दक्षसखी

परिचय :—दक्षसखी की रचनाओं से ज्ञात होता है कि वे चैतन्य मत के गोस्वामी गोपाल भट्ट की शिष्य परम्परा में सम्बद्ध थे।[2] दक्षसखी उनका वास्तविक नाम था अथवा साधनापरक यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। 'दक्षसखी' कदाचित् गुण मंजरी दास के शिष्य थे।[3] उन्होंने अपनी दो रचनाओं

---

[1] चैतन्य मत और व्रजसाहित्य, पृ० २६८

[2] जयति राधारमण श्री चैतन्य कृपाल।
जयति सखी गन वृन्द जयति श्री भट्ट गोपाल॥
—अष्टकाल लीला, (हस्तप्रति-बाबा कृष्णदास)

[3] श्री गुणमंजरी कृपाल जू, यह मांगत है भृत्य।
अपनी मोकों जानि कै, कृपा करौगे नित्य॥
—बनविहार लीला (हस्तप्रति, बाबा कृष्णदास)

'अष्टकाललीला' और 'वनविहार' की क्रमशः संवत् १८३६ और संवत् १८३५ में पूर्ति की थी। इस आधार पर दक्षसखी का रचनाकाल विक्रम की उन्नसवीं शती का मध्य माना जा सकता है।

रचनाएँ :—बाबा कृष्णदास के संग्रह में दक्षसखी की मंगली-आरती, व्यंजनावाली, अष्टकाल लीला और वनविहार नामक चार रचनाएँ प्राप्त हैं।

मंगल आरती :—यह १७ चौपाइयों की राधारमण की स्तुति विषयक रचना है। इसका रचनाकाल अज्ञात है।

व्यंजनावली :—३५ चौपाइयों की इस रचना में राधाकृष्ण के भोग के विविध व्यंजनों की नामावली प्रस्तुत की गई है। इसका भी रचनाकाल अज्ञात है।

अष्टकाल लीला :—यह रचना रूप गोस्वामी-कृत 'स्मरण. मंगलस्त्रोत' पर आधारित है। इसमें २०५ छन्दों के अन्तर्गत राधाकृष्ण की अष्टप्रहर लीलाओं का चित्रण किया गया है। इसका पूर्तिकाल संवत् १८३६ है।[१]

वनविहार लीला :—७२ चौपाइयों की इस रचना में राधाकृष्ण के वन-विहार का वर्णन किया गया है। इसकी पूर्ति संवत् १८३५ में हुई थी।[२]

दक्षसखी की सभी रचनाएँ साम्प्रदायिक पूजा की प्रेरणा से रची गई प्रतीत होती हैं। इसीलिए उनमें काव्य तत्त्व का अभाव मिलता है।

रामहरि

परिचय :—'रामहरि' की रचनाओं से ज्ञात होता है कि वे चैतन्य मत के गोपाल भट्ट की शिष्य परम्परा में हुए थे।[३] 'रामहरि' कदाचित् उनका उपनाम था। क्योंकि उन्होंने 'ध्यान-रहसि' और 'सतहंसी' नामक रचनाओं

---

१ भई पूर्ण लीला अति सुन्दर संवत् अष्टादस से ह्यौ है।
वर्ष तीस षट मास जु श्रावन कृष्ण द्वादसि यह ग्रन्थ कह्यौ है।
—अष्टकाल लीला, (हस्तप्रति, बाबा कृष्णदास)

२ संवत् दस औ आठ से, वर्ष पैंतीसौ जान।
—वनविहार लीला, (हस्तप्रति, बाबा कृष्णदास)

३ शिरधर राधारमन पद भट्ट गोपाल सहाई।
कोश धनंजय आदि औ कछुक नाम कहाई॥ —लघुनामावली, दोहा १

में अपने मूल नाम 'हरिराम' की छाप का प्रयोग किया है।[1] 'रामहरि' ने सतहंसी नामक रचना में वैष्णवदास का नामोल्लेख करते हुए, उसे उनकी प्रेरणा से रचित बताया है।[2] इस आधार पर रामहरि को वैष्णवदास का समसामयिक माना जा सकता है। रामहरिकृत 'ध्यान-रहसि' (संवत् १८२०) और 'प्रेम-पत्री' (संवत् १८३६) नामक दो रचनाओं के आधार पर उनका रचनाकाल संवत् १८३२ से संवत् १८३६ पर्यन्त निश्चित होता है।[3] विगत विवेचन में हम वैष्णवदास रसजानि का समय संवत् १८४० के लगभग निर्धारित कर चुके हैं। इस प्रकार रामहरि वैष्णवदास के समकालीन होने के तथ्य की पुष्टि हो जाती है।

रचनाएँ :— रामहरि की आठ रचनाएँ प्राप्त हैं, जो इस प्रकार हैं :—

१—ध्यान रहसि	४—लघुनामावली	७—प्रेमपत्री
२—बुद्धिविलास	५—लघुशब्दावली	८—रस पचीसी
३—सतहंसी	६—बोध-बावनी	

बाबा कृष्णदास ने इनका प्रकाशन 'रामहरि-ग्रन्थावली' नाम से किया है।

ध्यान-रहसि :—यह संवत् १८२० की रचना है। ३७ दोहों की इस रचना में बारहखड़ी शैली में आराध्ययुगल के रूप, प्रकृति आदि विषयों का वर्णन किया गया है।

---

[1] हा हा हरत हिय प्रीतम प्रिया, 'हरीराम' मुसकाय।
हेरत हैं आली तिन्हें, हरै हरै हहराय ।।३४।।
अखर बतीसन में कियौ, प्रिय प्यारी अनुराग।
बांचि बिचारे तिनन कौ 'हरीराम' बड़ भाग ।।३५।। —ध्यानि-रहसि
हरीराम है जौहरी, जौहर परख प्रवीन।
तिहिं पूरे जो हरि करी, जौहर भरे नवीन ।।—सत-हंसी, दोहा ९०

[2] राची सून की कृपा बल, सतहंसी बत नाम।
करी वैष्णवदास बल, बल वृन्दावन धाम ।। —सतहंसी, दो० ९८

[3] संवत् अष्टदस बीस है, सावन भावन मान।
कृष्णपक्ष दिन सप्तमी, मंगल-मंगल जान ।।
—ध्यान-रहसि, दो० ३७

संवत् रस त्रय वसु उउप माधव सुदि रवि राम।
रामहरि लै पत्रिका पहुँचे तुमरे ग्राम ।। —प्रेमपत्री, दो० १०

बुद्धिविलास :—रामहरि ने इस रचना में कबीर, तुलसी, रसखान आदि भक्त कवियों के साथ स्वरचित भक्ति, नीति और शृंगारपरक दोहे संकलित किये हैं। सम्पूर्ण रचना में कुल २५५ छन्द हैं।

सतहंसी : – इसमें कुल १०२ दोहे हैं। संख्या के आधार पर इनका नामकरण हुआ है। इसका प्रतिपाद्य राधाकृष्ण के रूप और उनकी लीलाओं का चित्रण है। सतहंसी में रामहरि की चमत्कारवृत्ति प्रधान है। इसकी रचना संवत् १८३३ में हुई थी।[1]

लघुनामावली :—इसका रचनाकाल संवत् १८३४ है। लघुनामावली में १०२ दोहों के अन्तर्गत धनंजय कोश, अमरकोश और नन्ददास कृत नाममाला की शैली के अनुकरण पर एक शब्द के पर्यायवाची शब्द दिये गए हैं।[2]

लघुशब्दावली :—यह भी १०० दोहों की कोशात्मक रचना है। कवि को इसकी रचना की प्रेरणा नन्ददास कृत अनेकार्थ मंजरी से प्राप्त हुई थी।[3] लघुशब्दावली का रचनाकाल संवत् १८३४ है।

बोध बावनी :— इसका रचनाकाल संवत् १८३५ है।[4] इसमें अन्य कवियों के भावों पर आधृत ५४ दोहों के अन्तर्गत कृष्णभक्ति और नीतिपरक सिद्धान्तों का कथन किया गया है।

प्रेमपत्री :— प्रेमपत्री संवत् १८३६ की रचना है। इसमें केवल दस दोहे हैं।[5] गोपियों द्वारा कृष्ण को लिखा गया पत्र इसका प्रतिपाद्य है।

---

[1] राम राम वसु दिघु अबद, माघ शुक्ल मधु बान।
कुंज दिन वृन्दावन प्रगति, चारू रूप सुजान॥
—सतहंसी

[2] अब्द खण्ड जुग च्यार तिस, सावन सुक्ला तीज।
'रामहरि' ब्रजवास करि, सदा कृष्ण रंग भीज॥
—लघुनामावली, दो० १०२

[3] वेद राम बसु कलानिधि, संवत् मास जु क्वांर।
सुक्ल पक्ष पून्यो सरद, वृन्दावन गुरुवार॥
—लघुशब्दावली, दो० ९८

[4] अगहन पून्यो संवत् है अष्टादस पैंतीस।
वरषोत्सव बलदेव कौ, वृन्दावन रजनीस॥
—बोधबावनी, दो० ५३

[5] संवत् रस त्रय वसु उदय माधव सुधि रवि राम।
—प्रेमपत्री, दोहा १०

रस पचीसी :—पचीसी नाम होते हुए भी इसकी छन्द संख्या २७ हैं। इसमें रसेश्वरी राधा का रूप-चित्रण किया गया है। रस-पचीसी में उसके रचनाकाल का निर्देश नहीं है।

रामहरि की रचनाओं में उनकी चमत्कार एवं उपदेश वृत्ति पल्लवित हुई है। उनकी काव्य-रचना का उद्देश्य रसात्मक नहीं कहा जा सकता। केवल विषयगत विविधता की ही दृष्टि से उनकी रचनाओं का महत्त्व है।

ललितकिशोरी

परिचय :—ललित किशोरी का वास्तविक नाम शाह कुन्दन था। उनका जन्म संवत् १८२२ की कार्तिक कृष्ण २ को लखनऊ में हुआ था। ललित-किशोरी के पूर्वज लखनऊ के प्रसिद्ध धनाढ्य थे। ललित किशोरी की प्रारम्भिक शिक्षा फारसी भाषा के माध्यम से हुई थी। परन्तु उन्होंने अपने अध्यवसाय से संस्कृत, व्रजभाषा आदि भाषाओं तथा विविध ललित कलाओं का ज्ञान प्राप्त किया था। संवत् १९०६ में ललित किशोरी के प्रथम बार व्रज प्रदेश की यात्रा की। इसके उपरान्त संवत् १९१३ में उन्होंने वृन्दावन में सपरिवार स्थायी रूप से रहना प्रारम्भ कर दिया। वृन्दावन में ललित किशोरी ने चैतन्य सम्प्रदाय के राधारमण जी के गोस्वामी राधागोविन्द से दीक्षा प्राप्त की थी। संवत् १९२५ में उन्होंने 'ललित कुंज' नाम के मन्दिर का निर्माण कराया था। संवत् १९१४ के राष्ट्रीय विप्लव में उन्होंने राजकीय दमन से व्रज की रक्षा की थी, जिससे अंगरेजी सरकार ने उन पर अभियोग चलाया। परन्तु वे अन्ततः उससे मुक्त हो गये। उनका देहावसान संवत् १९३० की कार्तिक शु० २ गुरुवार को हुआ था।[1]

ललित किशोरी के भक्तिनिष्ठ व्यक्तित्व की प्रशंसा उनके समसामयिक भारतेन्दु[2] ने अत्यन्त आदर भाव से की है। राधाकृष्ण गोस्वामी ने भी

---

१ अभिलाष माधुरी, भूमिका, पृ० ६

२ प्रथम लखनऊ बसि, श्री वन सौं नेह बढ़ायौ।
तहँ श्री जुगल स्वरूप धारि, मन्दिर बनवायौ॥
द्वापर कौ सुखरास, इस कलियुग में कीनौ।
सोइ भजन-आनन्द-भाव, सहचरि रंग भीनौ॥
लाखन पद ललित किसोरि का, नाम प्रगटि बिरचै नए।
कुल अग्रवाल पावन करत, कुन्दन लाल प्रगट भए॥

—भारतेन्दु, भक्त-माल छन्द, १८७

ललित किशोरी के प्रति प्रशस्ति परक कथन किया है।[१] इसके अतिरिक्त ललित किशोरी की भक्ति, सात्विक प्रवृत्तियों और व्रजानुराग की अनेक कथाएँ 'अभिलाष माधुरी' की भूमिका में वर्णित हुई हैं।[२]

रचनाएँ :—ललित किशोरी की रचनाएँ तथा पद 'अभिलाष माधुरी' के अन्तर्गत संकलित हैं। इनमें प्रमुख हैं, विनय शृंगार शतक, जुगल विहार शतक, बाराखड़ी और बारामासी। इनके अतिरिक्त ललित किशोरी ने कृष्ण-परक गज़लें भी प्रचुर संख्या में रची। उनकी एक अन्य अप्रकाशित रचना 'रसकलिका' भी कही जाती है। ललित किशोरी के पदों के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि उनके अनुज 'ललितमाधुरी' ने स्वरचित अनेक पदों में अपनी छाप के स्थान पर 'ललित किशोरी' छाप का प्रयोग किया है। किन्तु इस आधार पर ललित किशोरी और ललितमाधुरी के पदों में भेद कर सकना अत्यन्त कठिन है।

ललित किशोरी की रचनाओं तथा पदों में राधा-कृष्ण की माधुर्य भक्ति तथा लीलाओं का वर्णन हुआ है। पद तथा मुक्तक शैली के साथ ही गज़लों की रचना द्वारा उन्होंने कृष्ण-काव्य की परम्परा में फ़ारसी छन्द का सफल प्रयोग किया। वे चैतन्यमत के अंतिम प्रतिष्ठित कवि थे।

राधावल्लभ-सम्प्रदाय

समीक्ष्य युग में राधावल्लभ सम्प्रदाय के अन्तर्गत सबसे अधिक काव्य-रचना हुई। बाबा किशोरीशरण अलि द्वारा सम्पादित 'साहित्य-रत्नावली' में राधावल्लभ सम्प्रदाय के अद्यावधि ज्ञात कवियों और उनकी कृतियों के उल्लेख मिलते हैं, जिनमें से प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित कवियों को सम्मिलित किया गया है :—

---

[१] छाँड़ि बादशाही वैभव, लक्ष्मनपुर त्यागौ।
श्री वृन्दावनवास दृढ़व्रत अति अनुराग्यौ॥
'ललित निकुंज' बनाय, राधिका रमन विराजे।
रासबिलास प्रकाश, लच्छ पद रचना भाजे।
ब्रजराज मध्य समाधि लिय, जुगल भ्रात निर्भय निपुन।
श्री ललित किशोरी, ललितमाधुरी, प्रेममूर्त्ति वृन्दाविपिन॥
—भक्तमाल, राधाचरण गोस्वामी

[२] अभिलाष माधुरी, भूमिका, पृ० ७-८

गोस्वामीहित रूपलाल	प्रेमदास
अनन्य अली	चन्द्रलाल गोस्वामी
रसिकदास	सहचरिसुख
चाचा हित वृन्दावनदास	कृष्णदास भावुक
	हठी जी

गोस्वामी हितरूपलाल

जीवनी विषयक स्रोत :—राधावल्लभ सम्प्रदाय के एक युगान्तरकारी आचार्य थे। गोस्वामी हित रूपलाल का जीवनचरित्र उनके यशस्वी अन्तेवासी चाचा वृन्दावन कृत 'हित रूपचरित्र वेली' और 'हित अन्तर्ध्यान वेली' में सविस्तार वर्णित है। यद्यपि इन रचनाओं में कथन की अपेक्षा प्रशस्ति-गान की प्रधानता है, फिर भी गोस्वामी हित रूपलाल के सम्बन्ध में इतनी सामग्री अन्यत्र नहीं मिलती। इस विचार से इन रचनाओं की उपादेयता स्वयं सिद्ध है।

परिचय :—गोस्वामी हित रूपलाल का जन्म वैसाख कृष्ण सप्तमी को संवत् १७३८ में हुआ था।[१] बाल्यावस्था में राधावल्लभीय भक्त श्री दामोदर सेवक ने इन्हें भगवदोन्मुख होने का स्वप्न दिया। बाल्यावस्था में एक बार अपने पिता और बन्धु के साथ मार्ग में जाते समय भगवद्कृपा से एक मतवाले हाथी के प्रहार से बच गए। दामोदरवर जी के स्वप्न से प्रेरित होकर इन्होंने यमुना तट पर हरिदास नामक किसी साधु से सम्बन्ध स्थापित किया। ग्यारह वर्ष की अवस्था में गोस्वामी रूपलाल ने भक्तिपरक प्रस्तुत पद की रचना की थी।[२]

---

[१] सत्रह सै अड़तीस बर्ष साके बषान किय।
सातै माधव मास कृष्ण पक्ष जन्म तबै लिय॥

—हित रूपचरित्र वेली

[२] भये वर्ष षट पाँच के बानी कृपा उदोत :
पद बरन्यौ यह प्रथम ही जग्यौ सुधा मन सोत॥ —वही

ऐरी मेरी वाणी कौ भंवरवा लोभी कहूँब न जाइ रे।
रेसम कौ बांध्यौ भौंरा उड़ि-उड़ि जाइ रे।
मेरे हियरा कौ बाँध्यौ लोभी कहूँब न जाइ रे।
नेह लताति प्रेम बंगला छवायौ रे।
सेज री के बीच प्रिय आनन्द बढ़ायौ रे।
ता अनन्द के बीच हित रूप दरसायौ रे॥

गोस्वामी रूपलाल के गुरु गोस्वामी हरिलाल थे। उन्हीं से इन्होंने साम्प्रदायिक रस-पद्धति की दीक्षा ली थी।[१] दामोदरवर जी से भी इनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। उनके यहाँ होने वाले सन्त समागम में वे नियमित रूप से सम्मिलित होते थे।[२] चाचा वृन्दावनदास ने गोस्वामी हित रूपलाल की भ्रमण-शील प्रवृत्ति के सन्दर्भ में उनकी गुजरात, बंगाल, जगन्नाथपुरी आदि यात्राओं का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।[३] इन यात्राओं में उन्हें अत्यन्त सम्मान और आदर प्राप्त हुआ था। जब यात्रा के चार वर्ष व्यतीत हो गए और वे वापस नहीं आये तो गोस्वामी हरिलाल को चिन्ता हुई। अतः उन्होंने अपने दो शिष्यों को एक पत्र के साथ गोस्वामी रूपलाल को शीघ्र ही बुला ले आने के लिए भेजा। प्रस्तुत पत्र 'हित रूप चरित्र वेली' में उद्धृत है।[४]

---

[१] श्री हित हरिलाल कृपाल कृपा कर यह मति दीनी।
ताते जुगल विहार नित्य रस भाषा कीनी॥
—सिद्धान्त सार (ह० प्रति, बाबा किशोरीशरण अलि)

[२] श्री दामोदर के पास प्रात ही जाय नित।
अपने बरबर आरत अधिक लगाई चित्त॥
—हित रूपलाल चरित बेलि, (ह० प्रति, बाबा किशोरीशरण अलि)
बैठत रसिक समाज गान नित नेम सौं।
हरि हाँ वृन्दावन हित भाव छकत अति नेम सौ॥ —वही

[३] रामन की इच्छा भइ प्रथम गये गुजरात।
× ×
बहुतु काल विरमे तहाँ, गौड़ देस सचु पाइ।
× ×
पंडे कछु भेंट तहाँ दियौ दरसन जाई पुरी को कियौ॥ —वही

[४] अथ गोस्वामी श्री हरिलाल जी के हस्ताक्षर लिखी जाकी कथा प्रति उतारी, श्री राधावल्लभ जयति।

'स्वति श्री मत परम प्रानप्रिय चितं । रूपलाल जी जोग्य लिखितं । शुभचिंतक हरिलाल, मुकुन्द लाल, घनश्याम लाल के आसीर्वाद दण्डवत वचनो । इहां कुसल है । तुम्हारी कुसल सदा वांछत है । अपरंच पत्री आये बहुत दिवस भये है सु कहौ ते पत्री देखत पत्र कुसल कौ लिखने बाबा तुम वेगि दै आतौ हमारे नैत तुम हुवै । अब बहुत दिन भये साली भरे वेग आवौ संतोस धन है हमारी इष्ट की सप्त है । पुजारी जगन रावल मुकुन्द छब्बू कौ बेटा कृष्णदास कौ लै राधावल्लभ वेग दै लाला कौ लै आवौ । दिन बहुत भये है जुगल हरी जो हरी पुह कर मधुसूदन भृति की दण्डवत । वत्सयालं वा गोपाल अपने सनेही सै साथ आवौ तौ भली है । मिती कार्तिक बदी ॥ सम्वत् १७६७ ॥ पातसाह दिल्ली आए है । गुरु पर मुहीन है । मामी चाची जी भुवा जी अमृती वदनौ नदी नन्हिया विचित्री की असीस बीकानैर के महाजन हैं वैष्णव हैं जैतसी के बन्धु वर्ग हैं । यह कछु चाहै तो रुपैया दीजै इनका गया करवे की आस है ।'

यह घटना संवत् १७६७ की है। पत्र पाते ही गोस्वामी रूपलाल ने वृन्दावन आने के लिए प्रस्थान कर दिया। थोड़े दिन बाद काशी और आगरा होते हुए गुरु सेवा में वृन्दावन आ पहुँचे। संवत् १७९४ में उनकी माता कृष्ण कुँवरि रोगग्रस्त हुईं और उसी में उनका देहान्त हो गया।[1] अपने जीवन के उत्तर-काल में ये दिल्ली और जयपुर गये। जयपुर के तत्कालीन महाराजा जयसिंह ने राधावल्लभ सम्प्रदाय को अवैदिक घोषित कर दिया था। गोस्वामी रूपलाल ने उत्तरस्वरूप कई सैद्धान्तिक ग्रन्थों की रचना करके जयसिंह की धारणा को निर्मूल सिद्ध कर दिया। संवत् १८०० में ये पुनः ब्रज लौट आये और रसेश्वरी राधा की साधना में लीन रहने लगे।[2] संवत् १८०१ में सिंधिया राजा ने

---

[1] सत्रह सै चौरानबे सम्वत कहौं बखानि।
कृष्ण कुंवरि माता कछू दुखित भयौ तब जानि ॥
बैन थके नारी घुटी बैठे सब तेहि काल।
बन्धु वचन ऐसे कहै श्री हित मुकुन्द मणिलाल ॥
—हित रूप चरित्र वेलि, (ह० प्रति, बाबा किशोरीशरण अलि)

[2] ठारह सै पुनि माघ की बरनौ कथा रसाल।
श्री हित रूप जू आइयौ बरसाने तिहि काल ॥
—हित रूप चरित्र वेली, (ह० प्रति, बा० किशोरीशरण अलि)

गोस्वामी रूपलाल को सम्मान दिया था।[1] इसके कुछ ही दिनों के उपरान्त आराध्य युगल की लीलाभूमि वृन्दावन में ही इनका निकुंजवास हुआ। चाचा वृन्दावनदास की हित अन्तर्ध्यान वेली के अनुसार यह घटना संवत् १८०१ की है।[2]

रचनाएँ :—गोस्वामी रूपलाल-कृत प्रभूत साहित्य प्राप्त है। मिश्रबन्धुओं ने सन् १६०२ की खोज रिपोर्ट के आधार पर उनके वाणी, समय-प्रबन्ध, वृन्दावन रहस्य, सर्वतत्त्व सारोद्धार, गनशिक्षा बत्तीसी, सिद्धान्तसार, वंशीयुक्त युगल ध्यान, मानसिक सेवा प्रबन्ध नाम के आठ ग्रन्थों का नामोल्लेख किया है।[3] गोस्वामी ललिताचरण ने उनके स्फुट पदों के अतिरिक्त 'प्रथम विजय चौरासी' और 'द्वितीय विजय चौरासी' नामक दो पद संग्रहों का भी उल्लेख किया है।[4] बाबा किशोरीशरण अलि ने लेखक को गोस्वामी रूपलाल की ८३ रचनाओं की सूची दी है,[5] जो इस प्रकार है :

१—साधु-लक्षण	६—विजयत्व चतुरासी
२—सर्वस्व सिद्धान्त भाषा-सार	१०—विजय चतुरासी
३—आचार्य गुरु सिद्धान्त	११—खिचरी शृंखला
४—रूप सनातन वल्लभाचार्य सहित स्वकीया परकीया चर्चा	१२—श्री हित प्राकट्य
	१३—वंशावलि
५—तिलक-व्यौरो	१४—सेवाधिकार
६—दिव्य रत्नमाला	१५—वर्षोत्सव
७—सिद्धान्त के पद	१६—गुरु शिक्षा
८—समय-प्रबन्ध	१७—गूढ़ ध्यान

---

[1] ठारह से ऊपर वरष एक लग्यौ जबै ईश्वरी जू,
सिंघ राजा दिल्ली तबहि आयौ है।
राजामल आदि दै पठाये है दी मान धान भी,
रूपलाल जी कौ बड़ौ मान दै बुलायौ है।
—हित रूप चरित्रवेली (ह० प्रति, बाबा किशोरीशरण अलि)

[2] संवत विगत अठारह से इक सोम कुंज मग चली ॥
—हित अन्तर्ध्यान वेली (प्रति, बा० किशोरीशरण अलि)

[3] मिश्रबन्धु विनोद, भाग १, पृ० ३२६

[4] गोस्वामी हित हरिवंश सम्प्रदाय और साहित्य, पृ० ४८६

[5] साहित्य रत्नावली, पृ० २५-३२

१८–वृन्दावन रहस्योद्धार
१९–रस-रत्नाकर
२०–मन शिक्षा बत्तीसी
२१–मानसिक सेवा समय प्रबंधोल्लास
२२–सिद्धान्तसागर
२३–वंशीयुक्त ध्यान
२४–साँझी
२५–सर्वतत्व-सिद्धान्त
२६–भक्तिभाव-विवेक रत्नावलि
२७–ब्रजभक्ति भाव-प्रकाश
२८–प्रेमवर्धन पत्रिका
२९–वाणी विलास
३०–मांझ हिंडोरा
३१–भाव ब्यौरो
३२–गुणभेद भक्ति-भाव-विवेक रत्नावलि
३३–सम्प्रदाय निर्णय
३४–गुरु सिद्धान्त
३५–श्रृंगार समयोल्लास
३६–जलक्रीड़ा प्रबन्धोल्लास
३७–राजयोग क्रीड़ा
३८–संध्या समय क्रीड़ा
३९–सयन-क्रीड़ा
४०–श्री प्रिया-ध्यान
४१–नित्य विहार जुगल ध्यान
४२–गौतमीय तंत्र पंच पंचाशत पटल
४३–राधा-स्त्रोत
४४–साधव-लीला विलास
४५–नित्य वंशी स्वरूप प्रागट्य
४६–वंशी अन्तार कलि प्रगट विलास
४७–रंगीलाल प्रागट्य वर्णन
४८–रघुपति वर प्रसाद
४९–रुक्मिणी वर प्रसाद
५०–कृष्णदासी मनोहारी प्रसाद
५१–राधिका वर मंत्र प्राप्ति
५२–श्री राधावल्लभ तथा चतुरासी-प्रागट्य
५३–गोपाल भट्ट परिचय
५४–मादी सेवा प्रगट
५५–श्री राधावल्लभ अभिषेक
५६–श्री नरवाहन परिचय
५७–हरिवासरे महाप्रसाद श्री कृष्ण आज्ञानुसार
५८–रूप सनातन भट्ट त्रय प्रति जुगल दर्शन प्राप्ति
५९–श्री बांकेबिहारी प्रागट्य
६०–श्री राधावल्लभीय सिद्धान्त निर्णय
६१–व्यास परिचय
६२–रूप सनातन सह बल्लभाचार्य वर्णन
६३–सिद्धान्त कोष प्राप्ति
६४–श्री हरिदास स्वामी को इतिहास
६५–पदावलि वसंत धमार
६६–वर्षोत्सव के पद
६७–हित रूपमाला
६८–सिद्धान्त पद
६९–मानमोचन-स्तोत्र
७०–मुख्य सखी वर्णन
७१–रसवाणी
७२–दानवेली
७३–रामनवमी

७४–नृसिंह चतुर्दशी	७९–निकुंज-केलि-लीला
७५–प्रेम वैचित्री लीला	८०–हित प्रताप परिचय
७६–मुरली गान-लीला	८१–पंचाध्यायी
७७–वन-लीला	८२–हित प्राकृट प्रमाण
७८–चर्यानिवारण	८३–हरिवंश नामावलि

इस विस्तृत सूची की अनेक रचनाएँ उत्सव, सिद्धान्त आदि से सम्बद्ध विस्तृत पद अथवा पदों के शीर्षक मात्र हैं। 'रस रत्नाकर' नामक रचना का 'सिद्धान्त-रत्नाकर' में संग्रहीत रसिकदास के 'रससार' से विषय और भाषा की दृष्टि से अद्भुत साम्य है।[१] अतएव उसकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में सन्देह है। परन्तु जब तक गोस्वामी रूपलाल-कृत समस्त रचनाएँ प्रकाश में नहीं आ जातीं तब तक उनकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। प्रस्तुत सूची में लेखक को यत्न करने पर भी केवल निम्नलिखित रचनाएँ ही देखने को मिल सकीं––

१—वृन्दावन रहस्य सर्वस्व-सार	४८ दोहा
२—सिद्धान्त-सार	८६ दोहा, २१ चौपाई
३—रस-रत्नाकर	२२ दोहा, २१ चौपाई
४—श्री प्रिया ध्यान	४५ दोहा
५—नित्य विहार जुगल ध्यान	२३ दोहा
६—बानी-विलास	२९ दोहा
७—पद-बन्ध सिद्धान्त	३० पद
८—समय प्रबन्ध	८५ पद
९—विजय चौरासी प्रथम	८४ पद
१०—विजय चौरासी द्वितीय	८४ पद

इनके अतिरिक्त गोस्वामी रूपलाल के राधाकृष्ण के जन्मोत्सव, हरिवंश-कृत बधाई आदि से सम्बन्धित पद बाबा तुलसीदास द्वारा सम्पादित शृङ्गार रस सागर में संकलित हैं।

गोस्वामी रूपलाल राधावल्लभ सम्प्रदाय के प्रतिष्ठित आचार्य थे। इसीलिए उनकी वाणी में सिद्धान्त कथन की प्रधानता मिलाती है। उन्होंने अनेक

---

[१] सिद्धान्त रत्नाकर, पृ० ११-१५

कृतियों की रचना तो विशुद्ध सम्प्रदाय प्रचार के उद्देश्य से की थी। ऐसी रचना का काव्य की दृष्टि से कोई मूल्य नहीं है। किन्तु राधा-कृष्ण की विविध लीलाओं तथा उत्सवों से सम्बन्धित पदों में उनकी काव्य प्रतिभा सुन्दर रूप में अभिव्यक्त हुई है।

अनन्य अली

जीवन-वृत्त :—भक्त कवियों ने किसी भी योजनाबद्ध पद्धति से अपने जीवन के विषय में बहुत कम लिखा है। किन्तु राधावल्लभी कवि अनन्य अली इसके अपवाद हैं। 'स्वप्न-प्रसंग' में प्राप्त आत्म चारित्रक उल्लेख उनकी जीवनी के निर्माण में विशेष सहायक हैं। स्वप्न-प्रसंग में कुल पन्द्रह प्रसंग हैं। अनुसन्धित्सुओं ने इसी के आधार पर अनन्य अली का जीवन परिचय दिया है। इनका वास्तविक नाम भगवानदास तथा अनन्य अली साधना परक उपनाम था। आठ वर्ष की अवस्था में इन्होंने श्री जी के चरणों की शरण ग्रहण की थी। बाल्यावस्था में ही इन्होंने हित हरिवंश-कृत 'हित चौरासी' के चार पद कंठस्थ कर लिये थे। इसके उपरान्त इन्होंने राधावल्लभीय भक्त ध्रुवदास-कृत वृन्दावन सत कंठस्थ किया। उन्होंने लिखा है कि एक दिन मैंने स्वप्न में देखा कि कोई भगवानदास! भगवानदास!! कह कर पुकार रहा है। और कह रहा है कि अब तू उठ और वृन्दावन चल। तदनन्तर इन्होंने हित चौरासी का अध्ययन किया 'चलिहि किन मानिनि कुंज कुटीर' वाले पद के अतिरिक्त शेष समस्त पद कंठस्थ कर लिये। जब अनन्य अली बीस वर्ष के हुए, तो उनके भाई का देहावसान हो गया। इसके उपरान्त इन्हें वृन्दावन प्रवास के प्रेरक अनेक स्वप्न दिखाई दिए। एक बार इन्होंने स्वप्न में देखा कि गोस्वामी गोविन्दलाल उन्हें अविवाहित रहने का उपदेश देते हुये कह रहे हैं कि "तुमको हम वृन्दावन ले चलेंगे।" इससे प्रेरणा प्राप्त कर के संवत् १७५६ ज्येष्ठ बदी द्वितीया को वे वृन्दावन आये। उस समय राधावल्लभ जी का विग्रह वृन्दावन के मन्दिर से कामवन ले जाया गया था। अतएव अनन्य अली को वहाँ जाना पड़ा। कामवन में श्री जी के दर्शन में राधा का विग्रह न देख कर इन्हें आश्चर्य हुआ। श्री जी के दर्शन करते समय इन्हें अपने दिवंगत भाई की उपस्थिति का बोध हुआ तथा उनके पूछने पर उन्होंने श्री जी की प्रेरणा से अपने वृन्दावन आगमन का रहस्य बताया।

इसके उपरान्त अनन्य अली अपने गुरु के दर्शन हेतु कामवन से वृन्दावन चले आये। इन्होंने अपना आवास स्थान ध्रुवदास की कुटी के निकट बनाया। वहाँ रहते हुए अनन्य अली को अपने व्यवसाय सम्बन्धी स्वप्न आने लगे, जिससे इनका मन उद्विग्न रहने लगा। उन्होंने अपने मन की दुविधा गुरु से कही। गुरु ने उन्हें अधिक न सोने का निदान बताया। फलस्वरूप अनन्य अली ने रात्रि जागरण और ध्रुवदास द्वारा रचित लीलाओं का गायन अपना नित्य कर्म बना लिया। एक रात्रि में दामिनी की विलक्षण ज्योति के रूप में अनन्य अली को राधा जी का साक्षात्कार हुआ। वहाँ रहते हुए उन्होंने राधा-सुधानिधि के दो सौ श्लोक कंठस्थ कर डाले, किन्तु सत्रह श्लोक शेष रह गए। तब वे पुनः सावन की तीज को श्री जी के दर्शनार्थ कामवन गए। वहाँ तीन दिन तक निर्जल साधनारत रहने पर इन्होंने राधा जी की कृपाजनित दिव्य वाणी सुन कर उनके आदेश से प्रसाद ग्रहण किया।

दसवें प्रसंग में अनन्य अली ने अपने गुरु की सेविका एक वैश्याणी का उल्लेख किया है, जिसके पिता-भाई मुगलों के सेवक थे। अनन्य अली ने उसका दिया हुआ कुछ भी स्वीकार नहीं किया। एक बार उसके हाथ की बनाई हुई खीर खा लेने से इन्हें बहुत से अशुभ स्वप्न दिखाई दिए। ग्यारहवें प्रसंग में इन्होंने पुनः एक अन्य वणिक के घर के प्रसाद को ग्रहण कर उसके अशुभ प्रभाव का उल्लेख किया है। एक बार श्यामदास नामक गुजराती से कठोर वचन कहने पर इन्हें स्वप्न में यम के दर्शन हुए, जिसके प्रायश्चित स्वरूप अनन्य अली ने उससे चरण पकड़ कर क्षमा याचना की। इनकी भक्तिनिष्ठा से प्रसन्न हो कर राधा जी ने इन्हें 'अनन्य अली' नाम दिया, जिसे उन्होंने अपने साधनागत नाम के रूप में स्वीकार कर लिया। चौदहवें और पन्द्रहवें प्रसंगों में भी अनन्य अली की उत्कृष्ट भक्ति-भावना का ही आभास मिलता है।

यद्यपि स्वप्न प्रसंग के साक्ष्य से अनन्य अली के भक्त व्यक्तित्व का ही प्रमुख रूप से परिचय मिलता है, तथापि उनके जीवनवृत्त सम्बन्धी कुछ तथ्य तो स्पष्ट हो ही जाते हैं। स्वप्न प्रसंग के आधार पर २० वर्ष की अवस्था में अनन्य अली का वृन्दावन आगमन संवत १७५९ निश्चित है। इस आधार पर इनका जन्म संवत् १७३९–४० के लगभग होना चाहिए। मिश्र-बन्धुओं ने कदाचित् स्वप्न प्रसंग द्वारा प्रस्तुत समाग्री को ही दृष्टि में रख कर अनन्य अली का समय १७५४ के आस-पास माना है।[१]

[१] मिश्रबन्धु विनोद, द्वितीय भाग, पृ० ५२४

कविता-काल और रचनाएँ :—अनन्य अली की कृतियों के सन्दर्भ में उनके कविता-काल का उल्लेख करते हुए डॉ० विजयेन्द्र स्नातक ने लिखा है कि "इनके ग्रन्थ अनन्य अली की वाणी के नाम से संकलित हैं । प्रियादास नामक किसी व्यक्ति ने इनकी प्रतिलिपि की है, जिसमें २८० पृष्ठ हैं । यह हस्तप्रति गोस्वामी मनोहरलाल जी, अहमदाबाद, के पास सुरक्षित है । लिपि करने का काल संवत् १८५३ लिखा है, रचनाकाल संवत् १७५९ तक है । संवत् १७९० के बाद का कोई ग्रन्थ नहीं मिलता । अतः इसके आस-पास ही इनका निधन-काल समझना चाहिए ।[1] 'अनन्य अलो की रचनाओं के इसके अतिरिक्त भी अन्य संग्रह 'अनन्य अली की वाणी' और 'लीलादरस-विलास' नाम से प्राप्त हैं । 'लीलादरस विलास' की एक हस्तलिखित प्रति नागरी प्रचारिणी सभा के संग्रहालय में सुरक्षित है । 'लीलादरस विलास' में उसका पूर्ति संवत् १७८२ दिया हुआ है ।[2] अतएव अनन्य अली का काव्य-काल सामान्यतया संवत् १७९० तक मान लेना समीचीन प्रतीत होता है ।

बाबा किशोरीशरण अलि ने अनन्य अली की ७६ रचनाएँ बताई हैं । विजयेन्द्र स्नातक ने बाबा वंशीदास के संग्रह के आधार पर उनकी ७९ रचनाओं की सूची देते हुए लिखा है कि बाबा वंशीदास के संग्रहीत पदों की संख्या ३४५६ है । यदि समस्त ग्रन्थों की पद संख्या उपलब्ध हो सके तो वह लगभग ६००० होगी ।[3] नागरी प्रचारिणी सभा की 'लीलादरस विलास' वाली प्रति में अनन्य अली द्वारा रचित लीलाएँ संग्रहीत हैं । वस्तुतः अनन्य अली द्वारा रचित राधा-कृष्ण की विविध लीलाओं से सम्बधित-पदों एवं छन्दों के संग्रह ही स्वतंत्र रचनाओं के नाम से अभिहित किये गये हैं । यहाँ हम उनकी ७९ प्राप्त रचनाओं की सूची प्रस्तुत कर रहे हैं :—

रचनाएँ	पद एवं छन्द संख्या
१–स्वप्न प्रसंग (वार्ता)	
२–जीव प्रकार	११३
३–मन विनती लीला	१२६

---

[1] राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य, पृ० ४९१

[2] संवत् सत्रह सौ परे साठि अरु ठारह चार ।
माघ मास की त्रैदसी सुक पक्ष सुमवार ॥
–हस्त प्रति (ना० प्र० सभा, काशी)

[3] राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य, पृ० ४९२

४–आशा अष्टक	८ दोहे
५–श्री हरिवंशाष्टक	८ चौपाई
६–वृन्दावन दास की प्रथम अवस्था	१०३
" " द्वितीय अवस्था	१०६
" " तृतीय अवस्था	३३ त्रिपदी छन्द
क–श्री हितूज के चरननि की नेम	८
ख–श्री हितूज के नाम की नेम	८
ग–श्री हितूज के बानी कौ नेम	१०
घ–श्री रसिक अनन्य संग को नेम	१०
ङ–जीविका को नेम	४
च–श्री राधावल्लभ सो नेम	७
छ–श्री वृन्दावन को वास	१५
चतुर्थ अवलोकन अवस्था	१०० दोहे-सवैया

क–वसन्त ऋतु ख–ग्रीष्म ऋतु
ग–फूल रचना घ–गेंद खेल
ङ–प्रेम सरोवर क्रीड़ा च–पावस ऋतु
छ–शरद ऋतु ज–हिम ऋतु झ–सिसिर ऋतु
क–प्रार्थना

७–श्री चरण प्रताप लीला	७६
८–श्री क्रीड़ासर खेल	१११ दुपाई
९–प्रतिबिम्ब लीला	११८ दुपाई-दोहे
१०–श्री लाडिली जू की नामावलि	१२७ " "
११–श्री लाल जू नामावलि	३५१
१२–श्री हरिवंश जू की नामावलि	८१
१३–वृन्दावन रजधानी लीला	१०
१४–वंशी विलास लीला	६५ दोहे चौपाई
१५–परिचर्या विलास लीला	४४ दोहे

१६–षट् ऋतु लीला	६	१७–स्वप्न लीला	१०
१८–रहसि वचन विलास लीला	४३	१९–सुरत्रांत विलास लीला	३७
२०–मंगल विनोद लीला	२२	२१–कुंज विलास लीला	
२२–सिंगार विलास लीला		२३–जुगल सभा विनोद लीला	

२४–राज भोज लीला		२५–उत्थापन समय विलास	६५
२६–संध्या समय विलास		२७–शयन समय विलास	
२८–वसंत ऋतु लीला	३८	२९–ग्रीष्म ऋतु लीला	७७
३०–पावस ऋतु लीला	१२०	३१–शरद् ऋतु लीला	१३२
३२–सिसुर ऋतु लीला	४४	३३–हिम ऋतु लीला	३८
३४–फूल रचना विलास	२०	३५–झीने चीर शोभा विलास	५४
३६–चंद चित्र		३७–महाशील विनोद विलास	३६
३८–स्नान विलास लीला		३९–महाशीतल विनोद विलाल लीला	
४०–चंग खेल विलास		४१–जल-नौका विलास लीला	
४२–जल-विहार लीला	१०४	४३–चरन अष्टक	८
४४–नवल जुगल विनोद लीला	२०	४५–ब्याह विनोद लीला	८९
४६–चौपड़ खेल लीला	७४	४७–शतरंज खेल विलास	२८
४८–थल नौका खेल लीला	८	४९–गेंद खेल लीला	१३२
५०–भड्डू खेल विलास लीला	८	५१–आँख-मिचौनी खेल (अपूर्ण)	३२
५२–वचन विलास	१०	५३–हास विलास	१०१
५४–विरह विलास	८०	५५–मगन विलास लीला	१०४
५६–छबि चन्द्रावली लीला		५७–संजोग विलास लीला	७७
५८–लज्जा विलास	४५	५९–मान विलास	
६०–दान विनोद लीला		६१–रूप विलास	
६२–सेवा विलास		६३–छबि लता विलास लीला	
६४–ललिता विलास लीला		६५–माधुरी लता विलास लीला	९७
६६–खमी लता विलास लीला		६७–लावण्य प्रभा विलास लीला	
६८–कंचन लता विलास		६९–चंद्रलता लीला	
७०–मृदुता विलास लीला	७२	७१–सुकुमारता की सीमा	७२
७२–मोहनता की सीमा		७३–नवल विलास लीला	२८
७४–विमल विलास लीला		७५–सौरभ विलास लीला	४०
७६–चातुर्य विलास लीला	३१	७७–भोरता विलास लीला	७१
७८–नेत्र विलास लीला	३९	७९–दरस विलास लीला	८८

इन रचनाओं के अतिरिक्त अनन्य अली द्वारा रचित फुटकल दोहे भी मिलते हैं।

बाबा बंशीदास के संग्रह की उपर्युक्त सूची तथा नागरी प्रचारिणी सभा की 'लीला दरस विलास' वाली प्रति में संकलित रचनाओं की सूची में पूर्ण साम्य है। विविध लीलाओं के शीर्षकों में मात्र इतना अन्तर है कि 'लीला दरस विलास' वाली प्रति में 'विलास' के अन्त्य साम्य पर अधिकांश लीलाओं का नामकरण हुआ है तथा 'दरस विलास लीला', जो उपर्युक्त सूची की अन्तिम रचना है, वही सभा की प्रति में अनन्य अली की सम्पूर्ण रचनाओं का सामान्य शीर्षक है। अनन्य अली कृत राधा-कृष्ण की विविध लीलाओं तथा बधाई के पद बाबा तुलसीदास द्वारा सम्पादित श्रृंगार रस सागर में भी संग्रहीत हैं।

राधा-कृष्ण की विलास लीलाएँ नित्य विहार आदि अनन्य अली की रचनाओं की प्रतिपाद्य हैं। उनके द्वारा वर्णित अधिकांश लीलाएँ उत्सवपरक हैं।

रसिकदास

परिचय और रचना-काल :—मध्ययुगीन कृष्ण-काव्य की परम्परा में रसिकदास नाम के अनेक भक्त कवियों के उल्लेख मिलते हैं। रसिकेश्वर कृष्ण के प्रति दैन्यानुभूति का अभिव्यंजक होने के कारण इस नाम ने भक्ति सम्प्रदायों में लोकप्रियता प्राप्त कर ली। राधावल्लभ सम्प्रदाय में ही इस नाम के पाँच भक्तों का उल्लेख मिलता है।[१] प्रस्तुत विवेचन में जिन रसिकदास का उल्लेख किया जा रहा है, वे राधावल्लभीय गोस्वामी धीरीधर के शिष्य थे।[२] चाचा वृन्दावनदास ने 'रसिक परिचयावली' के एक छप्पय में रसिकदास को भेलसावासी बताते हुए उनके व्यक्तित्व की अत्यन्त सराहना की है।[३] रसिकदास की कृतियों

---

१ राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य, पृ० ४९९-५००

२ प्रनऊ प्रभु सुभ श्री हरिवंशा। तिन पद पद्म रसिक अवतंशा॥
छंद हरि श्री धीरीधर चरना। मंगल रूप अमंगल करना॥
—प्रसादलता (प्रतिलिपि, बाबा किशोरीशरण अलि)

३ प्रथम भेलसा वास बहुरि वृन्दावन बसिबौ।
श्री राधावल्लभ इष्ट भजन में सदा हुलसिबौ॥
रहत भावना मगन प्रेम भरि आवत हीयौ।
गुरु पद्धति रसरीति विचार रसिक सुख दीयौ॥
श्री हरिवंश प्रसाद तें चित्र कुंडा केलि कौतुक अरयौ।
गुपत गांस रस मिथुन कौ श्री रसिकदास उर सचि धरयौ॥
—रसिक परिचय वाली, (प्रतिलिपि, बाबा किशोरीशरण अलि)

प्रसाद लता (संवत् १७५४) तथा रस कदम्ब चूड़ामणि (संवत् १७५३) में निर्दिष्ट रचनाकाल के आधार पर इनका काव्यकाल संवत् १७४३ से संवत् १७५३ तक निश्चित होता है। रसिकदास के गुरु धीरीधर का समय संवत् १६७० से १७६० तक है। अतएव रसिकदास का भी समय विक्रम की आठरहवीं शती उत्तरार्द्ध तक माना जा सकता है।

रचनाएँ :—रसिकदास की कुछ रचनाओं के अतिरिक्त सभी के नाम के साथ 'लता' शब्द संयुक्त मिलता है। डॉ० विजयेन्द्र स्नातक[1] और गोस्वामी ललिताचरण[2] ने रसिकदास-कृत २० लताओं तथा 'रसकदम्ब चूड़ामणि' नामक एक अन्य ग्रन्थ का उल्लेख किया है। राधावल्लभीय ग्रन्थ सूची में उनकी ३१ रचनाएँ बताई गई हैं।[3] इस सूची का आधार मिश्रबन्धु विनोद प्रतीत होता है। दोनों में केवल इतना अन्तर है कि मिश्रबन्धु विनोद में दी गई सूची में बानी नामक एक अन्य रचना भी सम्मिलित की गई है, जो वस्तुतः कोई स्वतंत्र कृति न हो कर रसिकदास की समस्त रचनाओं का बोधक शब्द है।[4] नीचे रसिकदास की सम्पूर्ण रचनाओं की सूची प्रस्तुत की जा रही है। रचनाओं का आकार निर्देश बाबा किशोरीशरण अलि वृन्दावन के संग्रह के आधार पर किया गया है :—

१—हिताष्टक	
२—रसकदम्ब चूड़ामणि, दो भाग (सं० १७५३)	११६ पद
३—मनोरथ लता (मात्रिक और वर्ण वृत्त)	११७ पद, ३४ छन्द
४—प्रसाद लता	
५—सौन्दर्य लता	१४२ दोहे
६—माधुर्य लता (संवत् १७४४)	१०१ दोहे
७—सौभाग्य लता	४७ सवैये, कवित्त, दोहे
८—विनोद लता	६६ पद, ४१ कवित्त, ८ दोहे
९—तरंग लता	२२ दोपाई
१०—विलास लता	७४ दोहे, चौपाई, कुंडलिया
११—सुखसार लता	४० पद

---

[1] राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य, पृ० ५०१

[2] गोस्वामी हितहरिवंश : सम्प्रदाय और साहित्य, पृ० ४७५

[3] साहित्य-रत्नावली, पृ० २३-२५

[4] मिश्रबन्धु विनोद, भाग २, पृ० ४५६

१२–अद्भुत लता	५७ पद
१३–कौतुक लता	६० पद
१४–रहस्य लता	४६ पद
१५–रतन लता	४५ पद
१६–अतन लता	२७ पद
१७–रतिरंग लता (संवत् १७४६)	३४ पद
१८–हुलास लता	२४ पद
१९–आनन्द लता	४४ पद ५९
२०–शुकसार लता	१०१ पद
२१–चारु लता	५४ पद
२२–भक्ति सिद्धान्त मणि	
२३–पूजा विलास	
२४–पूजा विलास	
२५–एकादश महात्म्य	
२६–कुंज कौतुक	
२७–रससार	
२८–ध्यान लीला	
२९–वाराह संहिता	
३०–अष्टक	
३१–अभिलामलता	२७ कुंडलियाँ

बाबा तुलसीदास द्वारा सम्पादित शृंगार रस सागर में भी रसिकदास के उत्सवों एवं बधाई के पद संकलित हैं। रसिकदास की रचनाओं में राधाकृष्ण की विविध प्रेमलीलाओं का वर्णन हुआ है। रचनाओं के शीर्षकों से उनकी वर्ण्य-वस्तु का बोध स्वतः हो जाता है।

चाचा वृन्दावनदास

जन्म और देहावसान संवत् :—चाचा वृन्दावनदास के जीवन वृत्त पर उनके आत्मचारित्रिक उल्लेखों से आंशिक प्रकाश पड़ता है। परन्तु प्राप्त सामग्री से उनके समुचित जन्म एवं देहावसान संवतों के निर्धारण में अधिक सहायता नहीं मिलती। मिश्रबन्धुओं ने चाचाजी का रचनाकाल संवत् १७७० माना

है।[१] सम्भवतः उसी आधार पर वियोगी हरि[२] और आचार्य शुक्ल[३] ने भी चाचाजी का जन्म संवत् १७६५ के लगभग स्वीकार किया है। डॉ० विजयेन्द्र स्नातक ने चाचाजी की संवत् १८०० की एक रचना 'अष्टयाम' के आधार पर उनका जन्म संवत् १७५० से १७६५ के बीच होने की सम्भावना व्यक्त की है।[४] चाचा जी-कृत 'हित अन्तर्ध्यान वेली' के अनुसार गोस्वामी हित रूपलाल का गोलोकवास संवत् १८०१ है। उस समय तक चाचा जी सम्प्रदाय में पर्याप्त प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके थे। चाचा जी की एक अन्य रचना 'हित रूप-चरित्र बेलि' से ज्ञात होता है कि संवत् १७९४ के पूर्व ही वे गोस्वामी रूपलाल से दीक्षा प्राप्त कर चुके थे। दीक्षा के समय यदि उनकी अवस्था २०-२५ वर्ष के लगभग मानें, तो संवत् १७६५-७० के आस-पास उनका जन्म संवत् पड़ना चाहिए। परन्तु संवत् १७६५ के पूर्व उनके जन्म की सम्भावना तर्कसंगत नहीं प्रतीत होती।

चाचा जी के जन्म संवत् के समान उनके देहावसान संवत् का भी कोई निश्चित उल्लेख नहीं मिलता। फलस्वरूप हमें इनकी कृतियों के रचनाकाल का आश्रय लेना पड़ता है। 'रसिक परिचावली' चाचा जी की अन्तिम रचना है। परन्तु 'सेवक जस विरुदावलि' के उपरान्त यह रचना अपूर्ण है। 'सेवक जस विरुदावली' का रचनाकाल संवत् १८४४ है। इस आधार पर यह अनुमान असंगत न होगा कि संवत् १८४४ के आस-पास ही चाचाजी की दिव्य-धाम यात्रा हुई होगी।

चाचाजी वृन्दावनदास की जाति, वंश और जन्म-स्थान के सम्बन्ध में भी ऐसी सामग्री प्राप्त नहीं है, जिसके आधार पर इनके सम्बन्ध में कोई निर्णय लिया जा सके। 'लाड़सागर' की भूमिका में चाचाजी की वाणी के आधार पर उन्हें ब्राह्मण कहा गया है।[५] परन्तु भूमिका लेखक ने एतद्विषयक कोई भी प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया है। व्रज की जनश्रुतियों के अनुसार चाचाजी कायस्थ थे तथा कुछ लोग उन्हें वैश्य भी बताते हैं।[६] लाड़सागर की भूमिका

---

१ मिश्रबन्धु विनोद, भाग २, पृ० ६५९

२ ब्रज माधुरीसार, पृ० २१५

३ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३५५

४ राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य, पृ० २१३

५ लाड़सागर, भूमिका, पृ० १०५

६ राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य, पृ० ५१३

में चाचाजी को गृहस्थ बताते हुए संवत् १८०१ में उनका विरक्त होना लिखा गया है।[1] परन्तु चाचाजी की वाणी में उनके गृहस्थ होने के संकेत नहीं मिलते और न संवत् १८०१ में उनका विरक्त होना ही सिद्ध होता है। 'हित रूप चरित बेलि' से ज्ञात होता है कि वे संवत् १७९४ के पूर्व ही गोस्वामी रूपलाल से दीक्षा ले चुके थे तथा संवत् १७९४ में जब रूपलाल की माता कृष्ण कुंवरि अस्वस्थ हुईं तो उस समय चाचाजी भी विद्यमान थे।[2] अतः संवत् १७९४ तक चाचाजी के गृहस्थ होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

जन्म-स्थान :—वृन्दावनदास के जन्म-स्थान का प्रश्न भी उलझा हुआ है। यद्यपि चाचाजी का ब्रजानुराग उनकी रचनाओं में अनेक स्थलों पर अभिव्यक्त हुआ है, तथापि यह निर्विवाद रूप से नहीं कहा जा सकता कि मूलतः वे ब्रज के ही निवासी थे अथवा किसी अन्य स्थान से आकर वहाँ रहते थे। रामचन्द्र शुक्ल ने उनका निवास-स्थान पुष्कर क्षेत्र बताया है।[3] परन्तु डॉ० विजयेन्द्र स्नातक ने आचार्य शुक्ल के मत का निराकरण करते हुए लिखा है कि "आर्तत्रिका में आपके कृष्णगढ़ से पुष्कर आने का उल्लेख तो है, किन्तु पुष्कर को अपना जन्म-स्थान अथवा निवास-स्थान कहीं नहीं लिखा। कृष्णगढ़ नरेश बहादुर सिंह के पास इनका रहना तो रचनाओं से सिद्ध होता है, किन्तु शैशव अवस्था अथवा युवावस्था में उनके पास रहने का कोई संकेत नहीं है।"[4] वस्तुतः प्रामाणिक सामग्री के अभाव में चाचाजी की जाति एवं वंश के समान उनके जन्म-स्थान के विषय में भी कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। रचनाओं के अन्तःसाक्ष्य से केवल इतना ज्ञात होता है कि उनके जीवन का अधिकांश ब्रजमण्डल में व्यतीत हुआ था।

रचनाएँ :—चाचा वृन्दावनदास की रचनाकाल सहित सर्वप्रथम प्राप्त रचना 'अष्टयाम समय प्रबन्ध' संवत् १८०० कार्तिक शुक्ला एकादशी की है।

---

[1] लाड़सागर, भूमिका, पृ० ५

[2] सत्रह सै चौरानबे सम्वत् कहौ बखानि।
कृष्ण कुंवरि माता कछू दुखित भयो तब जानि।३०६।
नैन थके नारी छुटी बैठे सब तेहिकाल।
बंधु वचन ऐसे कहे श्री हित मुकुंद मणिलाल।।३०७।।
—हितरूपचरित्र बेलि (प्रति बाबा किशोरीशरण अलि, वृन्दावन)

[3] हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३५५

[4] राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य, पृ० ५१४

गोस्वामी रूपलाल से उन्होंने संवत् १७९४ के पूर्व दीक्षा प्राप्त कर ली थी। अतएव यह अनुमान असंगत न होगा कि इसी के आस-पास उनकी काव्य-साधना भी प्रारम्भ हुई होगी। परन्तु संवत् १८०० के पूर्व की कोई रचना प्राप्त न होने के कारण उनके द्वारा स्फुट पदों के रचे जाने की ही अधिक सम्भावना प्रतीत होती है। वृन्दावनदास की रचना अष्टयाम के केलिदास नामक लेखक का भी उल्लेख मिलता है। उसके सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि वह चाचाजी के पदों को लिपिबद्ध करने का कार्य करता था। केलिदास के सम्बन्ध में कुछ स्फुट उल्लेख भी प्राप्त होते हैं, जिनसे उसकी वृन्दावनदास से घनिष्ठता का बोध होता है।[१]

आलोच्यकालीन समस्त कृष्ण-भक्त कवियों में परिमाण की दृष्टि से चाचा वृन्दावनदास का साहित्य सर्वाधिक है। बाबा किशोरीशरण अलि ने उनके १५८ ग्रन्थ बताये हैं।[२] रचनाओं के परिमाण की प्रचुरता के ही कारण सूरदास के समान चाचाजी के सम्बन्ध में भी यह जनश्रुति है कि उन्होंने सवा लाख पदों की रचना की थी।[३] इस जनश्रुति का आधार चाचा जी की रचना 'मन प्रबोध बेली' (सं० १८१३) के लेखक केलिदास का उल्लेख है।[४] राधाचरण गोस्वामी ने तो उनके द्वारा विरचित चार लाख पदों की

---

[१] (क) काम क्रोध मद रिपु प्रबल मैं न छिद्र पावै जु कोऊ।
महामीन या सिंधु के केलिदास सम ना हिल कोऊ॥

—हीरादास कृत छप्पय से

(ख) भाव-भाव निज गुरुन की बानी लिखि रसिकन सुख दियौ।
श्री गुरु अज्ञा पाइक निपुन केलिदास राम को वियौ॥

—वही

[२] साहित्य रत्नावली, पृ० ४९-५९ तक

[३] ब्रज निकुंज रस अमर कह्यौ सुनि मुसकति दंपति।
सवा लक्ष बानी रचित दुलराये राधापति॥

—हरीदास कृत छप्पय से।

[४] हित वृन्दावन तिनकौ भृत्य। वाणी सवा लक्ष तिन कृत्य।

—मनप्रबोध बेली से

बात कही है।[१] इसी भाँति सम्प्रदाय में उनके ३६० अष्टयाम लिखने की भी किंवदन्ती प्रचलित है। परन्तु चाचाजी-कृत कुल १४ अष्टयाम ही प्राप्त हो सके हैं। उन्होंने स्वयं भी इतने ही अष्टयाम स्वरचित बताये हैं।[२] उनके द्वारा विरचित साहित्य की व्यापकता का उल्लेख करते हुए डॉ० विजयेन्द्र स्नातक ने लिखा है "कि हमने अपनी शोध में कुछ हस्तलिखित पुस्तकें ऐसी देखी हैं जिनके आधार पर यह अनुमान तो सहज ही में होता है कि चाचाजी के दैनिक नित्य कर्म में वाणी रचना उसी प्रकार समाविष्ट थी जैसे श्री राधावल्लभ लाल की सेवा-पूजा। कभी-कभी रात्रि को भी मन की तरंग आने पर यह गायन कर उठते थे। किंवदन्ती है कि चाचाजी जब कहीं बाहर घूमने निकलते तब भी लेखक केलिदास उनके साथ रहता था। उनके जीवन का सबसे अधिक आनन्द विधायक कार्य पद-रचना ही था। अतः लक्षाधिक पद-रचना की बात अतिशयोक्ति मात्र नहीं हो सकती। हाँ, चार लाख पद-रचना का कोई भी प्रमाण अद्यावधि नहीं उपलब्ध हुआ है।"[३] यद्यपि, इस प्रकार के समस्त अतिशयोक्ति-परक उल्लेखों का आधार चाचाजी-कृत साहित्य का असाधारण विस्तार ही है, तथापि चाचाजी द्वारा सवा लाख पदों की रचना के कथन को भी पूर्णतया अतिशयोक्ति शून्य नहीं माना जा सकता। उनके प्राप्त साहित्य में छन्दों एवं पदों की कुल संख्या २० सहस्र के लगभग है, जिनमें चौपाई, दोहा, सोरठा,

---

[१] सरस मधुर अति ललित दिव्य कोमल पद श्रेणी।
चार लाख तें अधिक सकल जग विस्मय दैनी।
पद-पद भाव अपार सार ग्रन्थन कौ भाख्यौ।
परम विषाद अति सूक्ष्म रूप हित कौ अभिलाख्यौ।
श्री रूपलाल गुरु कृपा ते हित वानो हारद कह्यौ।
हित वृन्दावन मधुर रस हित वृन्दावन नीचे कह्यौ॥

—नव भक्तमाल (राधाचरण गोस्वामी)

[२] लीला सांवर गौर की यह सागर बिनुपार।
चौदह रतन प्रकट भये औरों भरे अपार।
कढ़ै जु काढ़त कढ़े मित कर सबै न कोय।
कृपा इष्ट गुरु की वली सो लावे तु टटोय॥

—अष्टयाम, चाचा वृन्दावनदास।

[३] राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य, पृ० ५१२

दुपई आदि छोटे-छोटे छन्द भी सम्मिलित हैं। यदि इन्हें ४ चरणों के छन्दों एवं पदों के अनुमानित परिमाण में बदला जाय तो यह संख्या ५ हजार से अधिक नहीं होगी। अतएव चाचा वृन्दावनदास के कृतित्व की व्यापकता को स्वीकार करते हुए भी एतद्विषयक संख्यावाचक उक्तियों को अतिशयोक्ति मानना ही तर्कसंगत प्रतीत होता है।

चाचा वृन्दावनदास की अधिकांश रचनाओं में उनके रचनाकाल का निर्देश हुआ है, जिससे रचनाओं के कालक्रम निर्धारण में पर्याप्त सहायता मिलती है। परन्तु कुछ रचनाएँ ऐसी भी हैं जिनमें रचनाकाल का निर्देश नहीं हुआ है। इस प्रकार उनकी रचनाओं को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है, रचनाकाल सहित कृतियाँ और रचनाकाल रहित कृतियाँ :—

रचनाकाल सहित कृतियाँ—

नाम	संवत्	पूर्णतिथि
१—अष्टयाम (समय प्रबन्ध)	१८००	कार्तिक शुक्ला एकादशी
२—हरि प्रताप वेली	१८०३	माघ बदी सातें
३—सत्संग महिमा वेली	१८०४	माघ कृष्ण त्रयोदशी
४—ब्रज विनोद वेली	१८०४	माघ शुक्ल सातें
५—करुना वेली	१८०४	ज्येष्ठ कृष्ण पंचमी
६—भक्त सुजस वेली	१८०४	
७—जमुना महिमा वेली	१८०४	पौष सुदी सातें
८—श्री वृन्दावन महिमा वेली	१८०५	माघ शुक्ल एकादशी
९—रसना हित उपदेश वेली	१८०५	पूस बदी एकादशी
१०—मन उपदेश वेली पद बन्ध	१८०९	पौष शुक्ल त्रयोदशी
११—भक्त प्रसाद वेली पद बन्ध	१८०९	पौष शुक्ल त्रयोदशी
१२—अष्टयाम समय प्रबन्ध	१८१०	श्रावण सुदी तीज
१३—अष्टयाम समय प्रबन्ध	१८१०	माघ वसन्त पंचमी
१४—ब्रज प्रसाद वेली पद बन्ध	१८११	माघ सुदी पून्यौ
१५—श्री राधावल्लभ जन्मोत्सव वेली	१८०२	भादौं सुदी
१६—वृन्दावन अभिलाष वेली	१८१२	आषाढ़ शुक्ल एकादशी
१७—श्री हरिवंश सहस्र नाम	१८१२	अगहन सुदी द्वितीय

१८–मंगल विनोद वेली	१८१२	पौष सुदी तीज
१९–कृपा अभिलाष वेली	१८१२	पौष सुदी एकादशी
२०–राधा प्रसाद वेली	१८१२	माघ शुक्ल पंचमी
२१–श्रीकृष्ण सगाई अभिलाष	१८१२	फाल्गुन शुक्ल एकादशी
२२–श्रीकृष्णपति पशुपति शिक्षा बेली	१८१३	चैत्र सुदी दुतिया
२३–ज्ञान प्रकाश बेली	१८१३	चैत्र शुक्ल नवमी
२४–बारह खड़ी भजनसार वेली	१८१३	चैत्र शुक्ल त्रयोदशी
२५–हित प्रताप बेली	१८१३	माघ कृष्ण त्रयोदशी
२६–हरिकला वेली	१८१३	
२७–मन प्रबोध बेली	१८१३	श्रावण मास
२८–अष्टयाम समय प्रबन्ध	१८१३	माहवदी पंचमी
२९–मन चेतावन बारहमासी	१८१७	ज्येष्ठ शुक्ल तृतीया
३०–हरिकला बेली	१८१७	आषाढ़ बदी एकादशी
३१–जमुनाप्रताप बेली	१८१७	कार्तिक बदी एकादशी
३२–श्री वृषभानुनन्दिनी श्रीनन्दन–ब्याह मंगल बेली	१८१७	कार्तिक बदी एकादशी
३३–राधा जन्मोत्सव बेली	१८१८	
३४–अष्टयाम	१८१८	माघ बदी द्वितीया
३५–हितरूप चरित्र बेली	१८२०	चैत्र शुक्ल पूर्णिमा
३६–दास पत्रिका	१८२०	ज्येष्ठ बदी एकादशी
३७–श्रीकृष्ण गिरि पूजन बेली	१८२०	कार्तिक बदी एकादशी
३८–विमुख उद्धारन बेली	१८२१	चैत्र पूर्णिमा
३९–अष्टयाम समय प्रबन्ध	१८२३	सावन सुदी षष्ठी सोमवार
४०–सुबुद्धि चितवन बेली	१८२४	कार्तिक शुक्ल १३ गुरुवार
४१–वृन्दावन जस प्रकास बेली	१८२५	माधव शुक्ल पक्ष ११
४२–अष्टयाम समय प्रबन्ध भाग	१८२६	मार्गशीर्ष बदी दसमी
४३– ,, ,,	,,	माघ बदी द्वितीया
४४–जुगल प्रीति प्रकास पचीसी पद बन्ध	१८२९	फाल्गुन सुदी सप्तमी
४५–अष्टयाम समय प्रबन्ध	१८३०	माघ कृष्ण नौमी
४६–राधानाम उत्कर्ष बेली	१८३१	वैशाख बदी सप्तमी रविवार
४७–श्रीकृष्ण विवाह उत्कंठा बेली	१८३१	वैशाख बदी सप्तमी रविवार

४८–कृष्ण बाल केलि पचीसो	१८३२	आश्विन कृष्ण दशमी
४९–अष्टयाम समय प्रबन्ध	१८३२	माघ सुदी पंचमी
५०–अष्टयाम समय प्रबन्ध	१८३३	पौष सुदी द्वितीय कृष्णगढ़
५१–आर्त पत्रिका	१८३५	माघौ एकादशी
५२–विवेक पत्रिका	१८३५	आषाढ़ बदी पंचमी
५३–लाडिली की मेंहदी छबि उत्कर्ष– शोडषी पद बन्ध	१८३५	पौष शुक्ला एकादशी
५४–प्रेम प्रकाश शोडषी पद बन्ध	१८३५	पौष शुक्ल त्रयोदशी
५५–राधा लाड़ सागर	१८३५	माघ शुक्ल नौमी
५६–राधागान शोडषी	१८३६	माघौ शुक्ल तृतीय सोमवार
५७–प्रिया रूप गर्व पचीसी	१८३६	ज्येष्ठ बदी सप्तमी
५८–जुगल सनेह पत्रिका	१८३६	कार्तिक सुदी पंचमी
५९–कृष्ण उद्योताष्टक	१८३६	पौष कृष्ण एकादशी
६०–चौदहों अष्टयाम समय प्रबन्ध	१८३७	कार्तिक सुदी सप्तमी
६१–व्रज प्रेमानन्द सागर	१८३८	
६२–प्रेम पहेली	१८३९	अगहन सुदी त्रयोदशी
६३–भक्ति प्रार्थना बेली	१८४०	चैत्र सुदी सातें
६४–राधा रूप प्रताप बेली	१८४०	वैशाख कृष्ण सप्तमी
६५–मन परचावन बेली	१८४०	भाद्र शुक्ला तृतीया
६६–राधारूप नाम उत्कर्ष बेली	१८४०	भाद्र शुक्ला तृतीया
६७–वृन्दावन प्रेम विलास बेली	१८४०	पौष शुक्ल सप्तमी
६८–कृष्ण नाम रूप मंगल बेली	१८४०	पौष शुक्ल दशमी गुरुवार
६९–इष्ट मिलन उत्कण्ठा बेली	१८४१	श्रावण शुक्ल द्वितीया
७०–हरिभक्त गीता	१८४२	चैत्र शुक्ल सप्तमी
७१–लीलासार विचार	१८४३	पौष कृष्ण द्वादशी
७२–सेवक भक्ति परिचयावली	१८४४	कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी गुरुवार
७३–सेवक जस विरदावली	१८४४	मार्गशीर्ष कृष्ण पंचमी गुरुवार

रचनाकाल रहित कृतियाँ :—

१—गुरु परम्परा नामावली
२—कृष्ण चरणाष्टक
३—जमुना स्तव अष्टक
४—कुशस्वली अष्टक
५—फल स्तुति सेवक वाणी
६—स्वामिनी चरण प्रतापाष्टक
७—प्रिया लाड़ अष्टक
८—बारहमासा विहार बेली
९—कृपा मनोरथ पत्रिका
१०—कुंज सुहाग पचीसी
११—मथुरा प्रतापाष्टक
१२—पुष्कर माहात्म्य
१३—करुणा (सिद्धान्त पद)
१४—अभिलाष बत्तीसी
१५—ललिता प्रेम कहानी पद बन्ध अष्टक
१६—हित कृपा विचार सार वेली
१७—तेरहों अष्टयाम
१८—स्वामी चरण चिह्न प्रतापाष्टक
१९—श्रीकृष्ण चरण चिह्न प्रतापाष्टक
२०—शृंगाराष्टक
२१—मंगल छोरी
२२—गौनचार
२३—कवित्त पचीसी
२४—हित कल्पतरु
२५—भ्रमरगीत पद बन्ध
२६—छद्म शोडषी
२७—जोगी लीला

इन रचनाओं के अतिरिक्त चाचाजी-कृत साम्प्रदायिक उत्सवों तथा रासलीला के अन्तर्गत अभिनीत होने वाली छद्मलीलाओं से सम्बन्धित स्फुट पद भी प्रचुर संख्या में प्राप्त हैं। बाबा बंशीदास द्वारा सम्पादित शृंगार रस सागर में चाचा जी के बधाई और विविध उत्सवों से सम्बन्धित पद प्रचुर संख्या में संग्रहीत हैं।

चाचा वृन्दावनदास राधावल्लभ सम्प्रदाय के प्रमुख स्तम्भ माने जाते हैं। तुलसी के समान उन्होंने अपने युग की विविध काव्य-शैलियों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया तथा कृष्ण-लीलाओं के अन्तर्गत अनेक नवीन सन्दर्भों की उद्भावना द्वारा अपनी उर्वर कल्पना शक्ति का परिचय दिया। परिमाण एवं उत्कृष्टता दोनों ही दृष्टियों से आलोच्यकालीन कृष्ण-भक्त-कवियों में उनका स्थान सर्वोपरि है।

प्रेमदास

परिचय :—हित रूपलाल गोस्वामी के शिष्यों में प्रेमदास 'हित-चतुरासी' के प्रसिद्ध टीकाकार के रूप में विख्यात हैं। मिश्रबन्धुओं ने प्रेमदास को हित हरिवंश का अनुयायी बताते हुए इनका समय संवत् १७९१ निश्चित किया

है ।[१] राधावल्लभ सम्प्रदाय में प्रेमदास की प्रतिष्ठा का कारण उनकी हित-चतुरासी की टीका है । मिश्रबन्धुओं की मान्यता का आधार हित-चतुरासी की टीका ही ज्ञात होती है । चाचा वृन्दावनदास-कृत 'हरिकला बेलि' (संवत् १८१३-१८१७) के अनुसार प्रेमदास की मृत्यु अहमदशाह अब्दाली के संवत् १८१४ के आक्रमण में हुई थी ।[२] हित-चतुरासी के रचनाकाल और अब्दाली के आक्रमण के आधार पर प्रेमदास का कविता काल विक्रम की अट्ठारहवीं शती का उत्तरार्द्ध निश्चित होता है ।

रचनाएँ :—मिश्रबन्धुओं ने प्रेमदास की अरिल्ल, हरिवंश चौरासी, रससार संग्रह, प्रेमदास की वाणी नामक चार रचनाएँ बतलायी हैं । बाबा किशोरी-शरण अलि ने इनकी श्रीहितनाम रत्न मणिमाला, टीका चतुरासी जी, पद्यावलि, व्याहलो हित जन्म बधाई और रस सागर संग्रह छह ब्रजभाषा रचनाओं का उल्लेख किया है ।[३] इनमें टीका चतुरासी, पद्यावलि तथा व्याहलो क्रमशः हरिवंश चतुरासी, प्रेमदास की बानी तथा अरिल्ल के नामान्तर मात्र हैं । इस प्रकार किशोरीशरण अलि द्वारा निर्दिष्ट रचनाओं में से केवल 'हित-नाम रत्न माला' और 'रससार संग्रह' ही ऐसी रचनाएँ हैं, जिनका उल्लेख मिश्रबन्धु विनोद में नहीं मिलता । इनके अतिरिक्त प्रेमदास के कुछ स्फुट पद भी प्राप्त होते हैं, जो बाबा तुलसीदास-कृत शृंगार रस सागर में संग्रहीत हैं ।

प्रेमदास की वाणी में मुख्य रूप से राधा-कृष्ण की लीलाओं एवं सेवा-पद्धति का निरूपण हुआ है ।

चन्द्रलाल गोस्वामी

परिचय :—चन्द्रलाल गोस्वामी के जीवनवृत्त सम्बन्धी सूचनाएँ चाचा वृन्दावनदास-कृत रसिक परिचयावली से प्राप्त होती हैं । वे चाचा वृन्दावनदास के समसामयिक थे । राधावल्लभ भक्तमाल में चन्द्रलाल गोस्वामी का जन्म संवत् १८९० बताया गया है,[४] जो उनकी प्राप्त कृतियों में निर्दिष्ट रचनाकाल

---

[१] मिश्रबन्धु विनोद, भाग २, पृ० ६८७

[२] राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य, पृ० ५१६

[३] साहित्य-रत्नावली, पृ० ४५

[४] राधावल्लभ, भक्तमाल, पृ० १३९-४०

को देखते हुए भ्रान्त प्रतीत होता है। चन्द्रलाल गोस्वामी कृत 'वृन्दावन प्रकाश माला' (संवत् १८२४) के आधार पर मिश्रबन्धुओं ने उनका कविता-काल संवत् १८२४ के लगभग माना है।[१] चन्द्रलाल गोस्वामी की दो अन्य रचनाओं–टीका उपसुधानिधि (संवत् १८३५) और भागवतपचीसी (संवत् १८५४)–के आधार पर उन्हें उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध तक विद्यमान माना जा सकता है।

रसिक परचयावली[२] के अनुसार चन्द्रलाल गोस्वामी हिताचार्य के ज्येष्ठ पुत्र गोस्वामी वनचन्द्र की पुत्री किशोरी जी के वंश में जन्मे थे। इनके पिता का नाम गोस्वामी गोवर्धन नाथ था। चन्द्रलाल गोस्वामी ने राधावल्लभीय साधना पद्धति के प्रसार में पर्याप्त योग दिया। इसी उद्देश्य से उन्होंने राधावल्लभ सम्प्रदाय में आकर ग्रन्थों के ब्रजभाषा में पद्यानुवाद एवं भाष्य प्रस्तुत किये।

रचनाएँ :—मिश्रबन्धुओं ने चन्द्रलाल गोस्वामी-कृत निम्नलिखित दस रचनाएं बताई हैं[३] :—

१–वृन्दावन प्रकाश माला (सं० १८२४)
२–उत्कंठा माधुरी (सं० १८३५)
३–भागवतसार पचीसी (सं० १८५४)
४–वृन्दावन महिमा
५–भावना सुबोधिनी
६–अभिलाष बत्तीसी
७–समय पचीसी
८–समय प्रबन्ध
९–स्फुट कवित
१०–भावना पचीसी

मिश्रबन्धु विनोद की इस सूची का आधार सन् १९०९-११ की खोज रिपोर्ट ज्ञात होती है, क्योंकि खोज रिपोर्टों में केवल 'राधा उप सुधानिधि' की

---

[१] मिश्रबन्धु विनोद, भाग २, पृ० ७२

[२] श्री वनचन्द्र सुता सुबश आदरै रसिक जन।
वानी सानी अमी वदन उच्चरत मुदित मन।
हित मारग रसरीति अर्थ विस्तारविचक्षन।
कृपा द्रवित रहै हियौ सुमति संचरयौ भजन धन॥
सुत गोवर्धन नाथ के मूरति सुभाव्य द्दग देखिए।
श्री चन्द्रलाल लाली अधिक, सज्जनता हिये बिसेखिये॥
–रसिक आचार्य परिचयावली, छप्पय सं० २४२

[३] खोज रिपोर्ट, नागरी प्रचारिणी सभा, १९०९-११, सं० ३९-४३

टीका का ही इन रचनाओं के अतिरिक्त उल्लेख मिलता है। राधावल्लभीय संग्रह ग्रन्थों में उनकी ३५ रचनाएँ बताई गई हैं। साहित्य-रत्नावली से उद्धृत चन्द्रलाल गोस्वामी की रचनाओं की प्रस्तुत सूची में प्रत्येक रचना के विषय का निर्देश उसके सामने कर दिया गया है।[१]

रचना का नाम	विषय
१–हिताष्टक	स्तव
२–श्री हित कृपापात्र नामावली	इतिहास
३–अभिलाष बत्तीसी	भक्ति
४–मन अभिलाष बत्तीसी	,,
५–समय पचीसी	,,
६–भावना पचीसी	,,
७–श्री हितोत्सव (अप्राप्त)	बधाई
८–हित शरणागत फल स्तुति	,,
९–सटीक भावना सुबोधिनी	,,
१०–श्री हित कुलोत्सव	,,
११–हृदय सर्वस्व	,,
१२–अष्टयाम	,,
१३–यमुनाष्टक	स्तव
१४–टीका करुणानन्द	,,
१५–टीका वृन्दावन शतक	,,
१६–टीका यमुनाष्टक	,,
१७–टीका उप सुधानिधि	भक्ति
१८–दोहावली	,,
१९–वृन्दावन प्रकाश माला	इतिहास
२०–टीका चतुरासी जी	भक्ति
२१–मंदिर विलास	इतिहास
२२–स्फुट कवित	भक्ति
२३–भागवत पचीसी	,,
२४–चौपर के पद	,,

[१] साहित्य-रत्नावली, पृ० ३२

इस सूची में मौलिक तथा अनूदित दोनों प्रकार की रचनाएँ सम्मिलित हैं। चन्द्रलाल गोस्वामी ने चैतन्यमतानुयायी प्रबोधानन्द सरस्वती के 'वृन्दावन महिमा मृतम' के पाँच शतकों का व्रजभाषा पद्यानुवाद भी किया। यह अनुवाद चन्द्रलाल गोस्वामी के उदार दृष्टिकोण का प्रमाण है। बाबा तुलसीदास द्वारा सम्पादित शृंगार रस सागर में अन्य राधावल्लभीय पदकारों के साथ चन्द्रलाल गोस्वामी-कृत विविध उत्सवों, कृष्ण-लीलाओं तथा बधाई के पद भी संकलित हुये हैं।

सहचरि सुख

परिचय :—सहचरि सुख के निश्चित जन्म एवं देहावसान संवत् अज्ञात हैं। वे सुप्रसिद्ध राधावल्लभीय आचार्य गोस्वामी कमलनयन के शिष्य थे।[१] मिश्रबन्धुओं ने गोस्वामी कमलनयन का समय संवत् १८०० के आस-पास स्वीकार किया है[२], जो सत्य से बहुत दूर नहीं प्रतीत होता। सामान्य रूप से सहचरि सुख का कविता-काल विक्रम की अठारहवीं शती का पूर्वार्द्ध माना जा सकता है। राधावल्लभ भक्तमाल के अनुसार सहचरि सुख पंजाब के रहने वाले थे। वृन्दावन में गोस्वामी कमलनयन के शिष्य हो जाने पर इनकी कविता करने की इच्छा हुई, परन्तु कवित्व शक्ति हीन होने से सफलता प्राप्त नहीं कर सके। कुछ समय उपरान्त सेवक जी के स्वप्नदर्शन एवं आशीर्वाद से रास मण्डल पर इनकी काव्य-वाणी प्रस्फुटित हुई। तदनन्तर इन्होंने माँझों, छन्दों एवं पदावली की रचना की।[३]

रचनाएँ :—'साहित्य-रत्नावली' में बाबा किशोरीशरण अलि ने सहचरि सुख-कृत वर्षोत्सव की स्फुट पदावली, मांझ तथा कवित्त-सवैयों का उल्लेख किया है।[४] सहचरि सुख के पद 'सखी-सुख' की छाप से भी प्राप्त होते हैं। लेखक को सहचरि सुख-कृत स्फुट पदावली और मांझ ही प्राप्त हो सके हैं। बाबा वंशीदास द्वारा सम्पादित शृगार रस सागर में सहचरि सुख के वर्षोत्सव एवं कृष्णलीलाओं से सम्बन्धित पद संकलित हैं।

---

[१] गोस्वामी हित हरिवंश : सम्प्रदाय और साहित्य, पृ० ४६७

[२] मिश्रबन्धु विनोद, भाग २, पृ० ८३५

[३] राधावल्लभ भक्तमाल पृ०, ३९८

[४] साहित्य-रत्नावली, पृ० ३२

सहचरि सुख के पदों में राधा-कृष्ण की लीलाओं के अन्तर्गत लोक तत्त्वों को प्रचुर प्रश्रय मिला है।

कृष्णदास भावुक

कृष्णदास भावुक गोस्वामी विनोदवल्लभ के शिष्य थे।[१] प्रेमदास ने संवत् १७९१ की 'हित चौरासी' की टीका के मंगलाचरण में इनका बड़ी श्रद्धा के साथ स्मरण किया है।[२] इस आधार पर कृष्णदास भावुक का समय विक्रम की अठारहवीं शती का उत्तरार्द्ध माना जा सकता है।

रचनाएँ :—बाबा किशोरीशरण अलि ने कृष्णदास भावुक की वृन्दावनाष्टक, व्यासनन्दन जू की ध्यान, गुरु प्रणाली और पदावली नामक पाँच रचनाएँ बताई हैं।[३] गोस्वामी ललिताचरण ने इनके वृन्दावनाष्टक, हरिवंशाष्टक और बधाई के पदों का उल्लेख किया है।[४] कृष्णदास भावुक के बधाई और कृष्णलीला विषयक पद बाबा वंशीदास द्वारा सम्पादित श्रृंगार रस सागर में संग्रहीत हैं। वृन्दावनाष्टक और हरिवंशाष्टक में आठ-आठ पदों के अन्तर्गत वृन्दावन और गोस्वामी हित हरिवंश का महात्म्य वर्णित हुआ है। व्यासनन्दन जू की ध्यान में प्रसिद्ध भक्त हरिराम व्यास का ध्येय रूप वर्णित है। गुरु प्रणाली में राधावल्लभीय आचार्यों का कथन किया गया है।

कृष्णदास भावुक के राधा-कृष्ण की जन्म-बधाई, उत्सवों एवं लीला विषयक पद राधावल्लभ सम्प्रदाय में पर्याप्त लोकप्रिय हैं।

हठी जी

हठी जी की गणना राधावल्लभ सम्प्रदाय के कवियों में होती है, परन्तु निम्बार्क माधुरीकार ने साम्प्रदायिक आग्रहवश इन्हें निम्बार्कीय कहा है।[५] इनके जीवनवृत्त से सम्बन्धित बहुत कम तथ्य प्रकाश में आ सके हैं। हठी की

---

[१] हित हरिवंश गोस्वामी : सम्प्रदाय और साहित्य, पृ० ४८०

[२] कृष्णदास जू हैं मम प्रानधन
श्री वैचासिक चरण कमल पर अति मगन ॥
—हित चतुरासी की टीका (प्रतिलिपि बाबा कृष्णदास)

[३] साहित्य-रत्नावली, पृ० ४०

[४] हितहरिवंश गोस्वामी : सम्प्रदाय और साहित्य, पृ० ४८०

[५] निम्बार्क-माधुरी, पृ० ६२७

प्रसिद्ध रचना 'राधा-सुधाशतक' के रचनाकाल संवत् १८३७[1] के आधार पर इनका काव्य-काल विक्रम की अठारहवीं शती का पूर्वार्द्ध ज्ञात होता है। हठी जी ने उपर्युक्त रचना में अपने गुरु के प्रति श्रद्धा-भावना व्यक्त करते हुए भी उनका नामोल्लेख नहीं किया है।[2] शिवसिंह ने इनका रचना-काल (संवत् १८८७) बताया है।[3] मिश्रबन्धुओं ने इन्हें ब्रजभाषी और काव्य-रचना की दृष्टि से पद्माकर के समकक्ष माना है।[4]

रचना :—हठी जी की एक मात्र प्राप्त रचना 'राधा-सुधाशतक' है। 'राधा-सुधाशतक' में कुल ११ दोहे तथा १०३ कवित्त और सवैया हैं।

राधा-सुधाशतक में सखियों से सेवित राधा का रीति परम्परा से प्रभावित ऐश्वर्यपूर्ण चित्रण किया है।

हरिदासी सम्प्रदाय

हरिदासी सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक स्वामी हरिदास निम्बार्क स्वामी की परम्परा में आते हैं। हरिदासी सम्प्रदाय के समीक्ष्यकाल के आचार्य कवियों का व्यक्तित्व विशेष महत्त्व रखता है। हरिदासी सम्प्रदाय के आचार्य ललितकिशोरी देव ने टट्टी स्थान की स्थापना की। यह नाम इतना अधिक प्रचलित हुआ कि हरिदासी सम्प्रदाय को टट्टी सम्प्रदाय के नाम से अभिहित किया जाने लगा। इस युग के हरिदासी सम्प्रदाय के निम्नलिखित कवियों और उनकी कृतियों का अध्ययन किया जा रहा है :—

ललितकिशोरी देव	शील सखी
ललितमोहिनी देव	भगवत रसिक
सहचरिशरण	शीतल दास
रूप सखी	रसिकबिहारी बनीठनी
किशोरदास	

---

[1] रिसि सुदेव वसु ससि सहित, निरमल मधु को मास।
माधव तृतीया भृगु निरखि रच्यौ ग्रन्थ सुखदास॥
—राधा-सुधाशतक, दो० १०

[2] गुरु पद हित में धरि के सुम्रत वेद परमान।
हठी कछू बरनन करत राधा रूप निधान॥
—राधा-सुधाशतक, दो० ६

[3] शिवसिंह सरोज, पृ० ५०८

[4] मिश्रबन्धु विनोद, भाग २, पृ० ८०१

ललितकिशोरी देव

महत्त्व एवं स्रोत :—ललितकिशोरी देव हरिदासी सम्प्रदाय के अष्टाचार्यों में सातवें आचार्य थे।[१] सम्प्रदाय के इतिहास में ललित किशोरी देव का व्यक्तित्व अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। ललितकिशोरी देव के परवर्ती कवि किशोरदास ने लिखा है कि उन्होंने सम्प्रदाय की उपासना पद्धति की व्याख्या कर के उसे बोधगम्य बनाया[२] तथा निम्बार्क सम्प्रादय के विकृत होते हुए वातावरण की प्रतिक्रिया स्वरूप हरिदासी सम्प्रदाय के केन्द्र निधुवन को त्याग कर टट्टी स्थान की स्थापना की। ललितकिशोरी देव की जीवनी एवं व्यक्तित्व सम्बन्धी सूचनाएँ किशोरदास कृत 'निजमत सिद्धान्त' सहचरिशरण कृत 'ललित प्रकाश' और आचार्योत्सव सूचनिका, शीलसखी-कृत आचार्य मंगल तथा साम्प्रदायिकों द्वारा रचित बधाई के पदों से प्राप्त होती है।

परिचय :—ललितकिशोरी देव भदावर प्रदेश में चामिल नदी के तट पर हथिकान्त नामक ग्राम में किसी सम्पन्न माथुर ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। इनका वास्तविक नाम गंगाराम था।[३] प्रारम्भ में ही ये व्यावहारिक जीवन से

---

[१] नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में विवेच्य ललितकिशोरी देव को हरिदासी सम्प्रदाय का लिखते हुए भी उन्हें चैतन्य मत के शाह ललितकिशोरी बताया गया है जो अशुद्ध है।

—ना० प्र० स०, खोज रिपोर्ट १९३२-३४।१३४

[२] लोभी लोग भोग के लालच पचि मरते विद्या आचार।
जो न प्रगटती ललित किशोरी तो न प्रगटती नित्य विहार॥

—सिद्धान्त-रत्नाकर, पृ० ११६

[३] देश जो भदावर कौ तामै पास सलिला है,
चामिल है नाम ताको ताके तट ग्राम है।
तासौं हथिकान्त कहैं वास द्विज राजनि कौ,
माथुर कहावै सोइ महिमा कौ धाम है।
ताही कुल माहि भये प्रगट सु गंगा राम,
अति अभिराम स्यामा स्याम ही सौ काम है।
धारी एक टेक बाकी पद्धति अनन्य ताकी,
गुन हू अनेक प्यारे ललित ललाम हैं।

—निजमत सिद्धान्त, पृ० १३७

निर्लिप्त रह कर भजन-भाव में मग्न रहा करते थे। एक बार तीर्थाटन के उद्देश्य से ये जगन्नाथपुरी पहुँचे। वहाँ एक दिन भक्त-माल की कथा के प्रसंग में स्वामी हरिदास का एक छप्पय सुन कर अत्यन्त प्रभावित हुए तथा वृन्दावन जा कर हरिदासी परम्परा के तत्कालीन आचार्य रसिकदेव से उन्होंने दीक्षा ग्रहण कर ली। रसिकदेव ने विधिवत् दीक्षित कर के इनका नाम ललितकिशोरी रक्खा।[१] स्वामी हरिदास के आदर्शानुसार वे केवल कोपीन, कंथा और करुआ का उपयोग करते हुए अत्यन्त विरक्त भाव से वृन्दावन में निवास करते थे।

'निजमत सिद्धान्त' के अनुसार ललितकिशोरी देव का जन्म सं० १७३३ में हुआ था। वे ९० वर्ष तक जीवित रहे। २५ वर्ष की अवस्था में संवत् १७५८ में रसिकदास के देहावसान के अनन्तर वे हरिदासी सम्प्रदाय के आचार्य पीठ पर प्रतिष्ठित हुए। उन्होंने ६५ वर्षों तक इस पद को सुशोभित किया। इस प्रकार इनका देहावसान संवत् १८२३ सिद्ध होता है।[२] अपनी भक्ति-भावना, सत्यनिष्ठा एवं महनीय व्यक्तित्व के कारण सम्प्रदाय में ललितकिशोरी देव को स्वामी हरिदास का द्वितीय रूप कहा गया है :—

प्रेम की पताका दिन राति फहराति जाकी,
बाजत निशान मृदु वृन्दावन धाम है।
श्यामा-श्याम आँखिनि में नाम यश लाखनि में,
भाषनि में जात बलिहारी जन ग्राम है।
परम प्रचण्ड तेज मार्तण्ड हू ते आनि,
शीतल शशी के सम सोभा अभिराम है।
स्वामी हरिदास जू को दुत्तिय अनूप रूप,
ललित किशोरी कैधौं ललित ललाम हैं।[३]

---

[१] निम्बार्क माधुरी, पृ० ३२७

[२] ललित किशोरी ललित प्रगट पट अगहन बढ़ आठे दिन।
सत्रह् को तैंतीस मनोहर लहि न भूलो इक छिन ॥३॥
अष्ट आयु नब्बह की तामे सदन मद्धि पच्चीस।
वर बिराम पैंसठ भरि कीन्हौं रसिकन कौ जू अधीश ॥४॥
अन्तर्ध्यान पौष बढ़ि हरि कौ, रसिक सहस उर दाहू।
वर्ष अठारह सै तेइसा हर्ष हन्यो सब काहू ॥
—निजमत सिद्धान्त, पृ० १३९

[३] निजमत सिद्धान्त, किशोरदास, पृ० १३७

सहचरिशरण-कृत 'ललित प्रकाश' में भी ऐसा ही उल्लेख है कि अपने गुरु द्वारा निर्दिष्ट व्रजरस से संतुष्ट न हो कर उन्हें भी छोड़ कर ललितकिशोर देव पुलिनों में चले आये और तत्पश्चात् प्राचीन अष्टाचार्यों की वाणी का मन्थन कर के उन्होंने स्वामी हरिदास के सखी-भाव को स्वीकार किया।[१] इन्होंने ही स्वामी हरिदास जी के जन्मोत्सव को सात दिन तक मनाये जाने की (भाद्र शुक्ल २ से अष्टमी तक) परम्परा का सूत्रपात किया था।

निधुवन में ललितकिशोरी देव का प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ता गया, जिससे पुजारियों में उनके प्रति द्वेष-भाव उत्पन्न होने लगा। अन्त में ललितकिशोरी देव निधुवन त्याग कर यमुना-तट पर आ कर रहने लगे। उनके शिष्यों ने वहाँ पर एक चबूतरा बना कर लताओं और वृक्षों का रोपन कर उस स्थान को अत्यन्त रमणीय बना दिया। प्राकृतिक सौंदर्य की रक्षा हेतु उसके आस-पास बाँस की टट्टियाँ लगा दी गईं। इसी से इस स्थान का नाम टट्टी स्थान प्रसिद्ध हो गया। ललितकिशोरी देव के प्रभावस्वरूप यह स्थान इतना अधिक प्रसिद्ध हुआ कि उनके बाद हरिदासी सम्प्रदाय को ही टट्टी सम्प्रदाय के नाम से अभिहित किया जाने लगा।

ललितकिशोरी देव के असाधारण व्यक्तित्व, स्वाभिमान, सत्यनिष्ठा एवं उदारता आदि की सम्प्रदाय में अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं। परवर्ती मुगल शासक मोहम्मदशाह को स्वामी हरिदास जी के साथ अकबर और तानसेन का कोई चित्र प्राप्त हुआ। उसने पता लगवा कर उनकी गद्दी पर अधिष्ठित ललित-किशोरी देव के दर्शन की इच्छा व्यक्त की। परन्तु उन्होंने मोहम्मदशाह का आगमन अस्वीकार कर दिया। फलस्वरूप मोहम्मदशाह ने एक चित्रकार भेज कर ललितकिशोरी देव का एक चित्र उतार मँगवाया।[२] मोहम्मदशाह ने दिल्ली के सिंहासन पर सन् १७२० से सन् १८४८ तक शासन किया। ललितकिशोरी देव भी इसी समय विद्यमान थे। अतः ललित प्रकाश में वर्णित इस घटना की सत्यता की सम्भावना की जा सकती है।

सवाई जयसिंह और ललितकिशोरी देव के सम्बन्ध को भी लेकर निजमत सिद्धान्त में एक प्रसंग आया है। एक बार जयसिंह के वृन्दावन आगमन पर

---

[१] ललित प्रकाश, सहचरिशरण, पृ० ७२-७४

[२] वही

ललितकिशोरी देव के प्रतिद्वन्द्वियों ने इनके विरोध में जयसिंह से बहुत कुछ कहा। अतः उसने ललितकिशोरी देव की परीक्षा हेतु अपना एक दूत भेजा। संयोग से उसी समय कोई सेवक भोग के लिए रूखी रोटी लाया था। ललित-किशोरी देव ने अन्य पदार्थ तो भक्तों में वितरित कर दिये और स्वयं रूखी रोटी खाकर रह गये। एक दिन ये करवा में रज भर कर शरीर पर छोड़ रहे थे उसी समय जयसिंह मंत्री आश्रम में आये। उनके द्वारा पीठाधीश का परिचय पूछे जाने पर ललितकिशोरी देव के शिष्यों ने निम्नलिखित शब्दों में अपने आचार्य की प्रशस्ति सुनाई :—

नित्य विहार सार सुख धामा। ललित किशोरी इन कर नामा॥
निर्विरोध हरिदास उपासी। यथालाभ संतोष विलासी॥
वृन्दावन विच विचरत कैसे। वेदन मध्य विदुष मन जैसे॥
इनके मद वत्सर कछु नहीं। संत महन्त विलोक सहाहीं॥[1]

इससे ललित किशोरी देव के महान् व्यक्तित्व की व्यंजना होती है। शीलसखी-कृत 'आचार्यमंगल' में ललितकिशोरी विषयक बधाई के पदों, कवित्तों, दोहों, सोरठों आदि में इनका माहात्म्य अत्यन्त श्रद्धापूर्वक वर्णित हुआ है।[2]

रचनाएँ :—नागरीप्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में ललितकिशोरी के नाम से हिंडोरा, ललित-लावनी, ललित पद और पदमाला नामक चार रचनाएँ बताई गई हैं। वस्तुतः ये रचनाएँ उनके एक ही विषय से सम्बन्धित पदों के संग्रह हैं। इनके स्वतंत्र नाम होते हुए भी इन्हें पृथक् रचना नहीं कहा जा सकता। ब्रह्मचारी बिहारीशरण ने इनके प्रायः ४०० दोहों और पदों को अष्टाचार्यों की वाणी में संकलित बताया है। वस्तुतः अष्टाचार्यों के वाणी संग्रह में ललित-किशोरी देव की ३२९ साखियाँ ४ कवित्त-सवैये, १०७ सिद्धांत के पद और २४ बधाइयाँ संकलित हैं। डॉ० गोपालदत्त शर्मा को ललितकिशोरी देव की रचनाओं के दो अन्य संग्रह प्राप्त हुए हैं। तीनों संग्रहों में कुल मिलाकर लगभग १२०० साखियाँ, जिनमें बीच-बीच में चौबोला, अरिल्ल तथा सवैये भी हैं, ५० रस की चौपाइयाँ, १३० सिद्धान्त के पद, १४७ रस के पद तथा २५

---

[1] **निजमत सिद्धान्त, किशोरदास, पृ० १४८**

[2] **सिद्धान्त रत्नाकर : आचार्य मंगल, पृ० १४-२९ तक**

बधाई के पद प्राप्त हैं।[1] ललितकिशोरी की वाणी में साम्प्रदायिक भक्ति, उपासना, वैराग्य आदि का प्रतिपादन हुआ है।

वचनिका :—स्फुट रचनाओं के अतिरिक्त ललितकिशोरी देव के उपदेशों का एक संग्रह 'वचनिका' नाम से भी प्राप्त है। इसमें १३३ सूक्तियाँ सग्रहीत हैं जिनमें ललितमोहिनी देव को दिये गये उपासना विषयक आठ निर्देश वर्णित हुए हैं।

डॉ० देवीशंकर अवस्थी ने इन रचनाओं के अतिरिक्त ललितकिशोरी देव द्वारा फारसी लिपि में रचित साखियों के एक संग्रह का भी उल्लेख किया है।[2] परन्तु साम्प्रदायिक संग्रहों में उनकी किसी भी फारसी रचना का विवरण नहीं मिलता। शाह ललितकिशोरी देव द्वारा रचित फ़ारसी गजलों का एक संग्रह अवश्य प्राप्त है।[3] सम्भवतः डॉ० अवस्थी ने इसे हरिदासी आचार्य ललित-किशोरी द्वारा रचित मान लिया है।

ललितकिशोरी देव हरिदासी सम्प्रदाय के आचार्य थे। उनकी वाणी में राधा-कृष्ण के नित्य विहार एवं सखी-भाव की उपासना के कथन की प्रधानता मिलती है। हरिदासी सम्प्रदाय में ललितकिशोरी देव की अत्यन्त प्रतिष्ठा है।

ललितमोहनी देव

ललितमोहिनी देव हरिदासी सम्प्रदाय के अष्ट आचार्यों में अंतिम हैं। इनकी जीवनी एवं व्यक्तित्व के सम्बन्ध में जनश्रुतियों, किशोरदास के निजमत सिद्धान्त और सहचरिशरण के ललित प्रकाश से कुछ सूचनाएँ प्राप्त होती हैं।

परिचय :—ललितमोहिनी देव माघकृष्ण एकादशी सं० १७८० में ओरछा नगर में व्यास वंश में उत्पन्न हुए थे।[4] ऐसा प्रतीत होता है कि वे प्रसिद्ध

---

[1] स्वामी हरिदास का सम्प्रदाय और उनका वाणी साहित्य (अप्रकाशित), पृ० ४०६

[2] अठारहवीं शती के ब्रजभाषा काव्य में प्रेमाभक्ति (अप्रकाशित), पृ० ३२५

[3] अभिलाषमाधुरी में संकलित फारसी गजलें, पृ० १-१६ तक

[4] ललित मोहनी प्रभा सोहनी अश्वनि सुदि दशमी कौ।
किंयो प्रकाश शरद जनु चंद्रमा वर्षायौ सुअमी कौ॥
संवत सत्रह सु असी कौ अति प्रमोद कौ दानी।
शरण माघ बदि इक दशमी कौ, सबही ने यह जानी॥
—निजमत-सिद्धान्त, पृ० १४१

[शेष आगे]

भक्त हरिराम व्यास के वंशज थे। वृन्दावन प्रवास के पूर्व ललितमोहिनी देव ने कुछ वर्षों तक गृहस्थ जीवन व्यतीत किया था। बाद में सब कुछ छोड़ कर विरक्त भाव से वृन्दावन आये और ललितकिशोरी देव से साम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार करूआ, कोपीन, गूदड़ी आदि लेकर विरक्त परम्परा के हरिदासी भक्त बन गए:—

परिहरि धन दारादि गृह नाति पात कुल रीति।
वृन्दावन वासो भये करि विराग सों प्रीति॥
श्री गुरु ने तिनकौ दइउ करुवा और कोपीन।
धारि गूदरा बन्ध पर महर अभय पद दीन॥[१]

ललितमोहिनी देव के समय टट्टी स्थान की महत्ता अपने चरमोत्कर्ष पर थी। इसीलिए यह स्थान 'ललितमोहिनी देव का घेरा' नाम से भी विख्यात है। उन्हीं के द्वारा हरिदासी सम्प्रदाय में समाज की प्रथा का प्रवर्तन हुआ, जिसमें सामूहिक रूप से राधा-कृष्ण की लीलाओं का गान और भक्ति विषयक सैद्धान्तिक तर्क-वितर्क होता है। अर्द्ध-नासिका से पूर्ण नासिका पर्यन्त तिलक का प्रचलन इन्हीं की प्रेरणा से प्रारम्भ हुआ। ललितमोहिनी देव की अपने गुरु ललितकिशोरी देव के प्रति अगाध निष्ठा थी। निम्नलिखित छन्द से इसका प्रमाण मिलता है—

प्रभु के ढिंग जाय प्रणाम करि पद पद्मन रज लै शिरधारी।
जनु सेवक धर्म धरै तनु को पुर बैठि गयो अति आनन्दकारी॥

तथा—

बैतवे के तीर ओरछो नगर चारु,
तुंगारन्य तीरथ ने महिमा बढ़ाई है।
ताही में प्रकट ह्वै कै विमल बिलास कियौ,
व्यास वंश हू कौ अति ओप लै चढ़ाई है।
सेवा रामचन्द्र जू की भाव सो करीं है।
जिन भक्ति परिपाटी गूढ़ सबकौ पढ़ाई है।
मोहिनी ललित दुति बलित कृपाल तासौं,
दिये हैं बहाई मान दीनता दृढ़ाई है।
—निजमत सिद्धान्त, पृ० १४०

[१] निजमत सिद्धान्त, पृ० १४१

शिष अन्तर की अभिलाष लखी निज आनन तै गुरुदेव उचारी ।
रहि पास हमारे करौ टहिलें महती निरखो वलि बेलि अपारी ॥[1]

ललितमोहिनी देव के प्रभाव की अनेक कथाएँ हरिदासी सम्प्रदाय में प्रचलित हैं। मरहठा शासक महादजी सिन्धिया ने उनके सहयोग से एक बृहत् रासलीला का आयोजन करवाया था।[2] यह रासलीला अपूर्व थी। ललित-मोहिनी देव ने इसकी प्रशंसा करते हुए लिखा है—

महान प्रेम सो सुजान कृष्ण लीला रुचिर राधिका समेत सब गोपिका बनी ठनी ।
मृदंग ताल बीन लै प्रवीन ते बजावहीं रसाल बेनु किन्नरी उमंग तान त्यौं तनी ।
सभा प्रभा अनेकधा विनोद भाँति-भाँति की सुसिन्धियाहि को प्रतीति प्रीति-
रीति हू घनी ।
कृपानिधान मोहिनी निहार के प्रसन्न भा गिरा गंभीर उच्चरी खरीमनो सुधासनी ।[3]

ऐतिहासिक दृष्टि से ललितमोहनी, महादजी सिन्धिया के समकालीन ठहरते हैं।[4] ब्रज के प्रति महादजी का अगाध प्रेम था और उसने ब्रज के तीर्थ-स्थलों एवं मन्दिरों का जीर्णोद्धार भी कराया था। अतएव ललितमोहिनी के सहयोग से रासलीला के अभिनय की घटना का घटित होना भी असम्भावित नहीं ज्ञात होता। ललितमोहिनी देव के व्यक्तित्व की प्रशंसा उनके परवर्ती सहचरिशरण ने भी अपने 'ललितप्रकाश' में की है—

श्री ललित मोहिनी ललित-सुयस को दंड विचारो ।
प्रीत प्रतेचा प्रवर सरस तुनीर निहारौ ॥
विमल मनोरथ विशिष भरे ता बिच अति रूरे ।
खैंचि खैंचि खर छिप्र करहु संयुक्त बल पूरे ॥
श्री गुरु महान सो सीखलै धनु विद्यामानी ।
कामादि निकट भट जीति के भजिय स्याम स्यामा धनी ॥[5]

---

[1] निम्बार्क-माधुरी, पृ० ३३८

[2] नाम महादजी सिंधिया वृन्दावन बिच आय ।
श्री गुपाल लीला करी परम प्रीति दरसाय ॥
—निम्बार्क-माधुरी, पृ० ३३९

[3] निम्बार्क-माधुरी, पृ० ३४०

[4] ब्रज का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० २०६

[5] निम्बार्क-माधुरी, पृ० ३३७

रचनाएँ :- ललितमोहिनी देव की कोई स्वतंत्र रचना नहीं प्राप्त होती। उनके साखी तथा पद अष्टाचार्यों की वाणी में संकलित हैं। निम्बार्क-माधुरीकार ने उनके १० पद और १८ सखियाँ उद्धृत की हैं।[१] ललितमोहिनी की रचनाओं में राधा-कृष्ण की प्रेम-क्रीड़ाओं तथा भक्ति का उपदेशपरक शैली में वर्णन हुआ है।

सहचरिशरण

परिचय :— सहचरिशरण का एक अन्य नाम 'सखीशरण' भी था। ये टट्टी स्थान के राधिकादास के शिष्य थे। इनका जन्म संवत् १८३० में हुआ था।[२] इतिहासकारों ने सहचरिशरण के सम्बन्ध में भ्रान्त सूचनाएँ दी हैं। मिश्रबन्धुओं ने सखीशरण के 'सरस मंजावलि' और 'गुरुप्रणालिका' नामक ग्रन्थों का उल्लेख करते हुए भी भ्रमवश उन्हें अयोध्या का महन्त सखीशरण लिख दिया है।[३] किन्तु अयोध्या के रसिक राम भक्तों की परम्परा में सखीशरण नाम के किसी भी महात्मा का उल्लेख नहीं मिलता है।[४] उसी प्रकार डॉ० भगीरथ मिश्र ने सहचरिशरण को राधिकादास का शिष्य मानते हुए भी सहचरिशरण को (संवत् १८३७) में उत्पन्न बताया है,[५] जो साम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार तर्कसंगत नहीं है।

सहचरिशरण ने सं० १८४१ में राधिकादास से दीक्षा प्राप्त की थी। राधिकादास के टट्टी स्थान की गद्दी पर आसीन होने के पूर्व सहचरिशरण उनके साथ बुंदेलखण्ड में भ्रमण करते थे। अपने गुरु भ्राता ठाकुरदास के देहावसान की सूचना मिलने पर सम्पतिशरण और दम्पतिशरण के साथ राधिकादास वृन्दावन चले आये और सहचरिशरण वहीं रह गए। राधिकादास संवत् १८६८ से १८७८ तक टट्टी स्थान के अधिकारी रहे। उनके देहावसान पर दम्पतिशरण और सम्पतिशरण ने सहचरिशरण को वृन्दावन आने के लिए एक पत्र भेजा, जिसे प्राप्त करके सहचरिशरण को अत्यन्त दुख हुआ। सहचरिशरण ने इस पत्र के विषय में स्वयं लिखा है :—

---

[१] निम्बार्क-माधुरी, पृ० ३४१–३४४

[२] निम्बार्क-माधुरी, पृ० ४१६

[३] मिश्रबन्धु विनोद, भाग ३, पृ० ७८३

[४] रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ० ३१७-३५६

[५] हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास, पृ० ४५

विरह निकेत पुनि पत्रिका लिखी जु जिन,
दीन्हीं सो हमारे पास आतुर पठाय के।
बांचत ही गुरु के वियोग शोक भूल गयो,
संपति और दम्पति को दुख रह्यो छाय के।
आयो मैं उताल दोउ दौरिके रसाल मिले,
कीन्हीं है प्रणाम नवनेह उफनाय के।
बाबा जू के चरित्र बिचित्र बहु भाँति कह्यो,
सुनि के सुहायो मन राख्यो है बसाय के।[१]

वृन्दावन आगमन पर सहचरिशरण को टट्टी स्थान का अधिकारी बनाया गया[२] तथा संवत् १८२५ तक वे इस पद पर आसीन रहे।

रचनाएँ :—ब्रह्मचारी बिहारीशरण ने सहचरिशरण की 'ललितप्रकाश' और 'सरस मंजावलि' नाम की दो रचनाओं का उल्लेख किया है।[३] वियोगी हरि[४] और प्रभुदयाल मीतल[५] ने भी यही दो रचनाएँ बताई हैं। डॉ० गोपालदत्त शर्मा ने इनके अतिरिक्त गुरु प्रणालिका, आचार्योत्सव सूचना, नखशिखध्यान और वचनिका सिद्धान्त भी सहचरिशरण की अन्य रचनाएँ बताई हैं।[६]

ललित प्रकाश :—इस ग्रंथ में स्वामी हरिदास से लेकर ललितमोहिनी देव तक के आचार्यों का चरित्र चित्रण हुआ है। ललितप्रकाश की सामग्री का आधार किशोरदास कृत निजमत-सिद्धान्त है। यह ग्रंथ दो खण्डों में विभाजित है, इसके पूर्वार्द्ध में ५२० और उत्तरार्द्ध में ५१५ छंद हैं, जिनमें चौपाई, दोहा और सवैया प्रमुख हैं। इसके अंत में सहचरिशरण के परवर्ती आचार्यों का विवरण महंत रणछोड़दास ने लिखा है।

---

[१] निम्बार्क-माधुरी, पृ० ४१७

[२] संत महन्त कथा करिके गहिवांही।
मोहि न दीन्हीं जाति राखि लीन्हों दन माही।
मम अब गुनत अमित वरासन पर बैठारयो।
जिमि सुकलाषी पक्षपात हरि शिर पर धार्यो।—निम्बार्क-माधुरी ४१७

[३] निम्बार्क-माधुरी, पृ० ४१७

[४] ब्रजमाधुरीसार, पृ० २४६

[५] स्वामी हरिदास जी तथा अष्टाचार्यों की जीवनी और रचनाएँ, पृ० १४५

[६] स्वामी हरिदास और उनका वाणी-साहित्य, पृ० ४१३ (अप्रकाशित)

सरस मंजावली :— यह १४६ छंदों की संक्षिप्त रचना है जिसमें १४० मांझ तथा शेष अरिल्ल छंदों का प्रयोग हुआ है। राधाकृष्ण का रूप चित्रण रचना का प्रतिपाद्य है।

आचार्योत्सव सूचनिका :—केवल १६ छंदों की इस रचना में स्वामी हरिदास से लेकर ललितमोहनी देव तक के आचार्यों से सम्बन्धित उत्सवों का सूचनात्मक उल्लेख हुआ है।

गुरु प्रणालिका, नखशिखध्यान और वचनिका सिद्धान्त संक्षिप्त रचनाएँ हैं। गुरु प्रणालिका, आचार्योत्सव सूचनिका के समान टट्टी स्थान के आचार्यों से सम्बद्ध रचना है। नखशिख में राधाकृष्ण के शृंगार तथा वचनिका में साम्प्रदायिक सिद्धान्तों का व्रजभाषा गद्य में वर्णन किया गया है।

सहचरिशरण के महत्व का कारण उनकी ललित प्रकाश और सरस-मंजावलि नामक रचनाएँ हैं। ललित प्रकाश के द्वारा हरिदासी सम्प्रदाय के भक्त आचार्यों के व्यक्तित्व और कृतित्व के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त होती हैं तथा सरस मंजावलि उनके उत्कृष्ट कवि रूप की परिचायक है। हरिदासी सम्प्रदाय के वे ही कदाचित् एकमात्र कवि हैं, जिन्होंने राधाकृष्ण के रूपचित्रण में मांझ शैली का आश्रय लिया है। समीक्ष्यकालीन मांझकारों में सहचरिशरण का महत्वपूर्ण स्थान है।

रूपसखी

परिचय :—रूपसखी की 'सिद्धान्त-रत्नाकर' में संकलित वाणी के आधार पर उनके हरिदासी सम्प्रदाय में दीक्षित होने के स्पष्ट संकेत मिल जाते हैं।[१] ऐसा प्रतीत होता है कि 'रूप' इनके वास्तविक नाम का द्योतक अंश है तथा हरिदासी सम्प्रदाय में दीक्षित होने के उपरान्त सखी भाव के उपासक हो जाने से वे रूपसखी के नाम से विख्यात हुए होंगे। इसके अतिरिक्त यह भी सम्भावना ज्ञात होती है कि हरिदासी सम्प्रदाय में दीक्षित होने पर वास्तविक नाम के स्थान पर उन्होंने 'रूपसखी' ही अपना नाम रख लिया हो।

अपने गुरु का उल्लेख करते हुए रूपसखी ने रसिकदेव और उनके शिष्य ललितकिशोरी का नामोल्लेख किया है।[२] प्राप्त सामग्री की परीक्षा करने पर

---

[१] सिद्धान्त-सरोवर : सिद्धान्त के पद, पृ० १-४० तक

[२] श्री ललितकिशोरी की कृपा, गायो नित्य विहार।
रसिक सिरोमनि महल कौ, आन अमित अपार॥
—रूपसखी की वाणी, पृ० ४० छन्द ८६

ज्ञात होता है कि इन्होंने मंत्र-दीक्षा तो रसिकदेव जी से ली थी, किन्तु उनके दिवंगत होने पर ललितकिशोरी देव से साम्प्रदायिक भक्ति सिद्धान्त का ज्ञान प्राप्त किया था।[१] इसीलिए इन्होंने अपनी कृतियों में रसिकदेव और ललित-किशोरी देव के प्रति समान रूप से श्रद्धा व्यक्त की है।

रसिकदेव का समय संवत् १७४१ से १७५८ तक और ललितकिशोरी देव जी का समय संवत् १७५८ से १८२३ तक माना जाता है। इस आधार पर रूपसखी का समय विक्रम की उन्नीसवीं शती का उत्तरार्द्ध निश्चित होता है।

रचनाएँ :—रूपसखी की सिद्धान्त विषयक वाणी निम्बार्क शोध मण्डल से प्रकाशित संग्रह 'सिद्धान्त-सरोवर' में संग्रहीत है। इसमें १५७ पद, कवित्त और सवैये स्वामी हरिदास, बिहारिदास, रसिकदास के माहात्म्य, वृन्दावन के दिव्य स्वरूप, एवं सखी भावोपासना से सम्बद्ध हैं।[२] ९२ चौपाई, चौबोला, अरिल्ल और दोहे साम्प्रदायिक माधुर्य भक्ति से सम्बद्ध हैं।[३] इसके अतिरिक्त निम्बार्क शोध मण्डल के संग्रहालय में उनके ९०० भक्ति विषयक पद, कवित्त, सवैये आदि छंद प्राप्त हैं।[४]

रूपसखी की वाणी में राधा-कृष्ण की सखी भावोपासना के कथन की प्रधानता है।

किशोरदास

परिचय :—किशोरदास के जीवनवृत्त की कुछ सूचनाएँ उनके द्वारा रचित 'निजमत-सिद्धान्त' से प्राप्त होती हैं। किशोरदास का जन्म जयपुर राज्य की राजधानी आमेर में हुआ था। किशोरदास के पिता का नाम कासीराम सारस्वत और माता का खेमादेवी था। हरिदासी सम्प्रदाय के छठे आचार्य

---

[१] गुरु श्री रसिकदास महाराज।
अनन्य नृपति स्वामी अभिरामी श्री हरिदास समाज॥
परम हंस नित्य वस उजागर वन विहार रस गाज।
चरन सरन नित्य रूप टहल मैं महल हमारो राज॥
—रूपसखी की वाणी, पृ० २६, पद १२७ तक

[२] सिद्धान्त-सरोवर, रूपसखी की वाणी, पृ० १-३२ तक

[३] वही, पृ० ३२-४० तक

[४] निम्बार्क शोध मण्डल संग्रह, श्रीनिकुंज वृन्दावन। सिद्धान्तरत्नाकर भूमिका, पृ० ४०

रसिकदेव के शिष्य पीताम्बर देव ने संवत् १७९१ में वैसाख की तृतीया के दिन किशोरदास को अपना शिष्य बनाया था।[१] किशोरदास ने अपनी रचनाओं में अनेक स्थलों पर इस तथ्य का संकेत किया है।[२] किशोरदास के उल्लेखों से यह भी ज्ञात होता है कि वे किशोरावस्था में ही हरिदासी सम्प्रदाय में दीक्षित हो गए थे। इस आधार पर उनका जन्म संवत् १७७० से १७७५ तक माना जा सकता है। किशोरदास के देहावसान-संवत् का भी निश्चय नहीं हो सकता है। 'निजमत-सिद्धान्त' में उसके रचना का उल्लेख नहीं है। प्रभुदयाल मीतल के अनुसार इसकी रचना संवत् १८२० के लगभग हुई होगी।[३] यदि संवत् १७७० के लगभग किशोरदास का जन्म संवत् मानें तो 'निजमत-सिद्धान्त' की पूर्ति के समय उनकी अवस्था ५०-५५ वर्ष के लगभग रही होगी, ऐसी स्थिति में संवत् १८५० के पूर्व ही उनका देहावसान मानना उचित प्रतीत होता है। मिश्रबन्धुओं ने किशोरदास का रचनाकाल संवत् १९०० दिया है, जो अशुद्ध है।

पीताम्बर देव का शिष्यत्व ग्रहण करने के अनन्तर किशोरदास वृन्दावन चले आये। इसके उपरान्त पिता के आग्रह और गुरु के आदेश पर कुछ दिन के लिए घर चले गए। परन्तु वृन्दावन का आकर्षण और भक्ति का आवेग इन्हें

---

[१] सप्तादश इक्यानवे संवत सर सुखदीन।
वैसाखी तृतिया सुकल मोहि शिष्य कर लीन॥ —निजमत-सिद्धान्त

[२] श्री गुरु श्री पीताम्बर देवा। तिनको जन विजु लहै न मेवा।
—निजमत-सिद्धान्त, पृ० २

श्री पीताम्बर देव जू गुरुपद युगल निवास।
ग्रंथ मीन निर्मित उदित दास किशोर प्रकाश।
—निजमत-सिद्धांत,पृ० ३८८

परमधर्मधुर मुकुट मनि, श्रुति अज लहैं न भेव।
सो श्री गुरु मो मन बसो श्री पीताम्बर देव॥
—सिद्धान्त-सरोवर, पृ० ४१

तुम मेरे हित प्रगट वपु, श्री पीताम्बर देव।
किशोरदास तुम पर सरनि, तुम मो सिर गुट सेव॥
—सिद्धान्त-सरोवर, पृ० ९९६

[३] भक्तकवि व्यास जी, पृ० ३३

पुनः ब्रजभूमि की ओर खींच लाया। यहाँ उन्होंने रसिकविहारी के मंदिर में सेवा का कार्य संभाला और आजीवन भक्ति एवं साहित्य साधना में संलग्न रह कर अपनी जीवन लीला समाप्त की।

रचनाएँ :—मिश्रबन्धुओं ने किशोरदास के निजमत-सिद्धान्तसार, गणपति माहात्म्य, और आध्यात्म रामायण का उल्लेख किया है।[१] परन्तु साम्प्रदायिक स्रोतों में निजमत-सिद्धान्त के अतिरिक्त शेष दो रचनाओं 'गणपति-माहात्म्य' और 'आध्यात्म रामायण' का कोई भी उल्लेख नहीं मिलता। ये दोनों रचनाएँ किसी अन्य कवि की ज्ञात होती हैं। डॉ० गोपालदत्त शर्मा ने किशोरदास की निम्नलिखित रचनाएँ मानी हैं[२]—

१–निजमत-सिद्धान्त
२–रस के पद
३–सिद्धान्त-सरोवर
४–सिद्धान्तसार संग्रह
५–उपदेश आनन्द सत
६–सवैया पचीसी
७–बिहारिन दास जू कौ चरित्र
८–आसुधीर जी कौ चरित्र
९–फुटकल कवित्त

इन रचनाओं में निजमत-सिद्धान्त और रस के पदों के अतिरिक्त शेष सभी रचनाएँ बाबा विश्वेश्वरशरण द्वारा सम्पादित 'सिद्धान्त-सरोवर' में संकलित हैं।[३]

इन कृतियों में उनका रचनाकाल नहीं दिया गया है। किन्तु उनमें किशोरदास जी के हस्ताक्षर हैं और इस प्रकार लिखा है, "लिषतं श्री वृन्दावन धाम मघे दसकत स्वयं।"

निजमत-सिद्धान्त :—इसके अन्तर्गत निम्बार्काचार्य से लेकर स्वामी हरिदास और उनकी परम्परा के अष्टाचार्यों का जीवनवृत्त तिथि संवत् सहित वर्णित हुआ है। इसके अतिरिक्त सम्प्रदाय की भक्ति-पद्धति, साधना, दर्शन एवं राधाकृष्ण की लीलाओं का भी वर्णनात्मक शैली में कथन किया गया है। इतिहास की दृष्टि से निजमत-सिद्धान्त हरिदासी सम्प्रदाय का संदर्भ ग्रन्थ है।

---

[१] मिश्रबन्धु-विनोद, भाग ३, पृ० १०२६

[२] स्वामी हरिदास और उनका वाणी साहित्य, ललितमोहिनी देव (अप्रकाशित)

[३] सिद्धान्त-सरोवर, पृ० ४१–२४६ तक

इसका रचनाकाल संवत् १८२० के लगभग माना गया है।[1] निजमत-सिद्धान्त सं० १६७२ में टट्टी स्थान से प्रकाशित हुआ था।

सिद्धान्त-सरोवर :— इसमें भक्ति और नीति सम्बन्धी विषयों पर १००१ साखियाँ संकलित हैं, जिनका प्रतिपाद्य गुरु महिमा, शिष्यों के भेद, उनके लक्षण, उपासना पद्धति तथा नित्यविहार की महत्ता आदि हैं। सिद्धान्त-सरोवर की रचना में कवि ने सरोवर का रूपक घटित किया है।[2]

ग्रंथ नाम सिद्धान्त सरोवर। ता मधि जल उपास जल कलवर ।।१।।
अभ्यासी उर अवनि अनूपा। ता मधि नीर रहसि हितरूपा ।।२।।
रसिक अनन्य संग दृढ पाजा। अम्रत अर्थ करत निज काजा ।।
कवल प्रबंध लगनि अलिपांना। सौरभ वक्ता वदत विधाना ।।३।।
श्रोता उर तरंग उपजावे। करत प्रस्न सुठि चक्र भ्रमावे।
रीझनि प्रफुलित तरु झुकि वेली। अनभै उदित दलनि फलि फैली।।४।।
षग मन षगत गांन धुनि छाई। प्रेम वचन मुक्ता सुषदाई ।।
स्वामी वंस हंस भषि जांनै। चकवा चकित होत भ्रम मानै ।।५।।
बांचत अग्य रमत मुरगाई। भीजत पंख न मघरी षाई ।।
पैरत विमल विवेक विचारी। किसोरदास सिर नित्य विहारी ।।६।।

सिद्धान्तसार-संग्रह :—यह पद-शैली में विभिन्न राग-रागनियों में लिखी गई सिद्धान्त विषयक रचना है। ग्रन्थ के आरम्भ और अन्त में सात-सात दोहे हैं। नारद-सनकादि ऋषियों से लेकर अनेक भक्त आचार्यों की महिमा का ज्ञान करते हुए गुरु महात्म्य, भगवत महिमा, नित्यविहार आदि विषयों की प्रौढ़ एवं परिमार्जित शैली में व्याख्या की गई है। इसमें कुल मिलाकर २६२ पद हैं।

अद्भुत आनन्द सत :—इसके अन्तर्गत १०० कवित्तों में राधाकृष्ण के विहार का वर्णन किया गया है।

उपदेश आनन्द सत :—इस रचना में १०० अरिल्ल छंदों में राधाकृष्ण की अष्टयाम लीला वर्णित हुई है।

सवैया पचीसी :—२५ सवैया छंदों के अन्तर्गत संसार की असारता का वर्णन करते हुए स्वामी हरिदास द्वारा प्रवर्तित रसोपासना की पद्धति की सर्वश्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है।

---

[1] भक्ति कवि व्यास जी, पृ० ३३

[2] सिद्धान्त-सरोवर, पृ० ६३

फुटकल कवित्त :—सिद्धान्तसरोवर में ४९ कवित्त संकलित हैं। स्फुट रूप में लिखे गए इन कवित्तों में उपदेश वृत्ति प्रधान है।

विहारिनदास जू कौ चरित्र —केवल ११ कवित्त छंदों को इस संक्षिप्त रचना में साम्प्रदायिक आचार्य विहारिनदास की भक्तिनिष्ठा का वर्णन किया गया है।

आसुधीर कौ चरित्र :—इस रचना में हरिदासी भक्त आसुधीर के चरित्र का माहात्म्य केवल ६ कवित्तों में वर्णित हुआ है।

रस के पद :—हरिदासी सम्प्रदाय के अनुयाइयों के अनुसार किशोरदास ने रस परिलुप्त पदों की भी पर्याप्त मात्रा में रचना की थी। परन्तु उनका अब तक कोई संग्रह प्राप्त नहीं हुआ है। निम्बार्क-माधुरी में राधा-कृष्ण की लीला-विषयक दो पद संग्रहीत हैं।[१]

हरिदासी सम्प्रदाय के कवियों में इतिहासकार के रूप में किशोरदास का व्यक्तित्व सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है।

शीलसखी

परिचय :—शीलसखी के समय और उनके जीवनवृत विषयक प्रामाणिक सामग्री का अभाव है। उनकी रचना आचार्य-मगल के अन्तःसाक्ष्य के आधार पर केवल इतना कहा जा सकता है कि शीलसखी उनका उपनाम था तथा वे ललितकिशोरी देव के शिष्य थे।[२] ललितकिशोरी के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा थी। ललितकिशोरी देव का समसामयिक मानने पर शीलसखी का समय विक्रम की आठवीं शती का उत्तरार्द्ध और उन्नीसवीं शती का पूर्वार्द्ध निश्चित होता है। सिद्धान्त-रत्नाकर की भूमिका में गोविन्द शर्मा ने शीलसखी को मथुरावासी चौबे कहा है।[३] किन्तु शर्मा जी का मत उचित नहीं प्रतीत होता, क्योंकि रचनाकार ने रचना के अन्त में आत्मपरिचय न देकर ललित-

---

१ निम्बार्क-माधुरी, पृ० ३५०-५१

२ (क) ममसिर सोहत छत्र सम, श्री ललित किशोरी दास।
इनकी कृपा प्रताप तें, छिन छन बढ़त हुलास॥
—आचार्य-मंगल, पृ० २५, दो० १२

(ख) आचार्य-मंगल :—ललितकिशोरी जी कौ प्रताप, पृ०१४-२६ तक।

३ सिद्धान्त-रत्नाकर—भूमिका, पृ० ५०

किशोरी देव और उनके दो-चार शिष्यों का माहात्म्य वर्णित किया है ।[१] शर्मा जी की मान्यता का आधार 'आचार्य-मंगल' का निम्नलिखित अंश है :—

माथुर कुल कौ मुकुट, जगमगात चहुँ ओर ।
भानु ज्योति जिनि द्रगन में उलुक माध भये चोर ॥[२]

शीलसखी कृत उल्लिखित दोहा ललितकिशोरी देव के शिष्य स्यामदास की प्रशंसा में लिखा गया है ।[३] अतः इसे रचनाकार से सम्बद्ध करना तर्कसंगभ नहीं प्रतीन होता । इसके अतिरिक्त कोई भी भक्त आत्मपरिचय के संदर्भ में अपने को 'मुकुटमणि' नहीं कह सकता । अतएव लेखक के विचार से शीलसखी को माथुर चौबे कहना उचित नहीं प्रतीत होता ।

रचनाएँ : - शीलसखी की केवल एक रचना आचार्य-मंगल प्राप्त है, जो सिद्धान्त-रत्नाकर में संग्रहीत है । आचार्य-मंगल में स्वामी हरिदास, विहारीन-देव, ललितकिशोरी देव, तथा उनके दो शिष्यों माधोदास और स्यामदास काा चरित संक्षेप में वर्णित है । प्रस्तुत रचना चरितपरक मंगलकाव्य कही ज सकती है ।

भगवत रसिक

परिचय : - भगवत रसिक हरिदासी सम्प्रदाय के अष्टाचार्यों में से अंतिम आचार्य ललितमोहिनी देव जी के शिष्य थे ।[४] मिश्रबन्धुओं ने भूल से भगवत रसिक को हरिदास जी का शिष्य बताते हुए उनका जन्म-संवत् १६८७ मान लिया है ।[५] भगवत रसिक के जीवनवृत्त विषयक बहुत कम सूचनाएँ प्राप्त हैं सहचरिशरण ने ललित प्रकाश में ललित मोहिनी देव के अनेक शिष्यों का उल्लेख करते हुए भो भागवत रसिक का कोई परिचय नहीं दिया है । ललितमोहनी देव

---

[१] आचार्य-मंगल, पृ० ३२

[२] वही, पृ० ३२, दो० १७

[३] वही, पृ० २६- ३२ तक

[४] निम्बार्क-माधुरी, पृ० ३५३ :२:

[५] मिश्रबन्धु-विनोद, भाग १, पृ० ३४८

वस्तुतः मिश्रबन्धुओं के विवरण का आधार नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट है । खोज रिपोर्ट में भगवत रसिक को हरिदास का शिष्य और संवत् १६१७ के लगभग वर्तमान बताया गया है, जो भ्रान्त है । दे० खोज रिपोर्ट, सन् १६००, सं० २६ तथा खो०रि० ३०-३२, ३४ सं० २०

का समय सम्प्रदाय में संवत् १८२३ से १८५८ तक माना जाता है।[1] अतएव भगवत रसिक का भी समय इसी के लगभग रहा होगा। शुक्ल जी, वियोगी हरि और विहारीशरण ने इनका जन्म-संवत् १७९५ माना है।[2] शुक्ल जी ने इनका रचना-काल संवत् १८३० से १८५० तक बताया है। ललितमोहिनी देव के समय के आधार पर भगवत रसिक का समय उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध के मध्य तक मानना उचित प्रतीत होता है।

भगवत रसिक की रचनाओं से उनके भक्त रूप का ही परिचय मिलता है। ये सखीभाव से राधाकृष्ण की उपासना करते थे और 'रसिक' उनका उपनाम था।

> आचरण ललिता सखी, रसिक हमारी छाप।
> नित्य किशोर उपासना, जुगल मंत्र को जाप।
> जुगल मंत्र को जाप वेद रसिकन के बानी।
> श्री वृन्दावन धाम इष्ट स्यामा महारानी॥
> प्रेम देवता मिले बिन सिध होय न कारज।
> भगवत सात सुखदाति प्रगट में रसिकाचारज॥[3]

भगवतरसिक के हरिदासी सम्प्रदाय में दीक्षित होने के प्रचुर प्रमाण उनकी रचनाओं में प्राप्त हैं। अतएव हरिदासी वैष्णवों की दिनचर्या का इनके द्वारा दिया गया निम्नलिखित विवेचन इनके दैनिक कार्यक्रम के रूप में माना जा सकता है—

> कुंजन ते उठ प्रात गात जमुना में धोवै।
> निधिवन कर दंडौत बिहारी कौ मुख जोवै।
> करै भावना बैठि स्वच्छ थल रहित उपाधा।
> घर-घर लेइ प्रसाद लगै जब भोजन साधा।
> संग करै भगवत रसिक कर करुवा गूदरि गरे।
> वृन्दावन बिहरत फिरै जुगल रूप नैननि भरे॥[4]

---

[1] निम्बार्क-माधुरी, पृ० ३५३

[2] हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३५७; व्रजमाधुरीसार, पृ० २१९ निम्बार्क-माधुरी, पृ० ३५३

[3] व्रजमाधुरीसार, पृ० २२२

[4] वही, पृ० २२१

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि भगवत रसिक प्रातःकाल उठकर यमुना में स्नान करते थे। तत्पश्चात् निधुवन में स्वामी हरिदास को दण्डवत करके कृष्ण जी का भोग लगाते थे और आराध्य के ध्यान में मग्न हो जाते थे। सम्प्रदाय के प्रतीक करवा और गूदरी उनके वेश के अभिन्न अंग थे। तीसरे प्रहर युगल छवि के स्वरूपानन्द में लीन होकर वृन्दावन में भ्रमण करते थे।

रचनाएँ :—नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में भगवत रसिक की 'अनन्य रसिकाभरण' और 'निर्विरोध मनरंजन' नामक रचनाएँ बतायी गई हैं।[1] निम्बार्क माधुरीकार ने भगवत रसिक के कुल १२५ पद, छप्पै, कवित्त ८३ कुण्डलियाँ, ५२ दोहे और एक ध्यानमंजरी नामक रचना का उल्लेख किया है।[2] 'ध्यानमंजरी' वस्तुतः 'जुगलध्यान' है। वियोगी हरि ने इनके द्वारा रचित कुण्डलिया आदि छंदों तथा 'अनन्य निश्चयात्मक ग्रन्थ' की चर्चा की है।[3] भगवत रसिक की वाणी के पूर्वार्द्ध में अनन्य-निश्चयात्मक, नित्य बिहारी जुगल ध्यान, लड़ैती जू को ध्यान, सोरह सखियन को ध्यान, तथा अनन्य रसिकाभरण (शृंगार केलि सागर) और उत्तरार्द्ध में नीतिपरक निर्विरोध मनरंजन, होली और धमार के पद संग्रहीत हैं।

अनन्य निश्चयात्मक ग्रन्थ :—यह नीतिपरक रचना है। इसमें आडम्बर पूर्ण भक्ति की कटु आलोचना तथा राधाकृष्ण की शुद्ध भाव से उपासना का समर्थन किया गया है।

नित्य बिहारी-जुगल ध्यान :—इस रचना में विविध छंदों के अन्तर्गत राधाकृष्ण के सौन्दर्य तथा उनके ध्येय शृंगारी रूप का कथन किया गया है।

अनन्यरसिकाभरण :—इस रचना के लिए 'शृंगार केलि सागर' नाम मिलता है। राधाकृष्ण की शृंगार क्रीड़ा इसका प्रतिपाद्य है।

निर्विरोध मनरंजन :—इस रचना में मन को सांसारिक विषयों से मोड़ कर भगवदोन्मुख करने का नीतिपरक कथन किया गया है।

होली धमार के पद :—इन पदों में होली के उल्लास तथा राधाकृष्ण की फाग क्रीड़ा का वर्णन हुआ है।

---

[1] नागरी प्रचारिणी सभा खोज रिपोर्ट १६०० । सं० २६, ३०, ३१, ३३ तथा खो०रि० १६३२-३४, सं० २०

[2] निम्बार्क-माधुरी, पृ० ३५४

[3] ब्रजमाधरीसार, पृ० २१६

भगवत रसिक की वाणी में प्रमुख रूप से राधाकृष्ण की भक्ति का सैद्धान्तिक कथन ही हुआ है। काव्य-दृष्टि से उनके केवल पद ही महात्त्वपूर्ण हैं।

शीतलदास

परिचय :—शीतलदास के जीवनचरित से सम्बन्धित प्रामाणिक सामग्री का अभाव है। साम्प्रदायिक स्रोतों से ही इनके समय के सम्बन्ध में विरोधी सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। शीतल की रचनाओं के सम्पादक महन्त भगवानदास ने उन्हें स्वामी मोहिनीदास का शिष्य बताया है, जो कदाचित् हरिदासी सम्प्रदाय के आचार्य ललितमोहिनी देव हैं।[१] किन्तु विहारीशरण ने शीतलदास को मोहनीदास के शिष्य चतुरदास के कृपापात्र ठाकुरदास का शिष्य बताया है, जिनका समय संवत् १८५६ से १८६८ तक है।[२] शीतल की रचनाओं का अन्तः-साक्ष्य इस सम्बन्ध में सर्वथा मौन है। मिश्रबन्धुओं ने शीतल के खड़ीबोली काव्य की प्रशंसा करते हुए उनका समय संवत् १८३० बताया है। यदि महन्त भगवानदास के बताए हुए शीतल के समय को ठीक मान लिया जाये तो उसकी संगति मिश्रबन्धुओं द्वारा बताए गए समय से बैठ जाती है। वस्तुतः निश्चित प्रमाणों के अभाव में शीतल के जीवनवृत्त और समय के सम्बन्ध में कोई निर्णय ले सकना अत्यन्त कठिन है। फिर भी इतना तो निश्चित ही है कि वे उन्नीसवीं शती के कवि थे।

शीतलदास की रचनाओं में 'लालबिहारी' शब्द के प्रयोग की बहुलता के आधार पर ऐसा अनुमान किया जाता है कि ये लालबिहारी नाम के किसी लड़के पर आसक्त थे। सामान्य रूप से इस नाम का प्रयोग उनकी रचनाओं में कृष्ण के लिए हुआ है,[३] फिर भी कई स्थानों पर लौकिकता की छाप स्पष्ट है। शीतल के काव्य में वर्णित प्रेम के 'हक़ीकी' और 'मजाज़ी' रूपों के आधार पर उनके लौकिक प्रेम की सम्भावना मात्र की जा सकती

---

[१] गुलजार चमन, भूमिका

[२] निम्बार्क-माधुरी, पृ० ३७८

[३] गुलजार चमन, छं० ११, १८, २६, ३४, ५४, ७२, ८२, ६४ आदि; आनन्द चमन, छं० ३, ४३,५१, ११२ आदि; बिहार चमन छं० ६ आदि

है ।[१] निश्चित प्रमाणों के अभाव में इस सम्बन्ध में कोई निर्णय नहीं दिया जा सकता ।

रचनाएँ :—शीतलदास की तीन रचनाएँ 'चमन' नाम से प्राप्त हैं, गुलजार चमन, आनन्द चमन और बिहार चमन ।

गुलजार चमन :—इस रचना में कुल १२१ मांझ छंद हैं जिनमें फारसी पद्धति पर राधाकृष्ण के रूप-चित्रण के सन्दर्भ में भक्ति का कथन किया गया है ।

आनन्द चमन :—११२ मांझ छंदों की इस रचना में फारसी प्रेम-पद्धति के आधार पर राधाकृष्ण का रूप चित्रण किया गया है ।

बिहार चमन :—इस रचना में केवल २४ मांझ छंद हैं, जिनमें राधा-कृष्ण के रूप और उनके बिहार का चित्रण किया गया है ।

शीतलदास के कृतित्व का वैशिष्ट्य उसकी भावधारा और भाषा प्रयोग में सन्निहित है । सूफी प्रेम भावना और राधाकृष्ण की माधुर्य भक्ति के समन्वय के द्वारा उन्होंने कृष्णकाव्य की परम्परा में नवीनता का समावेश किया । भाषा में फारसी शब्दावली की प्रचुरता और खड़ीबोली के व्याकरण की छाप के कारण शीतल का समस्त साम्प्रदायिक कवियों में महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

बनीठनी 'रसिक बिहारी'

परिचय :—बनीठनी 'रसिक बिहारी' किशनगढ़ नरेश सावतसिंह (नागरी-दास) की उपपत्नी थीं । बनीठनी इनका वास्तविक और 'रसिक बिहारी' उपनाम था । जब नागरीदास विरक्त होकर वृन्दावन आये तो बनीठनी जी भी उनके साथ वृन्दावन चली आयीं और हरिदासी सम्प्रदाय के रसिक बिहारी जी के मंदिर में निवास करने लगीं । बनीठनी के जीवनचरित विषयक बहुत कम तथ्य प्राप्त हुए हैं । बनीठनी के नागरीदास से प्रणय सम्बन्ध के अतिरिक्त उनके सम्बन्ध में प्राप्त अधिकांश सूचनाएँ संदिग्ध एवं अपूर्ण हैं । वृन्दावन में बनीठनी की समाधि है । उस पर अंकित लेख के अनुसार वे हरिदासी सम्प्रदाय में दीक्षित थीं । इस सम्प्रदाय के आचार्य नरहरिदास की कृपा से उन्हें वृन्दावनवास प्राप्त हुआ था तथा इनके शिष्य रसिकदास से इन्होंने शिक्षा प्राप्त की थी । इस लेख के अनुसार बनीठनी का देहावसान आषाढ़ शुक्ल १५ बुधवार संवत् १८२२

---

[१] **गुलजार चमन, छं० ६, २८, ३३, ४१, ५४, ६३, १०६, ११६ आदि; आनन्द चमन, छं० ४२, ८७, ९२ आदि; बिहार चमन, छं० १, ५, १३ आदि ।**

को हुआ था।[१] संवत् १८२२ में जब नागरीदास का वृन्दावन में स्वर्गवास हुआ तो बनीठनी उनके पास थीं।[२]

बनीठनी की समाधि पर प्रकीर्ण लेख के आधार पर बनीठनी को रसिकदास की शिष्या माना जाता है। किन्तु लेखक के विचार से बनीठनी जी रसिकदास की शिष्या नहीं थीं और न उन्हें रसिकदास के गुरु नरहरिदास की कृपा से वृन्दावन-वास ही प्राप्त हुआ था। नागरीदास का समय संवत् १७५६ से १८२१ तक मान्य है। अतः बनीठनी का भी समय इसी के लगभग होना चाहिए। यदि उन्हें नागरीदास से अवस्था में कुछ बड़ा भी मान लें, तो भी बनीठनी का जन्म-संवत् १७५० से पहले किसी स्थिति में नहीं हो सकता। सम्प्रदाय में रसिकदास का समय संवत् १७४१ से १७५८ तक निश्चित है। अतः उनके गुरु नरहरिदास की कृपा से बनीठनी के वृन्दावनवास का प्रश्न ही नहीं उठता। संवत् १७५० के लगभग बनीठनी का जन्म मान लेने पर संवत् १७५८ तक उनका रसिकदास से दीक्षा लेना भी असंगत सिद्ध होता है क्योंकि रसिकदास के गोलोकवास के समय बनीठनी की अवस्था अधिक से अधिक ८-९ वर्ष की रही होगी। इसके अतिरिक्त नागरीदास के साथ बनीठनी का वृन्दावन आगमन नागरीदास के पिता राजसिंह की मृत्यु (सं० १८०५) के उपरान्त ही माना जा सकता है। उस समय हरिदासी सम्प्रदाय के रसिकबिहारी के मन्दिर के आचार्य पीठ पर ललितकिशोरीदेव जी आसीन थे। परन्तु बनीठनी द्वारा रचित पदों में ललितकिशोरी देव जी का उनके गुरु रूप में कोई भी संदर्भ नहीं मिलता। अतएव रसिकदास को बनीठनी का गुरु मानना उचित नहीं प्रतीत होता। इस सम्बन्ध में लेखक का यह अनुमान असंगत न होगा कि रसिकविहारी के मन्दिर में आवास करने पर भी सम-

---

[१] श्री विहारिन बिहारि ललितादिक हरिदास।
नरहरि रसिकनि की कृपा दियौ वृन्दावनवास॥
रसिकदास गुरु की कृपा लहमा भर सत्संग।
विष्णुहि वृन्दावन मिल्यौ भक्त बिहार अनंग॥
रसिक बिहारी सामरी ब्रजनागर सुर काज।
इन पद पंकज मधुकरी सेवत विष्णु समाज॥

—बनीठनी की समाधि पर अंकित

[२] नागर-समुच्चय : नागरीदास का जीवन चरित्र, पृ० २

वंशीअलि गृहस्थ थे। उनका विवाह पन्द्रह वर्ष की अवस्था में हुआ था तथा बीस वर्ष की अवस्था में उनके पुण्डरीकाक्ष नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वंशीअलि श्रीमद्भागवत के रससिद्ध कथाकार थे। तीस वर्ष की अवस्था में वे वृन्दावन में स्थायीवास के निमित्त आ गए। वृन्दावन के आवास क्रम में ही वे विरक्त हो गए तथा सखी-भाव के अनन्य उपासक के रूप में उन्होंने पर्याप्त ख्याति अर्जित की। संवत् १८२२ में ५८ वर्ष की अवस्था में वे आश्विन शुक्ल १ को वृन्दावन में गोविन्दघाट पर स्थित ललितकुंज में निकुंजवासी हुए।

रचनाएँ :—वंशीअलि की रचनाएँ संस्कृत और हिन्दी भाषाओं में प्राप्त होती हैं। उनकी संस्कृत रचनाओं में राधातत्त्वप्रकाश, और राधासिद्धान्त प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने संस्कृत में मोक्षवाद, शक्ति स्वातंत्र्य-परामर्श और राधा-उपनिषद् की टीका भी की। वंशीअलि की कृष्णभक्ति विषयक व्रजभाषा रचनाएँ स्फुट पदों के रूप में प्राप्त होती हैं। परन्तु वंशीअलि की दो व्रजभाषा रचनाएँ रासपंचाध्यायी और हृदय-सर्वस्व बहुत प्रसिद्ध हैं। उनके स्फुट पद विविध पद संग्रहों में भी संकलित हुए हैं। वंशीअलि की व्रजभाषा रचनाओं के विषय में डॉ० शरणबिहारी गोस्वामी का कथन उल्लेखनीय है :—

"वंशीअलि की वाणी विशद है। उसमें सिद्धान्त के ४१ पद, वात्सल्य के ४६ पद, माधुर्यशत के १२४ पद तथा वर्षोत्सव के अनेक पद हैं। श्री लाडिली जू की बधाई, श्री ललिता जू की बधाई, उनकी वंशावली, हृदय सर्वस्व, श्री राधा महारास का एक बृहत् संकलन है, जिसमें वंशीअलि जी के अन्य अनेक पद हैं।"[1]

वंशीअलि की रचनाओं में सरस एवं उत्कृष्ट शैली में सखीभाव की उपासना का प्रतिपादन हुआ है। अपनी रचना में वंशीअलि ने पद शैली के अतिरिक्त कवित्त और सवैयों का भी प्रयोग किया है। ललित-सम्प्रदाय की सखीभाव की उपासना पद्धति एवं भक्ति भावना के लिए वंशीअलि की रचनाएँ आधार रूप में स्वीकार की जाती हैं। उनके पदों में भक्ति के वात्सल्य, सखी, माधुर्य, शान्त आदि भावों की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है। वंशीअलि ने राधा की वात्सल्य भक्ति की व्यंजना के द्वारा भक्ति के एक नवीन रूप का

[1] कृष्णभक्ति-काव्य में सखीभाव, पृ० ६६६

प्रतिपादन किया। साम्प्रदायिक उत्सवों से सम्बन्धित पदों में वंशीअलि को भक्ति प्रसूत लोकानुभूति की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है, परिणामतः उनके पदों का कलात्मक उत्कर्ष भी पर्याप्त महत्त्वपूर्ण बन पड़ा है।

किशोरीअलि

परिचय :—किशोरीअलि ललित-सम्प्रदाय के संस्थापक वंशीअलि के शिष्य थे। सम्प्रदाय में ऐसी मान्यता है कि वंशीअलि द्वारा प्रवर्तित उपासना पद्धति के मर्म को उन्होंने जितनी सफलता के साथ आत्मसात किया था, उतना किसी अन्य के द्वारा सम्भव नहीं हो सका। किशोरीअलि के व्यक्तित्व और कृतित्व की प्रशंसा करते हुए राधाचरण गोस्वामी ने नव भक्तमाल में एक छप्पय की रचना है।[१] डॉ० शरणबिहारी गोस्वामी ने रसिकमाल में संकलित विनयचन्द्र कृत बधाई के आधार पर किशोरीअलि का परिचय दिया है, जिसके अनुसार किशोरीअलि का पूर्व नाम जगन्नाथ भट्ट था। पिता का नाम ब्रजनाथ था और इनका जन्म मथुरा में हुआ था, इनकी पत्नी का नाम किशोरी था। किशोरी के प्रति इनकी आसक्ति बहुत ही बढ़ी हुई थी। उसकी मृत्यु हो जाने पर ये किशोरी-किशोरी पुकारते संकेत (बरसाना) चले आये। कहा जाता है कि अपना नाम पुकारते हुए भक्त को स्वयं किशोरी राधा ने अपना दर्शन दिया।"[२] बरसाने पहुँच कर जगन्नाथ वंशीअलि के शिष्य बन कर ललित-सम्प्रदाय में दीक्षित हो गए और तदनन्तर उनका नाम किशोरअलि विख्यात हुआ।

किशोरीअलि के विषय में इससे अधिक विवरण नहीं मिलता। मिश्र-बन्धुओं ने किशोरीअलि का समय लगभग संवत् १८३७ स्वीकार किया है।[३]

---

[१] श्री वंशी गुरु चरण कमल मधि दृढ़ विस्वासा।
सर्वशास्त्र सम्पन्न सु जयपुर नगर निवासा।
विविध ग्रन्थ दृढ़ पंथ कियौ पंडित गण जीते।
भाव भावना बिशद कुंज अनुभव नित कीते।
श्री वृन्दावन बास रत पद बाणी निरुपम ललित ॥
श्री किशोरीअलि जगन्नाथ की प्रेम प्रथा जग में विदित ॥

—नव भक्तमाल, छ० सं० ८

[२] हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य में सखीभाव, पृ० ६१८

[३] मिश्रबन्धु-विनोद, भाग २, पृ० ८१८

डॉ० शरणबिहारी गोस्वामी ने राधावल्लभी गोस्वामी चन्द्रलाल का सम-सामयिक बताते हुए उनकी वाणी में संकलित एक पत्री का साक्ष्य दिया है, जिसके अनुसार ये संवत् १८३१ तक जीवित थे ।[१]

रचनाएँ :—किशोरीअलि की स्फुट रचनाएँ हस्तलिखित ग्रन्थों के रूप में संकलित हैं । डॉ० शरणबिहारी गोस्वामी के पास किशोरीअलि की वाणी का एक हस्तलिखित संग्रह सुरक्षित है, जिसके सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है :—

"लगभग चार सौ पृष्ठों की इस हस्तलिखित वाणी में किशोरीअलि जी के पद एवं दोहे संकलित हैं । प्रारम्भ में ही इनके 'जगन्नाथ' नाम से संस्कृत का राधाप्रेमाष्टक जुड़ा हुआ है, तत्पश्चात व्रजभाषा की वाणी है । इसमें मन शिक्षा, ललिता जू के मंगल, वृन्दावन मंगल, बीन के पद, विनय मंगल, अष्ट-याम के पद, फुटकर पद, गुसाईं जी की बधाई सांझी, भागवत स्तुति, सुकदेव स्तुति, रसिक महिमा, वृन्दावन महिमा, रसकेलि कहानी, पहेली, द्वितीय अष्टयाम, व्याहलौ, पूर्वानुराग, वर्षोत्सव के पद, शरद रास के पद, आदि संकलित हैं । इनकी संकेत बिहारलीला और भ्रमरगीत भी इसी में संगृहीत हैं ।"[२]

किशोरी अलि की उपर्युक्त निर्दिष्ट रचनाएँ वर्ण्यवस्तु एवं भावधारा की दृष्टि से वंशीअलि की भक्ति पद्धति का प्रभाव लिए हैं । परन्तु उनकी रचनाएँ कलात्मक दृष्टि से भी पर्याप्त सम्पन्न हैं । किशोरीअलि के स्फुट पद माधुर्यरस से आप्लावित हैं तथा उनमें राधाकृष्ण की मधुर लीलाओं की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है । भ्रमरगीत की रचना द्वारा उन्होंने सहचरि भावाश्रित कृष्णभक्ति-काव्य की परम्परा में एक नवीन उद्भावना की । इस दृष्टि से वे चाचा वृन्दावनदास के समकक्ष सिद्ध होते हैं ।

अलबेली अलि

परिचय :—ललित-सम्प्रदाय के कवियों में अलबेली अलि की सर्वाधिक ख्याति रही है । किन्तु दुर्भाग्यवश अलबेली अलि के जीवन-वृत्त के विषय में सूचनाओं का अत्यन्त अभाव है । अलबेली अलि वंशीअलि के शिष्य थे । वियोगी हरि ने अलबेली अलि के व्यक्तित्व और कृतित्व के विषय में भक्त-

---

[१] **हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य में सखीभाव, पृ० ६६६**

[२] **वही, पृ० ७००**

माल की पद्धति पर एक प्रशंसात्मक छप्पय लिखा है।[1] अलबेलीअलि के शिष्य होने के तथ्य के आधार पर पं० रामचन्द्र शुक्ल ने वंशीअलि का कविता काल १८ वीं शताब्दी का अन्तिम समय स्वीकार किया है, जो उचित ही प्रतीत होता है।[2] अलबेली अलि के विषय में किसी अन्य स्रोत से कुछ भी नहीं ज्ञात होता।

रचनाएँ :—अलबेली अलि की रचनाओं का कोई स्वतंत्र संकलन नहीं प्राप्त होता। वियोगी हरि ने उनके "समय-प्रबन्ध पदावली" नामक एक ग्रन्थ का उल्लेख किया है। समय-प्रबन्ध-पदावली में अलबेली अलि को 'गुसांई जी को मंगल' और 'गुरु परम्परा' नामक दो अन्य रचनाओं का भी संकलन हुआ है। इधर डॉ० बाबूलाल गोस्वामी ने अलबेली अलि की वृन्दावनसंत नामक एक अन्य रचना का भी उल्लेख किया है,[3] जिसमें वृन्दावन का परम्परा-युक्त माहात्म्य एवं सौन्दय वर्णित हुआ है।

अलबेली अलि की वाणी में मुख्य रूप से सखीभाव की अभिव्यक्ति हुई है, जिस पर वंशीअलि की उपासना पद्धति का प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से परिलक्षित होता है। राधा-कृष्ण के क्रीड़ा-विलास और वृन्दावन के सौन्दर्य वर्णन में अलबेली अलि की काव्यकला का उत्कृष्ट रूप परिलक्षित होता है। उनकी भाषा में नाद सौन्दर्य और अलंकार योजना का सुन्दर विन्यास मिलता है।

संकेत अलि

परिचय :—संकेतअलि वंशीअलि की शिष्य परम्परा में लाड़लीप्रसाद के शिष्य थे। इनका वास्तविक नाम शंकरप्रसाद था तथा ललित-सम्प्रदाय में

---

[1] गुरु गोविन्द में भेद-भाव नहिं कछु है मान्यौ।
भजन कीरतन चारु सार जीवन को मान्यौ॥
सुधो सुसील सुसन्त सहज रस रासि रंगीलौ।
निरमत्सर निरछंद कंद नव नेह रसीलौ।
रचि समै-प्रबंध पदावली लली-लाल गुन-गान कर।
श्री वंशीअलि कौ शिष्य श्री अलबेली अलि रसिकबर॥

—ब्रजमाधुरी सार, पृ० १६४

[2] हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३५४-५५

[3] वंशीअलि जी का सम्प्रदाय : ललित-सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य, पृ० २५९-२६० (अप्रकाशित)

दीक्षित होने के अनन्तर ये संकेत अलि के नाम से विख्यात हुए। संकेत अलि के विषय में अधिक सूचनाएँ नहीं प्राप्त होतीं। संकेत अलि की रचना 'संकेतलता' के आधार पर इनका रचना काल संवत् १९३७ के आस-पास निश्चित होता है।

रचनाएँ :—जैसा कि संकेत किया जा चुका है, संकेत अलि की एक मात्र रचना संकेतलता प्राप्त है। संकेतलता में विनय, साम्प्रदायिक उत्सवों और राधा-कृष्ण की विविध लीलाओं से सम्बन्धित पद और छंद संकलित हुए हैं। राधा-कृष्ण की लीलाओं के चित्रण में संकेत अलि की कला का सुन्दर निदर्शन हुआ है।

२—सम्प्रदायमुक्त कवि और काव्य

यह संकेत किया जा चुका है कि भक्तिकाल से ही कृष्णभक्ति-काव्य की एक ऐसी अवांतर धारा प्रवाहित हो रही थी, जिसके प्रणेता कृष्णभक्ति के किसी भी सम्प्रदाय से सम्बद्ध नहीं थे। राधाकृष्ण, लोकमन में पर्याप्त गहरे उतर चुके थे तथा उनकी विविध लीलाएँ अपनी ललित प्रकृति के प्रभावस्वरूप अनेक कवियों को काव्य-रचना की अनवरत प्रेरणा दे रही थीं। कृष्णभक्ति और कृष्णलीलाओं की सहज रसवत्ता और लोकप्रियता के ही कारण बहुत से सम्प्रदायेतर कवि उनके आधारभूत ग्रन्थों के अनुवाद कार्य में प्रवृत्त हुए तथा प्रकारान्तर से इस प्रकार के समस्त यत्नों ने कृष्णचरित को लोकप्रिय बनाने में महत्त्वपूर्ण योग दिया। समालोच्य युग में राधाकृष्ण की लीलाओं को अपनी काव्य-रचना का आलंबन बनाने वाले सम्प्रदायेतर कवियों की दो कोटियाँ निर्धारित की जा सकती हैं। प्रथम के अन्तर्गत रीति कवि आते हैं, जिन्होंने राधा-कृष्ण की लीलाओं का उपयोग लक्षण-ग्रन्थों में विविध काव्यांगों के विवेचन हेतु उदाहरणों के रूप में किया तथा द्वितीय में वे कवि आते हैं, जिन्होंने निरपेक्ष्य रूप से राधाकृष्ण की लीलाओं के स्फुट प्रसंगों को काव्य-वस्तु के रूप में आत्मरंजन अथवा लोकरंजन के उद्देश्य से स्वीकार किया है।

आलोच्य युग की सीमा में आने वाले रीति कवियों में देव, भिखारीदास, पद्माकर, बेनीप्रवीन, ग्वाल और द्विजदेव उल्लेखनीय हैं। सभी कवियों ने लक्षण ग्रन्थों के अन्तर्गत प्रायः उदाहरणों के रूप में राधा-कृष्ण के रूप सौंदर्य और लीलाओं का चित्रण किया है।[१] अतः इनके कृतित्व का एक अंश ही सीमित

[१] **इन कवियों की कुछ रचनाओं के नाम, जिनमें कृष्णलीलाएँ वर्णित हुई हैं, इस प्रकार हैं :—**

दृष्टि से कृष्णभक्ति-काव्य के अन्तर्गत लिया जा सकता है। इन सभी में केवल ग्वाल ही ऐसे लक्षित होते हैं, जिन्होंने रीति निरूपण के साथ राधा-कृष्ण की लीलाओं और उनके विविध उपकरणों से सम्बन्धित स्वतंत्र काव्यों की रचना की, किन्तु ग्वाल की इस प्रकार की समस्त रचनाओं में रीति तत्व ही मुखर रहे हैं तथा उनका अन्तस भी तदनुरूप ही निर्मित हुआ है।

रीतिकाव्य सर्वथा लौकिक काव्य है, परन्तु लौकिक होते हुए भी उस पर कृष्णभक्ति का पूरा प्रभाव है। रीतिकाव्यों में राधा-कृष्ण की भक्ति, प्रेम और लीलाओं की अनेक उक्तियाँ भरी पड़ी हैं तथा उनके नाम, रूप, लीला और धाम के सभी उपकरण उनमें वर्णित हुए हैं। कृष्णलीला के नंद, यशोदा, ग्वाल सखा, ललिता, विशाखा, चन्द्रकला, कुब्जा आदि सभी पात्र उनमें आ गए हैं। राधा-कृष्ण-लीला के विविध स्थलों का भी रीति कवियों ने निरन्तर स्मरण किया है, क्योंकि उनकी परिधि से बाहर लीलाओं की रसवत्ता आहृत-सी प्रतीत होती है। गोकुल-वृन्दावन की माखनचोरी, दानलीला, मानलीला, चीरहरणलीला, पनघटलीला आदि का इन्होंने पर्याप्त रोचक वर्णन किया है। इन लीलाओं के साथ वृन्दावन के कुंज, यमुनातट, वन, कदम्ब आदि सभी रीति कवियों की कल्पना में अवतरित हुए हैं। इन सबके साथ ही लक्षण ग्रन्थों के बीच-बीच में राधा-कृष्ण और उनकी लीलाओं के प्रति रीति कवियों की भक्तिपरक अभिव्यक्तियाँ भी बराबर मिलती हैं। अस्तु, स्थूल रूप से कृष्णलीलाओं के समस्त उपकरण रीतिकाव्यों में मिल जाते हैं।

किन्तु रीतिकाव्यों पर कृष्णभक्ति और कृष्ण-लीलाओं का पूर्ण प्रभाव होते हुए भी उन्हें हम भक्ति-काव्य की कोटि में नहीं ले सकते। रीतिकवियों ने राधा-कृष्ण की लीलाओं का उपयोग सर्वथा भिन्न और लौकिक सन्दर्भ में

देवः— भावविलास, अष्टयाम, भवानीविलास, प्रेमतरंग, कुशलविलास, रसविलास, प्रेमचंद्रिका, रसानंद लहरी, रागरत्नाकर, आदि।

भिखारीदासः—काव्यनिर्णय, शृंगारनिर्णय, रससारांश आदि।

पद्माकरः— पद्माभरण, जगद्विनोद, आदि।

बेनीप्रवीनः— नवरसतरंग

ग्वालः— यमुनालहरी, भक्तपावन, रसिकानंद, रसरंग, कृष्णजू को नखसिख, दूषणदर्पण, गोपीपचीसी, राधा-माधवमिलन, कुब्जाष्टक आदि।

द्विजदेवः— शृंगारलतिका और शृंगारबत्तीसी

किया है। राधा-कृष्ण के समस्त क्रियाकलापों का उद्देश्य लौकिक है। मुरली-वादन, गोचारण, दानलीला, निकुंजलीला आदि सभी का उनकी दृष्टि में एक भौतिक प्रयोजन है। राधा-कृष्ण उनके काव्य में नायक और नायिका की अभिधा में वर्णित होकर शृंगार के सर्वाङ्ग विवेचन में सहायक हुए हैं। उनका रूप चित्रण रीति कवि की ऐहिक सौन्दर्य दृष्टि को ही अभिव्यक्त करता है। जहाँ तक रीति कवियों के काव्य में प्राप्त भक्तिपरक अभिव्यक्तियों का प्रश्न है उन्हें, कृष्णभक्ति के सामान्य धर्म के रूप में प्रचलन तथा कवियों की संस्कारगत भक्ति का प्रतिफलन मानना उचित प्रतीत होता है। भिखारीदास की प्रसिद्ध पंक्ति, "आगे के कवि रीझिहैं तो कविताई सही, नत राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है" रीतिकाव्य के राधा-कृष्ण विषयक दृष्टिकोण की स्पष्ट उद्घोषणा है। इस काव्य में वर्णित राधा-कृष्ण इतने प्रभावशाली सिद्ध हुए कि वे सम्प्रदाय में दीक्षित अनेक कवियों की भावना को भी संचालित करते हुए लक्षित होते हैं। अस्तु, समस्त रीति काव्य तथा उससे प्रभावित कृष्णकाव्य को राधाकृष्ण की लीलाओं का लौकिक संवाहक मात्र कहना उचित होगा।

इस युग में निरपेक्ष्य रूप से राधा-कृष्ण की लीलाओं पर आधारित काव्यों की रचना करने वाले अनेक कवियों और उनकी कृतियों के उल्लेख खोज रिपोर्टों और इतिहास-ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। यहाँ उन सब का विवरण देना अनावश्यक-सा प्रतीत होता है। आगे कृष्णभक्ति और कृष्ण-लीलापरक आधार ग्रन्थों के अनुवादों के विवेचन में इस प्रकार के कुछ कवियों का उल्लेख किया गया है। किन्तु आलोच्य युग में इस परम्परा के समस्त रचनाकारों में बख्शी हंसराज (१७३२ ई० के लगभग), मंचित (१७६६ ई०), बीबी रत्नकुँवरि (सन् १८०० ई०), रघुराजसिंह (१८५० ई०), व्रजनिधि (१७६४-१८०३ ई०) आदि उल्लेखनीय हैं। बख्शी हंसराज की विविध कृष्णलीलाओं से सम्बन्धित सनेहसागर, विरहविलास, बारहमासा, कृष्णजू की पाती, श्री जुगलस्वरूप, विरह-पत्रिका, फागतरंगिनी, चुनिहारिन लीला, आदि रचनाएँ मिलती हैं। इनके अन्तर्गत राधाकृष्ण के सौन्दर्य चित्रण तथा विविध पौराणिक और लौकिक-लीलाओं का अनुरंजनकारी वर्णन हुआ है। मंचित की दो रचनाएँ, सुरभीदानलीला, और 'कृष्णायन' प्राप्त हैं। इनमें से प्रथम में दानलीला वर्णित हुई है तथा द्वितीय में रामचरितमानस की शैली के अनुकरण पर कृष्णचरित वर्णित हुआ है। बीबी रत्नकुँवरि कृत 'प्रेमरत्न' एक संक्षिप्त रचना है जिसमें कृष्णलीलाओं का वर्णन किया गया है। महाराज रघुराजसिंह की कृष्णचरित विषयक केवल

दो रचनाएँ 'रुक्मिणी-परिणय' और 'भागवत-माहात्म्य' मिलती हैं। इनमें रुक्मिणी-परिणय 'पर्याप्त महत्वपूर्ण है। इसके अन्तर्गत रुक्मिणी और कृष्ण की प्रेम क्रीड़ा के चित्रण में कवि की उद्‌भावना सर्वथा मौलिक है। 'भागवत-माहात्म्य' इसी नाम की संस्कृत रचना का भाषानुवाद है। ब्रज-निधि की कृष्ण-लीलापरक रचनाओं में प्रीतिलता, स्नेह-संग्राम, फागरंग, प्रेम प्रकाश, विरहसलिला, स्नेह बहार, मुरलीविहार, रास का रेखता, रंग चौपड़, प्रीति पचीसी, प्रेमपंथ, ब्रजश्रृंगार, पदसंग्रह आदि अनेक रचनाएँ मिलती हैं। इन सभी रचनाओं की सृजन-प्रेरणा कृष्णलीलाओं के परम्परागत तथा लोक-प्रचलित रूपों में सन्निहित है। इनकी भाषा, शैली अभिव्यंजना आदि पर रीति प्रभाव प्रचुर मात्रा में मिलता है।

सम्प्रदायमुक्त कृष्णभक्ति-काव्य की उपर्युक्त विवेचित दोनों ही परम्पराएँ इस तथ्य की प्रतीक हैं कि कृष्णभक्ति सम्प्रदायों से इतर कवियों में भी कृष्णलीलाओं के प्रति पर्याप्त आकर्षण विद्यमान था। आराध्य युगल भी लोक के रंग में रंग कर जनसामान्य को अनुरंजित कर रहे थे।

३--अनूदित-काव्य

आलोच्य युग में संस्कृत और बंगला के कृष्ण लीलाओं एवं भक्ति संबंधी आधारभूत ग्रन्थों के अनुवादों की प्रवृत्ति को विशेष बल मिला। अनूदित-काव्य के क्षेत्र में साम्प्रदायिक और साम्प्रदायमुक्त दोनों ही परम्परा के कृष्णपरक कवियों की कृतियाँ मिलती हैं। निम्बार्क, बल्लभ और चैतन्यमत के आधारभूत सिद्धान्त-ग्रन्थ, संस्कृत, बंगला और उड़िया भाषाओं में रचे गये थे। सम्प्रदाय प्रचार हेतु उनको ब्रजभाषा में सुलभ बनाना अत्यन्त आवश्यक था। इस अभाव की पूर्ति हेतु साम्प्रदायिक कृष्णभक्ति-काव्य में उन कृतियों के अनुवाद की परम्परा विकसित हुई। इस प्रकार कृष्णभक्ति के मानक पौराणिक एवं साम्प्रदायिक ग्रन्थों की भावधारा को लोक सामान्य के लिए बोधगम्य बनाना अनूदित साहित्य की रचना का मुख्य प्रयोजन कहा जा सकता है। किन्तु कुछ रचनाओं के अनुवाद इस प्रकृति के अपवाद रूप में भी मिलते हैं, जिनका प्रमुख आकर्षण मूल रचनाओं का साहित्यिक पक्ष रहा है।

साम्प्रदायिक कवियों द्वारा अनूदित साहित्य की तुलनात्मक स्थिति :—

अनूदित साहित्य की रचना में चैतन्यमत के कवियों का सर्वाधिक योगदान दिखाई पड़ता है। निम्बार्क, वल्लभ, राधावल्लभ और हरिदासी सम्प्रदायों में

उनके उद्‌भवकाल में ही अनेक रससिद्ध कवि हुए, जिनकी काव्यमयी वाणी कृष्णचरित और माधुर्य भक्ति के लिए वरदान सिद्ध हुई। गोस्वामी हितहरिवंश और स्वामी हरिदास ने तो लोक में प्रचार के उद्देश्य से अपनी भक्ति विषयक मान्यताओं को संस्कृत के साथ व्रजभाषा के भी माध्यम से प्रतिपादित किया था। इसके अतिरिक्त इन सम्प्रदायों ने संगठित रूप में साहित्य रचना को प्रेरणा दी किन्तु चैतन्य महाप्रभु के अनुयाइयों द्वारा व्रजभाषा साहित्य की रचना के किसी सामूहिक यत्न का उल्लेख नहीं मिलता। यद्यपि व्रज प्रदेश में चैतन्य मत का प्रभूत साहित्य रचा गया, तथापि वह अधिकतर संस्कृत और बंगला भाषाओं में था। अन्य सम्प्रदायों की स्पर्धा में उन्होंने अपने सम्प्रदाय को लोकप्रिय एवं प्रभावशाली बनाने के लिए उसके आकर ग्रन्थों को व्रजभाषा में रूपान्तरित करने की आवश्यकता का अनुभव किया। यही कारण है कि चैतन्य मत के आलोच्य युगीन अनेक कवि अनुवादक के रूप में दिखाई पड़ते हैं। चैतन्यमत के कवियों का अनुवाद कार्य में प्रवृत्त होने का एक यह भी कारण ज्ञात होता है कि गौड़ीय आचार्यों द्वारा प्रतिपादित भक्ति और दर्शन के गूढ़ शास्त्रीय विवेचन ने एक प्रकार से अपने सम्प्रदाय के व्रजभाषा कवियों के लिए मौलिक काव्य रचना का मार्ग अवरुद्ध-सा कर दिया था। अतएव मौलिक उद्‌भावनाओं के अभाव में चैतन्यमत के व्रजभाषा कवियों का सैद्धान्तिक ग्रन्थों के अनुवाद में प्रवृत होना एक प्रकार से स्वाभाविक भी था। अस्तु, रचनाओं का पौराणिक एवं सैद्धान्तिक महत्त्व, नवीन सामग्री का आकर्षण तथा सम्प्रदाय प्रचार अनूदित काव्य की रचना के सामान्य प्रयोजन ज्ञात होते हैं।

अनूदित काव्य का वर्गीकरण

मूल रचनाओं की भाषा के आधार पर अनूदित रचनाओं को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :-

(क) संस्कृत से अनूदित रचनाएँ
(ख) बंगला से अनूदित रचनाएँ

इनमें सबसे अधिक अनुवाद संस्कृत रचनाओं के मिलते हैं। बंगला-ग्रन्थों के अनुवाद की परम्परा चैतन्य मत के ही अन्तर्गत मिलती है।

(क) संस्कृत से अनूदित रचनाएँ :—संस्कृत से जिन रचनाओं के अनुवाद हुए उनमें भागवत, विष्णु, स्कंद आदि पुराण, भागवत-माहात्म्य

और भगवद्गीता प्रमुख हैं। इनमें भी भागवत के अनुवादों की संख्या सबसे अधिक है।

भागवत के भाषानुवाद :—वैष्णव धर्म और कृष्णभक्ति के विकास के संदर्भ में हम देख चुके हैं कि भागवत कृष्णभक्ति-काव्य का उपजीव्य ग्रन्थ रहा है। भागवत और उसकी कृष्णलीलाओं के प्रति साम्प्रदायिक कवियों के साथ ही लोकमन भी उसके प्रभाव से अछूता नहीं बचा। इसीलिए सम्प्रदाय-मुक्त कवियों कृत भागवत के व्रजभाषा अनुवाद प्रचुर संख्या में मिलते हैं। विवेच्य युग में कृष्णभक्ति से अपने प्रकृतिगत विरोध के होते हुए भी संत और रामकाव्य धाराओं के कवियों का भी भागवत की भावधारा एवं कृष्णलीलाओं के प्रति झुकाव दिखाई पड़ता है।[1] इस प्रकार भागवत के विवेच्ययुगीन अनुवादों को दो मुख्य वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :–

१–साम्प्रदायिक कवियों कृत अनुवाद
२–सम्प्रदाय-मुक्त कवियों कृत अनुवाद

सम्प्रदाय-मुक्त वर्ग के अनुवादों की भी तीन परम्पराएँ मिलती हैं :–

१–स्वच्छन्द वर्ग के अनुवाद
२–रामभक्त कवियों कृत अनुवाद
३–संतमत के कवियों कृत अनुवाद

प्रस्तुत विवेचन में केवल साम्प्रदायिक तथा सम्प्रदायमुक्त वर्ग के स्वच्छन्द परम्परा के अनुवादों को ही सम्मिलित किया गया है।

साम्प्रदायिक कृष्णभक्त कवियों कृत भागवत के अनुवाद :—

इस वर्ग के अनुवादों में निम्बार्क, वल्लभ, चैतन्य और राधावल्लभ सम्प्रदायों के कवियों की कृतियाँ प्राप्त हुई हैं। हरिदासी सम्प्रदाय के भागवत के किसी भी भाषानुवाद का उल्लेख नहीं मिलता। वस्तुतः राधावल्लभ और हरिदासी सम्प्रदायों के प्रवर्तक आचार्यों ने राधाकृष्ण की प्रेमलक्षणा भक्ति तथा माधुर्य लीलाओं का अपनी उपासना पद्धतियों के अन्तर्गत विधान करते हुए भी भागवत की कृष्णलीलाओं के सम्पूर्ण धरातल को नहीं ग्रहण किया। उन्होंने राधा-माधव की लौकिक वृन्दावन एवं निकुंज लीलाओं पर आधारित स्वतंत्र साधन पक्षी माधुर्योपासना का प्रवर्तन किया था। अतएव

---

[1] **गवेषणा, मार्च १९६४, लेखक का 'भागवत के भाषानुवादों की परम्परा' शीर्षक लेख**

इन सम्प्रदायों के कवियों का भागवत के भाषानुवादों की ओर आकृष्ट न होना एक प्रकार से स्वाभाविक-सा था। राधावल्लभ-सम्प्रदाय में अवश्य इस तथ्य के कुछ अपवाद मिलते हैं। इनमें हरिदासकृत 'भागवत दशम स्कंध'[१] (रचना-काल ?) और हितदासकृत 'भाषा-भागवत दशम-स्कंध'[२] (१८वीं शती पूर्वार्द्ध) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन दोनों अनुवादों में भागवत दशम-स्कंध की कृष्णलीलाएँ वर्णित हुई हैं।

इस सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि आलोच्ययुग में वल्लभ-सम्प्रदाय के साहित्य में भी भागवत के अनुवादों की प्रवृत्ति पल्लवित नहीं हो सकी। गोस्वामी हरिराय जैसे प्रतिभासम्पन्न आचार्य तक ने राधा-कृष्ण की वात्सल्य और माधुर्य लीलाओं तक ही अपनी वाणी का विस्तार सीमित रक्खा। सम्भवतः अष्टछापी कवियों के भागवत की कृष्णलीलाओं पर आधारित कृतित्व ने काव्यगत मौलिक उद्भावनाओं के क्षेत्र में वल्लभ-सम्प्रदाय के परवर्ती कवियों का मार्ग अवरुद्ध-सा कर दिया था। उनके लिए अष्टछापी कवियों का साहित्य ही अस्तित्व संरक्षण एवं सम्प्रदाय प्रचार के लिए पर्याप्त श्लाघनीय एवं उपयुक्त माध्यम था। अतएव उन्हें भागवत के अनुवादों की कोई आवश्यकता नहीं पड़ी। आलोच्ययुग में वल्लभ-सम्प्रदाय के अन्तर्गत जयकृष्णकृत 'भागवत दशम-स्कंध' (सन् १७६५ ई०) जैसी एकाध रचनाओं का इस दिशा में अपवाद स्वरूप उल्लेख मिलता है।[३] भागवत दशम-स्कंध में केवल कृष्ण-जन्म तक की ही कथा वर्णित हुई है।

निम्बार्क और चैतन्य सम्प्रदायों में भागवत के अनुवादों की प्रवृत्ति को अपेक्षाकृत अधिक प्रश्रय मिला। निम्बार्कीय और गौड़ीय कवियों द्वारा किए गए अनुवादों में भागवत की सम्पूर्ण कथा एवं काव्य-गरिमा लक्षित होती है। भागवत के निम्बार्कीय अनुवादों में कृष्णदासकृत 'भागवत-भाषा'[४] और ब्रजदासीकृत 'ब्रजदासी भागवत'[५] नामक कृतियाँ प्राप्त हुई हैं। ये दोनों अनुवाद भागवत की सम्पूर्ण कथा को समेट लेते हैं। चैतन्यमत के अन्तर्गत

---

१ खोज रिपोर्ट नागरी प्रचारिणी सभा, सन् १९३२-३४, सं० ७७

२ साहित्य-रत्नावली, पृ० ६२

३ खोजरिपोर्ट नागरी प्रचारिणी सभा, सन् १९३२-३४, सं० ९८

४ माधुर्यलहरी भूमिका, पृ० ५

५ सम्मेलन पत्रिका, भाग ४६, सं० १, ब्रजदासीकृत भाषा-भागवत

भागवत के वैष्णवदास रसजानि कृत 'भागवत-भाषा'[1] और बलवंतराव सिंधे (१९वीं शती उत्तरार्द्ध) 'भागवत दशम स्कंध'[2] नामक दो अनुवाद मिलते हैं। इनमें भागवत-भाषा में केवल दशम स्कंध की ही कृष्ण लीलाएँ अनूदित हुई हैं। रसजानि और ब्रजदासीकृत अनुवाद आलोच्ययुग के भागवत के समस्त अनुवादों में कथा की पूर्णता तथा अनुवाद की प्रकृति की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। अतएव इन पर पृथक् रूप से विचार करना समीचीन होगा।

वैष्णवदास रसजानि कृत भागवत-भाषा :—यह सम्पूर्ण भागवत का अनुवाद है। भागवत-भाषा की रचना दोहा-चौपाई छंद में हुई है, जिनकी संख्या लगभग पंद्रह सहस्र है। मीतल जी ने भागवत-भाषा की कई हस्तलिखित प्रतियों का उल्लेख किया है।[3] भागवत का यह अनुवाद रसजानि के समर्थ अनुवादक के व्यक्तित्व का सूचक है। यह भागवत का अविकल अनुवाद है। रसजानि ने आलोच्ययुग के भागवत के अन्य अनुवादकों के सदृश्य कृष्ण की अलौकिक एवं असुर-संहारक लीलाओं के प्रति उपेक्षात्मक दृष्टि नहीं रक्खी है। चैतन्य मत की माधुर्योपासना के अनुयायी होते हुए भी उन्होंने माधुर्य और माधुर्येतर लीलाओं के अनुवाद में प्रकृतिगत एवं प्रभावगत अन्तर नहीं आने दिया है। भागवत-भाषा के अन्तर्गत भागवत के अतिरिक्त कृष्ण-कथा के अन्य किसी स्रोत का आश्रय नहीं दिखाई पड़ता। कथा की प्रवाहमयता को सुरक्षित रखने के प्रयोजन से चौपाई छंद का प्रयोग प्रधान रूप से हुआ है। भागवत की कथा के क्रमानुसार प्रत्येक दोहे के आरम्भ में वर्णित प्रसंग की वस्तु के निर्देश की प्रवृत्ति मिलती है।[4] रसजानि ने भागवत के किसी भी प्रसंग को स्वानुभूति अथवा कल्पना से अनुरंजित नहीं किया है। मूल तथ्यों और भावों के रूपान्तर में उन्हें पर्याप्त सफलता मिली है। मूल भागवत और

---

[1] रसजानि कृत भाषा-भागवत के प्रथम, द्वितीय, दशम, एकादश और द्वादश स्कंध बाबा कृष्णदास द्वारा प्रकाशित हो चुके हैं, शेष अप्रकाशित हैं।

[2] चैतन्यमत और ब्रज साहित्य, पृ० ३३९

[3] वही, पृ० २६९

[4] करि परिहास सु रुक्मिनी, कुपति करी जदुराय।
मधुर बचन कहि सान्ति पुनि, करी साठएँ ध्याय।
—भागवत-भाषा, खंड २, पृ० २१५

रसजानि कृत अनुवाद के निम्न उद्धृत अंश से प्रस्तुत अनुवाद की सफलता का अनुमान लगाया जा सकता है :—

मूल :—

अन्तर्हिते भगवति सहसेव व्रजाङ्गनाः ।
अतप्यंस्तमचक्षाणाः करिण्य इव यूथपम् ॥१॥
गत्यानुरागस्मितविभ्रमेक्षितैर्मनोरमालापविहारविभ्रमैः ।
आक्षिप्तचित्ताः प्रमदा रमापतेस्तास्ता विचेष्टा जगृहुस्तदात्मिकाः ॥२॥
गतिस्मितप्रेक्षणभाषणादिषु प्रियाः प्रियस्य प्रतिरूढमूर्तयः ।
असावहं त्वित्यबलास्तदात्मिका न्यवेदिषुः कृष्णविहारविभ्रमाः ॥३॥
गायन्त्य उच्चैरमुमेव संहता विचिक्युरुन्मत्तकवद् वनाद् वनम् ।
पप्रच्छुराकाशवदन्तरं बहिर्भूतेषु सन्तं पुरुषं वनस्पतीन् ॥४॥
दृष्टो वः कच्चिदश्वत्थ प्लक्ष न्यग्रोध नो मनः ।
नन्दसूनुर्गतो हृत्वा प्रेमहासावलोकनैः ॥५॥[१]

रसजानिकृत अनुवाद :—

औचकि हरि अन्तर्हित भए । तियनि के दृगनि ओट ह्वै गए ।
पुनि ते तपनि लगीं तन ऐसे । बिन हाथी हथिनी कोऊ जैसे ॥
चालति प्रेम बहुरो जो हास । पुनि अवलोकनि सहति विलास ।
बहुरि मनोहरि वचन विहार । औरो कृष्ण विलास अपार ॥
तियनि के चित तिनके बस परे । ह्वै तद्रूप चरित हरि करे ॥
बोलनि चितवनि चलनि हसिनि अब । हरि की सी होय गईं सब ।
यह मैं कृष्ण करन यों लागी । केवल तन्मयता करि पागी ॥
होय बावरी बन रन हेरति । ऊंचे सुर करि तिय हरि टेरति ॥
हरि सबके बाहर भीतर यों । सदा विराजत है अकास ज्यों ॥
ता हरि स्नेह करि पागीं । द्रुम बेलनि प्रति पूछन लागीं ॥
अहो पिलुखन हे पीपलवर । कहाँ तुमनि कहूँ देखे हरि ॥
प्रेमहास अवलोकनि डारि । मन हर ले गए नंद दुलार ॥[२]

---

[१] भागवतदशम-स्कंध, पूर्वार्द्ध, अध्याय ३०

[२] भागवत-भाषा, द्वितीय खण्ड, अध्याय ३०, पृ० १०४

ब्रजदासीकृत भाषा-भागवत :—रसजानि कृत भागवत-भाषा के समान ब्रजदासीकृत भाषा-भागवत भी भागवत का पूर्ण अनुवाद है।[1] भाषा-भागवत के अतिरिक्त यह अनुवाद 'ब्रजदासी भागवत' के नाम से भी प्रसिद्ध है। भाषा-भागवत मूल भागवत का अविकल अनुवाद नहीं है। अनुवादिका ने कृष्ण की माधुर्यलीलाओं को स्वानुभूति से अनुरंजित किया है, किन्तु माधुर्येतर लीलाओं के अनुवाद में यह प्रवृत्ति लक्षित नहीं होती। भाषा-भागवत के अन्तर्गत रासलीला के प्रसंग का अनुवाद ब्रजदासी की मौलिक उद्भावनाओं एवं व्याख्यात्मक अभिव्यक्ति की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। भागवत में रास की शारदी विभावरी का वर्णन इस प्रकार हुआ है :—

> **भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः।**
> **वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ।।१।।**
> **तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं प्राच्या विलिम्पन्नरुणेन शन्तमैः।**
> **स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन्, प्रियः प्रियाया इव दीर्घ दर्शनः ।।२।।**
> **दृष्ट्वा कुमुद्वन्तमखण्डमंडलं, रमाननाभं नवकुंकमारुणम्।**
> **वनं च तत्कोमलगोभिरंजितं जगौ कलं वामदृशां मनोहरम् ।।३।।**
> **निशम्य गीतं तदनङ्गवर्द्धनं व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः।**
> **आजग्मुरन्योन्यमलक्षितोद्यमाः स यत्र कान्तो जवलोलकुण्डलाः ।।४।।**[2]

ब्रजदासी ने भागवत के उपर्युक्त अंश का स्वानुभूति रंजित अनुवाद, मूल की व्याख्या करते हुए अपनी मौलिकता का परिचय दिया है :—

> **श्री शुक कहत शरद रितु माही। फूलि मल्लिका रही सुहाही ।।**
> **निसा चाँदनी लसत सुढ़ार। ताकें लखि श्री नंद कुमार ।।**
> **करिवे लीला रास रसाल। किय मनोर्थ निज चित तिहि काल।।**
> **अपनी माया जोग सु बेनु। करलै धरी अधर सुख देनु ।।**

---

[1] भाषा-भागवत की एक हस्तलिखित प्रति गीता प्रेस गोरखपुर के संग्रहालय में सुरक्षित है। इस प्रति में एकादश स्कंध नहीं है, परन्तु द्वादश स्कंध के अन्त में स्कंधात्मक अध्यायों की सूची उसके कथानक परिचय के साथ विस्तारपूर्वक दी हुई है। इसका प्रतिलिपिकाल संवत् १८८५ ई० है।

[2] भागवत, दशम-स्कंध, पूर्वार्द्ध अध्याय २९

याही सों सब लीला होत। किय ताके सुर कौ उद्योत ।।
भौंसरि उदति पूर्वहावार। नहिं कलंक जा में निरधार ।।
सत्य अति नित ज सों न्यारो। प्रभु मम रूपी महा सुढ़ारो ।।
पूर्व दसा मनु भसि नारी। तिहिं निज लाज विरन अनुसारी ।।
मुख मंडित करि सोभा चढ़ाई। सो सबहिन को लगत सोहाई ।।
चन्द्र उदय ते बढ़ि सुख छाय। मिट्यो सकल जीवन संताप ।।
कुंकुम मंडित ज्यों श्री आनन। ऐसे भयो ससि कानन ।।
ताकी किरनन ते बढ़ि आई। वृन्दावन मंडित दरसाई ।।
देखि उमंग व्रजराज कुमार। चाइयो करन सुरंग विहार ।।
हर्यो जइ गोपिन-मग जाकरि। एगु बेनु सबद कीन्हो हरि ।।
सो मुरली को सुबद सुढ़ार। सुनति भई गोपी ता बार ।।
सबद सुन्यों नहिं ग्वालनि वाहीं। हुते न रहते के गृह माहीं ।।
चले जावते प्रभु के पास। तौ मिट जातो रंग विलास ।।[१]

इस प्रकार भाषा-भागवत में वर्ण्य प्रसंग को विस्तार देकर उसे बोधगम्य बनाने की प्रवृत्ति मिलती है। अनुवादिका ने मूल को शब्दगत एवं भागवत गुत्थियों को अत्यन्त सफलतापूर्वक सुलझाया है। भाव संरक्षण एवं तदनुकूल शब्दावली का प्रयोग भाषा-भागवत की महत्वपूर्ण विशेषता है।

भाषा-भागवत में दोहा, चौपाई छंदों को प्रधानता है। इसके अतिरिक्त कवित्त, सवैया, छप्पय आदि छंदों का भी प्रयोग हुआ है। अनुवादिका ने भावानुरूप छंद प्रयोग का विशेष ध्यान रखा है। भाषा-भागवत में प्रयुक्त भाषा सुबोध एवं साहित्यिक है।

रसजानि और ब्रजदासी कृत अनुवादों की तुलना :— ये दोनों अनुवाद भागवत की सम्पूर्ण कथा को समेट लेते हैं। रसजानि कृत भागवत-भाषा और ब्रजदासी कृत भाषा-भागवत की शब्दावली के विन्यास क्रम से उनकी प्रवृत्ति एवं स्वरूप का बोध होता है। भागवत-भाषा की रचना का उद्देश्य भागवत की कथा का भाषान्तर है, किन्तु भाषा-भागवत के अन्तर्गत अनुवाद के अतिरिक्त भागवत की कृष्ण-कथा की स्वानुभूति-परक कलात्मक एवं विश्लेषणात्मक अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है।

---

[1] सम्मेलन पत्रिका, भाग ४६, पृ० ७७ से उद्धृत

भागवत-भाषा की रचना का उद्देश्य प्रचारात्मक है, जब कि भाषा-भागवत के अन्तर्गत माधुर्य लीलाओं के अनुवाद में मिलने वाली मौलिक उद्भावनाएँ अनुवादिका की काव्य-प्रतिभा की परिचायक हैं। रसजानि ने मूल कथा की प्रवाहमयता को सुरक्षित रखने के आग्रहवश केवल दोहा और चौपाई छंदों का प्रयोग किया है। प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में दोहे का प्रयोग मिलता है। पूरे अध्याय की कथा चौपाई छंद में ही चलती है। इसके विपरीत ब्रजदासी कृत भाषा-भागवत में दोहा चौपाई के अतिरिक्त सवैया, कवित्त, छप्पय आदि वर्णनात्मक छंदों को भी स्थान मिला है।

दोनों अनुवादों में सुबोध एवं प्रवाहमयी व्रजभाषा का प्रयोग हुआ है। उनके उपर्युक्त विवेचित अंशों के आधार पर यह कहना असंगत न होगा कि भागवत-भाषा में अभिव्यक्त रसजानि का व्यक्तित्व मुख्य रूप से अनुवादक का हैं, किन्तु भाषा-भागवत से ब्रजदासी के अनुवादिका एवं कवियत्री के व्यक्तित्व का युगपद-बोध होता है।

सम्प्रदाय मुक्त कवियोंकृत अनुवाद :—

इस वर्ग के कवियों द्वारा किये गये भागवत के अनुवाद सबसे अधिक संख्या में मिलते हैं। नीचे प्राप्त प्रमुख अनुवादों का कालक्रमानुसार संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

दशम स्कंध भाषा[1] (सन् १७४४ ई०)

इस अनुवाद के प्रणेता हरिलाल चतुर्वेदी हैं। 'दशम स्कंध भाषा' में केवल कंस बध तक की कथा अनूदित हुई है।

कृष्णचन्द्रिका[2] (सन् १७५४ ई०)

प्रस्तुत रचना अषैराम कृत है। यह अपूर्ण है। कृष्णचन्द्रिका वस्तुतः भागवत का संक्षिप्त रूप है, किन्तु कृष्ण-चरित्र अत्यन्त विस्तार पूर्वक वर्णित हुआ है। कृष्ण-जन्म, वृन्दावन-महात्म्य, राधा-विरह, नखशिख चित्रण, गोपी-विरह आदि प्रसंगों के अन्तर्गत कवि की मौलिक उद्भावनाओं एवं रीति काव्य की अलंकृत शैली का प्रभाव लक्षित होता है।

---

[1] खोज रिपोर्ट, नागरी प्रचारिणी सभा, सन् १९३२–३४। सं० ७५

[2] वही, सन् १९३८-४०। सं० १

भाषा-भागवत एकादश स्कंध[1] (सन् १७५६ ई०)

इसके प्रणेता हरिदास ब्राह्मण हैं। 'भाषा-भागवत' एकादश स्कंध, भागवत के एकादश स्कंध की कथा अनूदित हुई है।

आनन्द-मंगल[2] (प्रति सन् १७७२ ई०)

इस अनुवाद का रचनाकाल अज्ञात है। अनुवादक का नाम नानीराम है। आनन्द मंगल वस्तुतः भागवत दशम स्कंध का अनुवाद है।

कृष्णचन्द्रिका[3] (सन् १७८१ ई०)

यह भागवत दशम स्कंध पूर्वार्द्ध का अनुवाद है। कृष्णचन्द्रिका के रचनाकार गुमान द्विज नाम के कवि हैं। इसके अन्तर्गत अनुवाद के पूर्व पिंगल, परीक्षित प्रसंग और पांडवों की कथा वर्णित हुई है।

कृष्णचन्द्रिका[4] (सन् १७८२ ई०)

इस अनुवाद के लिए 'भागवत-दशम स्कंध भाषा' नाम प्राप्त होता है। अनुवादक मोहनदास मिश्र नाम के कवि हैं। 'कृष्णचन्द्रिका' के अन्तर्गत भागवत दशम स्कंध के २९ वें अध्याय तक की कथा अनूदित हुई है।

भागवत-दशम-स्कंध[5] (प्रति सन् १७८६ ई०)

प्रस्तुत रचना बाजूराय कृत है। यह वस्तुतः अनुवाद न होकर भागवत दशम स्कंध की कथा का संक्षिप्त रूपान्तर है।

भाषा-भागवत-द्वादश स्कंध[6] (प्रति सन् १७९२ ई०)

प्रस्तुत रचना जैसा कि इसके नाम से विदित होता है, भागवत के बारहवें स्कंध का अनुवाद है। अनुवादक देवीदास नाम के कवि हैं।

कृष्ण विनोद[7] (सन् १८२२ ई०)

यह भागवत दशम स्कंध का अनुवाद है। अनुवादक राय विनोदी लाल नाम के कवि हैं।

---

[1] खोज रिपोर्ट, नागरी प्रचारिणी सभा, सन् १९०४। सं० ५५

[2] वही, सन् १९०६-८। सं० २९०

[3] वही, सन् १९०५। सं० २

[4] वही, सन् १९०९-११। सं० ९९

[5] वही, सन् १९०६। सं० ६

[6] वही, सन् १९०४। सं० ५५

[7] वही, सन् १९०२। सं० १०२

हरिभक्ति-विलास[१] (प्रति काल सन् १८२३ ई०)

इसके प्रणेता बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध राजा विक्रमशाह हैं। 'हरिभक्ति विलास' पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो खण्डों में विभाजित है। इन दोनों खण्डों में भागवत दशम स्कंध के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध खण्डों का अनुवाद हुआ है।

भागवत-पुराण-भाषा[२] (सन् १७६६ ई०)

यह अनुवाद नवलदास कृत है। इसमें केवल कृष्ण-जन्म तक की कथा अनूदित हुई है।

भगवत-भाषा[३] :—इसके प्रणेता उन्नीसवीं शती के कवि लछिराम हैं। इसका निश्चित रचनाकाल अथवा प्रतिलिपिकाल अज्ञात है। इसमें भागवत दशम स्कंध की कृष्णलीलाएँ अनूदित हुई हैं।

भागवत के अनुवादों की उपर्युक्त दोनों परम्पराएँ लोक-जीवन में कृष्ण-कथा की लोकप्रियता की प्रतीक हैं। अधिकांश अनुवाद केवल भागवत दशम स्कंध के हैं तथा इनके अन्तर्गत उसमें वर्णित कृष्ण-चरित के स्फुट प्रसंगों को परिवर्तित रूप में स्थान मिला है। भागवत के इन अनुवादों में नामकरण की विविधता मिलती है, परन्तु अधिकांश शीर्षकों से कृष्णलीलाओं के उनके मुख्य प्रतिपाद्य होने का स्पष्ट वोध होता है।

कृष्णपरक अन्य पुराणों के अनुवाद :—

इस युग में भागवत के अतिरिक्त विष्णु और स्कंद पुराणों के भी व्रज-भाषानुवाद मिलते हैं। स्कंद पुराण का सुन्दर कुँवरि कृत अनुवाद 'स्कन्द-पुराण भाषा' के नाम से प्राप्त है। इसमें स्कन्द पुराण के अनुसार कृष्ण-चरित वर्णित हुआ है। विष्णु पुराण का भी केवल एक अनुवाद भिखारीदास कृत 'विष्णु पुराण भाषा' नाम से मिलता है। इसके अन्तर्गत अनेक पौराणिक कथाएँ अनूदित हुई हैं।[४]

गीता के अनुवाद :—गीता के अनुवादों का प्रयोजन भक्तिपरक न हो कर कृष्ण द्वारा उपदिष्ट सिद्धान्तों का उपदेशात्मक कथन मात्र ज्ञात होता है। इस दिशा में अधिकतर सम्प्रदायमुक्त अप्रसिद्ध कवियों की ही कृतियों के

---

[१] खोज रिपोर्ट, नागरी प्रचारिणी सभा, सन् १९०३। सं० ७२-७३

[२] वही, सन् १९०९-११। सं० २१६

[३] वही, सन् १९०९-११। सं० १६३

[४] आचार्य भिखारीदास, पृ० १००-१०१, ग्र० नारायणदास खन्ना

उल्लेख प्राप्त होते हैं। गीता के आलोच्यकालीन उल्लेखनीय अनुवादों में जनभुवाल कृत 'भगवतगीता'[१] (सन् १७०५ ई०), भगवत गीता[२] (रचनाकार, प्रति सन् १७३४ ई०), भगवतगीता भाषा[३] (रचनाकार सन् १७४१ ई०), हरिदास कृत भागवतगीता भाषा[४]' (सन् १७६२ ई०), हरिवल्लभ कृत 'भगवतगीता[५]' (प्रति १७६२ ई०), आनन्द कृत 'भगवतगीता[६]' (सन् १७७२ ई०) आदि का नाम लिया जा सकता है। ये कृतियाँ गीता की अविकल अनुवाद नहीं हैं। इनके अन्तर्गत गीता की प्रख्यात कथा एवं उपदेशों का स्वतंत्र पद्धति से नियोजन करके वर्णनात्मक प्रवृत्ति को प्रमुखता मिली है। गीता के उपर्युक्त अनुवाद इस तथ्य के प्रतीक हैं कि कृष्ण की माधुर्योपासना के साथ ही लोक-मन उनके उपदेशक योगी, धर्मात्मा के व्यक्तित्व से सर्वथा शून्य नहीं था। इन अनुवादों का कृष्ण की प्रेमलक्षणा भक्ति से कोई सम्बन्ध नहीं है।

कृष्णचरित एवं कृष्ण भक्तिपरक अन्य रचनाओं के अनुवाद :—

इस वर्ग के अन्तर्गत जिन संस्कृत रचनाओं के अनुवाद प्राप्त हुए हैं उनका मूल रचना, अनुवादक, अनुवाद-काल और सम्प्रदाय के उल्लेखों सहित विवरण इस प्रकार हैं :—

अनुवाद	मूल रचना	अनुवादक	अनुवादकाल	संप्रदाय
'बारह संहिता भाषा'	बारह संहिता	रसिकदास	सन् १७०० के लगभग	राधावल्लभ
गौतमीय तंत्र	गौतमीय तंत्र	गो० रूपलाल	१८वीं शती उत्तरार्द्ध	राधावल्लभ
विलाप कुसुमांजलि भाषा	रघुनाथदास गोस्वामी कृत विलाप-कुसुमांजलि	वृन्दावनदास	सन् १७५७ ई०	चैतन्य

[१] खोज रिपोर्ट, नागरी प्रचारिणी सभा, सन् १९०९-११। सं० १३२

[२] वही, सन् १९३२-३४। सं० ११

[३] वही, सन् १९०५। सं० ९१

[४] वही, सन् १९०६-८। सं० २५६

[५] वही, सन् १९०२; सं० ९० सन् १९०६-८। सं० २६०; सन् १९०९। सं० ११७

[६] वही, सन् १९०४। सं० ११

अनुवाद	मूल रचना	अनुवादक	अनुवाद काल	सम्प्रदाय
ब्रह्मसंहिता दिग्दर्शिनी टीका-भाषा	जीवगोस्वामी कृत ब्रह्म संहिता दिग्द-र्शिनी टीका	रामकृपा	१८वीं शती उत्तरार्द्ध	चैतन्य
भक्ति रत्नावलि भाषा	विष्णुपुरी कृत भक्ति रत्नावली	वैष्णवदास रसजानि	१८वीं शती उत्तरार्द्ध	चैतन्य
स्मरणमंगल भाषा	रूप गोस्वामी कृत स्मरण मंगल	दामोदरदास	१८वीं शती पूर्वार्द्ध	चैतन्य
स्मरणमंगल भाषा	"	गुणमंजरी	"	"
स्मरणमंगल भाषा	"	गो० मधुसूदन	१९वीं शती उत्तरार्द्ध	"
स्मरणमंगल भाषा	"	बलवंतरावसिंधे	"	"
रासपंचाध्यायी भाषा	भागवत दशम स्कंध का रास प्रसंग	रामकृष्ण कालंजर निवासी	१८वीं शदी	राधावल्लभ
रासपंचाध्यायी	"	गो० सुखलाल	१८वीं शती	"
रासपंचाध्यायी भाषा	"	गोविन्दचरण	सन् १८३२ ई०	चैतन्य
रासपंचाध्यायी	"	गोपालदास	१९वीं शती पूर्वार्द्ध	चैतन्य
वृन्दावन-महिमा-मृतम	प्रबोधानन्द सरस्वती कृत वृन्दावन-महिमा-मृतम्	नन्दलाल गोस्वामी	१८वीं शती पूर्वार्द्ध	राधावल्लभ
गीतगोविन्द भाषा	जयदेव कृत गीतगोविन्द	वैष्णवदास रसजानि	सन् १७५७ ई०	चैतन्य
गीतगोविन्दानंद	"	भारतेन्दु	सन् १८७८ ई०	वल्लभ
गोपालस्तव-राज भाषा	गोपालस्तव-राज भाष्य	वृन्दावनचन्द्र	१९वीं शती उत्तरार्द्ध	चैतन्य
हंसदूतम्	रूप गोस्वामी	पन्नालाल प्रेम पुंज	१९वीं शती उत्तरार्द्ध	चैतन्य

इस सूची में से कुछ प्रमुख अनुवादों का विवरण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है :—

विलाप-कुसुमांजलि :—वृन्दावनदास ने रघुनाथदास गोस्वामी कृत इसी नाम की मूल रचना के १०४ श्लोकों का उनके क्रमानुसार १०४ छन्दों के अन्तर्गत अनुवाद किया है। मूल के सदृश्य अनुवाद में भी कवि की आराध्युगल के प्रति विरहानुभूति अभिव्यक्त हुई है। सम्पूर्ण अनुवाद में तत्सम् शब्दावली के द्वारा भाव को बोधगम्य बनाने की प्रवृत्ति प्रधान रही है।[1]

ब्रह्मसंहिता दिग्दर्शिनी टीका :—ब्रह्मसंहिता का गौड़ीय भक्तों में सिद्धान्त ग्रन्थ के रूप में अत्यन्त महत्व है। 'चैतन्यचरितामृत' में भी ब्रह्मसंहिता का माहात्म्य वर्णित हुआ है।[2] ब्रह्मसंहिता की भावधारा को गौड़ीय भक्तों के लिए सुलभ बनाने के प्रयोजन से जीव गोस्वामी ने उसकी संस्कृत टीका का प्रणयन किया। रामकृपा ने रूप गोस्वामी कृत 'ब्रह्मसंहितादिग्दर्शिनी टीका' का ब्रजभाषानुवाद करके उसे अपेक्षाकृत अधिक लोकप्रियता प्रदान की। रामकृपा के इस अनुवाद में मूलस्थ भाव के विश्लेषण की प्रवृत्ति प्रधान है।[3] सम्पूर्ण अनुवाद में चौपाई, दोहा और सोरठा छन्दों का प्रयोग हुआ है।

स्मरणमंगल :—इस नाम से रूप गोस्वामी द्वारा रचित 'संस्मरणमंगल' नामक स्तोत्र के कई ब्रजभाषानुवाद मिलते हैं। मूल स्मरणमंगल में केवल ११ श्लोक है तथा गौड़ीय भक्तों में इसकी अत्यन्त प्रतिष्ठा है। चैतन्यमत के कवियों द्वारा वर्णित राधा-कृष्ण की अष्टकालिक लीलाओं एवं अष्टयाम ग्रन्थों का मूलाधार यही रचना है। स्मरणमंगल के आलोच्ययुगीन ब्रजभाषानुवादों में

---

[1] विलाप कुसुमांजलि मूल श्लोक ९२० । छन्द संख्या ९२

[2] महाभक्त गण सह ताहां गोष्ठी हैल ।
ब्रह्म संहिताध्याय ताहोइ पाइल ।।
× ×
सिद्धान्तशास्त्र नहीं ब्रह्मसंहिता सम ।
गोविन्द महिमा ज्ञानेरं परम कारण ।।
अल्प अक्षरे कहे सिद्धान्त अपार ।
सकल वैष्णशास्त्र मध्ये अति सार ।
—चैतन्यचरितामृत, मध्यलीला (नवम परिच्छेद)

[3] चैतन्यमत और ब्रजसाहित्य, पृ० २५५, २७८, ३४१ और ३४३

दामोदरदास, गुणमंजरी, गोस्वामी मधुसूदन और बलवंतराव सिंधे कृत अनुवाद विशेष उल्लेखनीय हैं। दामोदरदास कृत अनुवाद में आठ प्रकाश हैं। गुण-मंजरी और मधुसूदन गोस्वामी ने मूल स्मरणमंगल का अनुकरण किया है। बलवंतराव सिंधे के अनुवाद में मूल स्मरणमंगल के अतिरिक्त उसके आधार पर कृष्णदास द्वारा रचित 'गोविन्द लीलामृत' की वस्तु को भी सम्मिलित किया गया है। इन अनुवादों में प्रधान रूप से दोहा छन्द का प्रयोग हुआ है तथा तत्सम् शब्दावली की प्रचुरता है। स्मरणमंगल के अनुवादों की संख्या गौड़ीय भक्तों में उसकी लोकप्रियता की प्रतीक है।

रासपंचाध्यायी :—रासपंचाध्यायी की वर्ण्यवस्तु दशम भागवत स्कंध के रास विषयक प्रसंग पर आधारित है। यद्यपि भागवत के भाषानुवादों के अन्तर्गत रास का प्रसंग भी अनूदित हुआ है तथापि माधुर्यभाव की संवेदनात्मकता एवं रासलीला की उत्कृष्टता के कारण रासपंचाध्यायी के कुछ स्वतंत्र अनुवाद भी हुए। रासलीला की सैद्धान्तिक मान्यता सभी कृष्ण-भक्त सम्प्रदायों में है, परन्तु आलोच्ययुग में रासपंचाध्यायी के राधावल्लभीय[1] और गौड़ीय[2] कवियों के ही अनुवाद मिलते हैं। राधावल्लभीय अनुवादों में रामकृष्ण कृत 'रास-पंचाध्यायी भाषा' गोस्वामी सुखलाल कृत 'रासपंचाध्यायी' विशेष उल्लेखनीय हैं। चैतन्यमत में इस विषय की गोपालदास कृत 'रासपंचाध्यायी' और नन्दकिशोर कृत 'रासपंचाध्यायी' और गोविन्दचरण कृत 'रासपंचाध्यायी'-भाषा नामक कृतियाँ मिलती हैं।

रासपंचाध्यायी के अनुवादों में मूल भागवत की कथा के वर्णन की प्रवृत्ति प्रधान है तथा विषयानुरूप कोमलकांत पदावली प्रयुक्त हुई है। इन अनुवादों में प्रधान रूप से रोला दोहा और चौपाई छन्दों का प्रयोग हुआ है।

वृन्दावन महिमामृतम् :—

चैतन्य मतानुयायी प्रबोधानन्द सरस्वती द्वारा रचित 'वृन्दावनमहिमा-मृत' का छन्दानुवाद राधावल्लभीय चंद्रलाल गोस्वामी कृत 'वृन्दावन शतक' नाम से प्राप्त है।[3] मूलतः चैतन्य मत की रचना होते हुए एक राधावल्लभीय भक्त के द्वारा अनूदित होने के कारण चन्द्रलाल गोस्वामी के

---

[1] साहित्य रत्नावली, पृ० १८२०

[2] चैतन्यमत और व्रजसाहित्य, पृ० ३१२-३१३

[3] लेखक को इस अनुवाद की एक हस्त प्रति बाबा कृष्णदास के पास देखने को मिली, जो केवल पांच शतकों तक ही सीमित है।

इस अनुवाद का विशेष महत्व है। कहा जाता है कि प्रबोधानन्द सरस्वती ने कुल एक सौ शतकों की रचना की थी, किन्तु उसके अभी तक केवल सत्रह शतक ही प्राप्त हुए हैं।[१] इस अनुवाद में एक श्लोक को एक कवित्त के अन्तर्गत रूपान्तरित किया गया है। तत्सम शब्दावली के प्रयोग के साथ भाषा में प्रवाहमयता मिलती है। अनुवाद की प्रकृति अनुभूत्यात्मक है। प्रतिपाद्य को बोधगम्य बनाने के उद्देश्य से मूलस्थ भाव के विश्लेषण की प्रवृत्ति प्रधान रही है।

गीतगोविन्द :— इस युग में जयदेव कृत गीतगोविन्द के चैतन्य और वल्लभ-सम्प्रदाय के अन्तर्गत वैष्णवदास रसजानि और भारतेन्दु कृत दो अनुवाद–'गीतगोविन्द' और 'गीतगोविन्दानन्द' नाम से प्राप्त हैं। रसजानि के अनुवाद में विविध सर्गों एवं उनके श्लोकों के अनुसार रूपान्तर की प्रवृत्ति मिलती है, परन्तु भारतेन्दु ने संक्षिप्तीकरण द्वारा कई श्लोकों को एक ही पद में अनूदित कर दिया है। रसजानि कृत अनुवाद में पद शैली के अतिरिक्त दोहा, सोरठा, चौपाई, सवैया, शोभा, कवित्त आदि छन्दों का भी प्रयोग हुआ है। परन्तु भारतेन्दु ने एकाध स्थलों को छोड़ कर प्रायः पदशैली की ही प्रधानता रक्खी है। दोनों ही अनुवादों में व्रजभाषा की सरलता गीतगोविन्द की ललित पदावली के सौन्दर्य का सफलतापूर्वक वहन कर सका हैं। भाव रूपान्तर में छन्द योजना, पद विन्यास एवं अभिव्यक्ति की दृष्टि से इन अनुवादों में मिलने वाले भेद दोनो कवियों की मौलिकता के परिचायक हैं।

गोपाल स्तवराज :—यह गौतमीयतंत्र का वृन्दावनदास कृत भाष्य है।[२] वृन्दावनदास ने स्वयं इसका व्रजभाषानुवाद 'गोपाल स्तवराज भाषा' के नाम से किया है।[३] इस अनुवाद में मूल के अनुसार कृष्ण के रूप का चित्रण किया गया है। 'गोपालस्तवराज भाषा' एक स्तोत्रात्मक रचना है।

ख—बंगला से अनूदित रचनाएँ

कृष्णभक्ति सम्प्रदायों में केवल चैतन्यमत के ही कवियों की बंगला से व्रजभाषा में अनूदित कृतियाँ मिली हैं। आलोच्ययुग में कृष्णदास कृत 'चैतन्य

---

[१] श्री वृन्दावनमहिमामृतम्, भाग १ भूमिका

[२] भारतेन्दु-ग्रन्थावली, भाग २ पृ० ३०३-३२८

[३] अष्टयाम भूमिका, वृन्दावनचन्द्र

[४] राधारमण रससागर, परिशिष्ट में प्रकाशित

चरितामृत', नरोत्तम कृत 'प्रेमभक्ति चन्द्रिका' और देवकीनन्ददास कृत 'वैष्णव-वंदना के व्रजभाषानुवाद विशेष महत्व के हैं। नीचे इन अनूवादों का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है :—

चैतन्य चरितामृत :—गौड़ीय भक्तों में चैतन्य महाप्रभु विषयक इस रचना की चरित काव्य को दृष्टि से ही नहीं दर्शन और काव्य के समन्वय के कारण भी अत्यन्त प्रतिष्ठा है। बंगला 'चैतन्य चरितामृत' तीन खण्डों में विभाजित है आदि; मध्य और अंत। सुबल स्याम द्वारा अनूदित चैतन्य-चरितामृत (व्रजभाषा) के अद्यावधि केवल दो ही खण्ड आदि और मध्य प्राप्त हो सके हैं। मूल पर आधारित सुबल स्याम के उल्लेख के आधार पर बाबा कृष्णदास का अनुमान है कि उन्होंने चैतन्यचरितामृत के तृतीय खण्ड का भी अनुवाद किया था।[1] सुबल स्याम को मूल रचना के जीवनी एवं दर्शन विषयक तथ्यों को रूपान्तरित करने में अपूर्व सफलता मिली है। मूल चैतन्य-चरितामृत के पयार छन्द की प्रवाहमयता को सुरक्षित रखने के प्रयोजन से दोहा, कवित्त सवैया आदि वर्णनात्मक छन्दों का प्रयोग हुआ है।

प्रेमभक्तिचन्द्रिका :—नरोत्तम ठाकुर कृत 'प्रेमभक्तिचन्द्रिका' का गौड़ीय भक्तों में सिद्धान्त एवं स्तोत्र ग्रन्थ के रूप में अत्यन्त महत्त्व है।

---

[1] द्रष्टव्य :—

शेष लीलार सूत्र गण कैल किछु विवरण
इहा विस्तरिते चित्त हय।
थाके जदि आयुःशेष विस्तारिव लीला,
शेष यदि महाप्रभु कृपा हय।
एइ अन्त लीलासर सूत्र मध्ये,
विस्तार करि किछु करिल वर्णन।
इहा मध्ये परिजने वर्णिते न पारि,
तेव एई लीला भक्त गण धन।

—चैतन्यचरितामृत (मध्यलीला) द्वितीय परिच्छेद

अनुवाद के अन्तर्गत सुबल स्याम ने प्रस्तुत अंश का व्रजभाषा रूपान्तर किया है, परन्तु इसे कृष्णदास का उल्लेख समझना चाहिए न कि अनुवादक का। लेखक के विचार से इसे अनुवाद के तृतीय खण्ड के अस्तित्व का संकेत मानना उचित नहीं है। वस्तुतः चैतन्यचरितामृत के तृतीय खण्ड के अनुवाद के सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

वृन्दावनदास ने प्रेमभक्ति चन्द्रिका के व्रजभाषानुवाद द्वारा उसे व्रजमण्डल के गौड़ीय भक्तों में और भी लोकप्रियता प्रदान की। चौपाई, दोहा और उल्लाला छन्दों में रचित इस अनुवाद की भाषा सरल एवं सुबोध है।

वैष्णववन्दना :—

इसकी रचना बंगला में देवकीनन्दनदास ठाकुर ने की थी। वैष्णववन्दना का मूल रूप देवकी नन्दनदास कृत 'वैष्णवाभिधान' नाम से संस्कृत में रचा गया था। गौड़ीय भक्तों में लोकप्रिय इस भक्त स्तोत्र का वैष्णवदास ने 'भक्तनामावली' नाम से व्रजभाषा में उल्था किया। 'भक्तनामावली' कुल १५६ दोहों और सोरठों में पूरी हुई है। इसके अन्तर्गत ब्रजमण्डल के रचनाकार के समसामयिक वैष्णव भक्तों की नामावली वर्णित हुई है।

बंगला से अनूदित कृतियों की व्रजभाषा में अनुवादकों का दृष्टिकोण विशुद्धतावादी रहा है। मूल कृतियों की बंगला पदावली का अनूदित रचनाओं की व्रजभाषा में मिश्रण नहीं मिलता। सिद्धान्त एवं चरितपरक होने के कारण अधिकांश अनुवादकों ने इन्हें स्वानुभूति से अनुरंजित होने से बचाया है। अतएव बंगला से अनूदित रचनाओं को भाषा की दृष्टि से विशुद्ध अनुवाद माना जा सकता है।

४—सिद्धान्त-काव्य

धर्म प्रेरित और अपनी पूर्व परम्परा से सम्बद्ध होने के कारण आलोच्य काव्य का एक अंश ऐसा भी है, जिसका एक मात्र प्रयोजन सामान्य तथा साम्प्रदायिक भक्ति सिद्धान्तों का कथन रहा है। तुलनात्मक दृष्टि से सिद्धान्त कथन की प्रवृत्ति सबसे अधिक राधावल्लभ-सम्प्रदाय के अन्तर्गत मिलती है, तदनन्तर क्रमशः निम्बार्क, चैतन्य, बल्लभ और हरिदासी सम्प्रदायों का स्थान आता है।

इस युग में राधावल्लभ सम्प्रदाय में गोस्वामी रूपलाल कृत 'राधावल्लभीय सम्प्रदाय निर्णय', 'हित रूप रत्नमाला', 'गुरु-सिद्धान्त', 'गुरु शिक्षा', 'मन बत्तीसी' 'सर्व तत्व सिद्धान्त' 'भक्ति विवेचक रत्नावली', 'गुण-भक्ति भाव विवेक', 'सर्वसिद्धान्त', 'भाषासार', आचार्य-गुरु सिद्धान्त', 'साधु लक्षण' रसिकदास कृत 'भक्ति-सिद्धान्त मणि', सर्वसुखदास, 'अष्टयाम विधि, अति-बल्लभकृत 'हितपद्धति', मन्त्र ध्यान पद्धति, गोस्वामी चन्द्रलाल कृत 'अष्टयाम विधि तथा चाचावृन्दावनदास कृत 'हरिप्रताप वेली'; 'सत्संग महिमा वेली,

'भक्तसुजस वेली', 'यमुना महिमा वेली' रसनाहित उपदेश वेली', 'मन उपदेशवेली', भक्त प्रसाद वेली पद बध', 'ज्ञान प्रकाश वेली', 'वृन्दावन जस प्रकाश वेली' आदि तथा अन्य कवियों द्वारा अनेक सिद्धान्त विषयक कृतियाँ रची गईं। इन सभी रचनाओं में कृष्णभक्ति का सामान्य कथन तथा साम्प्रदायिक विचारधारा का पिष्टपेषण हुआ है।

निम्बार्क-सम्प्रदाय की सिद्धान्तपरक कृतियों में वृन्दावनदेव कृत 'भक्ति सिद्धान्त कौमुदी', 'दीक्षा-मंगल', सुन्दर कुंवरि कृत 'वृन्दावनगोपी माहात्म्य', 'मित्र शिक्षा', सुदर्शनदास कृत 'मानसी अष्टयाम', 'ध्यान मंजरी', 'ज्ञान संदीपनी', 'निकुंज लीला' आदि का नामोल्लेख किया जा सकता है। इनके अन्तर्गत मौलिक सिद्धान्त विवेचन नहीं मिलता। सभी कृतियों में भक्ति के बाह्य विधानों तथा कर्मकाण्ड आदि का कथन किया गया है।

यह संकेत किया जा चुका है कि चैतन्य मत का सिद्धान्त विषयक काव्य अधिकतर अनुवादों के ही रूप में मिलता हैं। ब्रजभाषा में रचित मौलिक कृतियों का चैतन्य-मत में लगभग अभाव-सा रहा है। इस युग में चैतन्य-मत की सिद्धान्तपरक अनूदित रचनाओं में सुबल स्याम कृत 'चैतन्यचरितामृत', वृन्दावनदास कृत 'प्रेमभक्तिचन्द्रिका', 'विलाप कुसुमांजलि', वृन्दावन चन्द्र कृत 'अष्टयाम', 'गोपालस्तवराज भाषा' तथा 'स्मरण-मंगल के ब्रजभाषा अनुवादों को लिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त दक्षसखी कृत 'मंगल आरती' और ललितकिशोरी कृत 'अष्टयाम' आदि कुछ अन्य कृतियाँ भी मिलती हैं जिनमें कर्मकाण्ड तथा पूजा विधान का ही कथन प्रधान रहा है। उपर्युक्त रचनाओं में से अधिकांश के अन्तर्गत अनुवाद होने का कारण मूल कृतियों की वर्ण्यवस्तु एवं भावधारा की ही अभिव्यक्ति प्रधान रही है।

वल्लभ-सम्प्रदाय के अन्तर्गत सिद्धान्त विषयक बहुत कम कृतियों की रचना हुई तथा इस क्षेत्र में हरिराय, नागरीदास के स्फुट पद और भारतेन्दु की कुछ कृतियाँ मिलती हैं, जिनमें भक्ति सर्बस्व, 'प्रातःस्मरण मंगल पाठ', 'स्वरूप चिंतन' सर्वोत्तम स्तोत्र, 'श्रीनाथ स्तुति' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त स्फुट, विशेषकर बधाई के पदों में भी इनके साम्प्रदायिक सिद्धान्तों का कथन हुआ है। किन्तु भारतेन्दु को उपर्युक्त सभी रचनाएँ स्तोत्रात्मक शैली में रची गयी हैं तथा उनका नित्य पूजा और उपासना से अपेक्षाकृत घनिष्ठ सम्बन्ध लक्षित होता है।

हरिदासी-सम्प्रदाय में भी वल्लभ-सम्प्रदाय के समान सिद्धान्त-काव्यों का अभाव-सा मिलता है। इस दृष्टि से ललितकिशोरी देव और ललितमोहिनी देव के स्फुट पद, दोहे, किशोरदास कृत 'निजमत-सिद्धान्त', 'सिद्धान्तसरोवर', भगवतरसिक कृत 'अनन्य निश्चयात्मक ग्रन्थ' तथा 'निर्विरोध मनरंजन' आदि कुछ ही रचनाएँ मिलती हैं। इन कृतियों में प्रधान रूप से स्वामी हरिदास द्वारा प्रवर्तित सखी भावोपासना की विवृति हुई है। उपर्युक्त सभी कवियों में किशोरदास की कृतियों में सखी-उपासना के उपदेशात्मक कथन के प्रति विशेष सजगता मिलती है, किन्तु इसका भी उद्देश्य एकमात्र सम्प्रदाय प्रचार ही लक्षित होता है।

सभी सम्प्रदायों के सिद्धान्त-काव्य का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि इसके सृजन में रसात्मक दृष्टिकोण का पूर्ण अभाव रहा है तथा रचनाकार सैद्धान्तिक अभिव्यक्तियों को अनुभूत्यात्मक धरातल नहीं प्रदान कर सके हैं। फिर भी सिद्धान्त-काव्य में विविध सम्प्रदायों के प्रवर्तक आचार्यों द्वारा प्रतिपादित भक्तिपद्धति की परिधि के निर्धारण का यत्न मिलता है, जो एक सीमा तक इनकी रचना का मुख्य प्रयोजन कहा जा सकता है। सत्य तो यह है कि सभी सम्प्रदायों के प्रवर्तक आचार्यों और भक्तिकाल के रस सिद्ध कवियों के ग्रन्थों में जो सिद्धान्त निरूपण हो चुका था उसकी तुलना में इस युग के कवियों के लिए कोई नवीनता ला सकना उनके सामर्थ्य के बाहर था। ऐसा प्रतीत होता है कि साम्प्रदायिक सिद्धान्तों की विवृत्ति द्वारा वे अपने को परम्परा से सम्बद्ध सिद्ध करना चाहते थे, इसीलिए सिद्धान्त-निरूपण में सक्षम न होने पर भी उनमें सिद्धान्त-कथन की अपूर्व अभिरुचि परिलक्षित होती है। इसके अतिरिक्त विविध सम्प्रदायों के सिद्धान्त-काव्यों में सशक्त भाषा, और परिष्कृत अभिव्यंजना शैली का भी पूर्ण अभाव मिलता है। अस्तु सिद्धान्त-काव्य के केवल दो प्रयोजन साम्प्रदायिक परम्परा का निर्वाह तथा सम्प्रदाय प्रचार प्रतीत होते हैं। इसीलिए कहीं-कहीं उसमें नीति-तत्वों एवं उपदेश वृत्ति का प्राधान्यसा हो गया है। इस काव्य के आधार पर कृष्णभक्ति सम्प्रदायों की उपासना पद्धति का कोई मौलिक एवं सम्यक् विश्लेषण करना न तो सम्भव ही है और न उचित ही प्रतीत होता है।

५—भक्ति चरित तथा साम्प्रदायिक इतिहास-काव्य

आलोच्य युग में कृष्णभक्त कवियों द्वारा वैष्णव भक्तों के चरित एवं उनकी परम्पराओं की विवेचक काव्य कृतियों की पर्याप्त संख्या में रचना हुई।

चरित तथा परम्परा विषयक काव्य साम्प्रदायिक कवियों द्वारा ही रचा गया। भक्तिचरित काव्यों के अतिरिक्त सम्प्रदायों के प्रवर्तक आचार्यों एवं प्रतिष्ठित भक्तों से सम्बन्धित प्रशस्ति मूलक बधाई के पद भी प्रचुर मात्रा में रचे गये।

भक्त-चरित :—भक्तचरितों की सबसे अधिक रचना राधावल्लभ-सम्प्रदाय के अन्तर्गत हुई। राधावल्लभ सम्प्रदाय के उपरान्त इस दृष्टि से क्रमशः चैतन्य, निम्बार्क और वल्लभ सम्प्रदायों का स्थान आता है। हरिदासी सम्प्रदाय के अन्तर्गत स्वामी हरिदास तथा अन्य भक्त आचार्यों के प्रशस्तिपरक बधाई के पद तो अनेक कवियों ने रचे, किन्तु स्वतंत्र-भक्त चरित काव्यों की रचना को विशेष प्रेरणा न मिल सकी।

राधावल्लभ-सम्प्रदाय के भक्त-चरित काव्य के प्रणेताओं में गोस्वामी रूपलाल, गोस्वामी गुलाबलाल, परमानन्ददास, कृष्णदास भावुक चाचावृन्दावन-दास, 'प्रियादास आदि उल्लेखनीय हैं। गोस्वामी रूपलाल कृत[1] 'हित प्रताप परिचय' 'श्री व्यास परिचय', 'रूप सनातन सह वल्लभाचार्य वर्णन', 'स्वामी हरिदास जू को इतिहास', 'रूप सनातन भट्टत्रय', 'युगल दर्शन प्राप्ति', 'नरवाहन परिचय', 'गोपाल भट्ट परिचय', कृष्णदास मनोहारी प्रसाद', "रंगीलाल प्रागट्य' 'हित चरित' आदि रचनाएँ मिलती हैं। गोस्वामी गुलाबलाल[2] कृत 'इतिहास नारद कौ' और 'हित प्रताप', परमानन्ददास[3] कृत 'सेवक मंगल', कृष्णदास कृत 'व्यास नन्दन जू कौ ध्यान' प्रियादास दनकौर[4] कृत 'सेवक चरित' आदि कृतियाँ भक्त-चरित काव्यों के अन्तर्गत आती हैं। गोस्वामी रूपलाल के शिष्य चाचावृन्दावनदास कृत 'हित रूप अन्तर्ध्यान वेलि', 'गुरु कृपा वेलि' और 'सेवक भक्ति परचावली' जीवनी काव्य की तथ्यात्मकता और प्रशस्ति काव्य की श्रद्धाभावना की युगपद् अभिव्यक्ति की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखती हैं।

निम्बार्क-सम्प्रदाय में इस परम्परा की किशोरदास कृत 'बिहारिन दास जू कौ चरित्र' और 'आसुधीर जू कौ चरित्र' आदि प्रशस्तिपरक संक्षिप्त रचनाएँ ही मिलती हैं। चैतन्यमत के अन्तर्गत सुबल स्याम कृत चैतन्य महाप्रभु की

[1] साहित्य रत्नावली, पृ० २६-३१

[2] वही, पृ० २०

[3] वही, पृ० ४२

[4] वही, पृ० ६०-६१

जीवनी विषयक एक मात्र रचना चैतन्यचरितामृत (अनूदित) मिलती है। बल्लभ-सम्प्रदाय में भक्त-चरित काव्य रचना की प्रवृत्ति को अन्य कृष्ण-भक्ति सम्प्रदायों की तुलना में अपेक्षाकृत कम प्रश्रय मिला। गोस्वामी हरिराय कृत वार्ता साहित्य के विपुल विस्तार एवं चरित्र वर्णन की प्रशस्ति-परक तथ्यात्मक एवं लोकरंजक शैली के प्रभाव स्वरूप भक्त-चरित काव्यों की रचना को विशेष प्रेरणा नहीं मिल सकी। नागरीदास कृत 'गोविंद परचई' जैसी एकाधि रचनाएँ इस दिशा में अपवाद ही मानी जायेंगी। भक्त चरित काव्यों के स्थान पर बल्लभ-सम्प्रदाय में महाप्रभु बल्लभाचार्य, गोस्वामी बिट्ठलनाथ तथा अन्य आचार्यों एवं भक्तों की प्रशस्ति में बधाई के पदों की रचना की प्रवृत्ति मिलती है।

भक्तनामावली एवं साम्प्रदायिक परम्परा विषयक काव्य :—स्वतंत्र भक्त-चरित काव्यों की अपेक्षा भक्त-नामावलियों एवं सम्प्रदायिक परम्परा विषयक काव्यों की प्रचुर मात्रा में रचना हुई। भक्तचरित काव्यों के सदृश्य इस वर्ग की रचनाएँ भी केवल साम्प्रदायिक कवियों द्वारा ही रची गई तथा अन्य सम्प्रदायों की अपेक्षा राधावल्लभ-सम्प्रदाय के वाणीकारों का कृतित्व दोनों ही दृष्टियों से अपना वैशिष्टय रखता है। राधावल्लभ-सम्प्रदाय के अन्तर्गत साम्प्रदायिक इतिहास एवं परम्परा विषयक दो प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं। प्रथम वर्ग के अन्तर्गत ऐसी रचनाएँ आती है जिनमें सम्प्रदाय की पूजा एवं उपासना विषयक घटनाएँ वर्णित हुई हैं। दूसरी प्रकार की कृतियों में साम्प्रदायिक आचार्यों और भक्तों के चरित वर्णित हुए हैं। प्रथम वर्ग की कृतियों में गोस्वामी रूपलाल कृत 'राधावल्लभ अभिषेक', 'गादी सेवा प्रागट्य' 'इतिहास वेदन कौ,' 'राधावल्लभ तथा चतुरासी प्रागट्य', जतनलाल[१] कृत 'रसिक अन्य सार', गुलाबलाल[२] कृत 'गुरु प्रणाली', कृष्णदास भावुक[३] कृत 'गुरु प्रणाली', जयकृष्ण कृत[४] 'सेवाधिकार इतिहास' आदि रचनाएँ सम्मिलित की जा सकती हैं। इन कृतियों में रचनाकारों की साम्प्रदायिक दृष्टि पल्लवित हुई है। दूसरे वर्ग की रचनाओं में

---

[१] साहित्य-रत्नावली पृ० २५-३२

[२] वही, पृ० २०-२२

[३] वही, पृ० ४०

[४] वही, पृ० ४१

खुस्याल[1] कृत 'हित वंशावलि', चन्द्रलाल गोस्वामी[2] कृत 'हितकृपापात्र नामावली' और 'वृन्दावन प्रकाशमाला', चाचावृन्दावनदास कृत 'रसिक अनन्य परचावली', 'हित रसिकमाल' और 'हित वंशावलि', गोविन्द अलि कृत 'रसिक अनन्य गाथा' आदि रचनाएँ मिलती हैं। इन रचनाओं से आलोच्य युग में राधावल्लभ सम्प्रदाय के संगठन की दृढ़ता एवं प्रभाव शक्ति का सहज अनुमान किया जा सकता है।

भक्तनामावलियों और साम्प्रदायिक-परम्परा विषयक काव्य-रचना के क्षेत्र में परिमाण की दृष्टि से राधावल्लभ-सम्प्रदाय के उपरान्त चैतन्य मत का स्थान आता है। चैतन्यमत में मनोहरराय कृत 'सम्प्रदायबोधिनी', वृन्दावनदास कृत 'भक्तनामावली', (अनुवाद) प्रियादास कृत 'भक्तमाल रसबोधिनी', साधुचरणदास कृत 'रसिकविलास' और आदि रचनाएँ मिलती हैं। इन सभी रचनाओं में प्रियादास कृत भक्तमाल रसबोधिनी, के अतिरिक्त शेष सभी को भक्तनामावलियों के रूप में स्वीकार करना उचित होगा, क्योंकि इनके अन्तर्गत भक्तों के चरित विवेचन अथवा सिद्धान्त-कथन की अपेक्षा भक्तों के नामोल्लेख की प्रवृत्ति प्रधान रही है।

इस परम्परा की निम्बार्कीय रचनाओं में गोविन्दशरण देव कृत 'हरिभक्ति सुयश भास्कर', घनानंद कृत 'परहंस वंशावलि', किशोरदास कृत निजमत-सिद्धान्त, सुदर्शनदास कृत आचार्य परम्परा नामक कृतियाँ मिलती हैं। इन सभी रचनाओं में जीवनी एवं सिद्धान्त कथन के युगपद् विवेचन की दृष्टि से निजमत-सिद्धान्त सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। अन्य कृतियों में परम्परा के निर्देश तथा आचार्यो और भक्तों के नाम कथन की प्रधानता मिलती है।

आलोच्ययुग में वल्लभ तथा हरिदासी सम्प्रदायों के अन्तर्गत इस परम्परा की कृतियाँ सबसे कम संख्या में रची गई हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि गोस्वामी हरिराय कृत वार्ता साहित्य की लोकप्रियता एवं महत्ता ने स्वतंत्र भक्त चरित काव्यों के सदृश्य साम्प्रदायिक परम्परा एवं इतिहास विषयक काव्य रचना के भी पथ को अवरुद्ध कर दिया था। वल्लभ-सम्प्रदाय में नागरीदास कृत 'पद प्रसंगमाला' और भारतेन्दु कृत 'उत्तरार्द्ध भक्तमाल' आदि जो कृतियाँ मिलती भी हैं उनमें उनके पूर्ववर्ती भक्तमालों के अनुकरण की

---

[1] साहित्य रत्नावली पृ० ४२

[2] वही, पृ० ४३-४४

प्रवृत्ति प्रधान रही है। हरिदासी सम्प्रदाय में भी इस परम्परा में सहचरिशरण कृत ललितप्रकाश और भगवत रसिक कृत अनन्य निश्चयात्मक ग्रंथ आदि कुछ स्फुट यत्न ही दिखाई पड़ते हैं। वस्तुतः निम्बार्क-सम्प्रदाय की परम्परा से सम्बद्ध होने के कारण अधिकतर हरिदासी आचार्यों का चरित निम्बार्कीय रचनाओं के ही अन्तर्गत वर्णित हुआ है। हरिदासी सम्प्रदाय के भक्तों के लिए इस क्षेत्र में नवीनता ला सकना एक प्रकार से असम्भव सा था। इसीलिए हरिदासी सम्प्रदाय में साम्प्रदायिक परम्परा एवं इतिहास विषयक कृतियों की रचना को विशेष प्रेरणा नहीं मिल सकी।

इस युग का कृष्णपरक कवियों द्वारा रचित एवं साम्प्रदायिक इतिहास विषयक काव्य एक प्रकार से भक्तमाल साहित्य का ही परिवर्तित रूप है। वल्लभ और चैतन्य मत की रचनाओं पर उनके पूर्ववर्ती भक्तमालों एवं भक्तनामावलियों, विशेषकर नाभादास कृत भक्तमाल की वर्ण्यवस्तु एवं शैली का पर्याप्त प्रभाव मिलता है। नागरीदास कृत पदप्रसंगमाला में निर्दिष्ट भक्तों की नामावली और भारतेन्दु कृत उत्तरार्द्ध भक्तमाल की शैली पर नाभादास के भक्तमाल का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। निम्बार्क, राधावल्लभ और हरिदासी सम्प्रदायों की भक्तचरित एवं साम्प्रदायिक-परम्परा विषयक रचनाओं में अनुकरणशीलता की प्रवृत्ति अपेक्षाकृत कम दिखाई पड़ती है।

वल्लभ और चैतन्य तथा निम्बार्क, राधावल्लभ और हरिदासी सम्प्रदायों के भक्तचरित काव्यों में भावधारा की दृष्टि से पर्याप्त समानता मिलती है। वल्लभ और चैतन्य मत के भक्त चरित काव्यों में रचनाकारों का उदार दृष्टिकोण अभिव्यक्त हुआ है। परन्तु निम्बार्क, राधावल्लभ और हरिदासी सम्प्रदायों के वाणीकारों की कृतियों में उनके सम्प्रदाय के अथवा अधिक से अधिक कृष्णोपासक आचार्यों एवं भक्तों को ही स्थान मिल सका है। भक्तचरित काव्यों में मिलने वाले दृष्टिकोण विषयक इस अन्तर का मूल कारण रचनाकारों की साम्प्रदायिक दृष्टि तो है ही, साथ ही इसका एक अन्य कारण यह भी ज्ञात होता है कि वल्लभ और चैतन्य मत की उल्लिखित कृतियों का आधार अधिकांश में नाभादास कृत भक्तमाल है, जो स्वयं संकीर्णता की भावना से परे है। भक्तमाल में वैष्णवभक्तों के चयन एवं उनके चरित्र निरूपण में सामान्य निष्ठा का भाव अभिव्यक्त हुआ है। अतएव भक्तमाल के इस उदार दृष्टिकोण का उसकी अनुवर्ती रचनाओं में

प्रतिफलित होना स्वाभाविक प्रतीत होता है। कृष्णपरक कवियों द्वारा रचित भक्त-चरित एवं परम्परा विषयक काव्य भक्तों के जीवनवृत्त सम्बन्धी सूत्रों की दृष्टि से पर्याप्त महत्वपूर्ण है। धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भी यह काव्य पर्याप्त उपादेय है। भक्तचरितों के संदर्भ में लोकमन की धार्मिक भावधारा का अनुशीलन तद्विषयक नवीन तथ्यों के उद्घाटन में सहायक हो सकता है। वैष्णव-प्रशस्ति काव्य की रूढ़ियों का तो यह कोश है। परन्तु जहाँ तक अनुभूति पक्ष का सम्बन्ध है, भक्त-चरित-काव्य को कृष्णपरक नहीं कहा जा सकता। उसके अन्तर्गत यद्यपि कृष्णभक्त आचार्यों एवं भक्तों के चरित्र निरूपण में संदर्भ वश उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों की भी अभिव्यक्ति हुई है तथापि उनका धरातल अनुभूत्यात्मक नहीं है। अतएव इस काव्य को कृष्णलीलाओं एवं कृष्णभक्ति से सम्बद्ध करना उचित नहीं प्रतीत होता।

६—टीका-काव्य

आलोच्य युग में साम्प्रदायिक कृष्णभक्त कवियों द्वारा कृष्णभक्ति की आधार भूत सिद्धान्तपरक रचनाओं की अनेक काव्यात्मक टीकाएँ रची गईं। कृष्णभक्ति सम्प्रदायों में टीका-काव्य के क्षेत्र में राधावल्लभ और चैतन्य सम्प्रदायों के कवियों की ही रचनाएँ प्राप्त हुई हैं। निम्बार्क, बल्लभ और हरिदासी सम्प्रदायों के अन्तर्गत टीका-काव्य की प्रवृत्ति नहीं मिलती। निम्बार्क सम्प्रदाय के कवियों के प्रचारात्मक दृष्टिकोण का अभाव इसका कारण कहा जा सकता है। बल्लभ-सम्प्रदाय में टीका साहित्य का विकास, काव्यात्मक टीकाओं के रूप में न होकर गद्यात्मक वार्ताओं के रूप में हुआ। गोस्वामी हरिराय कृत गोकुलनाथ की वार्ताओं की "भावप्रकाश" नाम से विख्यात टीका इस तथ्य की प्रतीक है। स्वामी हरिदास और उनके परवर्ती आचार्यों ने अपनी भक्ति-साधना को शास्त्रीय बंधनों से मुक्त रखा। उनके ब्रजभाषा में रचित सरस पद ही सम्प्रदाय प्रचार के माध्यम बनें। परिणामतः हरिदासी सम्प्रदाय के कवियों को अपने आचार्य की वाणी की टीकाएँ रचने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी।

टीका-काव्य का वर्गीकरण :— विषय की दृष्टि से इस युग के कृष्णपरक कवियों द्वारा रचित टीका-काव्य के दो वर्ग किए जा सकते हैं :—

१—भक्तमाल ग्रंथों की टीकाएँ

२—कृष्णलीलाओं एवं सिद्धान्त परक रचनाओं की टीकाएँ।

द्वितीय वर्ग के टीका-काव्य को भाषा की दृष्टि से पुनः दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :—

(क) संस्कृत रचनाओं की टीकाएँ

(ख) व्रजभाषा रचनाओं की टीकाएँ।

भक्तमाल ग्रंथों की टीकाएँ :—भक्तिचरित ग्रंथों में केवल चैतन्यमत के कवियों द्वारा रची गई नाभादास के भक्तमाल की प्रियादास कृत 'भक्तमाल रस बोधिनी', वैष्णवदास कृत 'भक्तमाल टिप्पणी' नामक टीकाएँ मिलती हैं। राधावल्लभ-सम्प्रदाय में भक्तचरित ग्रंथों की टीकाएँ नहीं रची गईं। प्रियादास की भक्तमाल की व्रजभाषा टीका इस परम्परा की सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना है। 'भक्तमाल रस बोधिनी' में भक्तमाल में निर्दिष्ट घटनाओं के विस्तार एवं उनके रसात्मक अभिव्यक्तिकरण की प्रवृत्ति मिलती है। भक्तमाल में वर्णित अधिकांश भक्तों के चरित्र और उनकी भावधारा को प्रियादास की इस टीका ने ही बोधगम्य बनाया। वैष्णवदास कृत 'भक्तमाल टिप्पणी' में संक्षिप्तीकरण की प्रवृत्ति मिलती है। भक्तचरित काव्यों के सदृश्य टीकाओं को भी कृष्ण-लीलाओं एवं कृष्णभक्ति से सम्बद्ध करना असंगत होगा।

कृष्णलीलाओं एवं सिद्धान्तपरक ग्रन्थों की टीकाएँ :—इस वर्ग की संस्कृत और व्रजभाषा रचनाओं की टीकाएँ प्रधान रूप से राधावल्लभ-सम्प्रदाय में ही रची गई। चैतन्यमत के अन्तर्गत नंद किशोर कृत 'भागवत-दर्पण' ही एक मात्र ऐसी टीका है जो इस परम्परा से सम्बद्ध की जा सकती है। आलोच्ययुग में राधावल्लभ-सम्प्रदाय में गोस्वामी हितहरिवंश की 'राधासुधानिधि' (संस्कृत) और 'हित-चौरासी' (व्रजभाषा) की अनेक टीकाएं रचीं गईं। राधावल्लभीय भक्तों ने इन रचनाओं की टीकाओं के माध्यम से अपने सम्प्रदाय की माधुर्योपासना के प्रसार में पर्याप्त योग दिया।

राधासुधानिधि की टीकाएँ :—गोस्वामी हितहरिवंश द्वारा संस्कृत में रचित २७० श्लोकों का यह स्तोत्र-काव्य राधावल्लभीय उपासना पद्धति का आधार ग्रन्थ है। राधावल्लभ-सम्प्रदाय में भक्ति युग से ही 'राधासुधानिधि' की टीकाओं की पुष्ट परम्परा प्राप्त होती है। आलोच्य युग में इस

परम्परा को अपेक्षाकृत और भी बल मिला। राधासुधानिधि की इस युग की ज्ञात व्रजभाषा पद्यात्मक टीकाओं में से निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं[1] :—

टीका का नाम	टीकाकार	रचनाकाल
टीका राधासुधानिधि	स्वामिनीशरण	१८ वीं शती
टीका राधासुधानिधि	संतदास	१८ वीं शती
टीका राधासुधानिधि	हितदास	संवत् १८३२
टीका राधासुधानिधि	तुलसीदास	१८ वीं शती
टीका राधासुधानिधि	लड़ैतीलाल	संवत् १९२८
टीका राधासुधानिधि	गो० मनोहरवल्लभ	१९ वीं शती
टीका राधासुधानिधि	गो० कृपालाल	१९ वीं शती
टीका राधासुधानिधि	श्रीवृन्दावनदास	१९ वीं शती

इन टीकाओं में सामान्य रूप से राधासुधानिधि की वर्ण्यवस्तु के अनुरूप राधानाम-महिमा, राधा-शृंगार-मंडन, राधा और कृष्ण का पारस्परिक प्रेम, निकुंज-लीला, प्रेम में सूक्ष्म मान एवं विरह, राधा का दिव्य सौंदर्य एवं उसका विलक्षण प्रभाव, राधाकृष्ण का रासोत्सव, राधा की नखशिख छवि, वृन्दावन धाम और यमुना-महात्म्य आदि विषय वर्णित हुए हैं। राधासुधानिधि की उपर्युक्त टीकाओं का मुख्य प्रयोजन राधावल्लभ-सम्प्रदाय के सहचरी के उपास्यभाव को लोक सुलभ बनाना ज्ञात होता है।

अन्य संस्कृत रचनाओं की टीकाएँ :—'राधासुधानिधि' के अतिरिक्त राधावल्लभ-सम्प्रदाय के अन्तर्गत कृष्णलीला एवं सिद्धान्तपरक अन्य संस्कृत रचनाओं की भी टीकाएँ मिलती हैं। इन टीकाओं में गोस्वामी रसिकलाल कृत 'टीकाकर्णानंद' और 'टीका गीतगोविन्द' गोस्वामी चन्द्रलाल कृत 'टीका कर्णानन्द' और 'सटीक भावना सुबोधिनी', ब्रजगोपाल कृत 'टीका वृंदावनाष्टक' गोस्वामी इन्द्रमणि कृत 'टीका महेश्वरी संहिता' और 'टीका हरिवंशाष्टक' तथा गोस्वामी सुखलाल कृत 'टीका श्रीमद्भागवत' के उल्लेख मिलते हैं। इन रचनाओं के चयन में टीकाकारों की दृष्टि पूर्णतया साम्प्रदायिक नहीं कही जा सकती। भागवत और गीतगोविन्द की टीकाओं का प्रयोजन

[1] राधावल्लभ-सम्प्रदाय के टीका साहित्य का उल्लेख बाबा किशोरीशरण अलि की 'साहित्य-रत्नावाली' के आधार पर किया गया है।

साम्प्रदायिक भावधारा की विवृत्ति न होकर उनके द्वारा प्रतिपादित आराध्य युगल की माधुर्य लीलाओं का काव्यात्मक अभिव्यक्तीकरण माना जायेगा।

व्रजभाषा रचनाओं की टीकाएँ :—कृष्णपरक व्रजभाषा काव्य रचनाओं की टीकाओं के सृजन की प्रवृत्ति भी केवल राधावल्लभ-सम्प्रदाय के ही अन्तर्गत विकसित हुई। राधावल्लभ-सम्प्रदाय में कृष्णलीला एवं सिद्धान्तपरक रचनाओं में गोस्वामी हितहरिवंश कृत 'हित चौरासी', 'हित छप्पै' और 'स्फुटवाणी' तथा दामोदर सेवक कृत 'सेवक वाणी' की टीकाएँ मिलती हैं। इनमें 'हित चौरासी' की टीकाओं की संख्या सबसे अधिक है। 'स्फुट पद' और 'सेवक वाणी' की केवल एक-एक टीका व्रजगोपाल द्वारा रचित मिलती हैं। 'हित छप्पै' की भी 'चतुरशिरोमणि लाल' कृत केवल एक टीका का 'टीका हित छप्पै' के नाम से उल्लेख मिलता है। वस्तुतः राधासुधानिधि के उपरान्त राधावल्लभीय माधुर्योपासना का जितना सफल प्रतिपादन 'हित चौरासी' में मिलता है उतना अन्यत्र नहीं। यही कारण है कि सिद्धान्त विवेचक अन्य व्रजभाषा रचनाओं की ओर राधावल्लभीय कवियों का ध्यान नहीं गया।

हित चौरासी की टीकाएँ :—'राधासुधानिधि' के सदृश्य गोस्वामी हित-हरिवंश विरचित चौरासी पदों का यह संग्रह भी राधावल्लभीय उपासना पद्धति का आधार ग्रन्थ माना जाता है। इसी के माध्यम से राधावल्लभीय भक्त साम्प्रदायिक उपासना पद्धति को हृदयंगम करते हैं। राधावल्लभीय कवियों ने 'हित चौरासी' की भावधारा को बोधगम्य बनाने के प्रयोजन से उसकी अनेक टीकाएँ की। सभी टीकाओं में प्रायः हित चौरासी के लिए 'हित चतुरासी' नाम मिलता है। नीचे हितचौरासी की आलोच्ययुगीन टीकाओं और टीकाकारों की रचनाकाल सहित सूची प्रस्तुत की जा रही है :—

टीका का नाम	टीकाकार	रचनाकाल
टीका चतुरासी जी	गो० सुखलाल	संवत् १७६५
टीका चतुरासी जी	प्रेमदास	संवत् १७९१
टीका चतुरासी जी	कृपालाल	संवत् १८२०
टीका चतुरासी जी	लोकनाथ	संवत् १८३७
टीका चतुरासी जी	रतनदास	संवत् १८५६
टीका चतुरासी जी	युगलदास	१८ वी शती

टीका चतुरासी जी	गोस्वामी चंद्रलाल	१८ वीं शती
टीका चतुरासी जी	रसिकानंद लाल	१८ वीं शती
टीका चतुरासी जी	रानी कमल कुंवरि	१८ वीं शती
टीका चतुरासी जी	वृंदावनदास	१८ वीं शती
टीका चतुरासी जी	लाड़िलीदास	१८ वीं शती
टीका चतुरासी जो	मनोहर बल्लभ	संवत् १६५३

हित चौरासी की इन टीकाओं में मूल के प्रतिपाद्य विषयों राधाकृष्ण के अनन्य प्रेम, नित्यविहार, रासलीला, भक्तिभावना, मान और विरह तथा नित्यविहार के विधायक तत्वों का विवेचन हुआ है। हित चौरासी की उपर्युक्त सभी टीकाओं में मूल पद की भावधारा को विश्लेषणात्मक पद्धति से बोधगम्य बनाने की प्रवृत्ति मिलती है। गो० हितहरिवंश की दार्शनिक रूढ़ियों से मुक्त माधुर्योपासना के मौलिक विवेचन का साक्ष्य 'हित चौरासी' की इन टीकाओं को माना जा सकता है। राधावल्लभीय भक्तों ने मूल रचना की भावराशि को हृदयंगम करके लोक सुलभ बनाने का जो श्लाघनीय कार्य किया उसकी ध्वनि हित चौरासी की इन टीकाओं से मिलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस युग में राधावल्लभीय भक्तों के बीच गोस्वामी हितहरिवंश तथा सम्प्रदाय के अन्य प्रतिष्ठित वाणीकारों की कृतियों की टीकाएँ रचने की एक परम्परा सी चल पड़ी थी। राधावल्लभीय कवियों द्वारा रचित टीका-काव्य रसमयता एवं विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति के कारण व्रजभाषा साहित्य में अपना वैशिष्ट्य रखता है।

राधावल्लभ-सम्प्रदाय के टीकाकाव्यों में वर्ण्यवस्तु की मौलिकता का अभाव तथा आधार ग्रंथों की भावधारा के अनुकरण की प्रवृत्ति प्रधान रही है। जिन टीकाओं में संक्षिप्तीकारण की प्रवृत्ति पल्लवित हुई है उनमें प्रायः सारांश कथन का ही आग्रह प्रमुख है। टीका-काव्य की रचना का उद्देश्य प्रचारात्मक अधिक और साहित्यिक कम है। अतः रचना प्रेरणा के आधार पर टीका-काव्य को रचनाकारों की अनुभूति का प्रतिफलन नहीं कहा जा सकता।

७—नाममाला और कोश काव्य

समीक्ष्य युग में कृष्णपरक कवियों द्वारा नाममालाओं और कोश-काव्यों के सृजन की प्रवृत्ति भी विकसित हुई। इनके प्रणयन में साम्प्रदायिक कवियों का

अधिक झुकाव दिखाई पड़ता है। सम्प्रदाय-मुक्त कवियों में भिखारीदास की 'नामप्रकाश' जैसी एकाध रचना अपवाद स्वरूप ही प्राप्त होती है। इस परम्परा की निम्बार्क, वल्लभ, चैतन्य और राधाबल्लभ सम्प्रदायों के कवियों द्वारा रचित कृतियों में अधिकतर राधाकृष्ण की नाम, रूप, लीला और धाम विषयक शब्दावली का चयन मिलता है। परन्तु कुछ कृतियों में विवेच्य शब्दावली के अन्तर्गत राधाकृष्ण सम्बन्धी शब्दावली का कोई वैशिष्ट्य नहीं लक्षित होता।

साम्प्रदायिक और सम्प्रदाय-मुक्त कवियों की कृष्णपरक कोशात्मक रचनाओं को उनकी प्रकृति के आधार पर निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है :—

१—भक्तिप्रधान नाममालाएँ (पर्यायवाची कोश)
२—भक्ति अप्रधान कोश काव्य (अनेकार्थवाची कोश)

भक्तिप्रधान नाममालाएँ :—'विष्णुसहस्रनाम' की पद्धति पर साम्प्रदायिक कवियों ने आराध्ययुगल और साम्प्रदायिक आचार्यों से सम्बन्धित अनेक नाममालाओं की रचना की। इनमें राधावल्लभ-सम्प्रदाय के ब्रजगोपाल कृत 'राधासहस्रनाम', 'हितशतनाम' और चाचा वृंदावनदास कृत 'लाडिली जू की नामावली', 'हरिवंश नामावली' के अन्तर्गत राधाकृष्ण और गोस्वामी हितहरिवंश के पर्यायवाची नामों का कथन किया गया है। निम्बार्क-सम्प्रदाय में नाममाला विषयक केवल घनानंद की दो रचनाएँ 'नाममाधुरी' और 'कृष्ण कौमुदी' मिलती हैं। निम्बार्क-सम्प्रदाय के सदृश्य बल्लभ-सम्प्रदाय में केवल नागरीदास कृत 'व्रज सम्बन्ध नाममाला' नाम से प्राप्त पद के अन्तर्गत व्रज के संदर्भ में कृष्ण के नाम, रूप, गुण एवं लीलाओं के द्योतक विविध नामों का कथन किया गया है। उल्लिखित नाममालाओं में पर्यायवाची कोशों की शैली का अनुकरण किया गया है। परन्तु इनकी सृजन प्रेरणा कदाचित् कोशात्मक रचनाओं से भिन्न 'नाम-स्मरण' के पूजातत्व में सन्निहित प्रतीत होती है।

भक्ति अप्रधान कोश-काव्य :—इस वर्ग के अन्तर्गत केवल चैतन्यमत की रामहरि कृत 'लघुनामावली' और 'लघुशब्दावली' नामक दो रचनाएँ मिलती हैं। रामहरि ने इन रचनाओं में अन्य शब्दों के साथ राधा, कृष्ण, व्रज एवं कृष्णभक्ति सम्बन्धी शब्दावली को सम्मिलित करते हुए उनके क्रम

एवं अर्थ नियोजन में धनंजय कृत 'अमरकोष' तथा नंददास कृत 'नामामाला' और 'अनेकार्थ मंजरी' का आधार लिया है।[1]

नाममाला और कोशात्मक रचनाओं में राधाकृष्ण, व्रज तथा कृष्णोपासना के विधायक तत्वों के नाम स्मरण एवं शब्द-क्रीड़ा की प्रवृत्ति प्रधान रही है। उपर्युक्त रचनाओं में राधाकृष्ण के विविध नामों का कोशात्मक पद्धति से कथन किए जाने के कारण इन्हें अनुभूत्यामत्क नहीं कहा जा सकता।

---

[1] क—शिरधर राधारमन पद भट्ट गोपाल सहाइ।
कोश धनंजय आदि और, कछुक नाम कहाइ ॥१॥
नंददास नामावली अमरकोष के नाम।
इनते जें विरक्त और लिखे हेत घनश्याम ॥२॥ लघुशब्दावली

ख—अनेकार्थ नंददास की एक शब्द बहु अर्थ।
अधिक शब्द लै कोस ते, दोहा किए समर्थ ॥३॥ लघुनामावली

काव्य में अभिव्यक्त कृष्ण-कथा

कृष्णभक्ति के विकास के संदर्भ में हम देख चुके हैं कि हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य को वस्तुगत आधार प्रदान करने में पुराण साहित्य का सबसे अधिक योग रहा है। पुराणों में भी भागवत का स्थान सर्वोपरि है। कृष्णभक्ति सम्प्रदायों के प्रवर्त्तक आचार्यों ने अपनी उपासना विषयक मान्यताओं को भागवत की कृष्ण लीलाओं की भूमिका में प्रस्तुत किया। कृष्ण-काव्य में इन्हीं के अनुरूप राधाकृष्ण की लीलाओं का वर्णनात्मक एवं भावात्मक चित्रण हुआ है। किन्तु भक्तियुगीन कृष्ण-काव्य का वस्तुगत धरातल इस युग के कृष्ण-काव्य मे उत्तरोत्तर संकुचित होता गया। प्रायः अधिकांश कवियों की दृष्टि राधाकृष्ण की माधुर्य लीलाओं तक ही सीमित रही। इन दो शताब्दियों में कृष्ण-काव्य की परम्परा में, कोई भी ऐसा कवि नहीं हुआ, जिसने भागवत के कृष्ण चरित को व्यापक भावभूमि में वर्णित किया हो। इसके अतिरिक्त यह भी उल्लेखनीय है कि इस युग के कृष्ण-काव्य में निरूपित कृष्ण-कथा प्रत्यक्ष रूप से पुराण साहित्य की अपेक्षा भक्तियुगीन कृष्ण-काव्य, व्रजलोक जीवन एवं स्वतंत्र उद्‌भावनाओं से अधिक सम्बद्ध रही है।

कृष्ण-कथा का साम्प्रदायिक आधार :—

कृष्ण-लीलाओं के माधुर्य की परिधि में सीमित हो जाने का मुख्य कारण कृष्णभक्ति सम्प्रदायों की उपासना पद्धति है। बल्लभ सम्प्रदायेतर कृष्णभक्ति सम्प्रदायों में कृष्ण का उपास्य रूप पूर्ण रूपेण माधुर्याश्रित है। इसीलिए उनके काव्य में भी अधिकतर कृष्ण की माधुर्य लीलाओं का ही समावेश मिलता है। बल्लभ-सम्प्रदाय में माधुर्य के अतिरिक्त भक्ति के वात्सल्य, सख्य और दैन्य भावों की भी प्रतिष्ठा हुई है, जिनके अनुरूप उसके काव्य में भक्ति के इन भावों की व्यंजक, ब्रज, मथुरा और द्वारका की कृष्णलीलाओं को स्थान मिला है। किन्तु इस युग में बल्लभ-सम्प्रदाय के कवियों की भी कृष्णलीला विषयक दृष्टि संकुचित होती गई। अस्तु, विवेच्य कृष्णभक्ति काव्य में कृष्ण-कथा अपवादों को छोड़कर प्रायः सम्प्रदायों की भाव धारा के अनुरूप ही वर्णित हुई है।

अनूदित काव्य में कृष्ण-लीलाएँ :—

अनूदित काव्यों में कृष्ण लीलाएँ अधिकतर मूल रचनाओं के ही अनुरूप वर्णित हुई हैं। सिद्धान्त विषयक अनूदित रचनाओं में कृष्णचरित अथवा उसमें किसी भी प्रसंग की अभिव्यक्ति साम्प्रदायिक सिद्धान्त की भूमिका में ही मिलती है। इनके अन्तर्गत कृष्ण लीलाएँ सिद्धान्त विवेचन की निमित्त मात्र रही हैं। भागवत के अनुवादों में कृष्णचरित पूर्णतया इतिवृत्तात्मक रहा है। उसमें अनुभूत्यात्मक अंश का सामान्य रूप से अभाव दिखाई पड़ता है। वैष्णवदास रसजानि, बृजदासी आदि के कुछ अनुवादों को छोड़कर अधिकांश अनुवादों में केवल दशम स्कंध तक की ही कृष्ण-कथा वर्णित हुई है। इसके अतिरिक्त इनके अन्तर्गत कृष्ण की विविध लीलाओं के संक्षिप्तीकरण अथवा सारांश कथन की प्रवृत्ति प्रधान रही है तथा घटनाओं के सूक्ष्म चित्रण की प्रायः उपेक्षा की गई है।

सम्प्रदाय-मुक्त काव्य में कृष्ण-लीलाएँ :—

सम्प्रदाय-मुक्त कवियों ने भी प्रमुख रूप से राधा-कृष्ण की संयोग प्रधान शृंगारिक लीलाओं का ही चित्रण किया है तथा इनमें इतिवृत्तात्मकता का अभाव मिलता है। अधिकतर कृष्ण की किसी लीला अथवा तत्संबंधी भाव को मुक्तक छंदों के अन्तर्गत संगुम्फित करने की ही प्रवृत्ति पल्लवित हुई है। जहाँ किसी लीला का वर्णन हुआ भी है, वहाँ प्राय: लीला विशेष के परम्परागत कथानक की ही आवृत्ति हुई है तथा वस्तुगत कोई नवीनता नहीं मिलती।

कृष्ण-लीलाओं का उत्सव परक रूप :—

कृष्णभक्ति सम्प्रदायों में प्रचलित नित्य एवं नैमित्तिक उत्सवों का लीलापरक रूप इस युग के कृष्ण-काव्य में प्रचुरता के साथ वर्णित हुआ है। साथ ही राधाकृष्ण की अनेक लीलाओं ने भी उत्सवों का स्थान प्राप्त कर लिया। यद्यपि साम्प्रदायिक मान्यताओं के अनुसार प्रत्येक सम्प्रदाय में उत्सवों का अपना निश्चित क्रम एवं विधान रहा है, तथापि उनमें से अधिकांश में पर्याप्त समानता लक्षित होती है। सांझी, दशहरा, दीपावली, गोपूजन, वसंत पंचमी, होली, फूलडोल, रथयात्रा, वर्षा, हिंडोला आदि ऐसे अनेक उत्सव हैं, जिनसे सम्बन्धित पद प्राय: सभी सम्प्रदायों के कवियों ने प्रचुर संख्या में रचे। सांझी, गोवर्द्धन आदि उत्सवों को छोड़कर इन पदों के अन्तर्गत प्रायः राधा-कृष्ण की

क्रीड़ाओं की अभिव्यक्ति गौण रही है। इनमें उत्सवों का पूजा विधान अथवा तत्संबंधी भावना का ही प्राधान्य लक्षित होता है। वस्तुतः उत्सव परक पदों के अन्तर्गत वस्तु के नाम पर सामान्य रूढ़ि ही पल्लवित हुई है।

कृष्ण-लीलाओं के विविध रूप

कृष्ण-लीलाओं के लीला स्थल, भावाभिव्यक्ति, लीला की प्रकृति एवं पात्रों के आधार पर विविध रूप निर्धारित किए जा सकते हैं किन्तु कृष्ण-कथा के विश्लेषण हेतु उसके अन्तर्गत घटनाओं के क्रमिक विकास को दृष्टि में रखते हुए काव्य के संदर्भ में राधा-कृष्ण की लीलाओं का लीला-स्थल के अनुसार विवेचन उचित होगा। कृष्ण-लीला क्रमशः ब्रज, मथुरा और द्वारका में सम्पन्न हुई। अतएव उनके तीन रूप निर्धारित किए जा सकते हैं :—

क—ब्रज-लीला

ख—मथुरा-लीला

ग—द्वारका-लीला

इस युग के कृष्ण-काव्य में कृष्ण की उल्लिखित लीलाओं के अतिरिक्त राधावल्लभ-सम्प्रदाय के कवियों द्वारा राधा की नंदगाँव और बरसाने की लौकिक लीलाओं का भी विस्तृत वर्णन हुआ है जिनके द्वारा कृष्ण-कथा में नवीन संदर्भों का समावेश होता है। राधा और कृष्ण की पारस्परिक सम्बन्ध की भूमिका में राधा की विवाह प्रसंग तक की नंदगाँव बरसाने के लीलाओं को ब्रजलीला के समानान्तर रखना समीचीन प्रतीत होता है। इस प्रकार लीलाओं के विकास की दृष्टि से ब्रजलीला के विवेचन क्रम का रूप इस प्रकार निश्चित होता है :—

१—गोकुल-लीला (कृष्ण)

२—नंदगाँव-बरसाना-लीला (राधा)

३—वृन्दावन-लीला (राधा-कृष्ण)

लीला की प्रकृति के आधार पर गोकुल और वृन्दावन लीलाओं के पुनः दो रूप अलौकिक और लौकिक निर्धारित किए जा सकते हैं। राधा की नंदगाँव बरसाने की लीलाओं की प्रकृति सर्वथा लौकिक है। यद्यपि अलौकिक तथा लौकिक व्रज लीलाओं का कृष्ण चरित के इतिवृत के अन्तर्गत पूर्वापर सम्बन्ध है, तथापि प्रस्तुत विवेचन में उनके पृथक्-पृथक् वर्ग बना लिए गए हैं।

क—व्रज-लीला

गोकुल-लीला

(कृष्ण-लीलाएँ)

अलौकिक लीलाएँ :

कृष्ण की लीलाओं का प्रारम्भ गोकुल में ही होता है। वल्लभ-सम्प्रदाय के काव्य में परम्परा से अन्य सम्प्रदायों के काव्य की अपेक्षा अलौकिक गोकुल-लीलाओं का वर्णन प्रचुरता के साथ हुआ है। इसका कारण यह है कि कृष्ण के व्यक्तित्व में 'विरुद्धधर्माश्रयत्व' का निदर्शन गोकुल लीलाओं की भूमि पर अधिक उपयुक्त सिद्ध हुआ। इसके अतिरिक्त साम्प्रदायिक उपासना में स्वीकृत कृष्ण के प्रति वात्सल्यासक्ति का विधान भी इस दिशा में कवियों के लिए प्रेरक तत्व रहा है। निम्बार्क, चैतन्य, राधावल्लभ और हरिदासी सम्प्रदायों के काव्य में कृष्ण की वात्सल्य उपासना की स्वीकृति न होने के कारण अपवादों को छोड़कर कृष्ण की गोकुल लीलाओं का बहुत कम वर्णन हुआ है। इस युग में निम्बार्क-सम्प्रदाय के वृन्दावनदेव और घनानन्द तथा राधावल्लभ सम्प्रदाय के कमलनयन, प्रेमदास चाचावृन्दावनदास आदि ऐसे ही कवि हैं, जिन्होंने कृष्ण की गोकुल लीलाओं तथा गोकुल के महात्म्य का वर्णन किया है। चैतन्य और हरिदासी सम्प्रदायों के काव्य में गोकुल लीलाओं का सर्वथा अभाव मिलता है।

कृष्ण जन्म :—

इस युग में साम्प्रदायिक कवियों ने कृष्ण-जन्म का प्रसंग अधिकतर बधाई के स्फुट पदों के अन्तर्गत वर्णित किया है[१]। उत्सवपरक होने के कारण इन पदों में कृष्ण-जन्म के उल्लास एवं लोकरीति का ही निरूपण प्रधान रहा है तथा अलौकिक घटनाओं का अभाव मिलता है। भागवत की कृष्ण-जन्म की कथा का यथावत् अलौकिक रूप भागवत के अनुवादों में ही सुरक्षित रह सका। इसके अतिरिक्त यह प्रसंग ब्रजवासीदास कृत ब्रजबिलास में सूरसागर के आधार पर वर्णित हुआ है। उसमें वसुदेव और देवकी के विवाह की घटना

---

[१] शृंगाररससागर, भाग ३ पृ० १-१३१

से लेकर गोकुल में जन्मी नंद की कन्या से कृष्ण के परिवर्तन तथा गोकुल में कृष्ण-जन्म के उल्लास पूर्ण वातावरण की सर्जना तक की घटनाओं का विस्तृत वर्णन मिलता है[१]। हरिराय ने एक पद में कृष्ण-जन्म की भागवत की कथा का सूचनात्मक रूप प्रस्तुत करते हुए भागवतकार की श्रेष्ठता का कथन किया है :—

> **धनसुक मुनि धन भागवत धन्य यही अध्याय ।**
> **सावधान ह्वै चित धरो, लागो मोहि बलाय ।।**[२]

भागवत में कृष्ण-जन्म के समय का वर्णन इस प्रकार हुआ है :—

> **अथ सर्वगुणोपेतः कालः परमशोभन :**
> **यर्ह्येवाजनजन्मर्क्षं शान्तर्क्षग्रहतारकम् ।। —भागवत १० : ३ : १**

ब्रजवासीदास और चाचावृंदावनदास जैसे कवियों ने भागवत का आधार लेकर तिथि और वार का उल्लेख किया है :—

> **भादों निसि कारी अति पावन । आठै बुध रोहिणी सुहावन ।**[३]
> **—ब्रजवासीदास**

× × ×

> **धनि भादों मास पुनीत मंगल उदित कियो ।**
> **बदि आठै अरु बुधवार अति आनंद दियो ।।**
> **रोहिणी नक्षत्र संजूत सुख सरस्यौ, जू हियो ।**
> **सुभ बेला आधी रात हरि अवतार लियो ।।**[४]
> **—चाचावृन्दावनदास**

ब्रजवासीदास के तिथि विषयक उल्लेख का आधार सूरसारावली की 'आठें बुद्ध रोहिनी आई', संख चक्र नपु धारा'[५] पंक्ति ज्ञात होती है। क्योंकि ब्रजविलास के आधार सूरसागर में केवल 'भादों की रात अंधियारी' का ही कथन हुआ है। बधाई के पदों में निर्दिष्ट कृष्ण-जन्म की तिथि कदाचित्

---

[१] ब्रजविलास पृ० १२-२८

[२] हरिराय के पद, पद सं० ४

[३] ब्रजविलास पृ० १६

[४] शृंगाररससागर, भाग ३

[५] सूरसारावली, पृ० ३६५

भादों की अष्टमी पर कृष्ण-जन्मोत्सव मनाने की परम्परा के अनुरूप वर्णित हुई है। बधाई के पदों में कृष्ण-जन्म के उल्लास एवं आनन्द से प्रेरित ढ़ाढ़ी-ढ़ाढ़िन के नृत्य और गान का वर्णन भी अनेक पदकारों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से किया है। इनमें हरिराय, रूपलाल, चाचावृन्दावनदास, प्रेमदास, कमलनयन, कृष्णदास, आदि के पद विशेष महत्व के हैं।[१] हरिराय के ढ़ाढ़ी-ढ़ाढ़िन कृष्ण जन्म की सूचना पाते ही सपरिवार नंद के द्वार पर नृत्य करते हुए गाते हैं :—

मैं ढ़ाढ़ी तुव बंस कौ सुनौ घोष मनि राय।
सावधान हैव चित धरौ लागौ मोहि बलाय[२]॥

कमलनयन के ढ़ाढ़ी-ढ़ाढ़िन इतने अधिक आनंद विभोर हैं कि वे नंद से दान भी नहीं लेते क्योंकि विधि ने उनकी कामना पूरी कर दी:—

दान-मान कछुवैं नहिं चाहत विधना मनोरथ कीने।
नाचत गावत प्रेम बढ़ावत पहिरे बसन नवीने[३]॥

गोस्वामी रूपलाल के ढ़ाढ़ी-ढ़ाढ़िन अपनी मण्डली सहित नृत्यगान में तन्मय होकर नंद के द्वार पर उनकी वंशावली गाते हैं, जिसे नंद और उपनंद, गोकुल के अन्य गोपों सहित बैठकर सुनते हैं।[४]

चाचा वृन्दावनदास के एक विस्तृत पद में ढ़ाढ़ी ने कृष्ण के यशोदा के गर्भ में आने से लेकर जन्म लेने तक की बधाई गाई है[५]। इस विवेचन से स्पष्ट है कि इस युग में कृष्ण-जन्म के प्रसंग को अलौकिक की अपेक्षा लौकिक संदर्भों में अधिक विस्तार मिला।

पूतना-वध :—

गोकुल में पूतनावध की घटना कृष्ण की प्रथम अलौकिक लीला है। यह प्रसंग केवल व्रजवासीदास के 'व्रजविलास' और भागवत के भाषानुवादों में वर्णित हुआ है। इनमें पूतना के सुन्दरी रूप धारणा से दाह-संस्कार तक की

---

[१] शृंगाररससागर भाग ३, लालजू की जन्म बधाई पद सं० ४, ७१, ११४, ११५, ११९ आदि।

[२] हरिराय के पद सं० ४

[३] शृंगाररससागर भाग, ३ पृ० २ पद ३

[४] वही पृ० २ पद ६

[५] वही पृ० ५६ पद ८७

घटनाएँ सूरसागर और भागवत के ही अनुरूप वर्णित हुई हैं[१]। इसके अतिरिक्त चाचा वृन्दावनदास कृत 'व्रजप्रेमानंदसागर' में पूतना-वध का सांकेतिक रूप में कथन-मात्र हुआ है। 'तहाँ पूतना बिहंसत आई। लाल गोद भरि लियो उठाई[२] ॥'

कागासुर-वध :—

कृष्ण की यह लीला केवल 'व्रजविलास' में वर्णित हुई है। भागवत के अनुवादों में कागासुर वध का प्रसंग नहीं मिलता क्योंकि भागवत में ही इसका अभाव है। व्रजविलास में भी यह पर्याप्त संक्षिप्त रूप में वर्णित हुआ है। सूरसागर में वर्णित कागासुर-वध की भूमिका तथा वध के अनन्तर यशोदा के उल्लास एवं कृष्ण की बालसुलभ चेष्टाओं के वर्णन की व्रजविलास में उपेक्षा हुई है।[३]

शकटासुर-वध :—

शकट-भंजन की कथा भागवत में वर्णित है। यह प्रसंग भागवत के अनुरूप उसके अनुवादों तथा सूरसागर के आधार पर व्रजविलाल में मिलता है। इसके अतिरिक्त चाचावृन्दावनदास कृत व्रजप्रेमानंदसागर में शकटासुर-वध का एक पंक्ति में संकेत मात्र हुआ है। 'टूक-टूक गाड़ा करि डार्यौ। सकटासुर इहि बिधि मो मार्यौ।'[४]

व्रजवासीदास ने शकट भंजन के सम्पूर्ण प्रसंग के घटनात्मक अंश को अत्यन्त संक्षिप्त रूप दे दिया है। कृष्ण पालने में झूल रहे थे। शकटासुर पवन का रूप धारण कर नंद के घर के शकट में जो कृष्ण के पास ही रक्खा था, आकर समा गया। कृष्ण ने इस रहस्य को जानकर उस पर अपने कोमल चरणों का प्रहार किया। कृष्ण का पैर लगते ही असुर रूपधारी शकट भंजित हो गया, जिससे नंद, यशोदा तथा उपस्थित व्रजवासी गंभीर विस्मय में डूब गए। शकट भंजन के अनन्तर यशोदा के उल्लासपूर्ण उद्‌गारों और कृष्ण के रूप का जो अनुभूत्यात्मक चित्रण सूरसागार में हुआ है, उसका व्रजविलास में अभाव है।

---

[१] भागवत १०।६।१-४४, सूरसागर १० पद ६६७-७४

[२] व्रजप्रेमानंदसागर पृ० ६

[३] सूरसागर, १०। पद-६७७-९३, व्रजविलास पृ० ३२

[४] व्रजप्रेमानंदसागर पृ० ६

तृणावर्त-वध :—

भागवत में तृणावर्त-वध और शकट-भंजन की घटनाएँ एक ही क्रम में वर्णित हुई हैं। परन्तु तृणावर्त को स्पष्टतया कंस द्वारा कृष्ण-वध हेतु प्रेषित चित्रित किया गया है, जब कि शकटासुर का ऐसा कोई भी प्रयोजन नहीं वर्णित हुआ है।

दैत्यो नाम्ना तृणवर्तः कंस भृत्यः प्रणोदितः ।
चक्रवातस्वरूपेण जहारासीनमर्भकम् ॥[१]

तृणावर्त-वध लीला भी केवल भागवत के अनुवादों और ब्रजविलास में ही वर्णित हुई है। इसके अतिरिक्त व्रजप्रेमानंदसागर में तृणावर्त-वध की सम्पूर्ण घटना का संकेत मात्र मिलता है।' तृणावर्त गोदी में धरि कै। लै गयौ गगन बहुत वल भरि कैं॥ गरो पकरि कै ताकौ मार्यौ। असुर प्रचण्ड श्रवनि लै डार्यौ[२]। भागवत के अनुवादों में भागवत से भिन्न कोई स्वतंत्र उद्‌भावना नहीं मिलती। ब्रजवासीदास ने सूरसागर के तृष्णावर्त-वध के प्रसंग से केवल घटनात्मक स्थलों का ही संचयन किया है।[३] तृणावर्त-वध के उपरान्त कृष्ण की बाल सुलभ चेष्टाओं एवं सौन्दर्य का चित्रण ब्रजविलास में अत्यन्त अल्प मात्रा में हुआ है।

कृष्ण का मृत्तिका-भक्षण :—

भागवत में कृष्ण के नामकरण संस्कार के उपरान्त बालक्रीड़ाओं के अन्तर्गत मृत्तिका भक्षण का प्रसंग वर्णित हुआ' है।[४] क्रीड़ारत कृष्ण के मिट्टी खा लेने पर बलराम और अन्य ग्वालों ने यशोदा से कृष्ण की शिकायत की। कृष्ण के मना करने और मुख खोल कर दिखा देने के निवेदन पर यशोदा ने उनसे ऐसा करने को कहा। कृष्ण के मुख में चर-अचर और सम्पूर्ण सृष्टि का दर्शन कर यशोदा आश्चर्य चकित रह गई। वह मृत्तिका-भक्षण की सम्पूर्ण घटना का विस्मरण करके कृष्ण की वात्सल्य भावना में डूब गईं। कृष्ण के मृत्तिका-भक्षण और यशोदा के विश्वदर्शन की कथा भागवत के अनुवादों और ब्रजविलास में वर्णित हुई

[१] भागवत १०, ७, २०

[२] ब्रजप्रेमानंदसागर, पृ० ६

[३] सूरसागर १०। पद-६९४-७०२, ब्रजविलास पृ० ३५-३७

[४] भागवत १०, ८, ३७

है।[१] चाचावृन्दावनदास ने ब्रजप्रेमानंदसागर में सम्पूर्ण प्रसंग को पर्याप्त संक्षिप्त कर दिया है[२]। कृष्ण यमुना तट पर ग्वालों के साथ खेलने जाते हैं। वहाँ खेलते हुए कृष्ण किसी गोप को डाँटते हैं। वह आकर यशोदा से शिकायत करता है कि तुम्हारे कृष्ण ने माटी खाई है। इतने पर ही यशोदा कृष्ण को मारने लगती हैं, जिससे कृष्ण काँप जाते हैं। उनके मुख खोलने पर यशोदा त्रिलोक दर्शन करके आश्चर्य में डूब जाती हैं। ब्रजवासीदास ने बलराम और अन्य ग्वालों के शिकायत करने की घटना छोड़ दी है। यशोदा कृष्ण को मिट्टी खाते देख कर तुरन्त साँटी लेकर दौड़ती हैं":—

"तबहिं श्यामघन माटी खाई। यशुमति देखि सांटि लै धाई॥"

वस्तुतः ब्रजवासीदास ने सूरसागर के मृत्तिका-भक्षण के प्रसंग का आधार लेते हुए भी तत्संबंधी कुछ ही पदों का रूपान्तर किया है।[३]

महाराने के पांडे का भोग :—

इस प्रसंग का भागवत में अभाव है। सूरसागर में अवश्य "पांडे आगमन" शीर्षक के अन्तर्गत इसका वर्णन मिलता है। इस युग में केवल ब्रजविलास में यह कथा सूरसागर से रूपान्तरित हुई है।[४] किन्तु ब्रजवासीदास ने इसे सूरसागर से भिन्न भूमिका प्रदान की है। सूरसागर में पांडे स्वयं घर-घर पूछता हुआ नंद के यहाँ पहुँच जाता है, किन्तु ब्रजविलास में इसके पूर्व कृष्ण की बालचेष्टाओं का भी वर्णन हुआ है। निमंत्रित ब्राह्मण घृत, मिष्ठान, खीर आदि से जब भगवान कृष्ण का भोग लगाने के लिए ध्यान करता है, तो वे स्वतः प्रकट होकर भोग लागाना प्रारम्भ कर देते हैं :—

"नैन उघारि विप्र जब देख्यो। श्यामहि आगे जेवत पेख्यो॥"

यशोदा ने पुनः दूध, मिष्ठान आदि की व्यवस्था की, किन्तु ब्राह्मण के ध्यान करने पर कृष्ण पूर्ववत् भोग लगाने लगे। यशोदा खीझ कर कृष्ण को डांटने लगी। इस पर कृष्ण माता को ब्राह्मण द्वारा ध्यानावस्थित होकर वार-बुलाने का कारण बताते हुए अपने अवतारी रूप का बोध कराते हैं। 'मैया

---

[१] ब्रजविलास पृ० ५३-५४

[२] ब्रजप्रेमानंदसागर पृ० ९ चौ० ३८-४८

[३] सूरसागर १० पद ८७१-२५९, ब्रजविलास पृ० ५३-५४

[४] वही १० पद ८६६-८७७ वही पृ० ४६-४८

मोहि जिनि दोष लगावैं। बार-बार यह मोहि बुलावैं ।। तब मैं रह न सकौं उठि धाऊँ। याको दोनों भोजन पाऊँ ।।'

नंद का शालिग्राम पूजन और यशोदा का त्रिलोक दर्शन :—

कृष्ण के मृत्तिका-भक्षण के प्रसंग से इसकी पर्याप्त समानता है। किन्तु भागवत में नंद के शालिग्राम पूजन के संदर्भ में यशोदा के त्रिलोक दर्शन का उल्लेख नहीं मिलता। सूरदास ने सूरसार में पांडे की कथा के अनन्तर इसका वर्णन किया है। ब्रजवासीदास ने ब्रजविलास में सूरसागर से यह प्रसंग रूपान्तरित किया है।[1]

एक दिन नंद प्रातःकाल शालिग्राम पूजन में प्रवृत्त होते हैं, नंद के पास बैठकर कृष्ण ध्यानपूर्वक शालिग्राम पूजन देखते हैं। नंद के ध्यानमग्न होकर नेत्र मूंदने पर कृष्ण शालिग्राम की बटिया उठाकर अपने मुख में रख लेते हैं। नेत्र खोलने पर नंद को आश्चर्य होता है। यशोदा कृष्ण का मुख खुलवाकर जब शालिग्राम की बटिया निकालती हैं तो उसमें उन्हें त्रिलोक-दर्शन होता है। सूरसागर में सम्पूर्ण प्रसंग केवल पाँच पदों के अन्तर्गत दो बार वर्णित हुआ है किन्तु ब्रजवासीदास ने इस प्रकार की पुनरावृत्ति नहीं की है।

कृष्ण का उलूखल-बंधन :—

भागवत में इसके साथ यमलार्जुन मोक्ष का भी प्रसंग संयुक्त है, जो वस्तुतः उलूखल-बंधन-लीला का पूरक है।[2] इस युग में कृष्ण के उलूखल बंधन और यमलार्जुन मोक्ष की कथा भगवत के अनुवादों, ब्रजविलास और ब्रजप्रेमानंद सागर में वर्णित हुई है।[3] अनुवादों की कथा पूर्णतया भागवत के अनुरूप हैं तथा ब्रजविलास में सूरसागर के आधार पर भागवत की कथा में किए गए परिवर्तन भी अवतरित हुए हैं। यशोदा कृष्ण को बाँधने का उपक्रम करती हैं, किन्तु रस्सी दो अंगुल छोटी पड़ जाती है। वे उसमें दूसरी रस्सी जोड़ती हैं, वह भी छोटी पड़ जाती है। इस प्रकार अनेक रस्सियाँ छोटी पड़ गईं। 'गर्व जानि नहि याद समाई। सब रज्जु द्वै अंगुर घट जाई।' अंत में माता की इच्छा जानकर कृष्ण बंध गए। 'जननी के मन की रुचि जानी आप बंधायौ सारंगपानी।''

---

[1] सूरसागर, १०। पद ८७८-८८१, ब्रजविलास, पृ० ५४-५५

[2] भागवत, १०। १३

[3] ब्रजविलास पृ० ७८-८९, ब्रजप्रेमानंदसागर पृ० १४ चौ० ४३-४९

उलूखल से बँधे कृष्ण यमलार्जुन के मध्य आये जो मूलतः नलकूबर और मणिग्रीव थे तथा नारद के शाप से वृक्षयोनि में जन्मे थे। कृष्ण के खींचने पर वे दोनों वृक्ष समूल उखड़ कर पृथ्वी पर गिर पड़े। उनमें से दो तेजस्वी पुरुष निकले। वृक्षों के गिरने की ध्वनि सुनकर यशोदा कृष्ण के पास दौड़ गईं। वे उनके अलौकिक कृत्य को देख कर आश्चर्य मिश्रित वात्सल्यानुभूति में डूब गईं।

सूरसागर में यमलार्जुन मोक्ष लीला दो बार वर्णित हुई है। किन्तु ब्रजवासीदास ने दोनों में से केवल घटनात्मक स्थलों का ही संचयन किया है।[१] ब्रजप्रेमानंदसागर की इस कथा में कोई घटनागत नवीनता नहीं मिलती। लीला के अंत में यशोदा कृष्ण के नारायण रूप की प्रतीति कर उन्हें केशर-जल से स्नान कराती हैं तथा पूजा की चौकी पर बिठा कर उनकी वंदना करती है।[२]

लौकिक गोकुल लीलाएँ :—

कृष्ण की लौकिक गोकुल लीलाओं के दो रूप मिलते हैं, कृष्ण के संस्कार और बाल-लीलाएँ। कृष्ण के गोकुल के संस्कारों के वर्णन में कवियों की लोक दृष्टि अभिव्यक्त हुई है। पौराणिक स्रोतों के अतिरिक्त परम्परा से उन्होंने ब्रज की रीति-नीति का भी आधार लिया है। भक्ति-युग में गोकुल लीलाएँ अधिकतर वल्लभ-सम्प्रदाय के ही काव्य में वर्णित हुई हैं किन्तु इस युग में वृन्दावनदेव, चाचावृन्दावनदास, नारायनस्वामी आदि अन्य सम्प्रदायों के कवियों की रचनाओं में इसके अपवाद भी मिलते हैं।

कृष्ण के संस्कार

नामकरण :—

कृष्ण का प्रथम संस्कार नामकरण है। इसका वर्णन भागवत के अनुरूप उसके अनुवादों और सूरसागर के आधार पर ब्रजवासीदास के 'ब्रजविलास' तथा चाचावृन्दावनदास के पदों में हुआ है। ब्रजवासीदास ने नामकरण के पहले अन्नप्राशन का वर्णन किया है जो संस्कारों के क्रम की दृष्टि से असंगत है। इसके अतिरिक्त ब्रजवासीदास ने सूरसागर का यथावत अनुकरण न करके

---

[१] सूरसागर १० पद-१००६, ब्रजविलास पृ० ६३-७८

[२] ब्रजप्रेमानंदसागर, पृ० १४ चौ० ४३-४६

भागवत के वसुदेव द्वारा गर्ग मुनि के नामकरण हेतु भेजने का भी उल्लेख किया है।[1] किन्तु एकान्त में कृष्ण का नामकरण किये जाने का उल्लेख सूरसागर के सदृश्य 'ब्रजविलास' में भी नहीं हुआ है। गर्ग द्वारा कृष्ण के अलौकिकत्व का बोध प्राप्त कर यशोदा के उल्लास एवं कृष्ण की बाल-चेष्टाओं के वर्णन द्वारा ब्रजवासीदास ने इस प्रसंग को विस्तार दे दिया है। चाचावृन्दावनदास ने नामकरण संस्कार को लोकरीति के अनुरूप 'दष्ठौन' नाम दिया है तथा तदनुरूप ही उसका वर्णन भी किया है।[2]

अन्य-प्राशन् :—

यह संस्कार केवल 'ब्रजविलास' में ही वर्णित हुआ है। भागवत के अनुवादों में भागवत में न होने के कारण इसका अभाव है। ब्रजविलास में अन्नप्राशन संबंधी सूरसागर का एक विस्तृत पद रूपान्तरित हुआ है[3]। तथा कृष्ण के रूप, सौन्दर्य और बालक्रीड़ाओं का वर्णन इसके साथ संयुक्त हो गया है।

वर्षगाँठ :—

भागवत के कृष्ण की बर्षगांठ का जो रूप सूरसागर में वर्णित हुआ है, ब्रजवासीदास ने उसी को ब्रजविलास में विस्तार दिया है किन्तु उन्होंने कलेवा, बालक्रीड़ा आदि को भी वर्षगाँठ के प्रसंग से संयुक्त कर दिया है। इसके अतिरिक्त चाचा वृन्दावनदास ने कृष्ण-जन्म-बधाई के पदों में भी विधिवत् कृष्ण की वर्षगाँठ मनाए जाने का वर्णन किया है। किन्तु वर्षगाँठ का यह वर्णन जन्मोत्सव के पूजा-विधान पर आधारित है :—

> बरसगाँठ नंदलाल को आजु उबटि न्हवावौ।
> मोतिन चौक पुराइ कै मणि चौकी बिछावौ ॥१॥
> घसि-घसि सकल सुगंधि कौ केसरि जु मिलावौ।
> सोधि सुभ धरी स्वाम के लै अंग लगावौ[4] ॥२॥

कर्ण-छेदन :—

इसका वर्णन केवल ब्रजविलास में हुआ है। सूरसागर के कर्ण-छेदन

---

[1] सूरसागर, १० पद ७०३-७०५, ब्रजविलास पृ० ४१-४३

[2] शृंगाररससागर भाग ३ पृ० १३१ पद १५०

[3] सूरसागर १० पद ७०७, ब्रजविलास पृ० ३७-४०

[4] शृंगाररससागर भाग ३ पृ० १३१ पद १७४

संस्कार की वस्तु में ब्रजवासीदास ने थोड़ा परिवर्तन कर दिया है। ब्रजविलास में प्रातःकाल उठकर कृष्ण अपनी स्वाभाविक बालचेष्टाओं से नंद-यशोदा को कर्ण-छेदन के लिए प्रेरित करते हैं किन्तु सूरसागर में ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता।[1]

रक्षाबंधन :—

इस विषय के गो० रूपलाल, चाचा वृन्दावनदास आदि राधावल्लभीय कवियों ने उत्सवपरक पद प्रचुर संख्या में रचे। किन्तु इन पदों में सहचरी भाव और कृष्ण का राधावल्लभ रूप ही अभिव्यक्ति हुआ है। अतः इन्हें गोकुल के संस्कारों से सम्बद्ध करना उचित नहीं प्रतीत होता। चाचावृन्दावनदास के एक पद में राधाकृष्ण ललिता से राखी बँधवाते हुए चित्रित किए गए हैं :—

> तिथि पून्यौ शुभ द्यौस सलोनो आजु बड़्यौ त्योहार।
> सदन सुदेश राधिका बल्लभ बैठे बरि शृंगार॥
> ललिता ललित पाट की राखी लै आई शुभ बार।
> हँसि हँसि बर पल्लवन बंधावत राधा जू नंद कुमार[2]॥

कृष्ण की बाल-क्रीड़ाएँ

कृष्ण के गोकुल-संस्कारों के सदृश्य उनकी बाल-लीलाओं का भी इस युग के कृष्ण-काव्य में बहुत कम वर्णन हुआ है। बल्लभ-सम्प्रदाय के हरिराय, ब्रजवासीदास, भारतेन्दु, निम्बार्क-सम्प्रदाय के वृन्दावनदेव, नारायणस्वामी, राधावल्लभ-सम्प्रदाय के चाचा वृन्दावनदास आदि की रचनाओं, स्फुट पदों तथा भागवत के अनुवादों में कृष्ण की विविधि बाल-लीलाएँ वर्णित हुई हैं। यद्यपि बाललीला के अन्तर्गत पालने में झूलना, घुटनों चलना, साथ में नवनीत लिए प्रतिबिम्ब दर्शन, बछड़े की पूँछ पकड़ना, तुतलाकर बोलना, आँगन में नृत्य, चोटी बढ़ाने की लालसा से दुग्धपान, जेंवन, चन्द्र प्रस्ताव, शयन, प्रातः उत्थापन, माखनचोरी, गोदोहन आदि विविध रूप उल्लिखित कवियों की रचनाओं में मिल जाते हैं तथापि इनमें से अधिकांश भागवत और सूरसागर पर ही आधारित हैं। कुछ प्रसगों का वस्तुविन्यास मौलिक रूप में हुआ है जिसका

[1] सूरसागर १० पद-७९८-९९, ब्रजविलास पृ० ५२
[2] शृंगाररससागर, भाग २ पृ० १९८ पद १५

यथा स्थान निर्देश किया जायेगा। यहाँ कृष्ण की केवल उन्हीं बालक्रीड़ाओं का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है, जिनमें वस्तुगत कोई वैशिष्ट्य मिलता है।

पालने में झूलना :—कृष्ण के पालने में झूलने का कोई पौराणिक उल्लेख नहीं मिलता। वृन्दावनदेव, हरिराय, चाचा वृन्दावनदास आदि ने स्फुट पदों के अन्तर्गत इस प्रसंग का स्वतंत्र रूप में वर्णन किया है।[१] इनमें पालने में कृष्ण की शिशु चेष्टाओं के अन्तर्गत उनके रूप सौन्दर्य का भी चित्रण हुआ है। कृष्ण पालने में लटकता हुआ फुँदना पकड़ लेते हैं और किलकारी मारकर हँसते हैं। उनके मुख से लार चू रही है, मानों कमल से मकरंद चू रहा हो। कभी वे पैर का अंगूठा मुख में डाल कर चूसने लगते हैं। कृष्ण के रुदन पर यशोदा उनके निकट आकर झुलाने लगती हैं। वे मधुर शब्दों के द्वारा कृष्ण को पुचकारती हैं। तन्द्रा में ओढ़े हुए कृष्ण वस्त्र को उघार देते हैं। यशोदा अनुरागवश उनकी चिबुक पकड़ कर दुलराती हैं।[२]

चाचा वृन्दावनदास ने पालने के पदों पर सूर के पदों की स्पष्ट छाप मिलती है। जैसे :—

जसोदा हरिहिं पालने झुलावैं।
मोहन बदन माधुरी निरखत फूली मंगल गावै ॥[३]

—चाचा वृन्दावनदास

जसोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावैं दुलराइ मलहावैं, जोइ-सोइ कछु गावै[४] ॥

—सूरदास

बछड़े की पूंछ पकड़ना :—भागवत में कृष्ण का बलराम के साथ बछड़े की पूंछ पकड़ने का वर्णन हुआ है—'वन्तर्व्रजे तदबलाः प्रगृहीतपुच्छैः[५]'

---

[१] शृंगाररससागर, भाग ३ पृ० १३२-१३९, पद ५, ६ गीतामृत गंगा-पद २१, हरिराय के पद ८-२१

[२] हरिराय के पद सं० १५

[३] सूरसागर १०, पद ६६१

[४] शृंगाररससागर, भाग ३ पृ० १३५ पद ५

[५] भागवत—१०।८।२४

भक्तियुग के किसी भी कवि ने इसका वर्णन नहीं किया। हरिराय के एक पद में इसका वर्णन हुआ है जो भागवत से प्रेरित ज्ञात होता है किन्तु यहाँ बलराम की उपस्थिति नहीं मिलती :—

गहत बछरा पूंछ, राजत रूप जीत्यौ मार।
देखि परबस हँसत गोपी मुग्ध तजत अगार ॥[1]

जेंवन :—यह प्रसंग कृष्ण की दिनचर्या के अन्तर्गत आता है। अतः साम्प्रदायिक पूजा के अनुसार भोग के पदों में इसका अनेक रूपों में वर्णन हुआ है। यशोदा के वात्सल्य की भूमिका में कृष्ण के जेंवन का कोई पौराणिक आधार नहीं मिलता। व्रजविलास, व्रजप्रेमानंदसागर आदि रचनाओं में इसका वर्णन संक्षिप्त रूप में मिलता है। हरिराय के पदों में कृष्ण के जेंवन का सुन्दर चित्रण हुआ है। यशोदा विलम्ब हो जाने पर कृष्ण से भोजन करने को कहती हैं। वे कृष्ण से कहती हैं, "मैं तुम्हारी माता हूँ। तुम सारी रार भूल जाओ। मैं तुम्हें गोद में बिठा कर खिलाऊँगी।[2] एक पद में बलराम और कृष्ण दोनों ही खाते हुए चित्रित किए गए हैं। जेंवन में यशोदा कृष्ण को उनके मनोनुकूल पदार्थों के खिलाने पर विशेष दृष्टि रखती हैं। गोदोहन के उपरान्त यशोदा कृष्ण को जिवाती हैं। वे अपने आँचल से कृष्ण की 'बयार' करती हुई उनसे खेलने का समस्त विवरण पूँछती हैं।[3]

चन्द्र-प्रस्ताव :—इस प्रसंग का कोई पौराणिक स्रोत नहीं मिलता[4]। इसे

---

[1] हरिराय के पद सं० २२

[2] हरिराय के पद सं० ५०

[3] वही पद सं० ५४

[4] चंदसखी के लोकगीतों में चंद्र प्रस्ताव के प्रसंग का उल्लेख मिलता है। कृष्ण ने यशोदा से अनेक माँगों के साथ चंद खिलौने की भी माँग की है :—

जसोदा मैया मो पै चंद खिलौना लै दे।
पीछे दहो बिलोवन देऊँगी पहले माखन दै दे।
पीछे गऊ चराइबे जाऊँगो पहले रोटी दै दे।
आज गेंद बो खेल रचैगो, बलदाऊ के संग भेज दे।
चंदसखी भज बाल-कृष्ण छवि हरि चरनन चित दै दे।

—डॉ० सत्येन्द्र के संग्रह से

दक्षिण की नवीं शती के मध्य की कृति 'तिरुमोली' में पेरियालवार द्वारा रचित चंद्र और कृष्ण विषयक एक गीत के आधार पर किसी लोक-कथा से सम्बद्ध माना जाता है। ब्रजविलास में कृष्ण के चन्द्र-प्रस्ताव का प्रसंग पूर्णतया सूरसागर के आधार पर वर्णित हुआ है।[१] यशोदा कृष्ण को आँगन में लिए खड़ी हैं। वे कृष्ण को शरद का सुन्दर चन्द्र दिखाती हैं। कृष्ण माँ से चन्द्रमा माँगकर खाने के लिए कहते हैं। कृष्ण का हठ बढ़ता है। अन्त में यशोदा जल से भरे थाल में चंद्रमा का प्रतिबिंब दिखाकर कृष्ण को संतुष्ट करती हैं। कृष्ण बार-बार जल में हाथ डालते हैं, पर चन्द्रमा हाथ नहीं आता। अंत में यशोदा, कृष्ण को यह कह कर समझा देती हैं कि तुम्हारे सुन्दर मुख से लज्जित होकर चंद्रमा आकाश में भाग गया है। इसके उपरान्त कृष्ण सो जाते हैं।

कृष्ण का शयन और सीता-हरण की कथा :—

यह प्रसंग वस्तुतः चंद खिलौना का उत्तरार्द्ध कहा जा सकता है। इस रूप में कृष्ण के शयन का वर्णन भागवत में नहीं मिलता। भक्तियुग में केवल सूरदास ने इसका वर्णन किया है। ब्रजविलास में कृष्ण के शयन और यशोदा के सीताहरण की कथा कहने का प्रसंग सूरसागर से ही रूपान्तरित हुआ है[२]।

प्रातः जागरण :—इस विषय के पद अधिकतर प्रभाती के रूप में रचे गए। हरिराय, वृन्दावनदेव और नारायणस्वामी के प्रभाती के कुछ पद पर्याप्त सुन्दर बन पड़े हैं। इन पदों में यशोदा का वात्सल्य भाव अभिव्यक्त हुआ है[३]।

माखन-चोरी :—यह कृष्ण-कथा के अन्तर्गत लौकिक गोकुल-लीला का सबसे महत्वपूर्ण एवं मनोरंजक प्रसंग रहा है। कृष्ण की माखन चोरी-लीला भागवत में उलूखल-बंधन से संपृक्त है। अष्टछाप के कवियों विशेषकर सूर-दास ने माखन-चोरी के प्रसंग को वात्सल्य के धरातल पर उत्कृष्ट अनुभूत्या-

---

[१] सूरसागर १०, पद ८०६-८१५, ब्रजविलास पृ० ४८-४९

[२] वही १० पद ८१७-१९, वही पृ० ५०-५१

[३] हरिराय के पद सं० ४०, ४१, ४२; गीतामृतगंगा पृ० २ पद २४, ब्रजविहार पृ० ३१-३६

त्मक विस्तार दिया[१]। भक्तियुग के अन्य सम्प्रदायों के काव्य में माखन-चोरी-लीला का अभाव मिलता है। किन्तु इस युग में वल्लभ-सम्प्रदाय के अतिरिक्त राधावल्लभ और निम्बार्क-सम्प्रदायों के कवियों ने भी माखन-चोरी के प्रसंग को लेकर स्वतंत्र उद्‌भावनाएँ की। इनमें चाचा वृन्दावनदास और नारायण-स्वामी विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं[२]। वल्लभ-सम्प्रदाय के हरिराय और ब्रजवासीदास ने माखन-चोरी-लीला का वर्णन किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस युग तक कृष्ण की यह लीला पर्याप्त लोकप्रिय हो गई थी। अभिनेयार्थ रचित रास लीलाओं के अन्तर्गत भी माखन-चोरी के प्रसंग को प्रवेश मिला। इन कवियों की माखन-चोरी लीला के वर्णनों के अन्तर्गत अनेक स्वतंत्र उद्‌भावनाएँ मिलती हैं। अतः उनका पृथक्-पृथक् विवेचन उचित होगा।

हरिराय और ब्रजवाजीदास द्वारा वर्णित माखन-चोरी :—

इन दोनों कवियों द्वारा वर्णित माखन-चोरी की वस्तु सूरसागर पर आधारित है। हरिराय ने सूरसागर की माखन-चोरी विषयक वस्तु का संक्षिप्तीकरण कर दिया है। उन्होंने एक पद में कृष्णासक्त एक गोपी को एकान्त में कृष्ण को गोद में बिठाकर माखन-चोरी हेतु आमन्त्रित करते हुए चित्रित किया है[३]। माखन-चोरी में घटित होने वाली विविध स्थितियाँ एक ही पद में गुम्फित हो गई है। अन्य पदों में गोपियों द्वारा की गई उलाहना के व्याज से कृष्ण की तत्संबंधी विविध क्रीड़ाओं का वर्णन हुआ है। अंत में यशोदा द्वारा पूछे जाने पर कृष्ण उस गोपी के द्वारा माखन-चोरी के पूर्व उसके द्वारा निमन्त्रित किए जाने का रहस्य खोल देते हैं। ब्रजवासीदास ने सूर की माखन-चोरी विषयक उद्‌भावनाओं की रक्षा करते हुए प्रबन्ध की प्रकृति के अनुरूप उन्हें परस्पर सम्वद्ध कर दिया है[४]।

चाचावृन्दावनदास की मौलिकता :—माखन-चोरी की परम्परागत वस्तु एवं संवेदना को ग्रहण करते हुए चाचा वृन्दावनदास ने स्फुट पदों और ब्रज-प्रेमानन्दसागर में तत्संबंधी अनेक नवीन उद्‌भावनाएँ की हैं। भागवत के

---

[१] सूरसागर, १० पद ८८२-९५८

[२] ब्रजप्रेमानंदसागर, पृ० २३-३९, ब्रजविहार पृ० १४-२०

[३] हरिराय के पद सं० ३२

[४] सूरसागर १०, २६४-३४०, ब्रजविलास पृ० ६३-७८

सदृश्य व्रजप्रेमानन्दसागर में माखन-चोरी का प्रसंग उलूखल बंधन के उपरान्त आया है। एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि चाचा वृन्दावनदास ने साम्प्रदायिक उद्देश्य से माखन-चोरी के विविध रूपों की परिणति कृष्ण की विवाहोत्कंठा में दिखाई है, जो प्रकारान्तर से राधा के महत्व की व्यंजक है। कृष्ण की राधा से विवाह की आकुलता का चित्रण माखन-चोरी के प्रसंग के अन्तर्गत मनोरंजक स्थलों की सर्जना में सहायक हुआ है।

नवीन उद्भावनाएँ :—व्रजप्रेमानन्दसागर में माखन-चोरी लीला दो बार वर्णित हुई है :—

क—दधि-माखन चोर आरसी लीला।
ख—दधि-माखन चोर लीला।

दधि-माखन चोर आरसी लीला :—इस लीला का प्रारम्भ तो कृष्ण के मित्र-मण्डली सहित गोपियों के घर में घुसकर माखन चुराने की सामान्य घटना से ही होता है, किन्तु आगे इसके कई अवान्तर रूप भी मिलते हैं जिनमें कथात्मक एक सूत्रता पल्लवित हुई है।

प्रथम रूप :—कृष्ण एक जल भरने हेतु गई गोपी के घर में प्रवेश करते हैं। वे छीकें पर रक्खे हुए माखन को उतार कर ग्वालों सहित खा डालते हैं। इतने में गोपी आ जाती है। जब तक वह सिर से जल-पात्र उतार कर रखती है, कृष्ण भाग जाते हैं। गोपी अपनी पड़ोसिन पर घर की रक्षा ठीक प्रकार से न करने का आरोप लगाती हुई कुपित होती है[१]।

द्वितीय रूप :—एक बार कृष्ण-मंडली एक गोपी के घर में उसके पीछे से छप्पर उतार कर घुस जाती है। गोपी अपने द्वार पर रक्षा के उद्देश्य से बैठी ही रहती है। कृष्ण छीकें पर से माखन उतार कर खाते हैं और दधि-पात्र फोड़ डालते हैं। दधि-पात्र फोड़ने की ध्वनि जब गोपी के कानों में पड़ती है तो वह कृष्ण को पकड़ने के लिए दौड़ती है। अपनी रक्षा हेतु कृष्ण गाढ़ी दही का उस गोपी के मुख पर छपाका मार कर भाग जाते हैं।[२]

तृतीय रूप :—एक मित्र आकर कृष्ण को सूचना देता है कि एक गोपी ने बहुत ही सुन्दर दही जमाया है। अवसर पाकर कृष्ण-मण्डली उस गोपी

---

[१] व्रजप्रेमानन्दसागर, पृ० २३
[२] वही पृ० २४

के घर पहुंचती है। इसी बीच गोपी गायें दुहने चली जाती है। कृष्ण द्वार खोल कर उसके घर में प्रविष्ट होते हैं और खूब दही खाते हैं। गोपी के लौटने पर कृष्ण पकड़े जाते हैं और यशोदा के समक्ष प्रस्तुत किए जाते हैं। गोपियों की शिकायत पर यशोदा कृष्ण पर कुपित होती है, जिससे कृष्ण उस गोपी से बदला लेने का निश्चय कर लेते हैं।[१]

चतुर्थ रूप :—पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार कृष्ण सब मित्रों से परामर्श करके एक दिन प्रातःकाल ही उस गोपी के घर में प्रवेश करते हैं। वे मटकी का सब दही खा डालते हैं और कुछ धरती पर गिरा देते हैं। तदनंतर वे अपनी बानर सेना भी बुला लेते हैं और स्वयं दवे पाँव भाग निकलते हैं। अन्य ग्वाल बाल दधि और माखन खाने में संलग्न ही रहते हैं कि इतने में गोपी आ जाती है। उसके आने पर शेष गोप भी भाग जाते हैं। गोपी समझ जाती है कि यह सारी करतूत कृष्ण की है तथा वह कृष्ण को स्नेह से वश में करने का निश्चय करती है[२]।

पंचम रूप :—एक दिन वही गोपी दधि-पात्र को आँगन में रख देती है तथा एक कक्ष में कृष्ण के आगमन की टोह में बैठ जाती है। कृष्ण अपनी मण्डली सहित एक दूसरे के कंधे पर चढ़ कर उसके घर में उतर जाते हैं। एक ग्वाल दौड़ कर गोपी वाले कक्ष की जंजीर लगा देता है। इसी बीच गोपी की पड़ोसिन उसके घर का फाटक खोल कर अन्दर आती है। वह जंजीर खोलकर बन्द गोपी को बाहर निकालती है, इसी बीच सब दधि-चोर भाग जाते हैं।[३]

षष्ठा रूप :—दोनों गोपियाँ परस्पर कृष्ण की निंदा करती हैं। दूसरी गोपी कहती है कि जब "मैं नन्द के पुत्र से उत्पात करने को मना करती हूँ तो वह चिढ़ कर दो टूक उत्तर देता है।" एक बार वह गोपी घर साफ करके आरसी पीढ़ा पर रखती हैं। कृष्ण दबे पाँव आकर आरसी चुरा ले जाते हैं। गोपी आरसी को चुराया हुआ देखकर शोर मचाती है। वह आरसी की खोज में कृष्ण का पीछा करती है। इसी बीच कृष्ण, आरसी किसी दूसरे गोप को दे देते हैं। गोपी के पूछने पर कृष्ण उसे आरसी न चुराने की सफाई देते हैं।

---

[१] **ब्रजप्रेमानंदसागर पृ० २५**

[२] **वही पृ० २६**

[३] **वही पृ० २७**

पर्याप्त विवाद के अनन्तर कृष्ण अपनी मण्डली सहित उस गोपी के घर आरसो ढुँढ़वाने चलते हैं। कृष्ण के निर्देश पर गोपी छत पर जाकर आरसी ढूँढ़ने लगती है। इसी बीच कृष्ण आरसी पूर्ववत् रख देते हैं। ग्वाल-बाल गोपी के घर में रखा हुआ दधि-माखन खाना प्रारम्भ कर देते हैं। जब तक वह छत पर से उतरती है, सब गोप भाग जाते हैं। ड्योढ़ी पर कृष्ण ही पकड़े जाते हैं। कृष्ण उस गोपी से कहते हैं 'तू मेरे ही पीछे पड़ी है। मैंने तेरी आरसी खोज दी है तो भी तू प्रसन्न नहीं होती। देख न, पीढ़े पर रखी है।' इस पर गोपी अत्यन्त लज्जित होती हुई कृष्ण पर आसक्त हो जाती है[1]।

दधि-माखन-चोर लीला :—यह दधि माखन-चोर 'आरसी-लीला' की अपेक्षा संक्षिप्त है। इसके केवल दो ही रूप हैं :—

प्रथम रूप :—एक गोपी वन में अपने पति को छाक देने जाती है। कृष्ण अपनी मण्डली सहित उसका घर खोलते हैं। दही चख कर देखने पर कुछ कड़ुवा सा लगता है। कृष्ण उस गोपी के सोते हुए पुत्र की चोटी चारपाई से बाँध देते हैं। माखन का पात्र उसके निकट रख कर कुछ दही उसके मुख में और कुछ हाथों में लगा देते हैं। दूर से आती हुई गोपी घर का द्वार खुला देख कर शोर मचाना प्रारम्भ कर देती है। दधि चोर मंडली भाग जाती है। कृष्ण अपने द्वार पर खड़े होकर उस गोपी पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं, "इतनी कंजूसिनी है कि कहीं बालक माखन न खा ले उस बेचारे की चोटी खाट से बाँध दी। इसका प्रातःकाल जो भी मुख देख ले उसे दिन भर भोजन न मिले।" गोपी कृष्ण को चिढ़ाते हुए उत्तर देती है, "इस प्रकार से तेरा कोई भी विवाह नहीं करेगा।' कृष्ण ने प्रतिवाद किया, "यदि तू मेरा विवाह करा दे तो मैं तुम्हें बधाई दूँगा।" गोपी कृष्ण की सरलता पर रीझ कर उन्हें अच्छा सा विवाह करा देने का आश्वासन देती है[2]।

द्वितीय रूप :—एक बार कृष्ण गोप-सखाओं सहित एक गोपी के घर पीछे से उतर जाते हैं। वह द्वार पर अन्य गोपियों के साथ वार्त्तालाप में संलग्न रहती है। दधि-पात्र और माखन लेकर सब छत पर जाकर खाते हैं तथा बूरे से भरी मथानी और दीपावली का पकवान लेकर फिर छत पर चढ़ जाते हैं।

---

[1] ब्रजप्रेमानन्दसागर, पृ० २९

[2] वही पृ० ३२

आनन्द पूर्वक समस्त पदार्थ खाते हुए परस्पर सांकेतिक वार्तालाप करते हैं। संतुष्ट हो जाने पर बंदरों के आने का शोर मचा कर सब पूर्व मार्ग से उतर जाते हैं। गोपी दौड़ कर कृष्ण को पकड़ लेती है और कहती है, "यशोदा मुझसे नित्य तेरे विवाह की प्रार्थना करती है और तू निरन्तर दुर्गुणों से भरता जा रहा है।" विवाह के लालच में कृष्ण गोपी से क्षमा माँगते हैं। इधर गोपी सारी कथा यशोदा को जाकर सुनाती है।[1]

ब्रजप्रेमानन्दसागर में प्रबंधात्मकता होने के कारण माखन-चोरी के उपर्युक्त रूपों में एक तारतम्य लक्षित होता है। चाचाजी ने अपनी प्रतिभा द्वारा कृष्ण की माखन-चोरी लीला को मौलिक उद्भावनाओं से अलंकृत करके पर्याप्त रोचक बना दिया है।

नारायणस्वामी द्वारा वर्णित माखन-चोरी :—नारायणस्वामी ने माखन-चोरी के प्रसंग को नाटकीय पृष्ठभूमि में वर्णित किया है। यद्यपि उनकी माखन-चोरी लीला में कथात्मक मौलिकता का अभाव है तथापि रासलीलाओं में अभिनेयार्थ रचे जाने के कारण सम्पूर्ण प्रसंग कथोपकथन शैली में वर्णित हुआ है। स्नान हेतु गई हुई गोपी के घर कृष्ण ग्वालों सहित प्रविष्ट हो जाते हैं तथा माखन-चोरी करते हैं। इसी बीच में गोपी के आ जाने से कृष्ण पकड़ जाते हैं। गोपी उन्हें अनेक प्रकार से उलाहना देती है। अंत में वह कृष्ण के भोलेपन पर रीझ कर उन्हें छोड़ देती है[2]।

कृष्ण की विवाहोत्कठा :—भागवत में कृष्ण की विवाहोत्कंठा का कोई उल्लेख नहीं मिलता। तुलसी की कृष्ण-गीतावली में यह प्रसंग कृष्ण को माखन-चोरी से रोकने के उद्देश्य से वर्णित हुआ है[3]। इस युग में चाचा वृन्दावनदास द्वारा ब्रजप्रेमानन्दसागर और लाड़सागर के अन्तर्गत इसे विस्तार एवं रोचकता मिली। ब्रजप्रेमानन्दसागर में कृष्ण की विवाहोत्कंठा माखन-चोरी की परिणति के रूप में वर्णित हुई है किन्तु लाड़सागर में इसका संकेत मात्र हुआ है[4]। लाड़सागर में इसे १२९ पदों के अन्तर्गत विस्तार मिला है। कृष्ण अपनी माता के चरण छूकर उनसे विवाह तै कर देने का निवेदन करते

[1] **ब्रजप्रेमानंदसागर पृ० ३४-३६**

[2] **ब्रजविहार पृ० १४-२०**

[3] **कृष्ण-गीतावली पद १३**

[4] **ब्रजप्रेमानंदसागर पृ० ३२-३३, लाड़सागर पद ८**

हैं। वे कहते हैं, 'मेरे सदृश्य कौन है। मैं घर का सारा कार्य सुचारु रूप से करूँगा[१]।' कृष्ण कभी विवाह का स्वप्न देखते हैं।[२] कभी ज्योतिषी की भविष्यवाणी का संदर्भ देते हुए शीघ्र ही विवाह तै हो जाने की बात कहते हैं[३]। यशोदा उन्हें स्वप्न का अर्थ समझाती हैं।[४] जिज्ञासावश कृष्ण अपनी माता से विवाह की विधि पूछते हैं। यशोदा ने पूछा कि तुम कितनी बड़ी दुल्हन लोगे, तो उनके वक्षस्थल से चिपट जाते हैं[५]। बाहर जाने पर ग्वाल बाल उन्हें चिढ़ाते हैं कि इस ग्वाले से कौन विवाह करेगा। कृष्ण की विवाहोत्कंठा दिन प्रति दिन बलवती होती जाती है। एक दिन गोचारण के बीच कृष्ण राधा को देख लेते हैं। वे यह घटना घर आकर यशोदा से कहते हैं। अन्त में यशोदा कृष्ण को वृषभान की पुत्री राधा से विवाह का आश्वासन देती हैं।[६]

गोदोहन :—भागवत के कृष्ण गोदोहन नहीं करते। किन्तु कृष्ण की इस क्रीड़ा का कृष्ण-काव्य में पर्याप्त वर्णन मिलता है। इस युग के ब्रजवासीदास, चाचा वृन्दावनदास, वृन्दावनदेव आदि ने कृष्ण के गायों के प्रति अनुराग और गोदोहन का वर्णन किया है। ब्रजवासीदास ने सूरसागर के गोदोहन का आधार लेते हुए भी इसे स्वतंत्र विस्तार दिया है[७]। चाचा वृन्दावनदास ने कृष्ण के गोदोहन और तदनन्तर यशोदा द्वारा शयन के समय ध्रुव की कथा कह कर सुलाने का अत्यन्त रोचक वर्णन किया है। खरिक ने एक सीधी गाय का कृष्ण से दोहन कराया। यशोदा प्रसन्न होकर घर-घर कृष्ण के प्रथम गोदोहन का दूध बाँट आई। धीरे-धीरे कृष्ण गोदोहन में पारंगत हो गए। एक दिन गोदोहन के उपरान्त कृष्ण को शयन-समय शय्या पर लिटा कर यशोदा ने कृष्ण और बलराम को ध्रुव की कथा सुनाई। कृष्ण को नींद आने

---

[१] लाड़सागर, कृष्णविवाहोत्कंठा पद १२
[२] वही पद १३
[३] वही पद १६
[४] लाड़सागर, कृष्ण-विवाहोत्कंठा-पद १४-१५
[५] वही पद १७
[६] वही पद २४
[७] ब्रजविलास पृ० ९६-९८

लगी। वे माता से प्रातःकाल ग्वाल सखाओं के आगमन पर जगाने और गाढ़ी दही जमाने का आग्रह करते हुए सो गए।

ख—नंदगाँव बरसाना लीला

(राधा की लीलाएँ)

वर्गीकरण :—पात्र योजना की दृष्टि से राधा की लीलाओं के दो रूप निर्धारित किए जा सकते हैं—

क—विशुद्ध राधा लीलाएँ।

ख—कृष्णाश्रित राधा लीलाएँ।

विशुद्ध राधा लीलाओं के अन्तर्गत विवाह के पूर्व तक की लीलाएँ आती हैं जो नंदगाँव बरसाने में सम्पन्न होती हैं। कृष्णाश्रित लीलाओं का क्षेत्र वृन्दावन है। इनमें कृष्ण के सहचर्य का भाव प्रधान है। इन लीलाओं में राधा और कृष्ण एक दूसरे के पूरक सिद्ध होते हैं। इनका विवेचन वृन्दावन की लौकिक लीलाओं के अन्तर्गत किया जायेगा।

ब्रह्मवैवर्त, पद्म आदि राधा-चरित्र-प्रधान पुराणों में राधा की जन्म से लेकर कृष्ण के साथ सम्पन्न होने वाली लीलाओं का विस्तृत वर्णन मिलता है। यद्यपि सभी कृष्णभक्ति सम्प्रदायों के कवियों ने राधा की विविध माधुर्य लीलाओं का विशद एवं अनुरंजनकारी चित्रण किया है, तथापि राधिकोपासना प्रधान होने के कारण वात्सल्य, सख्य और माधुर्य भावों की भूमि पर राधा की लीलाओं का जैसा विशद वर्णन राधावल्लभ-सम्प्रदाय के काव्य में मिलता है वैसा किसी अन्य सम्प्रदाय के काव्य में सम्भव नहीं हो सका। राधावल्लभीय रचनाकारों का राधा की लीलाओं के वर्णन में पौराणिक स्रोतों के प्रति विशेष आकर्षण नहीं दिखाई देता। उनके वर्णन अधिकतर स्वतंत्र एवं लोकपरक रहे हैं। इसके अतिरिक्त राधा के व्यक्तित्व में कृष्णचरित के सदृश्य अलौकिक तत्वों की प्रतिष्ठा नहीं मिलती। इस युग में चाचा वृन्दावनदास कृत ब्रजप्रेमानन्दसागर राधा की शैशव एवं किशोरी जीवन की लीलाओं की दृष्टि से सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। अतएव उनके विवेचन में ब्रजप्रेमानन्दसागर की वस्तु का आधार प्रमुख रूप से लिया गया है।

राधा-जन्म :—यह प्रसंग बधाई के पदों के अन्तर्गत लोक रीति के अनुरूप वर्णित हुआ है। रूपलाल गोस्वामी, चाचावृन्दावनदास, गो० कमलनयन,

हरिराय, नागरीदास, सहचरिसुख, किशोरीदास आदि अनेक पदकारों ने राधा-जन्म-बधाई के पद प्रचुर संख्या में रचे[१]। प्रायः सभी कवियों ने वृषभानु को राधा का पिता, कीर्ति को माता, श्रीदामा को भ्राता और बरसाने स्थित रावल ग्राम को जन्म स्थान लिखा है, जो अंशतः ही ब्रह्मवैवर्त सम्मत है[२]। कीर्ति का राधा की माता के रूप में प्रथम उल्लेख उज्ज्वल नीलमणि के एक श्लोक में मिलता है[३]। राधा के जन्म की तिथि के रूप में सभी कवियों ने भादों मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी का उल्लेख पद्म पुराण के आधार पर किया[४] है। किन्तु गो० रूपलाल, चाचा वृन्दावनदास आदि ने राधा जन्म तिथि के अतिरिक्त गुरुवार के दिन और विशाखा नक्षत्र का भी उल्लेख किया है :—

आठें तिथि गुरु नक्षत्र विशाखा को राधा जी जनम लयौ।[५]

—गो० रूपलाल

सुदि भादौं तिथि अष्टमी पुनि अति पुनीत गुरुवार।
नवग्रह बली नक्षत्र विशाखा, अति पुनीत गुरुवार॥[६]

—चाचा वृन्दावनदास

राधा-जन्म की सूचना मिलते ही ढ़ाढी और ढ़ाढ़िन के आगमन उनके उल्लास, नृत्य, हठ, भेंट याचना आदि का वर्णन लोक रीति के अनुरूप विविध रूपों में हुआ है। कुछ कवियों ने राधा-जन्म का प्रभाव गोकुल में भी दिखाया है। नंद और यशोदा उल्लसित होकर अपना ढ़ाढी वृषभानु के द्वार पर बधाई गायन हेतु भेजते हैं। इसी प्रकार कुछ कवियों ने कृष्ण के चिरन्तन एकत्व का भी निर्देश किया है। राधा-जन्म पर यशोदा शिशु कृष्ण के साथ

---

[१] शृंगाररससागर भाग ३ पृ० १४३-२६६

[२] ब्रह्मवैवर्त में राधा के पिता तो वृषभानु ही हैं किन्तु माता कलावती, पति रायाण, किंकर श्रीदामा और जन्मस्थान गोकुल मिलता है। ब्रह्मवैवर्त—४:२:६१, ४:३:१०४, ४:६ २२४, २२५, २२८।

[३] उज्ज्वलनीलमणि, राधाप्रकरण श्लोक ४५

[४] श्रीराधा का क्रमिक विकास पृ० १०७

[५] शृंगाररससागर भाग ३ पृ० १५२

[६] शृंगाररससागर भाग ३ पृ० २२७

रावल आती है और कृष्ण का नवजात कन्या से विवाह निश्चित कर जाती हैं :—

रावलपति रानी ने आँगन ब्रजरानी नचवाई।
लीला अमित कछुक रसना छवि सहचरि सुख दुलराई[१]।
- सहचरि सुख

नित्य विहार प्रगट करिवे को प्रगटे आनँद दानी।
कीरति मान नंद जसुमति मिलि शुभग सगाई ठानी।[२]
—प्रेमदास

कीरति कन्या जनी सुलच्छनि सुनि गोकुल उमह्यो।[३]
गोकुलचंद अभूत चन्द्रिका सुकृतनि कीरति कुकम कढ़ी।[४]

इस प्रकार कृष्ण और राधा की रति का प्रथम अंकुरण यशोदा के हृदय में हुआ है :—

वृषभानु घर कन्या भई महा मोद गोकुल में छयौ।
पलना में किलकतु साँवरौ, रति बीज जसुमति हिय बयौ[५]॥

छठी, नामकरण तथा इन्दुसेन का छोछक भेजना :—चाचा वृन्दावनदास ने लोक रीति के अनुसार जन्म के उपरान्त होने वाले संस्कारों छठी और नामकरण तथा कीर्ति के पिता इंदुसेन के छोछक भेजने का वर्णन किया[६] है। यशोदा व्रजांगनाओं सहित राधा की छठी और दष्ठौन पुजाने आती हैं। पुरोहित ने कुण्डली विचार कर नामकरण किया। कीर्ति के पिता इंदुसेन अनेक शकट भर कर बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण, पकवान, तथा गोप और गोधन भी लाये। वृषभान और कीर्ति ने परिवार के अन्य सदस्यों सहित छोछक पहना।

---

[१] शृंगाररससागर भाग ३ पृ० १८

[२] वही भाग ३ पृ० १८३

[३] घनानंद-ग्रंथावली पृ० ४०९ पद सं० ५१५

[४] वही पृ० ४३६ पद सं० ४५६

[५] शृंगाररससागर भाग ३ पृ० १८१

[६] वही भाग ३ पृ० ३०१-३०५

वर्षगाँठ :—राधा की वर्षगाँठ का वर्णन प्रायः राधा-जन्म-बधाई के ही पदों के अन्तर्गत हुआ है। इस विषय के पद अधिकतर राधावल्लभीय कवियों ने ही रचे हैं। किन्तु वृन्दावनदेव, किशोरीदास आदि कवियों के राधा की वर्षगाँठ से सम्बन्धित पद भी अपवाद रूप में मिलते हैं।[१]

चाचा वृन्दावनदास ने स्फुट पदों के अतिरिक्त ब्रजप्रेमानन्द सागर में राधा के अतिरिक्त उनकी अष्ट सखियों ललिता, तुंगविद्या, इनदुलेखा, चंपकलता, विशाखा, चित्रलेखा सुदेवी तथा रंगदेवी की भी वर्ष गाँठ का स्वतंत्र रूप से वर्णन किया है। चाचाजी ने राधा की सखियों के माता-पिता का भी नामोल्लेख किया है। राधा और उसकी सभी सखियों ने भादों सुदी में ही विविध तिथियों को जन्म लिया था। चाचा जी ने अष्ट सखियों की वर्षगाँठ की तिथियों का इस प्रकार उल्लेख किया है :—

तुंगविद्या :—भादौं सुदि त्रितिया तिथि भली।
बरषगांठ तुंगविद्या लली ॥[२]

ललिता :— बरष गाँठि ललिता लली, बरन सुनाऊ बैन।
भादौं सुदि छठि छवि भरी, सब उर आनद दैन ॥[३]

इंदुलेखा :— भादौं सुदी एकादशी बाढ्यौ अतिशय रंग :
इंदुलेखा को जन्म दिन सब मन गौन उमंग ॥[४]

चंपकलता :—अब बरनौ चंपकलता बरषगाँठ सुखदान।
सुदि भादौं अष्टमी पुनीत। सदन गाइयै मंगल गीत ॥[५]

विशाखा :— बरष गाँठि सु विशाखा लखी। मंगल में मंगल रह रखी ॥[६]
भादौं सुदि आठै तिथि महा। दुगुनौ मंगल कहिये कहा ॥[७]

[१] गीतामृत गंगा पृ० ३ पद ३१
[२] ब्रजप्रेमानंदसागर पृ० ७२
[३] वही पृ० ७
[४] वही पृ० ७७
[५] वही पृ० ७६
[६] वही पृ० ७६
[७] वही पृ० ७७

चित्रलेखा :— धर्म भानु सुभगा घरनी, बेटी लेखा चित्र ।
वरषगाँठ दस्मी सुखी, भादौं मास पवित्र ।।[१]

रंगदेवी और सुदेवी :—भादौं पून्यौ तिथि ललित जनम घोस इक संग ।
रंगदेवी अरु सुदेवी बरष गाँठि भरी रंग ।।[२]

अन्य सखियों की अपेक्षा राधा की वर्षगाँठ का वर्णन विस्तारपूर्वक हुआ है। भादों शुक्ला अष्टमी को कीर्ति ने राधा को विधिवत स्नान कराया और वस्त्राभूषणों से उसका शृंगार किया। पूजा के समय राधा की सभी सखियाँ आईं। ललिता ने कुसुमचंद्रिका विशाखा ने पुष्पमाला, चम्पकलता ने बटुआ, चित्रा ने मृगछौना तुंगविद्या ने गेंद, इन्दुलेखा ने मैना, रंगदेवी ने पौपद, और सुदेवी ने मुनैया पक्षियों का पिंजरा राधा को उपहार स्वरूप दिये। श्रीदामा ने राधा को गुड़ियों का जोड़ा भेंट किया। बुआ ने आरती उतारी। इस प्रकार राधा की वर्षगाँठ विधिवत् मनाई गई।

राधा का पालना :—राधा के पालने का वर्णन चाचा वृन्दावनदास कृत ब्रजप्रेमानन्दसागर तथा प्रेमदास, किशोरीदास आदि द्वारा रचित स्फुट पदों के अंतर्गत हुआ है[३]। कीर्ति राधा को कंचन के मणि जटित पालने में झुलाती हैं। रावल की स्त्रियाँ आकर राधा के पालने को घेर लेती हैं तथा सामूहिक मंगलगान करती हैं। कीर्ति चुटकी देकर राधा को पुचकारती है। इसी बीच श्रीदामा मचल जाता है, किन्तु कीर्ति उसे गोद में लेकर राधा को पालना झुलाने लगती है।

घुटनों चलना :—राधा बड़ी हुई। भूख लगने पर पैर पटक कर वह रुदन करने लगी। दूध पिलाकर कीर्ति राधा को पैरों चलना सिखाती है। एक दिन राधा देहरी लाँघ गई तो कीर्ति ने इसे मंगल का प्रतीक समझा। धीरे-धीरे राधा अपना नाम समझने लगी। माता के पुकारने पर वह चौंक कर हँसती हुई भागी। राधा के चलने पर पैरों के नूपुरों का मधुर स्वर कीर्ति को अत्यन्त कर्ण सुखद लगा। राधा दौड़कर बृषभानु की गोद में बैठ गई। उन्होंने राधा को अत्यन्त स्नेह पूर्वक जिवाया।[४]

---

[१] ब्रजप्रेमानंदसागर पृ० ७७

[२] वही पृ० ७९

[३] ब्रजप्रेमानंदसागर पृ० ३९, शृंगाररससागर भाग ३, पृ० २९६-३०१

[४] ब्रजप्रेमानन्द सागर पृ० ४३

हाऊ और जेंवन :—कीर्ति अनुरागवश श्रमित होकर बैठ गई और राधा से दौड़कर उसे उठाने को कहा। राधा ने माँ को उठाया। कीर्ति जब कार्य में पुनः संलग्न हो गई तो राधा बाहर जाने लगी। कीर्ति ने राधा को 'हाऊ' का भय दिलाकर बाहर जाने से रोका। राधा ने जिज्ञासावश 'हाऊ' का नाम और रूप पूछा। कीर्ति ने कहा कि 'हाऊ' का नाम नहीं होता वह तुम्हारा गहना उतार कर ले जायेगा। इसी बीच श्रीदामा आ गया। राधा ने भाई से भी 'हाऊ' का नाम और रूप पूछा। श्रीदामा ने राधा के भोलेपन पर रीझ कर हाऊ का मिथ्यात्व स्पष्ट कर दिया। तदनन्तर श्रीदामा फेनी मिश्री और दूध मिला कर ले आया। भाई-बहन एक साथ जेंवने लगे। राधा अपने तोतले स्वर में श्रीदामा से कहने लगी कि यदि तुम मुझे बाहर खेलने ले चलोगे तो मैं तुम्हें गुड़िया दूँगी[1]।

श्रीदामा और सखियों के साथ क्रीड़ा :—

भोजन के उपरान्त कीर्ति ने श्रीदामा और राधा को खेलने के लिए खिलौने दिए। इतने में रावल की अन्य कन्याएँ भी आ गयीं। कीर्ति ने उन सबको झोली भर-भर कर मेवा दिए और आँगन में खेलने को कहा क्योंकि राधा के बाहर चले जाने पर कीर्ति को अपना आँगन सूना लगता। राधा सखियों और श्रीदामा के साथ आँगन में क्रीड़ा करने लगी[2]।

राधा का शृंगार :—

इसी बीच वृषभान के अनुज की पत्नी आ गयी। उसने राधा को स्नान कराया और सुन्दर वस्त्राभूषण पहिनाए। कीर्ति ने अपनी देवरानी से शिकायत की, "राधा धूल खेलती है। स्नान करने पर रोती है और चोटी नहीं गुहने देती।" राधा, माँ के वचन सुनकर एक साथ प्रसन्न और लज्जित-सी होती हुई चाची के गले से लिपट गई।[3]

कीर्ति को गृह-कार्य में सहयोग देना :—

राधा अपनी माता को गृह-कार्य में सहयोग देने लगी। कीर्ति पीढ़ा, पटा आदि जो कुछ भी माँगती, राधा दौड़कर ला देती। जब छींके पर उसके हाथ

---

[1] ब्रजप्रेमानंदसागर, पृ० ४३

[2] वही पृ० ४४

[3] वही पृ० ४५

नहीं पहुँचते तो मूढ़ा खींचती और उस पर खड़ी होकर वस्तु उतार लेती[१]।

मुंदरी खोजना :—

कीर्ति ने राधा से मुंदरी खोज लाने को कहा। राधा ने अत्यन्त श्रम से माँ की खोई हुई मुंदरी निकाली। राधा अपनी उँगली में बार-बार मुंदरी पहनती लेकिन बड़ी होने के कारण वह गिर पड़ती। राधा ने खीझ कर मुंदरी फेंक दी। कीर्ति ने उसे उठा लिया। राधा ने माँ से भी मुंदरी फेंक देने को कहा। कीर्ति ने छलपूर्वक फेंकने का बहाना करके मुंदरी दूसरे हाथ में ले ली और खाली हाथ दिखाकर फेंकने की सफाई दी। कीर्ति ने राधा को अनुरागवश वक्षस्थल से लगा लिया।[२]

दुग्ध-पात्रों की गणना :—

एक दिन प्रातःकाल ग्वाले गोशाला से कन्धे से दूध भरे हुए पात्र रख कर वृषभान के घर लाकर आँगन में रख रहे थे। जब दुग्ध-पात्रों से आँगन भर गया तो हर्षोत्फुल्ल राधा ने माँ से उनकी गणना कर देने को कहा। कीर्ति ने खीझ कर राधा से पूछा कि तू दुग्ध-पात्रों की गणना करके क्या करेगी? राधा ने माता पर उसको घर की सम्पत्ति छिपाने का आरोप लगाया। राधा ने तुरन्त बरसाने की गौशालाओं, गायों और बछड़ों की संख्या पूछी। कीर्ति ने खीझ कर पिता से पूछने को कहा। इतने में वृषभान आ गए। उन्होंने राधा को कंठ से लगा लिया। बृषभान राधा को कलेऊ कराने लगे। राधा ने वृषभान से भी उसी प्रश्न की पुनरावृत्ति की। वृषभान ने उत्तर दिया 'ग्राम में थोड़ी-थोड़ी दूर पर अनेक गोधन हैं। जब ग्वाले ही बहुत हैं तो गौओं की गणना कैसे की जा सकती है[३]?'

राधा का गुड़िया प्रेम और श्रीदामा की वृषभान से शिकायत :—

एक दिन वृषभान ने राधा को जिवाते हुए उसे मृगशावक, शुक, मैना आदि पक्षी और मणि जटित पिंजड़ा ला देने को कहा। राधा ने वृषभान से श्रीदामा के गुड़िया चुरा लेने की शिकायत की। वृषभान ने श्रीदामा से ऐसा

---

१ ब्रजप्रेमानंदसागर, पृ० ४७

२ वही पृ० ४५

३ वही पृ० ४७

न करके राधा को प्यार से रखने को कहा। इस पर श्रीदामा ने वृषभान से राधा की गुड़िया उसे न दिखाने की शिकायत की। अन्त में वृषभान ने श्रीदामा और राधा में मेल करा दिया।[१]

राधा का शयन और कीर्ति का कथा कहना :—

व्रजप्रेमानन्दसागर के अतिरिक्त यह प्रसंग ललितसखी कृत 'कहानी रहसि' के अन्तर्गत भी वर्णित हुआ है[२]। कीर्ति शयन के हेतु राधा को लेकर शय्या पर लेटी। राधा ने माँ से कहानी कहने का प्रस्ताव किया। कीर्ति ने गोकुल और बरसाने का पूरा वर्णन करते हुए राधा को उसके जन्म की समस्त घटनाएँ सुनाईं। कीर्ति ने कहा कि तेरे जन्म पर नन्दरानी यशोदा अपने पुत्र कृष्ण को लेकर रावल आई थीं। उसी समय तुझे और कृष्ण को एक ही पालने में लिटाकर दोनों का विवाह निश्चित कर दिया था। माता द्वारा विवाह की बात सुनकर राधा के भी मन में विवाह का भाव स्फुरित हुआ।

राधा के गुड्डे और ललिता की गुड़िया का विवाह :—

एक दिन राधा ने सखियों की सहायता से गुड्डे और गुड़िया का विवाह निश्चित किया। कीर्ति ने विवाह की समस्त सामग्री जुटा दी। सखियों ने निर्णय किया कि गुड्डा राधा का होगा और गुड़िया ललिता की। राधा और ललिता ने विधिवत् विवाह सम्पन्न किया। इस विवाह को देखकर कीर्ति के मन में राधा के विवाह की लालसा उत्तरोत्तर संवर्धित होने लगी[३]।

बृषभान और श्रीदामा के साथ भोजन :—

भोजन के समय बृषभान घर के भीतर आए। कीर्ति ने उन्हें थाल परोसा। साथ ही दो छोटी-छोटी थालियाँ श्रीदामा और राधा के लिए भी परोसीं। वृषभान ने क्रीड़ा-व्यस्त राधा को पुकार कर श्रीदामा को भोजन हेतु बुला लाने को कहा। हाथ-पैर धोकर श्रीदामा और राधा भोजन हेतु बैठे। श्रीदामा एक कौर स्वयं खाते और दूसरा कौर राधा को खिलाते। भोजन करते समय राधा ने श्रीदामा से पुनः अपनी गौओं की संख्या पूछी। भोजन के उपरान्त राधा ने माता की आज्ञा से उन्हें भोजन कराया। राधा ने थाली

---

[१] व्रजपेमानंदसागर, पृ० ४८-५९ : लाड़सागर, पृ० ४

[२] व्रजप्रेमानंदसागर पृ० ५६-५७ तथा कहानी-रहसि

[३] वही पृ० ५२

परोसी किन्तु बोझ के कारण वह उसे उठा नहीं सकी। कीर्ति ने उससे उठाने की क्षमता के अनुसार परोस लाने को कहा। इस बीच राधा की ओढ़नी सिर पर से उतर गई। दोनों हाथ दही से सने होने के कारण राधा अपनी ओढ़नी का स्पर्श करने से झिझकी। राधा की भावज रम्भा ने दौड़कर उसे ओढ़नी उढ़ा दी। भोजन के अनन्तर कीर्ति ने स्वयं हाथ धोये और राधा के हाथ-पैर धोकर अनुरागवश उसे गोद में उठा[१] लिया।

ज्योतिषी को हाथ दिखाना :—

कीर्ति ने राधा का भविष्य फल जानने की जिज्ञासा से जोगी को बुलवाया। राधा की धाय दौड़कर जोगी को बुला लाई। एक जोगी नित्य-प्रति राधा के दर्शनार्थ आता किन्तु राधा उसके 'अलख-अलख' शब्दों को सुनकर भयभीत हो घर में छिप जातीं। संयोगवश उसी दिन वही जोगी आ गया। धाय जोगी को सादर भीतर ले आई। कीर्ति ने योगी को नमस्कार किया तथा गोद में विठा कर राधा का हाथ दिखाया। योगी ने भविष्यवाणी की "यह कन्या इतनी सौभाग्यवती है कि तेरी ड्यौढ़ी पर सर्वबली देवता भी झुकेंगे।" ऐसा कह कर जोगी अपने मार्ग पर चल दिया।[२]

सखियों सहित जल-क्रीड़ा :—

चाचा वृन्दावनदास के अतिरिक्त अनन्य अली आदि ने भी इस प्रसंग का वर्णन किया है। एक दिन राधा सखियों सहित सरोवर के तट पर खेलने गई। राधा ने चिकनी मिट्टी लेकर खिलौना बनाया। सामूहिक रूप से वे कभी मंगल गान करतीं, कभी वृक्ष में झूला डाल कर झूलतीं और कभी जल में प्रविष्ट होकर क्रीड़ा करतीं। मीन की भाँति तैरती और डुबकी लगाकर एक दूसरे के चुटकी काटतीं। भोजन के समय सब स्नान से निवृत्त होकर अपने-अपने घर चल दीं।[३]

श्रावण में तीज-पूजा :—श्रवण आने पर राधा ने हिंडोला डलवाया। श्रीदामा ने झोंके देकर बहन को झुलाया। तीज के एक दिन पहिले राधा ने

---

[१] **ब्रजप्रेमानंदसागर, पृ० ५०**

[२] **वही पृ० ५९-६१**

[३] **वही पृ० ६३**

अपने हाथों में मेंहदी रची। प्रातःकाल कीर्ति ने स्नान कराकर राधा का श्रृंगार किया। पूजन के उपरांत ललिता आदि सखियों को लेकर राधा भूला भूलने लगी। सब सखियों ने मिल कर पकवान खाया और राधा का फूलों से श्रृंगार किया। राधा कभी अपने ताऊ और चाचा के घर जाकर भूलती और सखियों के साथ क्रीड़ा करती।[१]

राधा का साँझी चित्रण और यशोदा से भेंट :—

लोकोत्सव परक होने के कारण राधा की साँझी-लीला[२] का वर्णन यद्यपि सभी सम्प्रदायों के कवियों ने किया है तथापि राधावल्लभ-सम्प्रदाय के कवियों के साँझी विषयक पद सबसे अधिक संख्या में मिलते हैं। उस युग के साँझी-विषयक पदकारों में गो० रूपलाल, हरिराय, घनानंद, चाचा वृन्दावनदास, नागरीदास, ललितकिशोरी गुणमंजरी, नारायणस्वामी आदि उल्लेखनीय हैं।[३] सांझी उत्सव की लोकप्रियता के कारण उसके लीला-रूप का वर्णन कवियों ते स्वतंत्र दृष्टि से किया है। सामान्यतया साँझी-लीला के निम्न रूप निर्धारित किए जा सकते हैं :—

क–राधा की सखियों सहित साँझी-लीला।

ख–कृष्ण और राधा की साँझी-लीला।

ग–अभिनेयार्थ रचित रासलीला की आनुषंगिक साँझी-लीला।

साँझी के अंतिम दो रूप वस्तुतः कृष्णाश्रित एवं माधुर्यपरक हैं। इनमें राधा-कृष्ण के विलास का चित्रण हुआ है। चाचा वृन्दावनदास ने ब्रजप्रेमानन्दसागर में राधा की साँझी-लीला के अन्तर्गत यशोदा की भेंट की भी वर्णन किया है।[४]

---

[१] ब्रजप्रेमानंदसागर, पृ० ६४-७०

[२] साँझी श्राद्ध पक्ष के उपरान्त ब्रज और राजस्थान का प्रसिद्ध लोकोत्सव है। सांझी रचना के अन्तर्गत ब्रज के प्राकृतिक सौंदर्य एवं कृष्ण की विविध लीलाओं का नाना वर्णों, पुष्पों और गोबर से कलात्मक तथा भाव-व्यंजक आंकन किया जाता है। साँझी मूलतः कुमारियों की कला है। साँझी-चित्रण पूरे अश्विन मास तक चलता है।

[३] श्रृंगाररससागर भाग ३ पृ० ३१९-३६८; हरिराय के पद पृ० १५९-१५९ : घनानंद-ग्रंथावली, पृ० ५६१

[४] ब्रजप्रेमानंदसागर पृ० ८१-८८

प्रथम भेंट :—राधा और उसकी सखियों ने साँझी चित्रण हेतु माता से आज्ञा मांगी। कीर्ति ने सबके हाथ में भूख लगने पर खाने के लिए मेवों से भर कर थैलिया दे दीं। अनेक फूल चुनते समय नंदरानी यशोदा गोपियों सहित उधर से निकलीं। राधा और उसकी सखियों ने उसके मधुर वाद्य और मंगलगान का स्वर सुना। सब सखी मिलकर जिज्ञासावश आगन्तुक गोपियों के समक्ष गईं। यशोदा ने राधा और ललिता से उनका परिचय पूछा। यशोदा राधा के सौंदर्य पर मुग्ध हो गई और उसके मन में कृष्ण से राधा के विवाह की लालसा उद्दीप्त हुई। यशोदा ने स्नेहवश राधा को गोद में बिठाया और उसकी सखियों को प्यार किया। ललिता चतुर थी। वह यशोदा के मन के भाव को समझ गई। उसने यशोदा से बिदा मांगी। चलते समय यशोदा ने ललिता द्वारा कीर्ति से कृष्ण के साथ राधा के विवाह हेतु दिए वचन को पूरा करने का संदेश कहला भेजा।

द्वितीय भेंट :— राधा सखियों सहित फूल बीनती हुई घर वापिस आई। कीर्ति ने केशर और चंदन से धरती लीप रखी थी। राधा ने उस पर रवि, शशि उड़गन सहित ब्रज के प्राकृतिक सौंदर्य की पुष्प-सृष्टि चित्रित की जिसे देखकर ब्रह्मा को सन्देह हुआ कि देवी राधा कहीं एक दूसरी ही सृष्टि की रचना न कर दे। राधा की साँझी देखने हेतु यशोदा भी आईं। उसने कीर्ति को पुनः उसके पूर्व वचनों का स्मरण दिलाया। जब यशोदा और कीर्ति गर्भवती थीं तो एक बार यमुना तट पर उनकी भेंट हुई। उन्होंने परस्पर यह वचन दिया कि यदि बेटा-बेटी हुए तो उनका विवाह करेंगी।

झाँझी क्रीड़ा और दशहरा पूजन :—राधा ने सखियों सहित झाँझी खेलने की योजना बनाई।[१] अपनी सखियों सहित राधा, श्रीदामा, रम्भा (भाभी), महाभान (ताऊ), चम्पा (ताई), समिता (चाची), सुभागा (चाची) आदि का मंगलगान करती हुई उनके पास झांझी-भेंट लेने गईं। सबने राधा को प्यार किया और उसे झाँझी की भेंट दीं। सबसे भेंट लेकर राधा घर वापस आई

---

[१] झाँझी ब्रज की कन्याओं एक खेल है। दशहरे के दिनों में मृत्तिका पात्र में चित्रात्मक छिद्र बनाबर उसके अन्दर प्रज्वलित दीपक रक्खे जाते हैं। सामूहिक रूप में कन्याएँ प्रकाश युक्त मृत्तिका पात्र लेकर घर-घर जाकर पुंगीफल, मेवा, मुद्रा आदि झाँझी की फेंट स्वरूप माँगती हैं। क्वाँर मास की पूर्णिमा को झाँझी सिराई जाती है।

और मदनी गाय का दूध पीकर सो गई। विजयदशमी के दिन राधा ने श्रीदामा का रोली, अक्षत से तिलक किया। राधा ने भाई से बहुत सी गुड़ियाँ ला देने और स्वयं मदनी गाय दुह देने का प्रस्ताव किया। बृषभान ने दशहरे के दिन उत्सव का आयोजन किया। वे ऊँचे सिंहासन पर प्रतिष्ठित हुए, ड्यौढ़ी पर निशान बजने लगे, ग्रामों से उनके पास भेंटे आयीं। क्वाँर की पूर्णिमा आने पर राधा ने सखियों सहित नृत्य और संगीत करते हुए झाँझी सिराई।[१]

राधा का दीप-दान और गोपूजन :— दीपावली का उत्सव आया। कीर्ति ने राधा को दीपावली पूजन की पूरी विधि समझाई। रावल में सभी ने अपने घर लीप-पोत कर सुसज्जित किए। श्रीदामा अन्य गोपों के साथ वृषभान के पास गए और गायों के शृंगार की आज्ञा प्राप्त की। रावल के गोपों ने अत्यन्त उत्साहपूर्वक गायों, बछियों और बछड़ों को अलंकृत किया। गोपों ने 'हीरो'[२] गायन प्रारम्भ किया। कीर्ति ने राधा को बताया कि आज श्रीदामा 'हटरी पूजन' करेगा। रात्रि आगमन पर स्वर्णजटित दीपक पंक्ति बद्ध रूपक में प्रज्ज्वलित किए गए। राधा ने श्रीदामा से चलकर दीप मालिका दिलाने का प्रस्ताव किया। कीर्ति ने महल की छत पर चढ़ कर गोवर्द्धन पर्वत पर विविध वर्णों के प्रकाश्यमान दीपक राधा को दिखाए। छत पर से ही राधा ने पिसाये, अजनौख, खिपिर, उमराई, करहला आदि ग्रामों की दीपावली देखी। तदनन्तर श्रीदामा की गोद में बैठकर राधा ने हटरी पूजन किया। राधा ने सुहागिनों को मिठाई बाँटी।[३] राधा ने जब सब गायें सुसज्जित देखीं तो उसे अपनी गाय के शृंगार का स्मरण आया। उसने 'मदनी' को गले में सुन्दर घंटी पहनाई, सुनहले सींग रंगे, भाल पर मणि-पट्टी बाँधी, छबिया पहिनाई, और मजीठ से चरण रंग कर सुसज्जित किया। गोधन के उपरान्त भैया-द्वीज आई। उस दिन श्रीदामा ने राधा के हाथ से भोजन परसवाया और उसी की 'मदनी' का दूध पिया। भैयाद्वीज की भेंट स्वरूप राधा ने श्रीदामा से मदनी के लिए मोतियों का झूमर और मखतूल माँगा।[४]

---

[१] ब्रजप्रेमानंदसागर, पृ० ८९-९५।

[२] 'हीरो',—दीपमालिका के अवसर पर गाया जाने वाला गोपों का एक गीत होता है

[३] ब्रजप्रेमानंदसागर पृ० ८९-९५

[४] ब्रजप्रेमानंदसागर, पृ० १०१-१०८

राधा का रावल और गोकुल-भ्रमण :—एक दिन राधा ने माता से रावल भ्रमण का प्रस्ताव किया किन्तु माता ने मना कर दिया। इस पर राधा ने कुपित होकर दधि-भाजन तोड़ डाले और दौड़कर वृषभान से सारा वृत्तान्त कहा। वृषभान ने राधा को समझाया। थोड़ी देर के लिए तो राधा मान गई परन्तु जब राधा ने पुनः वृषभान से रावल-दर्शन के लिए हठ किया तो वृषभान, कीर्ति, श्रीदामा और राधा रथ पर बैठकर रावल-भ्रमण को चल दिए। इसी प्रकार एक दिन वृषभान सपरिवार गोकुल भ्रमण के लिए गए। गोकुल में वृषभान ने नंद का भवन देखा। इसके अतिरिक्त उन्होंने शकटासुर, तृणावर्त, व्योम, यमलार्जुन-मोक्ष-स्थल आदि स्थानों को भी देखा और रावल लौट आए।[१]

राधा का चंद खिलौना माँगना :—चाचा वृन्दावनदास ने राधा के चंद-खिलौना माँगने के प्रसंग की अवतारणा कदाचित् कृष्ण के चंद खिलौना के प्रसंग के अनुसारण पर की है। किन्तु चाचा जी ने शिशु मनोविज्ञान की भूमि पर इसे अपेक्षाकृत अधिक विस्तार दिया है। राधा ने कीर्ति की चिबुक पकड़ कर चंद्रमा की ओर संकेत करते हुए उसे धरती पर ले आने का हठ किया। कीर्ति ने समझाया कि चंद्रमा गगन में ही निवास करता है किन्तु राधा नहीं मानी। कीर्ति ने एक पात्र में जल भर कर राधा को चन्द्रमा का प्रतिबिंब दिखाया। राधा अतीव प्रसन्न हुई। चन्द्रमा के भागने के भय से वह रात में उस पात्र को ढक कर सो गई। प्रातःकाल राधा ने ने पात्र खोला और देखा कि चन्द्रमा भाग गया। अतएव उसने सायंकाल पुनः चन्द्रमा के आगमन पर उसे संभाल कर रखने का निश्चय किया जिससे वह फिर न भाग सके।[२]

वृषभान का रावल से बरसाने जाना :—एक दिन वृषभान ने रावल से बरसाने जाने की योजना बनाई और सपरिवार बरसाने चल पड़े। मार्ग में राधा को कुंडा में अपने माना इंदुसेन के यहाँ रहना पड़ा। वहाँ राधा ने कीर्ति के साथ गिरिराज गोवर्द्धन की पूजा की। तदनंतर वृषभान ने अपने श्वसुर से विदा लेकर बरसाने की ओर प्रयाण किया। बरसाने में वृषभान का भव्य स्वागत हुआ।

---

[१] ब्रजप्रेमानदसागर पृ० १०८-११४

[२] वही पृ० ११७

राधा का अवधूत से भयभीत होकर भागना :—एक दिन राधा ललिता आदि सखियों सहित यमुना-तट पर खेलने गई। वे यमुना जल में मीन और कछुओं से क्रीड़ा करने लगीं। कुछ देर में वे भाव-विभोर होकर नृत्य करने लगीं। इतने में उधर से एक अवधूत भिक्षा माँगता हुआ आया। वह हाथ फैलाकर भिक्षा माँगता हुआ राधा की परिक्रमा करने लगा। कुछ देर उपरान्त अवधूत धरती पर लौटने लगा। अवधूत की यह क्रीड़ा देख कर सब सखियाँ राधा को आगेकर भयभीत होकर भाग गईं। घर पहुँचने पर कीर्ति ने सबके श्रमकण पोंछते हुए उससे डरने का कारण पूछा। राधा ने अवधूत का समस्त विवरण कीर्ति से कह सुनाया। कीर्ति ने राधा को समझाया कि तुम्हें अवधूत से नहीं डरना चाहिए। तेरे गले में पड़ा हुआ गंडा उन्हीं ने दिया था। वे समस्त मनोकामनाओं पूर्ति की करने वाले हैं।

राधा का कौओं से डरना :—कीर्ति ने राधा के हाथ में लड्डू दिया। वह लड्डू खाती हुई सखियों सहित आँगन में क्रीड़ा करने लगीं। इतने में एक कौआ आया और राधा के हाथ से लड्डू लेकर उड़ गया। राधा डर कर भागी। उधर से कीर्ति हँसती हुई आई और कौए को भला-बुरा कहने लगी। कीर्ति ने राधा का 'राई-लोन, उतारा, जिससे उसके नज़र न लगने पाये।

राधा का आँख-मिचौनी खेलना :—चाचा वृन्दावनदास, अनन्यअली, आदि कवियों ने इस प्रसंग का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। ललिता, चन्द्र-लेखा, विशाखा, इन्दुलेखा सब बारी-बारी से आँख मूंद कर एक दूसरे को खोजने निकालतीं। आँखें बन्द करते समय यदि कोई सखी देख लेती तों सब सखियाँ उसके कोड़े लगातीं। कभी कोई बालक उन्हें गुप्त सखियों का रहस्य बता देता। एक बार ललिता किसी के घर में छिपकर बैठ गई और किवाड़े बन्द कर लिए। राधा ने उसे निकालने की बड़ी युक्ति की। ललिता किवाड़े खोल कर भागी किन्तु राधा ने उसे पकड़ लिया। खेल समाप्त होने पर सब सखियाँ अपने-अपने घर चल दीं।[१]

---

[१] ब्रजप्रेमानन्दसागर. पृ० १२६

[२] ब्रजप्रेमानन्दसागर, पृ० १२६-१३८

ग—वृन्दावन-लीला

अलौकिक लीलाएँ :—

कृष्ण की वृन्दवन-लीलाओं को सभी कृष्णभक्त सम्प्रदायों ने मान्यता प्रदान की है। सम्दाय-मुक्त कवियों ने भी अधिकतर माधुर्यपरक वृन्दावन लीलाओं का ही वर्णन किया है। किन्तु इस युग में वृन्दावन की अलौकिक कृष्ण-लीलाओं को भागवत के अनुवादों और ब्रजविलास में ही स्थान मिल सका है। इसमें अलौकिक लीलाओं की परम्परागत वस्तु की ही अभिव्यक्ति हुई है, जो मुख्य रूप से भागवत और सूरसागर से प्रभावित है। 'ब्रजविलास' में इन दोनों स्रोतों का सम्मिलित आधार लिया गया है।

भागवत के अनुसार कृष्ण का गोकुल से वृन्दावन गमन असुरों के उत्पात से पीड़ित होने पर उपनंद के परामर्श से हुआ।[1] भागवत के अनुवादों में भागवत की ही कथा का अनुसरण हुआ है। यह ज्ञातव्य है कि वृन्दावन-लीलाओं का चित्रण करते हुए भी अधिकांश कवियों ने वृदावन-गमन का कारण निर्दिष्ट नहीं किया है।केवल ब्रजवासीदास के 'ब्रजविलास' में सूरसागर के आधार पर इस घटना का वर्णन मिलता[2] है। अपने पुत्र की रक्षा के उद्देश्य से नंद और यशोदा वृन्दावन प्रस्थान करते हैं। वहाँ पहुँचने पर गोकुल वासियों को अद्भुत आनन्द प्राप्त हुआ। वृन्दावन में कृष्ण ग्वाल सखाओं सहित गोचारण हेतु जाने लगे किन्तु वहाँ वे सुरक्षित नहीं रह सके। असुरों का प्रकोप उत्तरोत्तर बढ़ता गया। कृष्ण ने अपने लीलात्मक व्यक्तित्व के अनुरूप ब्रजवासियों की रक्षा हेतु अनेक असुरों का वध किया तथा विविध आह्लादकारी क्रीड़ाओं द्वारा वृदावनवासियों को अनुरंजित किया।

गोकुल और वन्दावन की अलौकिक लीलाओं की प्रकृति में अंतर :—

कृष्ण की गोकुल और वृन्दावन की अलौकिक लीलाओं के अन्तर्गत कृष्ण के वयानुसार शक्ति विकास एवं तदनुरूप असुरों के संहार में अद्भुत संतुलन मिलता है। गोकुल में कृष्ण-वध हेतु प्रेषित कंस के सभी छद्मवेशी अनुचर ऐसे हैं, जिनका एक शिशु द्वारा वध संभव है। गोकुल के कृष्ण के व्यक्तित्व

[1] भागवत, ११, २०

[2] ब्रजविलास पृ० ८९

में अलौकिकता का तत्व मुखरतर है। वृन्दावन में वधित होने वाले असुर अपेक्षाकृत अधिक शक्तिवान हैं। गोकुल में असुरों का वध कृष्ण अकेले ही करते हैं किन्तु वृन्दावन में बलराम और कृष्ण के गोप-सखा भी उनकी सहायता करते हैं। गोकुल में प्रत्येक असुर के वध पर नंद, यशोदा और ब्रजवासियों के अन्तःकरण में विस्मय का भाव उद्दीप्त होता है। जब कि वृंदावन की अलौकिक लीलाओं में नंद, यशोदा और व्रजवासियों को उत्तरोत्तर कृष्ण की शक्ति पर विश्वास होने लगता है। गोकुल-लीलाओं की वात्सल्य धारा, वृन्दावन लीलाओं के अन्तर्गत सख्य से परिपुष्ट होकर माधुर्योन्मुखी होती है, जिसका पूर्ण परिपाक वृन्दावन की लौलिक लालाओं की भूमि पर होता है।

वत्सासुर और वकासुर-वध :—

भागवत में वत्सासुर और वकासुर-वध की लीलाएँ एक साथ वर्णित हुई हैं।[1] भागवत के अनुवादों में इनका यही क्रम रहा है। व्रजविलास में इन्हें सूरसागर के अनुकरण पर गोचारण की भूमिका प्राप्त हुई है। तथा दोनों ही कंस से संबद्ध दिखाए गए हैं :—

'वह तो असुर वत्स ह्वै आयौ। हमको मारन कंस पठायौ।'[2]

व्रजवासीदास ने सूरसागर में प्राप्त भागवत के कुछ परिवर्तनों की उपेक्षा भी की है। यहाँ सूरसागर के समान बलराम पृथक्-पृथक् वत्सासुर का वध नहीं करते, केवल कृष्ण ही उसके दोनों पैर पकड़ घुमाते हैं और धरती पर पटक कर समाप्त कर देते हैं। व्रजविलास में वकासुर-वध की कथा सूरसागर के तीन पदों पर आधारित है।[3]

अघासुर-वध :—

भागवत में अघासुर को कंस द्वारा प्रेषित बताया गया है; इसके अतिरिक्त पूतना और बकासुर से भी उसके सम्बन्ध का संकेत हुआ है :—

दृष्ट्वार्भकान् कृष्णमुखानघासुरः
कंसानुशिष्टः स वकीबकानुजः ।।[4]

---

[1] भागवत १०, ११

[2] ब्रजविलास पृ० ४६

[3] सूरसागर १० पद १०४५-१०४८, व्रजविलास पृ० १००

[4] भागवत १० : १२ : १४

ब्रजविलास में सूरसागर के आधार पर अघासुर के उक्त सम्बन्धों का उल्लेख नहीं हुआ है। 'तहाँ अघासुर वन में आयौ। कंसराज करि कोप पठायौ ॥'[१] ब्रजवासीदास ने सूरसागर की केवल घटनात्मक वस्तु का ही आधार लिया है तथा गोचारण में ग्वाल-सखाओं के पारस्परिक वार्तालाप, क्रीड़ारत उल्लास और छाक के प्रसंग की उपेक्षा की है। यहाँ अघासुर वध के उपरान्त कृष्ण के ग्वाल-सखा यशोदा से सम्पूर्ण घटना का कथन नहीं करते और न ब्रज की सुन्दरियाँ ही कृष्ण के दर्शन हेतु आती हैं।

विधि मोह और कृष्ण की सृष्टि-रचना :—

इस प्रसंग में कृष्ण के अलौकिक व्यक्तित्व का असुर संहारक लीलाओं की अपेक्षा अधिक उत्कर्ष दिखाई पड़ता है। वस्तुतः ब्रह्मा से विष्णु की श्रेष्ठता का प्रतिपादन इस लीला का उद्देश्य है। भागवत के अनुवादों में विधि-मोह प्रसंग मूल के अनुरूप ही वर्णित हुआ है। ब्रजवासीदास ने भागवत की कथा में सूर द्वारा किए परिवर्तनों को सुरक्षित रखा है।[२] किन्तु ब्रह्मा की वृन्दावन आसक्ति का जो वर्णन सूरसागर में हुआ है वह ब्रजविलास में नहीं मिलता। सूरसासर में ब्रह्म-वत्सहरण 'लीला' का दो बार स्वतन्त्र तथा अनेक पदों में संश्लिष्ट रूप प्रस्तुत हुआ है किन्तु ब्रजविलास में ऐसी पुनरावृत्ति नहीं मिलती। वस्तुतः ब्रजवासीदास ने सूरसागर के विविध मोह प्रसंग की विविधता की उपेक्षा कर केवल तद्विषयक वर्णनात्मक अंश का ही आधार लिया है। ब्रजविलास में इस लीला के अन्य प्रसंग ब्रह्मा का गोप और गायों का हरण, कृष्ण द्वारा गोपों और गायों की पूर्ववत् नवीन सृष्टि, ब्रह्मा का वृन्दावन दर्शन, आदि का सूरसागर के ही अनुरूप वर्णन हुआ है।

धेनुकासुर-वध :—

भागवत के अनुसार यह लीला प्रत्यक्षतः कृष्णपरक न होकर बलराम के पराक्रम की द्योतक है। बलराम ही धेनुक-वध करते हैं।[३] भागवत के अनुवादों में धेनुक-वध का यही रूप है। ब्रजवासीदास ने सूरसागर की धेनुक-वध-लीला का आधार लेते हुए भी इसका भागवत के आधार पर विस्तार किया है। ब्रजविलास में धेनुक-वध और कालिय नाग से बचाने की घटनाएँ एक ही क्रम में वर्णित हुई हैं।

---

[१] ब्रजविलास पृ० ११४

[२] सूरसागर १० पद १०५४-१०५६, ब्रजविलास पृ० ११७-१२३

[३] भागवत १०, १५ : २७-३४

कालिय-दमन :—भागवत के अनुवादों में कालिय-दमन लीला में भागवत से भिन्न कोई नवीन उद्भावना नहीं मिलती। सूरसागर में कालीय-दमन की कथा दो बार वर्णित हुई है। ब्रजवासीदास ने इस प्रसंग के वर्णन में सूरसागर की द्वितीय कालीय-दमन लीला जो एक विस्तृत पद के अन्तर्गत वर्णित हुई है, का आधार लिया है।[1]

प्रलम्बासुर-वध :—भागवत में प्रलम्बासुर एक छद्मवेशधारी गोप है जो कृष्ण की ग्वाल-मण्डली में आकर मिल जाता है। भागवत के अनुवादों में भागवत के अनुरूप प्रलम्वासुर के 'रूप-परिवर्तन' का उल्लेख नहीं मिलता। ब्रजविलास में वर्णित प्रलम्बासुर-वध में सूरसागर की घटनात्मकता का आधार लिया गया है तथा प्रलम्बासुर-वध के पूर्व कृष्ण की ग्वाल-मण्डली की सामूहिक क्रीड़ा की भूमिका भी चित्रित की गई है[2]। प्रलम्बासुर क्रीड़ारणत ग्वालों के मध्य आकर दैत्य-रूप धारण कर लेता है। किन्तु बलराम क्रोधित होकर मुष्टक प्रहार से उसे समाप्त कर देते हैं।

दावानल पान लीला :—भागवत में कृष्ण की दावानल पान लीला दो बार वर्णित हुई है। प्रथम तो कालीय-दमन के उपरान्त और द्वितीय स्वतन्त्र रूप से। भागवत के अनुवादों में ये दोनों ही प्रसंग मिलते हैं। ब्रजवासीदास ने सूर के समान दावानल को कंस द्वारा प्रेषित बताया है। दावानल के मध्य और उपरान्त कृष्ण की तृनावर्त, केशी, शकट, पूतना, बकासुर, अघासुर, कालीय आदि असुरों के संहार की लीलाओं का ब्रजवासियों की भावुकता के संदर्भ में संकेत हुआ है। ब्रजवासियों के आर्त स्वर को सुनकर कृष्ण उनसे नेत्र मूँदने के लिए कहते हैं तथा वे 'मुट्ठी भर लियो सब नाय मुख दियो' के अनुसार मुष्ठिका में भर कर दावानल का पान कर जाते हैं; किन्तु ब्रजविलास में ऐसा उल्लेख नहीं हुआ है।[3]

गोवर्धन-धारण :—वृन्दावन अलौकिक लीलाओं के अन्तर्गत गोवर्धन-धारण का प्रसंगइंद्र की स्पर्धा में विष्णु की श्रेष्ठता का व्यंजक है। सभी कृष्णभक्ति सम्प्रदायों में गोवर्धन का महात्म्य स्वीकार किया गया है। ब्रजलोक जीवन

---

[1] सूरसागर १०, पद ११९७ : ब्रजविलास पृ० १३४-१३६

[2] वही १०, पद १२०७ : वही पृ० १३१-१५६

[3] वही १०, पद १२२२ : वही पृ० १६०-१६१

में भी गोवर्धनपूजा की अत्यन्त प्राचीन परम्परा है। अन्नकूट के अवसर पर ब्रजावासी उल्लासपूर्वक विधिवत गिरिराज की पूजा करते हैं। विवेच्ययुगीन कृष्ण-काव्य में गोवर्धन-लीला का प्रसंग तीन रूपों में वर्णित हुआ है :—

१—भागवत पर आधारित गोवर्धन-लीला
२—सूरसागर पर आधारित गोवर्धन-लीला
३—अन्नकूट उत्सव से सम्बन्धित पदों में वर्णित गोवर्धन-लीला।

भागवत की गोवर्धन-लीला की समस्त घटनाएँ भागवत के अनुवादों में ही सुरक्षित रह सकती हैं। इसके अतिरिक्त हरिराय के पदों पर भागवत की गोवर्धन-लीला विषयक वस्तु का प्रभाव मिलता है। उनके गवोर्धन-लीला से सम्बन्धित तीन पद प्राप्त हैं किन्तु गोवर्धन-लीला की घटनात्मकता का चित्रण केवल एक ही पद में हुआ है।[१] इन्द्र-पूजा के अवसर पर कृष्ण नंद से इसका कारण पूछते हैं। नंद के उत्तर पर कृष्ण उन्हें गोवर्धन पूजा का उपदेश देते हैं। व्रजवासी कृष्ण की आज्ञानुसार गोवर्धन की पूजा में प्रवृत्त होते हैं। इस पर इन्द्र कुपित होकर मेघों को आज्ञा देकर ब्रज पर सात दिन तक घोर वर्षा कराते हैं। किन्तु कृष्ण के प्रताप से सारे मेघ उड़ जाते हैं और सूर्य निकल आता है। अंत में इन्द्र कामधेनु सहित कृष्ण के समक्ष उपस्थित होकर क्षमा याचना करते हैं।

सूरसागर की गोवर्धन लीला का प्रभाव केवल ब्रजविलास पर लक्षित होता है। किन्तु ब्रजवासीदास ने सूरसागर का आधार लेते हुए भी इस विषय में कतिपय मौलिक उद्भावनाएँ की हैं। ब्रजविलास में 'कार्तिक सुदी परेवा' का गोवर्धन की पूजा की तिथि रूप में उल्लेख हुआ है, जब कि सूरसागार में इसका अभाव है। सूरसागर में गोवर्धन पूजा और गोवर्धनधारण-लीला का तीन बार वर्णन हुआ है किन्तु व्रजवासीदास ने सम्पूर्ण लीला की धारावाहिकता की रक्षा करते हुए केवल घटनात्मक स्थलों का संचयन किया है। गोवर्धन-पूजा का उल्लास घटनाओं के ही क्रम में वर्णित हुआ है। ब्रजवासीदास ने सूरसागर की तीनों गोवर्धन-लीलाओं में से द्वितीय गोवर्धन-लीला की वस्तु का अपेक्षाकृत अधिक आधार लिया है[२]।

---

[१] हरिराय के पद १११, ११२, ११३
[२] सूरसागर १०, पद १५०२-१५६२, ब्रजविलास पृ० १९६-२१६

गोवर्धन-लीला का प्रसंग सबसे अधिक गोवर्धनोत्सव विषयक पदों के अन्तर्गत वर्णित हुआ है। इस प्रकार के पदों में हरिराय, वृन्दवनदेव, घनानंद आदि के पद विशेष महत्व के हैं।[१] उत्सवपरक होने के कारण इन पदों में गोवर्धन-पूजा एवं तत्सम्बन्धी उल्लास का ही वर्णन प्रधान रूप से हुआ है तथा घटनात्मकता का अभाव मिलता है। कुछ पदों में पूजा-विधि एवं घटनात्मकता का युगपद विन्यास हुआ है। इसके अतिरिक्त पदों का एक वर्ग ऐसा भी है जिसके अन्तर्गत गोवर्धन लीला की संपूर्ण घटना के किसी अंश विशेष का ही चित्रण हुआ है। इन पदों में भागवत अथवा किसी अन्य स्रोत की गोवर्धन-लीला की कथा का प्रत्यक्ष अनुकरण नहीं मिलता।

वरुण गृह से नंद का उद्धार तथा गोपों का बैकुण्ठ-दर्शन :—

कृष्णलीला का यह प्रसंग उनके परमेश्वर रूप को उद्घाटित करता है। भागवत में वरुणगृह से नंद के उद्धार की घटना एकादशी व्रत से सम्बद्ध है। नंद जलाशय में स्नानार्थ प्रविष्ट होते हैं। वहाँ वरुण का एक असुर पकड़ कर उन्हें वरुण-लोक ले जाता है। बलराम के निवेदन पर कृष्ण वरुणलोक जाते हैं। वरुण कृष्ण को भगवान जान कर उनकी उपासना करते हैं। इसके अनन्तर कृष्ण और नंद ब्रज लौट आते हैं। ब्रज में गोपों की प्रार्थना पर कृष्ण उन्हें जलाशय में प्रवेश कराकर बैकुंठ दर्शन कराते हैं। भागवत के अनुवादों में तो इस कथा का यही रूप है, किन्तु ब्रजविलास में सूरसागर की कथा का आधार लेते हुए भी ब्रजवासीदास ने इन घटना को स्वतन्त्र रूप से विस्तार दिया है। सूरसागर में गोपों द्वारा बैकुंठ दर्शन की घटना का अभाव है।[२] भागवत में भी इसका संकेत मात्र हुआ है, किन्तु ब्रजविलास में कृष्ण गोपों को दिव्य दृष्टि प्रदान कर बैकुंठ दर्शन कराते हैं, जब कि भागवत में जलाशय में भगवान अपने परमेश्वर रूप के माध्यम से बैकुंठ दर्शन देते हैं। इसके अतिरिक्त बैकुंठ की दिव्यता, कृष्ण की सर्वोपरिता एवं गोपों की दृष्टि के यथावत परिवर्तित करने का वर्णन भी स्वतन्त्र रूप से किया गया है।

---

[१] घनानंद-ग्रंथावली, हरिराय का पद साहित्य, पद सं० १११-११३, गीतामृत गंगा पृ० ८६ पद ५३, ५४, ५५

[२] सूरसागर १०, पद १६०२, ब्रजविलास पृ० २१७-२२१

विद्याधर शाप मोचन, शंखचूड़, वृषभासुर, केशी और व्योमासुरवध :—

भागवत में कृष्ण द्वारा इन असुरों के वध की कथाएँ रासलीला के उपरांत वर्णित हुई हैं। भागवत के अनुवादों में ये प्रसंग भागवत से प्रभावित रहे हैं तथा व्रजविलास में भी इनकी कथा सूरसागर की अपेक्षा भागवत के अधिक समीप है। भागवत और सूरसागर की तुलना में ब्रजविलास में वर्णित इन लीलाओं का स्वरूप इस प्रकार है :—

१–विद्याधर शाप मोचन की घटना के पूर्व ब्रजवासीदास ने कृष्ण के पर-ब्रह्मत्व एवं पूर्व घटित लीलाओं की भूमिका प्रस्तुत की है, तथा सूरसागर के एक पद के अंतर्गत वर्णित सांकेतिक घटनाओं को भागवत के आधार पर विस्तार दिया है।[१]

२–सूर ने शंखचूड़-वध का प्रसंग केवल एक ही पद में वर्णित किया है, किन्तु ब्रजवासीदास ने भागवत के आधार पर विस्तृत किया है।[२]

३–भागवत में वृषभासुर के लिए अरिष्टासर, कहा गया है। ब्रजवासी-दास ने इसे भागवत का नाम देते हुए कंस से सम्बद्ध कर दिया है। 'जब अरिष्ट मार्यो गिरधारी। भयो कंस सुनि बहुत दुखारी।'' ब्रजविलास के वृषभासुर-वध वर्णन में सूरसागर की सांकेतिकता को विस्तार मिला है।[३]

४–सूरसागर में केशी-वध का प्रसंग कंस की सभा से प्रारम्भ होता है। ब्रजवासीदास ने भागवत के अनुसार वृषभासुर-वध के अंत में केशी-वध की भूमिका नारद द्वारा कंस को दिए गये परामर्श के रूप में वर्णित की है। नारद, कंस से कृष्ण और बलराम के वसुदेव-पुत्र होने की शंका का कथन करते हैं। तदनंनर कंस असुरों की सभा कर के केशी को कंस-वध हेतु प्रेषित करता है।[४]

५–व्योमासुर-वध का प्रसंग सूरसागर में केवल एक ही पद में वर्णित हुआ है। ब्रजवासीदास ने व्योमासुर को स्पष्टतया कंस से सम्बद्ध कर दिया है तथा सम्पूर्ण प्रसंग का वर्णन भागवत के अनुरूप किया है। यहाँ व्योमासुर-

---

[१] भागवत १०।३४।१-२४, सूरसागर १०, पद १८०२, ब्रजविलास, पृ० ४१४-४१६

[२] वही १०।३४।२५-३२, ब्रजविलास, पृ० ४१७-१४८

[३] वही १०।३६। १-१५, वही, पृ० ४१८-४२१

[४] वही १०।३७। १-९, वही पृ० ४२१-४२३

वध के उपरांत कृष्ण नारद को मथुरा बुलाए जाने की योजना को कार्यान्वित करने का आदेश देते हैं।[१]

लौकिक लीलाएँ—कृष्ण की वृन्दावन लौकिक लीलाओं का विस्तार सख्य और माधुर्य भावों की भूमिका में हुआ है। सख्य भावपरक लीलाएँ गोप सखाओं के साथ सम्पन्न होती हैं। माधुर्य लीलाओं के अन्तर्गत गोपियों, विशेषकर राधा का व्यक्तित्व कृष्ण के समानान्तर विकसित हुआ है। माधुर्योपासना प्रधान होने के कारण वल्लभ सम्प्रदायेतर कृष्णभक्ति-सम्प्रदायों के काव्य में सख्यभावमूलक वृन्दावन लौकिक लीलाओं की अपेक्षा माधुर्यपरक लीलाओं को प्रधानता मिली है। सम्प्रदाय-मुक्त काव्य में इन दोनों ही भावों की पोषक लीलाओं की प्रख्यात वस्तु को ही मुक्तकों के अन्तर्गत संगुम्फित करने का यत्न मिलता है। अतएव इतिवृत्तात्मकता एवं नवीन उद्भावनाओं के अभाव के कारण इनमें कोई नवीनता नहीं मिलती फिर भी इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इस युग के कवियों की वस्तुगत सृजनात्मक प्रतिभा का सर्वाधिक विकास वृन्दावन की लौकिक लीलाओं के ही अन्तर्गत देखा जा सकता है।

गोचारण और छाक—कृष्ण की असुर संहारक एवं सख्य भाव की व्यंजक वृन्दावन-लीलाओं के अन्तर्गत गोचारण के प्रसंग की अवतारणा विविध रूपों में हुई है। कृष्ण और गोपों के सामूहिक गोचारण का वर्णन ब्रजविलास, ब्रजप्रेमानंदसागर, भागवत के अनुवादों तथा हरिराय, वृन्दावनदेव, नागरीदास, आदि के स्फुट पदों में अनेक रूपों में हुआ है। भागवत के अनुवादों में भागवत तथा ब्रजविलास में सूरसागर से भिन्न कोई नवीन उद्भावना नहीं मिलती। किन्तु चाचा वृन्दाववदास ने इस प्रसंग को स्वतंत्र रूप से रोचक विस्तार दिया है। स्फुट पदों में गोचारण की किसी घटना विशेष को संजोने की प्रवृत्ति विशेष रूप से पल्लवित हुई है। सामान्य रूप से गोचारण के अन्तर्गत तीन बातों का वर्णन हुआ है।

१—कृष्ण का गायों के प्रति अनुराग, गोचारण हेतु यशोदा का उन्हें बलराम और अन्य गोपों के साथ भेजना तथा धीरे-धीरे कृष्ण का गोचारण में पारंगत होना।

२—गोचारण के मध्य गोपों की गेंद, आँख मिचौनी, आदि क्रीड़ाएँ, असुरों का संहार, भटकी हुई गायों को खोज निकालना तथा गायों का नाम लेकर उन्हें पुकारना।

---

[१] भागवत १०।३७। २४-२५ ब्रजविलास, पृ० ४२३-४२४

३–संध्या होने पर वन से विविध क्रीड़ाएँ करते हुए वापस आना तथा यशोदा की अन्य गोपियों सहित कृष्ण के आगमन की प्रतीक्षा करना।

गोस्वामी हरिराय के पदों और चाचा वृन्दावनदास कृत ब्रजप्रेमानंदसागर में गोचारण के मध्य यशोदा के छाक भेजने का अत्यन्त रोचक वर्णन हुआ है। कृष्ण के सखाओं में मधुमंगल, मनसुख और सुबाहु गोचारण में विशेष योग देते हैं। प्रतिदिन वे गोचारण के पूर्व ग्रामों का निश्चय करते हैं। छाक आने में विलम्ब होने पर ग्वाल-सखा परस्पर हास-परिहास करते हुए मानसी गंगा में स्नान करते हैं तथा भोजन रखने हेतु कमल-पत्र तोड़ लेते हैं। एक दिन गोवर्धन के शिखर पर बैठे हुए कृष्ण मधुमंगल, मनसुख और सुबाहु छाक की प्रतीक्षा करते हैं। परिहासवश समय व्यतीय करने के उद्देश्य से सुबाहु के संकेत पर मधुमंगल कृष्ण की मुरली चुरा लेता है। छाक वितरित होने पर वे कभी लड़ते और समान भाग लेकर ही संतुष्ट होते[1]। छाक आने में विलम्ब होने पर हरिराय के कृष्ण और गोप भी परस्पर परिहास करते हैं, गोपी कहीं प्रेमोन्मत होकर वन में भटक तो नहीं गई[2]।' यशोदा की भेजी हुई एक कृष्णासक्त गोपी विलम्ब से छाक लेकर आती है। कृष्ण उससे विलम्ब का कारण पूछते हैं। वह उत्तर देती है "मैं राह भटक गई थी। तुम्हारी मुरली की ध्वनि से खिचे हुए मृगछौने ने मुझे यहाँ तक पहुँचाया है। तुम्हारे चरण-चिह्नों को देखकर मेरे श्रम का अनायास ही परिहार हो गया"[3]। किसी दिन गोपी छाक लेकर कुछ पहले आ जाती है किन्तु कृष्ण गोपों सहित गोचारण क्रीड़ा में ही मग्न रहते हैं। एक दिन यशोदा छाक लाने वाली गोपी से दूर न और जाकर निकट ही गायें चराने को कहला भेजती हैं।

कात्यायनि व्रत और चीरहरण :—यह प्रसंग भागवत के अनुवादों के अतिरिक्त ब्रजवासीदास कृत ब्रजविलास, नारायणस्वामी कृत 'ब्रजविहार' तथा वृन्दावनदेव, भारतेन्दु आदि के स्फुट पदों के अन्तर्गत वर्णित हुआ है। ब्रजविलास में सूरसागर में वर्णित प्रथम और द्वितीय चीरहरण-लीलाओं की वस्तु का सम्मिलित आधार लिया गया है।[4] स्फुट पदों में चीरहरण-लीला

---

1 ब्रजप्रेमानंदसागर पृ० १३८-१८२

2 हरिराय का पद साहित्य, पद सं० ५८

3 वही सं० ५९

4 सूरसागर १०, ७६५-७९९, ब्रजविलास पृ० १७४-१८३

का रूप संवादात्मक है तथा तत्सम्बन्धी प्रख्यात कथा का ही अनुकरण हुआ है।[१] स्फुट पदों एवं मुक्तकों में भी कोई वस्तुगत नवीन उद्भावना नहीं मिलती।

ब्राह्मण-पत्नियों से भोजन याचना :—भागवत में यह प्रसंग गोचारण की भूमिका में वर्णित हुआ है तथा भगवान के अनुग्रह की संवेदना पर अवस्थित है। भागवत के अनुवादों के अतिरिक्त यह ब्रजविलास में सूरसागर से रूपान्तरित हुआ है। सूरसागर में यह प्रसंग दो खण्डों में वर्णित हुआ है 'द्विजपत्नी लीला' और 'द्विजपत्नी वचन'। यज्ञपत्नी-लीला में भागवत की कथावस्तु का अनुवाद मात्र हुआ हैं तथा यज्ञपत्नी वचन में कृष्ण से न मिल सकने वाली एक कृष्णासक्त गोपी का विरह विदग्ध रूप वर्णित हुआ है। ब्रजवासीदास ने इन दोनों वर्णनों को परस्पर अन्तर्भुक्त कर दिया है।[२]

राधा और कृष्ण का प्रथम मिलन :—इस प्रसंग को 'ब्रजविलास' में सूरसागर के आधार पर तथा ब्रजप्रेमानंदसागर में स्वतंत्र रूप से विस्तार मिला है। ब्रजवासीदास ने सूरसागर के आधार पर राधा-कृष्ण की प्रथम भेंट चकई-भौंरा खेलने की भूमिका में वर्णित की है। कृष्ण का राधा से नाम और ग्राम पूछना, बिछुड़ते समय वस्त्र परिवर्तन, देर से पहुँचने पर राधा का कीर्ति से एक सखी को साँप के काटने का बहाना करना, राधा का यशोदा के घर जाना, अनुरागवश यशोदा द्वारा राधा का विधिवत् श्रृंगार आदि घटनाएँ पूर्णतया सूरसागर के ही आधार पर वर्णित हुई हैं[३]। सूर ने गीतगोविन्द के 'मेघैर्मेदुरमम्बरं...' वाले पद का अनुवाद 'गगन गहराई जुरी घटा कारी' से प्रारम्भ होने वाले पद के अन्तर्गत किया है किन्तु ब्रजवासीदास ने गीतगोविन्द के इस श्लोक को यथावत् उद्धृत कर दिया है।

राधावल्लभीय कवियों की दृष्टि :—राधावल्लभीय कवियों ने राधा कृष्ण का प्रथम मिलन राधा-जन्म-बधाई के पदों के अन्तर्गत राधा-जन्म के ही अवसर पर दिखाया है। यशोदा शिशु कृष्ण को लेकर राधा-जन्म पर कीर्ति को बधाई देने हेतु आती हैं। कृष्ण और राधा का यह मिलन प्रकारा-

---

[१] गीतामृत गंगा पृ० १२ पद ३७, प्रेममालिका पद ६२, ब्रजविहार पृ० २२० पद २

[२] सूरसागर १० : पद १४१८-१४२६, ब्रजविलास पृ० १८९-१९६

[३] वही १० : पद १३०२, वही पृ० १०७

न्तर से उनके चिरन्तन एकत्व का प्रतीक है किन्तु लौकिक दृष्टि से इसे अचेतन मिलन ही कहा जायेगा।

चाचा वृन्दावनदास की मौलिकता :— चाचा वृन्दावनदास ने राधा-वल्लभीय भावधारा के अनुरूप बधाई के पदों के अन्तर्गत राधा-कृष्ण का प्रथम मिलन गोचारण के ही अवसर पर दिखाया है जो अत्यन्त रोचक है।[१] गोचारण में अन्य गोपजन वट वृक्ष की छाया में विश्राम करने लगते हैं। संयोगवश राधा अपनी सखियों सहित उधर से फूल बीनने निकलती हैं। कृष्ण सुबाहु के साथ चुपके से सुन्दरी राधा और उनकी सखियों के दर्शनार्थ कुञ्जों की ओट में चले जाते हैं। राधा के रूप सौंदर्य को देख कर कृष्ण का उसके प्रति हृदयस्थ आसक्ति भाव उनके मुख पर प्रतिबिम्बित होने लगता है। सुबाहु, कृष्ण से इस उद्विग्नता का कारण पूछता है तथा व्यंग्य करते हुए कहता है कि आज प्रथम बार ही गोचारण में तुमने यह कौतुक कर दिखाया। कृष्ण प्रेम विह्वल होकर सुबाहु से उन्हें बरसाने ले चलने का निवेदन करते हैं तथा राधा का नाम और धाम पूछते हैं। सुबाहु कृष्ण को 'भंगरौला' की उपाधि देकर उन पर व्यंग्य करता है। प्रेमोन्मत्त कृष्ण सरोवर में स्नान कर गोवर्धन से राधा की पत्नी रूप में प्राप्ति की कामना करते हैं। कृष्ण के निवेदन पर सुबाहु उन्हें राधा के पिता वृषभान के ऐश्वर्य और बरसाने के सौन्दर्य का कथन करता हुआ राधा का नाम और धाम बता देता है। राधा और कृष्ण के प्रथम मिलन के इस वर्णन में कृष्ण के राधा के प्रति गम्भीर अनुराग एवं आकर्षण की व्यंजना का भाव प्रधान है।

राधा और कृष्ण की छद्म लीलाएँ :—इस युग में राधा-कृष्ण की छद्म लीलाओं की रचना प्रचुर संख्या में हुई। गो० रूपलाल, चाचा वृन्दावनदास नारायणस्वामी भारतेन्दु आदि के द्वारा रचित राधा-कृष्ण के मिलन की अनेक छद्मलीलाएँ मिलती हैं। छद्मलीलाओं की भावभूमि सर्वथा लौकिक है। इनका कोई पौराणिक आधार नहीं मिलता। इन लीलाओं में कृष्ण विविध छद्मवेश धारण करके राधा से मिलने जाते हैं किन्तु इसका रहस्योद्घाटन हो जाता है। इस युग में छद्मलीलाओं की लोकप्रियता इतनी बढ़ गई कि राधा-कृष्ण की सर्वोत्कृष्ट माधुर्य लीला रासलीला के अन्तर्गत भी इनका समावेश हो गया। रासलीला के साथ ही कृष्ण की छद्मलीलाएँ भी

---

१ ब्रजप्रेमानंदसागर पृ० १५४-१६१

अभिनीत की जाने लगीं। वाक्चातुर्य, छद्मवेश धारण एवं अभिनयगत कौतूहल का सम्मिलित विधान राधा-कृष्ण की छद्मलीलाओं में लोकरंजन के तत्त्वों का समावेश करने में सहायक सिद्ध हुआ।

इन लीलाओं में कृष्ण का छद्मवेश धारण स्त्री और पुरुष दोनों ही रूपों में वर्णित हुआ है।[१] पुरुष छद्मवेश धारण की लीलाएँ चाचा वृन्दावनदास द्वारा सबसे अधिक संख्या में रची गईं। इनमें कृष्ण, बनजारा, ब्रह्मचारी, जोगी, नारद आदि का रूप धारण करके राधा से मिलने के लिए जाते हैं।[२] कृष्ण के स्त्री रूप धारण का वर्णन छद्मलीलाओं के प्रायः सभी रचनाकारों ने किया है। वे प्रत्येक बार किसी न किसी स्त्री का वेश धारण करके नया प्रयोग करते हैं। कृष्ण कभी चितेरिन बनते हैं, तो कभी सुनारिन। वे ढ़ाढ़िन, मनिहारिन, बिसातिन, मैनावारी नाइन, तम्बोलिन आदि बन कर राधा से भेंट करते हैं। अवसर पड़ने पर कृष्ण राधा की कोई सखी बन जाते हैं। इसी प्रकार राधा जब मान करती है तो कृष्ण उसके मान-भंजन हेतु कृष्णासक्त किसी गोपी का वेश धारण कर राधा के पास पहुँचते हैं। कुछ कवियों ने राधा के भी छद्मवेश धारण का वर्णन किया है, किन्तु ऐसे प्रसंग अपवाद रूप में ही मिलते हैं।[३]

अभिनय के उद्देश्य से रचे जाने के कारण अधिकांश छद्मलीलाओं का कथा संगठन अपने में पूर्ण है। इस दृष्टि से इनका स्वरूप निरपेक्ष्य है। किन्तु चाचा वृन्दावनदास और नारायणस्वामी द्वारा रचित छद्मलीलाएँ रासलीला की इकाई के रूप में भी देखी जा सकती हैं[४]। कदाचित् इसीलिए उनके द्वारा रचित छद्मलीलाओं की सामूहिक परिणति रास के नृत्य अथवा राधा-कृष्ण के विवाह-मंगल के प्रसंग में हुई है। छद्मलीलाओं में ललिता, विशाखा, तुंगविद्या, सुदेवी आदि राधा की सखियाँ कभी कृष्ण के छद्मवेश धारण और कभी उसके रहस्योद्घाटन में योग देकर राधा-कृष्ण का मिलन कराने में सहायक होती हैं।

---

[१] रास-छद्म-विनोद पृ० १२५-१३८

[२] रास-छद्म-विनोद पृ० १-१०८ तक की लीलाएँ

[३] देवी-छद्म-लीला, भारतेन्दु

[४] रास-छद्म-विनोद पृ० २३६-२५६, ब्रजविहार में संकलित छद्म-लीलाएँ।

राधा-कृष्ण-विवाह :— राधा और कृष्ण के विवाह का उद्देश्य लौकिक दृष्टि से राधा की स्वकीया रूप में प्रतिष्ठा है। हरिराय, वृन्दावनदेव, चाचा वृन्दावनदास आदि कवियों ने राधा-कृष्ण के विवाह का वर्णन किया है। किन्तु इस प्रसंग को ब्रजलोक जीवन की व्यापक पृष्ठभूमि में पल्लवित करने में चाचा वृन्दावनदास को सर्वाधिक सफलता मिली है[१]। अन्य कवियों के राधा-कृष्ण के विवाह सम्बन्धी बधाई के स्फुट पद ही मिलते हैं तथा इनमें केवल विवाह के उल्लास का ही चित्रण हुआ है।

चाचा वृन्दावनदास ने लाड़सागर और ब्रजप्रेमानन्दसागर के अन्तर्गत राधा-कृष्ण का विवाह पर्याप्त विस्तार के साथ वर्णित किया है। लाड़सागर के एक कवित्त में चाचा जी ने आराध्य युगल के विवाह विषयक प्राचीन-संस्कृत और ब्रजभाषा गंथों के स्रोतों का साक्ष्य देते हुए पद्मपुराण, जीव-गोस्वामी कृत 'हरिविलास लीलामृत तंत्र' 'ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के कृष्ण-जन्म-खंड के सदाशिव-गौरी संवाद तथा सूर आदि भक्त कवियों की वाणी का उल्लेख किया है।[२] इन स्रोतों के अन्तर्गत राधा-कृष्ण-विवाह विभिन्न समयों में वर्णित हुआ है। ब्रह्मवैवर्त्त और आदिपुराण में विवाह प्रसंग मथुरा-

---

[१] ब्रजप्रेमानंदसागर पृ० २६१-५०१, लाड़सागर पृ०

[२] पदमपुराण कथा लिखी है गुंसाई जीव,
हरिलीला विलास तंत्र हू मैं सुनि पायो है।
लीला औ पद्नि माँहि लिख्यौ सब महतजन,
ता अनुसार हितरूप गुरु लिखायौ है।
\+ \+ \+
कृष्ण जन्म खंड माँहि लिखौ स्कंधपुराण,
बृषभ स्वयंवर बृषभानु जु करायौ है।
बाइस बिलासन मैं बरनी है व्याह रीति,
श्रीनारायण आपु मुख रमा कौ सुनायौ है।
तैसोंई सदाशिव ने गौरी प्रति बरन्यौ है,
करि भृंग दुहुनि कौ संवाद सोई गायौ है॥
--लाड़सागर, पृ० २३३,

गमन के पूर्व ही वर्णित हुआ है[1] किन्तु जीवगोस्वामी कृत 'गोपाल चम्पू' में पद्मपुराण के आधार द्वारका पुनर्गमन के उपरान्त आया है।[2] चाचा जी ने लीला-क्रम की दृष्टि से ब्रह्मवैवर्त्त और आदिपुराण का आधार लिया है, किन्तु सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि चाचा जी ने राधा-कृष्ण के विवाह विषयक उक्त प्रमाण को प्रस्तुत करते हुए भी विवाह का सम्पूर्ण वर्णन ब्रज-प्रदेश की लोकरीति के अनुसार किया है, जो उनकी विलक्षण लोक दृष्टि का प्रतीक है।

विवाह विषयक इतिवृत्त का प्रारम्भ कृष्ण के मन में राधा के विवाह करने के भाव के साथ होता है। यशोदा अपने पुत्र के विवाह की भी कामना से देवी-देवताओं का पूजन करती हैं। एक बार नारायण की पूजा के समय यशोदा बरसाने की एक स्त्री से भेंट हो जाने पर राधा के विवाह की बात पूछती हैं। यशोदा अनुरागवश पास ही में खेलती हुई राधा का श्रृंगार कर देती हैं। इधर कीर्ति भी शिव जी के आदेशानुसार राधा का विवाह कृष्ण से निश्चित कर देती हैं। विवाह निश्चित हो जाने पर यशोदा कृष्ण को सत् कार्यों में प्रवृत्त रखने का उपदेश देती हैं। कीर्ति भी अपनी ढ़ाढ़िन के द्वारा यशोदा के कृष्ण को नियंत्रण में रहने का निवेदन कहला भेजती हैं। दोनों ही पक्षों से विवाह की विधिवत् तैयारी होती है। लोकरीति के अनुसार लगन, भात, हरद हाथ, तेल आदि विवाह की रीतियाँ सम्पन्न होती हैं। बरसाने में बारात का भव्य स्वागत होता है। यथावसर ज्योंनार, कन्यादान, भाँवर, कुँवर कलेऊ, बड़द्वार, पलकाचार, विदाई आदि रीतियाँ सम्पन्न होती हैं। वधू राधा के ब्रज आगमन पर यशोदा उसके रूप सौंदर्य से अत्यधिक प्रभावित होती हैं। कुछ दिन ब्रज में रहने के अनन्तर राधा बरसाने वापिस आ जाती है। इसके उपरान्त राधा का गौना होता है। गौने में मिलन होने पर राधा-कृष्ण का दाम्पत्य भाव और भी प्रगाढ़ होता है। ब्रज में यशोदा भी राधा के प्रति अपना वात्सल्य विविध प्रकार से प्रकट करती है, किन्तु बरसाने में कीर्ति राधा-वियोग से दुखी हो जाती है, अतः वह श्रीदामा को भेज कर राधा की बिदा करा लेती हैं। इसके उपरान्त नंद-बलराम, कृष्ण और उनके मित्र वृषभानु

---

[1] ब्रह्मवैवर्त, श्रीकृष्ण-जन्म खंड १२, १२०,-१३०,
आदिपुराण १२, १०, १, १२

[2] पद्मपुराण: उत्तरखंड अध्याय २५२, श्रीगोपाल चम्पू,
उत्तरार्द्ध पूर्ण ३५, ७४-७७

के निमंत्रण पर कुछ दिनों बरसाने आकर रहते हैं। वहाँ उनका अतीव सत्कार होता है। इस अवसर पर राधा, कृष्ण से मिलने की अनेक चेष्टाएँ करती हैं, किन्तु मर्यादावश वह सफल नहीं हो पातीं। इसके अनन्तर कृष्ण बरसाने से राधा की बिदा करवा लाते हैं। ब्रज में राधा-कृष्ण अपने सौंदर्य एवं स्वभाव से सब को आनंदित करते हुए विविध माधुर्य लीलाएँ करते हैं।

ब्रज लोकरीतियों की भूमिका में राधा-कृष्ण के विवाह का जैसा विशद एवं रोचक वर्णन चाचा वृन्दावनदास ने किया है वैसा सम्पूर्ण कृष्ण-काव्य में अन्यत्र नहीं मिलता।

चौपड़ और शतरंज खेलना :—राधा और कृष्ण के इन खेलों का स्फुट रूप में वर्णन अनेक कवियों ने किया है। वृन्दावनदेव के एक पद में राधा-कृष्ण से चौसर खेलने का प्रस्ताव करती हैं। ललिता, राधा की ओर से और विशाखा कृष्ण की ओर से सदयोग देती है। राधा मनोनुकूल बाजी लगाने को कहती है। खेल चल ही रहा था कि 'गोरस' के भाव में उसे समाप्त कर देना पड़ा[1] नारायणस्वामी ने इस प्रसंग की अभिनेयार्थ रचित लीला के अन्तर्गत सखियों सहित द्यूत-क्रीड़ा का भी वर्णन किया है।[2]

राधा-कृष्ण का सुवा मैना-परिवर्तन :—इस प्रसंग का वर्णन केवल रसिकदास द्वारा रचित 'सुवा-मैना-चरित्र-लीला' के अन्तर्गत मिलता है।[3] राधा एक मैना पाल कर उसे कृष्ण के नाम बोलना सिखाती हैं। इधर कृष्ण भी मधुमंगल से परामर्श लेकर एक तोता पालते हैं और उसे बोलना सिखाते हैं। राधा-कृष्ण अपने सुवा-मैना बदल लेते हैं। एक दिन सुवा-मैना का सँवाद होता है। दोनों पक्षी अपने-अपने स्वामियों का गुणगान करते हैं।

जल-क्रीड़ा और नौका विहार :–राधा-कृष्ण और उनकी सखियों की जलक्रीड़ा का वर्णन दो रूपों में हुआ है। रास के अनन्तर और स्वतंत्र रूप में। इस युग में जलक्रीड़ा विषयक गो० रूपलाल, अनन्य अली, चाचा वृन्दावन-दास, गो० कमलनयन, रसिकदास नागरीदास, सहचरि सुख, ललित किशोरी, भारतेन्दु आदि के मौलिक उद्‌भावनाओं से युक्त जल-विहार और नौका-

---

[1] गीतामृत गंगा पृ० ८८, पद ५९-६०

[2] ब्रजविहार, पृ० १४०-१४५

[3] सुवा-मैना चरित्र लता, प्रतिलिपि बाबा किशोरीशरण अलि

विहार के उत्सवपरक पद प्रचुर संख्या में मिलते हैं।[1] राधा-कृष्ण नाना प्रकार की जलक्रीड़ाएँ करते हैं। वे कभी एक-दूसरे पर जल उछालते हैं, कभी डुबकी लगा कर पकड़ लेते हैं और कभी नौका विहार करते हैं।

कन्दुक-क्रीड़ा :—राधा और कृष्ण की सखियों सहित कन्दुक-क्रीड़ा का वर्णन अनन्य अली, कृष्णदास अदि ने स्वतन्त्र रूप से किया है। राधा-कृष्ण और गोपियाँ पुष्पों की कन्दुक बनाकर एक दूसरे पर उसका प्रहार करते हैं।[2]

पनघट-लीला :— भागवत में कात्यायिनि व्रत और रासलीला के प्रसंगों के अन्तर्गत स्नानार्थ एवं रासलीला में भाग लेने के उद्देश्य से गोपियों का यमुनातट पर गमन वर्णित हुआ है। भक्ति-युग में सूरदास ने राधा-कृष्ण की पनघट-लीला के प्रसंग को मौलिक उद्भावनाओं से संयुक्त करके पर्याप्त विस्तार दिया।

इस युग में पनघट लोला का वर्णन ब्रजवासीदास, वृन्दावनदेव, नारायण स्वामी आदि ने विस्तारपूर्वक किया है। इसके अतिरिक्त घनानद आदि ने पनघट-लीला के किसी अंश-विशेष पर आधारित स्फुट पद भी रचे। ब्रजवासी-दास का पनघट-लीला वर्णन पूर्णरूप से सूरसागर पर आधारित है।[3] कृष्ण यमुना-तट पर मुरली वादन द्वारा गोपियों को अपने रूप सौन्दर्य से प्रभावित करते हैं। राधा वहीं जल भरने जाती है। कृष्ण अपने मित्रों सहित राधा की गतिविधि का निरीक्षण करते हैं। वे पीछे से आकर उसकी गगरी लुढ़का देते हैं। राधा कुपित हो कर कृष्ण की लकुटी छीन कर गगरी भरने पर ही उसे देते को कहती हैं। पर्याप्त विवाद के उपरान्त राधा, कृष्ण को लकुटी दे देती हैं और कृष्ण भी उसकी गगरी भर देते हैं। इस बीच कृष्ण कभी राधा की परछाई से अपनी परछाई का स्पर्श करके उसे कामोत्तेजित करते हैं। कभी गगरी और कभी राधा के वक्षस्थल पर कंकरी मारते है। वे राधा के साथ ही अन्य गोपियों की भी गगरी फोड़ डालते हैं। गोपियाँ कृष्ण की शिकायत लेकर यशोदा के पास जाती हैं। अंत में यशोदा को गोपियों के उपालम्भ पर विश्वास हो जाता है। वृन्दावनदेव ने भी सूर की पनघट लीला के गोपियों के उपालम्भों की सामान्य भाव भूमि को ही ग्रहण किया

---

[1] शृंगाररससागर भाग २ पृ० ५६-७८

[2] वही पृ० ७८-७६

[3] सूरसागर १०, पद २०१७-२०७७, ब्रजविलास पृ० १६२-१७४

है ।[१] घनानंद के स्फुट पदों में पनघट पर जाती हुई गोपियों का कृष्ण के प्रति आत्म निवेदन ही व्यक्त हुआ है ।[२]

नारायणस्वामी की पनघट-लीला की प्रकृति अभिनयात्मक है । उन्होंने रोचकता के उद्देश्य से पनघट-लीला के अन्तर्गत कृष्ण की छद्म-लीला का भी समावेश कर दिया है । यशोदा के पास उलाहना हेतु जाती हुई गोपियों से कृष्ण पनघट की एक त्रस्त गोपी का वेशधारण करके मार्ग में ही मिलते हैं । रहस्य का उद्घाटन होने पर सम्पूर्ण प्रसंग की परिणति हास्य के धरातल पर होती है ।[३]

शयन और संभोग :— पुराण और काव्य दोनों के ही अन्तर्गत राधा-कृष्ण की शारीरिक समीपता एवं संभोग क्रीड़ाओं के चित्रण की परम्परा पर्याप्त प्राचीन है ।[४] भक्ति-युग के कवियों ने राधा-कृष्ण की कामचेष्टाओं और रति-क्रीड़ा के विविधि प्रसंगों को माधुर्य लीलाओं के अन्तर्गत समाविष्ट करके इस विषय को लोकप्रियता एवं भक्ति की उदात्त भूमिका प्रदान की । विवेच्य युग के अनेक कवियों ने राधा-कृष्ण की कामचेष्टाओं और रति-क्रीड़ा का विविध रूपों में चित्रण किया है ।

साम्प्रदायिक कवियों द्वारा वर्णित राधा-कृष्ण की संभोग क्रीड़ा का प्रथम रूप रासलीला, दानलीला आदि के अन्तर्गत आनुषंगिक रूप में मिलता है । दूसरे रूप में, निकुंज-लीला का गान करने वाले अधिकांश कवियों ने राधा-कृष्ण की रति क्रीड़ा एवं तज्जन्य परिस्थितियों का स्फुट पदों एवं अष्टयाम ग्रंथों के अन्तर्गत चित्रण किया है । सम्प्रदाय-मुक्त कवियों के इस प्रकार के वर्णन अधिकतर लक्षण-ग्रंथों के उदाहरणों के रूप में उपलब्ध होते हैं ।

इस युग में चाचा वृन्दावनदास ही एक मात्र ऐसे कवि हैं जिन्होंने राधा-कृष्ण के प्रथम समागम का वर्णन विवाह के अनन्तर करके इस विषय को उदात्त सामाजिक मर्यादा प्रदान की है ।[५]

---

[१] गीतामृत गंगा पृ० ११ पद ३३, ३४

[२] घनानंद-ग्रंथावली पद सं० ६९९, ७००, ९११

[३] ब्रजविहार पृ० ३७

[४] ब्रह्मवैवर्त कृष्ण-जन्म खण्ड १५ : १४९, ५८, ७१, २८, ७५, गाथा सप्तशती—१ : ८९, गउड़वहो श्लोक २०-२३ गीतगोविन्द सर्ग १२ आदि ।

[५] लाड़सागर पृ० २४७, पद ११-१९, ब्रजप्रेमानंदसागर पृ० ४९१-५००

वसंत और फाग-क्रीड़ा :—होली की वर्षोत्सव के रूप में स्वीकृति सभी कृष्णभक्ति सम्प्रदायों में मिलती है। वसंत ऋतु में शृंगारिक चेष्टाओं के विशिष्ट उद्दीपन तथा प्रकृति की उत्फुल्लता में सहायक होने के कारण के कारण सभी कृष्णभक्ति सम्प्रदायों के काव्य में राधा-कृष्ण की वसंत और फाग क्रीड़ा का विस्तृत वर्णन मिलता है। इस युग में राधा-कृष्ण की वसंत और फाग क्रीड़ा से सम्बन्धित पद प्रचुर संख्या में रचे गए। इनमें गो० रूपलाल, हरिराय, चाचा वृंदावनदास, नागरीदास, भगवत रसिक, ललितकिशोरी वंशी अलि आदि के पद विशेष महत्व के हैं।[1] इन कवियों के पदों में सामान्य रूप से शिशिर और हेमन्त की हर्षोत्फुल्ल प्रकृति के परिवेश में कृष्ण द्वारा राधा और गोपियों का मान-मोचन, अबीर-गुलाल, पिचकारी आदि के द्वारा फाग-क्रीड़ा, नौका पर फाग क्रीड़ा, सामूहिक नृत्य, चंग, ढप, मृदंग, भांझ, पखावज, शहनाई आदि वाद्यों का वादन, राधा-कृष्ण की मण्डलियों का फाग-युद्ध आदि प्रसंगों की आवृत्ति हुई है।

चाचा वृंदावनदास, नारायणस्वामी आदि ने फाग-क्रीड़ा के अन्तर्गत कृष्ण की छद्मलीलाओं के भी प्रसंग जोड़ दिये हैं।[2] कृष्ण नाना छद्मवेश धारण करके राधा से होली खेलने जाते हैं। चाचा वृन्दावनदास के वसंत और होली विषयक पदों में उनकी लोक दृष्टि अभिव्यक्त हुई है। उन्होंने तिथिक्रम से होली मनाए जाने का विस्तृत वर्णन किया है। वसंत पंचमी के अवसर पर होली रोप दी गई। राधा ललिता, विशाखा आदि सखियों के साथ सामूहिक नृत्य एवं गान करती हुई ब्रज में फाग माँगने निकलती हैं।[3] वह सखियों सहित नंद और यशोदा के पास भी जाती हैं। इधर कृष्ण भी गोप-सखाओं सहित विविध क्रीड़ाएँ करते हुए फाग एकत्रित करते हैं। अवसर मिलने पर वे चोरी से चरखा, मूसल, खाट आदि जो कुछ भी मिल जाता है, होली को भेंट देने के लिए उठा लाते हैं। इसी क्रम में चाचाजी ने कृष्ण के गोप-सखाओं सहित, गोवर्धन, राधा-कुंड और मानसरोवर पर फाग खेलने का पृथक्-पृथक् वर्णन किया है।[4]

---

[1] शृंगाररससागर, भाग १, वसंत और होली के पद

[2] वही सेवा कुंज की छद्म लीलाएँ, पृ० १६२

[3] ब्रजप्रेमानंदसागर, पृ० २१४-१५

[4] शृंगाररससागर भाग १ पृ० ५६-६१, पद १२८, १२६ और १३०

गोवर्धन पर फाग-क्रीड़ा :—

गिरि पै सखा कौतिक देख आज। रितुराज सदेह बन्यौ समाज ॥
तरु गोरै तरुन खिलार फाग। बंदनि फेरनि कुसुमनि पराग ॥
दरसत फूले मनु खेल फाग। कै प्रेम नृपति कौ रूप बाग ॥

राधा-कुंड पर फाग-क्रीड़ा :—

खेलत बसंत श्री कुंद पास। संगम बढ़ि लागत हिय हुलास ॥
गौरी राजै सर गौर तीर। सर स्याम कूल साँवर सरीर ॥

मानसरोवर की फाग-क्रीड़ा :—

खेले मान सरोवर श्री गौर स्याम। एकांत परम अभिराम धाम ॥
रतिपति कौ मीत आयौ बसंत। द्रुम बेलिनु नव पल्लव लसंत ॥[१]

चाचाजी ने राधा-कृष्ण का विवाह भी वसंत के ही अवसर पर वर्णित किया है।[२] लोक रीति के अनुसार वृषभान के आमंत्रण पर कृष्ण फाग खेलने हेतु बरसाने बुलाए जाते हैं। वहाँ वे अपने आप नहीं पहुँच जाते। वृषभान पत्नी अपनी ढाढ़िन यशोदा के पास होली का पकवान आदि लेकर भेजती हैं, ढाढ़िन उन्हें सपरिवार होली खेलने हेतु बरसाने आने का निमंत्रण दे आती है। होली के दिन बृषभान विविध वाद्यों सहित एक गोप-मण्डली कृष्ण को लेने के लिए भेज देते हैं। गायन-वादन और सामूहिक नृत्य करते हुए कृष्ण गोप-मण्डली सहित बरसाने पहुँचते हैं। वहाँ उनका भव्य स्वागत होता है तथा सम्मान और सत्कारपूर्वक लोक रीति के अनुमार उन्हें गालियाँ भी मिलती हैं।

हिंडोला और डोल-वर्णन :—इस प्रसंग की क्रीड़ाओं के अन्तर्गत सहचरी के उपास्य भाव एवं दाम्पत्य रति की अभिव्यक्ति हुई है[३]। हिंडोला और डोल विषयक पद अधिकतर उत्सवपरक हैं तथा इनमें वर्षा ऋतु का भी वर्णन पृष्ठभूमि रूप में हुआ है। कृष्ण और ललिता आदि राधा की सखियों द्वारा यथा अवसर रत्नजटित एवं पुष्पों से सुसज्जित हिंडोलों की रचना, वर्षा ऋतु में प्रकृति के सौंदर्य और राधा-कृष्ण का सखियों सहित हिंडोला झूलना इन पदों का प्रतिपाद्य है। राधा की सखियों में ललिता और विशाखा का विशेष

---

[१] शृंगाररससागर भाग १ पृ० ८२ पद १८३
[२] वही भाग १ पृ० २८३-२८५
[३] शृंगाररससागर भाग ३ झूलनोत्सव के पद

योग रहता है। चाचा वृन्दावनदास नारायणस्वामी आदि के कृष्ण, राधा के साथ झूलने के उद्देश्य से उनकी सखी का छद्‌मवेश भी धारण कर लेते हैं।[१] राधा कभी सखियों सहित यमुनातट पर हिंडोला झूलती हैं तथा कभी कृष्ण के साथ वंशीवट और निकुंजों में हिंडोला झूलती हुई एकांत क्रीड़ा करती हैं। भगवतरसिक के पदों में कुंजों में झूलते हुए राधा-कृष्ण की काम-चेष्टाओं का भी वर्णन मिलता है। हिंडोले के पवित्रा विषयक पदों में राधा-कृष्ण पवित्रा धारण करके हिंडोला झूलते हैं।[२]

मानलीला :—राधा-कृष्ण की माधुर्य लीलाओं में मानलीला का प्रसंग पर्याप्त रोचक है। इस युग में वृन्दावनदेव कृत 'गीतामृत गंगा' 'हरिराय के स्फुट पदों,' ब्रजवासीदास कृत 'ब्रजविलास' नारायणस्वामी कृत 'ब्रजविहार' ललित किशोरी कृत 'मानलीला' आदि रचनाओं के अन्तर्गत उसे क्रमबद्ध रूप में विस्तार मिला है। राधा के मान धारण और कृष्ण द्वारा उसके मानमोचन विषयक स्फुट पद भी अनेक कवियों द्वारा रचे गए। सामान्य रूप से मान के तीन रूपों का वर्णन हुआ है :—

क—संभ्रम मान

ख—खंडिता मान

ग—रूप-गर्विता मान

संभ्रम मान :—कृष्ण के वृक्षस्थल पर कौस्तुम मणि में अपने प्रति-विम्ब को देखकर राधा किसी अन्य गोपी में कृष्ण की अनुरक्ति के भ्रमवश मान धारण कर लेती हैं। ललित किशोरी ने संभ्रम मान के अन्तर्गत कौस्तुभ-मणि के स्थान पर दर्पण के प्रतिबिम्ब को राधा के मान का कारण दिखाया है। सखी द्वारा अपने भ्रम का ज्ञान होने पर राधा मान त्याग देती है।

नारायणस्वामी ने संभ्रम मान का सर्वथा नवीन कारण दिया है। प्रातः-काल राधा को निद्रामग्न छोड़ कर कृष्ण उसके शृंगार के निमित्त पुष्प चयन हेतु निकल जाते हैं। इधर राधा स्वप्न देखती हैं कि कृष्ण किसी अन्य गोपी में आसक्त हैं। निद्रा-भंग होने पर राधा-कृष्ण को शयन कक्ष में न पाकर स्वप्न को सत्य मान बैठती है वह एक सखी को घर की रक्षा का भार सौंप

---

[१] शृंगाररससागर भाग ३ पृ० १८० पद १३, ब्रजविहार पृ०

[२] वही भाग ३ पृ० १७६ पद ११६

[३] वही भाग ३ पवित्रा उत्सव के पद

कर कृष्ण की खोज में निकल जाती है। राधा एक अन्य गोपी को इस बात के लिए सचेत कर जाती है कि कृष्ण के आने पर वह उन्हें घर में प्रविष्ट न होने दे। उस गोपी ने ऐसा ही किया। अंत में कृष्ण और उस गोपी के सामूहिक निवेदन पर राधा अपना मान त्याग देती है[१]।

खंडिता मान :—मान का यह रूप कृष्ण के बहुनायकत्व का व्यंजक है। खंडितामान विषयक स्फुट पद ही अधिक संख्या में मिलते हैं। वृन्दावनदेव ने राधा के संभ्रम और खंडिता मान के प्रसंगों का परस्पर अन्तर्भाव करते हुए रास में कृष्ण का किसी अन्य गोपी की ओर दृष्टि उठाकर देखना ही राधा के मान का कारण निर्दिष्ट किया है।[२] उनके खंडिता मान की परिणति राधा-विरह के अन्तर्गत हुई है। ब्रजविलास में खंडिता मान के प्रसंग में सूरसागर के आधार पर कृष्ण का ललिता, चन्द्रावली, शीला, वृन्दा आदि गोपियों से कृष्ण का प्रणय सम्बन्ध दिखाया गया है।[३] नारायणस्वामी ने राधा के खंडिता रूप के वर्णन में उसका स्पष्ट रूप से कृष्ण को एक गोपी के घर जाकर रंगे हाथों पकड़ना दिखाया है। 'तेरे भवन यह कौन बिराजै। वचन मनोहर भावत तोरौं कबहुँ मधुर धुनि नूपुर बाजै'।[४]

रूपगर्विता मान :—राधा को अपने रूप एवं यौवन पर भी मान हो जाता है। मान का यह रूप भी अधिकतर स्फुट पदों में ही वर्णित हुआ है। चाचा वृन्दावनदास ने राधा के रूपगर्विता मान विषयक अनेक पदों की रचना की[५]।

नारायणस्वामी ने इस प्रसंग को कृष्ण के छद्मवेश धारण से सम्बद्ध कर दिया है। कृष्ण राधा को शशिवदनी कह कर पुकारते हैं। शशि से उपमित होने में अपनी हीनता का अनुभव करके राधा रूठ जाती हैं। राधा के मान को तोड़ने के लिए कृष्ण उसकी एक सखी के परामर्श से नवीन युक्ति करते हैं। वे छद्मवेशी सुन्दरी का रूप धारण कर राधा से मानगृह में जाकर मिलते हैं। इस रहस्य के उद्घाटन पर राधा अपना मान त्याग देती है।[६]

---

१ ब्रजविहार पृ० ९

२ गीतामृत गंगा, पृ० ४७-५६

३ सूरसागर १०। पद २४७५-२५३३, ब्रजविलास पृ० ३८४-३९४

४ ब्रजविहार पृ० ९६

५ रास-छद्म-विनोद पृ० २२८-२३६

६ ब्रजविहार पृ० ९६

दानलीला :—विवेच्य युग में दानलीला का प्रसंग साम्प्रदायिक कवियों में वृन्दावनदेव कृत 'गीतामृतगंगा' घनानन्द की 'दान घटा', हरिराय की 'दान-लीला', ब्रजवासीदास के 'ब्रजविलास' नारायणस्वामी कृत 'ब्रजबिहार' तथा नागरीदास आदि द्वारा रचित स्फुट पदों के अन्तर्गत वर्णित हुआ है।

यह उल्लेखनीय है कि भगवात में दानलीला का वर्णन नहीं मिलता। भक्तिकाल में सूर ने इस प्रसंग को अपनी मौलिक उद्भावना के द्वारा आध्यात्मिक भूमिका में पर्याप्त रोचकता और लोकप्रियता प्रदान की। कृष्णभक्त कवियों के अतिरिक्त अनेक सम्प्रदाय-मुक्त कवियों ने भी सूर से प्रेरणा प्राप्त करके इस लीला का वर्णन किया। इस कोटि के कवियों की रचनाओं में आनन्द कृत दानलीला[1] (सन् १७८३ ई०), उदय कृत दानलीला[2] (सन् १७९२ ई०), रामदत्त कृत दानलीला[3] (सन् १७९८ ई०), भानदास कृत दानलीला[4] (सन् १८१५ ई० के लगभग), श्यामलाल कृत दानलीला[5] (सन् १८३४ ई०), वृषभानु कुँवरबाई कृत दानलीला[6] (सन् १८२८ ई०-१८५० ई० के मध्य) आदि उल्लेखनीय हैं। सूरदास ने मूलतः दानलीला में गोरस के दान के स्थान पर तन-मन के दान का वर्णन किया है तथा उसे आध्यात्मिक भूमिका प्रदान की है। परन्तु सम्प्रदाय-मुक्त कवियों ने दानलीला की उस आध्यात्मिक भूमिका का परित्याग करके मात्र उसकी रूढ़ वस्तु को ही ग्रहण किया है।

साम्प्रदायिक कवियों द्वारा रचित दानलीलाओं की मूल संवेदना तो एक ही है, किन्तु इनमें वर्ण्यवस्तु का विधान सर्वथा स्वतन्त्र रूप से हुआ है। कुछ पदों में तो कृष्ण अथवा किसी गोपी के कथन विशेष तक ही दानलीला की वस्तु का विस्तार सीमित रहा है। अतएव इन दानलीलाओं की वस्तु का स्वतन्त्र विवेचन उचित प्रतीत होता है।

---

[1] हिन्दी के मध्यकालीन खंडकाव्य, पृ० १४९

[2] नागरी प्रचारिणी सभा, खोज रिपोर्ट सन् १९३५-३७ प्रथम परिशिष्ट १०२।

[3] वही, सन् १९२३ परिशिष्ट सं० ६४१ सी

[4] मिश्रबन्धु-विनोद, पृ० ८९१

[5] नागरी प्रचारिणी सभा, खोज रिपोर्ट सन् १९२९-३१ परिशिष्ठ सं० ३२२ बी,

[6] हिन्दी के मध्यकालीन खंडकाव्य, पृ० १५१

वृन्दावनदेव ने दानलीला का प्रारम्भ गोचारण की भूमिका में दिखाया है। गोवर्धन के निकट पहुँच कर कृष्ण गायों को विचरण के लिए स्वतन्त्र कर देते हैं और स्वयं एक कन्दरा में जाकर फल-फूल और पत्रों की एक सुन्दर-सी माला बनाते हैं। इसके उपरान्त उनके मन में दानलीला का विचार उद्भूत होता है। वे दधि बेचने जाती हुई गोप-वधुओं से दधि का दान लेने की प्रतीक्षा में बैठ जाते है। गोपियाँ उधर से दधि बेचने निकलती हैं। मधुमंगल कृष्ण के संकेत पर एक गोपी से गोरस का दान लेने का प्रस्ताव करता है। वह प्रतिवाद करते हुए निषेध करती है। धीरे-धीरे वाद-विवाद गोपियों और गोपों के सामूहिक संघर्ष का रूप धारण कर लेता हैं। अन्त में विवश होकर गोपियाँ समस्त गोरस गोप-मण्डली को समर्पित कर देती है। कृष्ण, गोपियों से कुंजों में चल कर उनका आतिथ्य स्वीकार करने को कहते हैं। गोपियाँ कुंजों में प्रविष्ट होकर लता-मंडप के नीचे बिछे हुए आसन पर बैठ जाती हैं। कृष्ण दोनों में भर कर उन्हें पान, मिठाई, और मेवा देते हैं। आतिथ्य से निवृत होकर गोपियाँ फूल बनाने के लिए चल देती हैं। इधर मध्याह्न होने पर यशोदा कृष्ण के लिए छाक भेजती है। छाक खाते हुए कृष्ण और श्रीदामा में 'दानलीला' की पूर्व घटना को लेकर विवाद छिड़ जाता है। तथा दोनों अपना-अपना दल बनाकर मल्लयुद्ध प्रारम्भ कर देते हैं।[1]

घनानन्द ने दानलीला की सम्पूर्ण वस्तु को गोपियों और गोप-सखाओं विशेषकर मधुमंगल और ललिता के वाद-विवाद के माध्यम से विस्तार दिया है। दधि बेचने जाती हुई गोपियों को कृष्ण सखाओं सहित मार्ग में ही घेर लेते हैं। कृष्ण "देहिगी दान जौ ऐहै इतै नहीं पैहैं अबै सु किये को सवै फल" की धमकी द्वारा गोपियों को दान देने के लिए विवश करते हैं। एक गोपी "सम्हारि न बोलत हौ मुँह चाहत क्यों खायो थपेरै" कह कर प्रतिवाद करती है। इस पर कृष्ण अपने गोप-सखाओं को उस गोपी के सर पर से मटकी उतार कर प्रत्येक को क्रमानुसार उसके पास जाकर मनमानी करने का आदेश देते हैं। इसके अनन्तर मधुमंगल और ललिता का वाद-विवाद होता है जो बढ़ कर दलगत रूप धारण कर लेता है। अन्त में पराजित गोपियाँ कुँजों की ओट में जाकर रन्ध्रों से कृष्ण और उनके सखाओं की क्रीड़ा का दर्शन करती हुई अकेले में कृष्ण से बदला लेने का निश्चय कर लेती हैं। घनानन्द ने दानघटा का उपसंहार घटा और चातक के पारस्परिक अनुराग के रूपक के द्वारा किया है।[2]

---

[1] गीतामृत गंगा, तृतीय घाट पृ० १२-१६

[2] घननन्द-ग्रन्थावली, दानघटा, पृ० २५३-५६

हरिराय की दानलीला की वस्तु पर गुजराती कवि नरसी मेहता कृत 'दान-लीला' का प्रभाव लक्षित होता है। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि हरिराय की दानलीला में वर्ण्यवस्तु का साम्य नरसी की दानलीला से बहुत अधिक है। हरिराय जी के गोवर्धन पर चढ़ कर पुकारने, कनक कलश छीनने और राधा को कुंज में ले जाकर मनाने का जो वर्णन है, वह नरसी की दानलीला में भी मिलता है।

ब्रजविलास की दानलीला का आधार सूरसागर की दानलीला है। सूरसागर में दानलीला का प्रसंग तीन बार वर्णित हुआ है, किन्तु ब्रजवासीदास ने सूरसागर के दानलीला विषयक तीनों प्रसंगों को एक ही क्रम में वर्णित किया है। कृष्ण दधि के दान के साथ यौवन का भी दान लेते हैं गोपियाँ भी कृष्ण को दधि और यौवन का समर्पण कर महाभाग्यशालिनी सिद्ध होती हैं। दानलीला की सम्पूर्ण घटना में कृष्ण के गोप सखाओं में सुबल, सुदामा और श्रीदामा तथा गोपियों में इन्दा, बिन्दा, श्यामा और कामा का व्यक्तित्व विशेष रूप से उभरा है।[1]

उपर्युक्त विवेचित दान-लीलाओं की वस्तु में निम्नलिखित साम्य मिलते हैं:—

१. वृन्दावनदेव और हरिराय के कृष्ण गोवर्धन पर से दधि बेचने जाती हुई गोपियों को दधि-दान हेतु टेरते हैं।

२. वृन्दावनदेव और घनानन्द की दानलीलाओं में कृष्ण के सखाओं में मधुमंगल और राधा की सखियों में ललिता का विशेष योग रहता है।

३. ब्रजविलास की दानलीला के अतिरिक्त शेष सभी में कृष्ण और सखा दधि का ही दान लेते हैं।

नारायणस्वामी द्वारा वर्णित दाननीला की वस्तु सर्वथा स्वतन्त्र एवं नाटकीय पद्धति पर नियोजित हुई है। उनके द्वारा रचित दानलीला के दो रूप प्राप्त होते हैं 'छद्म-दानलीला' और 'नवलसखी की दानलीला'। छद्म-दान लीला में कृष्ण श्रीदामा का वेश धारण करके छलपूर्वक दधि का दान लेते हैं। 'नवलसखी की दानलीला' में कोई गोपी अपने साथ एक नवविवाहिता को साथ में दधि बेचने हेतु ले जाती है। वह कृष्ण से मार्ग में उस नव विवाहिता के दधि और यौवन का दान न लेने का निवेदन करती है किन्तु कृष्ण उसका घूँघट

---

[1] सूरसागर १०, पद २०७८-२३६७ तक, ब्रजविलास पृ० २२४-२५२

उघाड़ देते हैं और बिना दान लिए उसे न जाने की धमकी देते हैं। अंत में नवविवाहिता कृष्ण को उनका इच्छित दान देने को प्रस्तुत हो जाती है।[१]

रासलीला

राधा-कृष्ण की माधुर्य लीलाओं में रासलीला कृष्णभक्ति-काव्य में सर्वाधिक मार्मिक एवं लोकप्रिय रही है। पुराण-साहित्य से लेकर भक्तियुगीन कृष्ण काव्य तक रासलीला का अनेक प्रकार से वर्णन हुआ है। भक्त कवियों ने जहाँ रास के प्रसंग को आत्मानुभूति से अनुरंजित करके भावनात्मक एवं दार्शनिक रूप प्रदान किया, वहीं लोक जीवन में यह लीला उल्लास-युक्त सामूहिक नृत्य के रूप में लोकप्रिय हुई। निम्बार्क, वल्लभ, चैतन्य, राधावल्लभ और हरिदासी सम्प्रदायों के प्रवर्तक आचार्यों और कवियों ने एक स्वर से माधुर्योपासना का चरमोत्कर्ष रासलीला के अन्तर्गत दिखाया है। आलोच्य युग में चाचा वृन्दावनदास, वंशीअलि, नारायणस्वामी, रघुराज सिंह आदि साम्प्रदायिक और सम्प्रदाय-मुक्त कवियों ने रासलीला की प्रख्यात वस्तु पर आधारित नवीन संदर्भों की उद्भावना की, जिनका सम्पूर्ण कृष्ण-काव्य में अपना महत्व है।

रास विषयक काव्य :—प्राचीन साहित्य में रासलीला का प्रसंग भागवत, हरिवंश, विष्णु, ब्रह्मवैवर्त आदि पुराणों तथा जयदेव के गीतगोविन्द में वर्णित हुआ है। किन्तु विवेच्य कृष्ण-काव्य में वर्णित रासलीला प्रायः भागवत की रासपंचाध्यायी से प्रभावित रही है। भागवत के अनुवादों तथा राधाबल्लभ सम्प्रदाय के रामकृष्ण और सुखलाल, चैतन्यमत के गोपालदास, नंदकिशोर, गोविन्दचरण आदि कवियों कृत रासपंचाध्यायी के व्रजभाषानुवादों में रासलीला का वस्तु-विधान पूर्णतया भागवत के अनुरूप है। वंशीअलि जी की रासपंचाध्यायी भी भागवत पर आधारित है। प्रबन्ध-काव्यों में केवल ब्रजविलास ही ऐसी रचना है जिसमें सूरसागर की रासलीला को वर्णनात्मक रूप दिया गया है। वस्तुतः इस युग का साम्प्रदायिक परम्परा का रासलीला विषयक काव्य अधिकतर स्फुट पदों अथवा पद-समूहों के अन्तर्गत रचा गया। इसके अतिरिक्त वृन्दावनदेव कृत गीतामृत गंगा, घनानन्द कृत मुरलिका मोद, नागरीदास कृत सिंगार रससागर में संकलित रास-अनुक्रम के कवित्त, नारायणस्वामी कृत ब्रजविहार आदि रचनाओं में भी रासलीला का क्रमबद्ध एवं स्फुट दोनों ही रूपों में वर्णन मिलता है। सम्प्रदाय-मुक्त कवियों ने अधिकतर मुक्तकों के

---

[१] ब्रजविहार पृ० ५४

अंतर्गत रास की प्रख्यात वस्तु एवं सामूहिक नृत्य को संक्षिप्त रूप देने का यत्न किया है।

इसके अतिरिक्त अनेक साम्प्रदायिक और सम्प्रदाय-मुक्त कवियों की रास-पंचाध्यायी नामधारी प्रबन्धात्मक रचनाएँ भी पर्याप्त संख्या में मिलती हैं। इस प्रकार की रचनाओं में गोपालदास कृत 'रासपंचाध्यायी' (१६६८ ई०), हित-रामकृष्ण कृत 'रासपंचाध्यायी', हरिदास कृत 'रासलीला' (१८०५ ई०), नवल-सिंह कृत 'रासपंचाध्यायी' (१८१६-१८३३ ई०) कृष्णदेव कृत 'रासपंचाध्यायी' (१८३० ई०) रसानन्द कृत 'रासपंचाध्यायी' (१८४२ ई०), कृष्णदास कृत रासपचाध्यायी (१८५३ ई०) आदि उल्लेखनीय हैं। इन रचनाओं में भागवत की रासपंचाध्यायी को ही थोड़े बहुत अन्तर के साथ वर्णित करने की प्रवृति मिलती है।

वस्तु-विधान में रूढ़ि का पालन :—उल्लिखित रचनाओं में रासलीला की वस्तु का ग्रहण एक सामान्य रूढ़ि के अनुरूप हुआ है। अधिकतर रचनाओं में रासलीला के परम्परागत प्रसंगों वेणुगीत, गोपी-कृष्ण-संवाद, गोपी-गर्व तथा कृष्ण का अन्तर्ध्यान होना, कृष्ण-विरह में गोपियों का कृष्णलीलानुकरण कृष्णान्वेषण, यमुनातट पर कृष्ण का प्राकट्य, महारास और जलक्रीड़ा का ही समावेश मिलता है। स्फुट पदों की रासलीला में उल्लासपूर्ण सामूहिक नृत्य का चित्रण प्रधान रहा है। इनके अन्तर्गत रास की प्रवृत्ति प्रायः भावनात्मक है, विशेष कर राधावल्लभ-सम्प्रदाय के कवियों के रासलीला वर्णन में वर्ण-नात्मकता का अभाव मिलता है। अभिनेयार्थ रचित रासलीलाओं का वस्तु-विधान रंचमंच की सुविधा को दृष्टि में रख कर किया गया है। चाचा वृन्दावनदास और नारायणस्वामी की रासलीलाओं में कदाचित् इसीलिये महारास एवं सामू-हिक नृत्य तक की घटनाओं का समावेश हुआ हैं तथा जलक्रीड़ा का वर्णन नहीं मिलता। रास के अन्तर्गत राधा-कृष्ण का विवाह केवल सूरसागर के आधार पर 'ब्रजविलास' में वर्णित हुआ है। सामान्य रूप से रासलीला में सभी कवियों ने राधा का दाम्पत्य रूप ही चित्रित किया है। ऋतुभेद की दृष्टि से विवेच्य-युगीन रासलीलाएँ शारदी रास के अन्तर्गत आती हैं तथा वासंती रास का अभाव मिलता है।

रासलीला के अन्तर्गत छद्मलीलाओं का समावेश :—इस युग के कृष्ण-काव्य में रास लीला की मूलवस्तु में अनेक छद्मलीलाओं के भी प्रसंग जुड़ गए। इससे रासलीला काव्य में लोकरंजक तत्वों को अपूर्व प्रश्रय मिला, किन्तु अभि-नयगत प्रयोजन की प्रधानता के कारण रासलीला की भक्ति-जनित माधुर्य-

निष्ठ प्रकृति को पर्याप्त आघात पहुँचा। छद्मलीलाओं की प्रकृति पूर्णतया लौकिक है। इनकी चमत्कारपूर्ण वस्तु के समावेश से रासलीलाओं को लोकप्रियता तो मिली परन्तु भक्ति की दृष्टि से इनका स्वरूप उत्तरोत्तर विकृत होता गया।

रास के दो विशिष्ट रूप :—आलोच्य युग में ललित-सम्प्रदाय के वंशी-अलि के 'राधिका-महारास'[१] और रीवाँ नरेश रघुराजसिंह कृत रुक्मिणी-परिणाय के अंतर्गत द्वारका-रास, रासलीला के दो सर्वथा नवीन रूपों की उद्‌भावना मिलती है। रास के ये दोनों ही रूप उसके प्रख्यात कथासूत्र पर अवस्थित होते हुए भी पात्र-योजना, लीला-स्थल एवं भावभूमि की दृष्टि से मौलिक कहे जायेंगे, क्योंकि इनका कोई पौराणिक अथवा भक्तियुगीन काव्यगत स्रोत नहीं मिलता।

राधिका-महारास :—रासलीला के इस रूप की वस्तु का विधान राधा को केन्द्र मान कर किया गया है। राधा यमुना तट पर जाकर मुरली से समस्त सृष्टि को मोह लेने वाला स्वर स्फुरित करती है जिसे सुनकर उस की सखियाँ भोजन का परित्याग कर और उल्टे- सीधे वस्त्राभूषण पहन कर यमुना तट पर 'राधिका-महारास' में योग देने के लिए चल पड़ती हैं। यमुना तट पर राधा और उसकी सखियों का संवाद होता है। तदनन्तर मंडलाकार संगीत वाद्य युक्त सामूहिक नृत्य प्रारम्भ होता है। रास के बीच ही में राधा-लताओं की ओट में छिप जाती है। राधा की सखियाँ राधा-वियोग में प्रलाप की अवस्था तक पहुँच जाती हैं। विरहोन्मत सखियाँ राधा के रूप, गुण, स्वाभाव आदि की विविध अनुकरणात्मक चेष्टाएँ करने लगती हैं। इसी बीच राधा लताओं की ओट से प्रकट होती है तथा विरह-दग्धा सहचारियों को अपने कृपापूर्ण वचनों, स्पर्श आदि के द्वारा आनंदित करती है। तदनन्तर सखियों की मनोकामना पूर्ति हेतु राधा संगीत वाद्य युक्त महारास का विधान करती हैं। रास की समाप्ति पर राधा अन्य सहचारियों के द्वारा एक उच्च सिंहासन पर प्रतिष्ठित की जाती है। तदन्तर राधा और उसकी सखियाँ यमुना में जल-क्रीड़ा करके श्रम का परिहार करती हैं[१]।

भागवत के रास से तुलना एवं वैशिष्ट्य :—राधिका महारास के कथानक में वस्तुतः भागवत की रासलीला की ही वस्तु का आधार लिया गया है। दोनों में केवल पात्र योजना एवं भावभूमि का अन्तर है। भागवत के रास में

---

[१] रास-छद्म-विनोद, राधिका-महारास पृ० २३६-२५७

कृष्ण का व्यक्तित्व सर्वोपरि है तथा राधिका-महरास में राधा का। भागवत की रासलीला की मुख्य संवेदना माधुर्य के स्थायी भाव "भगवद्रति" का अभिव्यंजन है, किन्तु रास के इस रूप में सहचरी के उपास्य भाव की एकरसता पल्लवित हुई है। राधिका-महारास के अन्तर्गत ललिता का व्यक्तित्व विशेष रूप से उभरा है। एक स्थल पर तो राधा और ललिता के एकांत रास का भी वर्णन हुआ है तथा अन्य गोपियों की उपस्थिति का कोई संकेत नहीं मिलता :—

'सजनि दोऊ निर्त करैं।
गराबाहीं मुख जोरि कुँवरि ललिता थेई थेई उचरैं।
एक ही पट सिर ऊपर लोयें मुख दुराइ दोऊ खोलैं।
अरस परस करि चुबक दोउ दृग मिलाइ मधु बोलैं।
सनमुख ह्वै नूपुरनि बजावत बिच बिच चलति छबीलीं।
नौकनि दृग रोकनि भृकुटी की मुरति ग्रीव तिरछीली।
मुसकि जानि कर छवै आलिंगन झिझकन चित आकरषैं।
उपर-तिरप की लैन छबीली वंशी दृग सुख बरसैं ॥४॥[1]

वस्तुतः राधा और ललिता के एकांत रास का उद्देश्य सहचरी के रूप में ललिता के व्यक्तित्व का आदर्शीकरण ज्ञात होता है।

भागवत के रास में राधा का उल्लेख नहीं मिलता। किन्तु कृष्णभक्ति-काव्य में राधा और कृष्ण की अभिन्नता प्रतिपादित हुई है। एक प्रकार से भागवत के रास में राधा के प्रवेश का परमोत्कर्ष राधा के ही द्वारा सखियों के सहयोग से रास के विधान में माना जा सकता है जिसका साहित्यिक रूप "राधिका-महारास" के अन्तर्गत अभिव्यक्त हुआ है। राधिका-महारास में भागवत की रासलीला की दार्शनिकता का लोप होता है, तथा सहचरी भाव की नवीन दार्शनिक भूमिका का उदय होता है। राधिका-महारास में प्रकारान्तर से राधा के व्यक्तित्व में ही कृष्ण का व्यक्तित्व अन्तर्भुक्त हुआ है।

कृष्णभक्ति के राधावल्लभ और हरिदासी सम्प्रदायों में भी युगल उपासना की स्वीकृत के साथ राधा की महत्ता प्रतिपादित हुई है। किन्तु राधा की प्रधानता का जो उत्कर्ष ललित-सम्प्रदाय में हुआ, उसकी सर्वोत्तम अभिव्यक्ति राधिका-महारास के अन्तर्गत हुई है। राधिका-महारास में राधा के प्राधान्य की स्थिति यहाँ तक पहुँचती है कि यहाँ कृष्ण को पूर्णतया अनुपस्थित कर दिया

---

[1] रास-छद्म-विनोद पृ० २५३

गया है। तथा महारास की राधा ठीक उसी रूप में नायिका बनती है, जिस रूप में भागवत में श्रीकृष्ण रास के नायक है। रास का सम्पूर्ण उपक्रम राधा ही करती है। उसमें कृष्ण के समस्त क्रिया-कलापों का अन्तर्भाव हो जाता है।

राधिका-महारास का वर्णन वंशी अलि ने सहचरी भाव की साम्प्रदायिक भूमिका में किया है, जिसमें रास की मूल प्रकृति एवं लोकरंजन के तत्वों का अभाव लक्षित होता है। अतएव रास की प्रख्यात वस्तु पर आधारित रास लीलाओं की तुलना में राधिका-रास को लोकप्रियता नहीं मिल सकी।

द्वारका-रास :—विवेच्य युग में केवल रघुराज सिंह कृत 'रुक्मिणी-परिणय' नामक रचना के अन्तर्गत कृष्ण और रुक्मिणी के विवाह के उपरान्त उनके दाम्पत्य जीवन की विविध क्रीड़ाओं के क्रम में द्वारका-रास का वर्णन हुआ है।

द्वारका-रास की वर्ण्य-वस्तु :—द्वारका-रास का प्रारम्भ कृष्ण के मन में एक बार वृन्दावन-रास की स्मृति के उद्दीप्त होने की घटना द्वारा होता है। वे रुक्मिणी से द्वारका में रास रचाने का आग्रह करते हैं।

वृन्दावन संग गोपिकन जस किय रास-विलास।
तस तुव संग करि रस लइन, मेरे मनहि हुलास।
रमणि रुचिर राका रजनि, रच्यों रास हित चन्द।
मंजु मंजु इन कुंज मधि, बिहरहु लै सखि वृन्द ॥[१]

रुक्मिणी घूंघट की ओट से अपनी दूती के द्वारा सखियों को रास-क्रीड़ा हेतु प्रस्तुत होने का आदेश देती है। कृष्ण का संकेत पाकर रुक्मिणी की सखियाँ मण्डलाकार रूप में नृत्य और संगीत प्रारम्भ करती हैं। बीच ही में नृत्य के स्थगित होने पर रुक्मिणी की कोई सखी कृष्ण के टूटे हुए आभूषणों को जोड़ने के लिए कहती है। कोई उनके हाथों में वीणा देकर उसके वादन का आग्रह करती है और तो कोई सामूहिक नृत्य का निवेदन करती है। रास के मध्य सखियों के मद-भंजन एवं विप्रलम्भ भाव का अभिज्ञान कराने के प्रयोजन से कृष्ण रुक्मिणी सहित कुंज में छिप जाते हैं :—

यह विधि भरे गुमान के सखिन वचन सुन कान।
विप्रलम्भ रस लखन हित हरि भे अन्तर्ध्यान ॥

---

[१] **रुक्मिणी-परिणय सर्ग १७ पृ० २०५**

तहँ रुक्मिणि को संग लिय औरन अलिन छिपाय ।
करन केलि एकान्त में कुंजन रहे दुराय ॥[1]

इसके उपरांत रुक्मिणी की सखियों का विरह वर्णित हुआ है । वृन्दावन रास के सदृश्य यहाँ भी वे कृष्ण की विविध अनुकरणात्मक चेष्टाएँ करती हैं तथा पशु-पक्षियों, लताओं आदि से कृष्ण के सम्बन्ध में पूछती हैं । द्वारका में घटित होने के कारण यहाँ गोपियाँ कृष्ण की गोकुल-वृन्दावन और मथुरा की क्रीड़ाओं का अनुकरण करती हैं :—

श्री यदुनन्दन की युवती युदनन्दन लीला करैं सब लागीं ।
गोकुल की तुलसीवन कीं मथुरा की मनोहर प्रेम सों पागीं ॥[2]

इसी बीच उन्हें कृष्ण और रुक्मिणी के पदांक दिखाई पड़ते हैं । वे रुक्मिणी को कृष्ण-विरह में प्रलाप करती हुई पाती हैं । रुक्मिणी के साथ उसकी कृष्ण-विरह कातर सखियाँ भी प्रलाप करने लगती हैं । अंत में कृष्ण प्रकट होते हैं और महारास का विधान करते हैं । रास की समाप्ति पर जल-क्रीड़ा का प्रसंग वर्णित हुआ है । द्वारका-रास में सामंती ऐश्वर्य के उपादान भी वर्णित हुए हैं :—

पानदान फूलदान औ गुलाब दान हैं,
पीकदान फूलदान दर्पनौ महान हैं,
औ सुपुष्प तौलदान केतकौ विधान हैं,
है सखी लिए खरी-खरी ते प्रीतिवान हैं ॥[3]

अंत में रुक्मिणी और उसकी सखियों द्वारा कृष्ण की सामूहिक आरती से द्वारका रास पूर्ण होता है :—

गाय बजाय के नाचि रिझाय फँसाय सबै मन प्रेम के फंदहिं ।
रुक्मिणी रुक्मिणि-कंत के मध्य अली सब पाय के ओपि अनन्दहिं ॥
आरती लागी उतारनौ चहुँवोर से घेर कै आनंद कंदहिं ।
प्रीतम प्यारे की प्रेम सुधा छकि हेली निहारि रही मुख चंदहिं॥[4]

---

[1] रुक्मिणी-परिणय सर्ग १७ पृ० २०५
[2] वही सर्ग १८ पृ० २११
[3] वही सर्ग १८ पृ० २२५
[4] वही सर्ग १८ पृ० २२६

यह ज्ञातव्य है कि द्वारका-रास की परम्परा हिन्दी-कृष्ण-काव्य में नहीं मिलती। गुजारती के नर्यषि और नरसी नामक कवियों ने अवश्य द्वारका-रास का वर्णन किया है। द्वारका-रास की वस्तु की इस विचित्रता को दो प्रकार से देखा जा सकता है, एक तो इस प्रकार की परम्परा सम्भवतः गुजरात में प्रचलित रही होगी और दूसरे यह कि कवियों ने मूल परम्परा से पृथक स्वकल्पना से ऐसा वर्णन किया हो। दूसरी सम्भावना अधिक उचित प्रतीत होती है। किन्तु रघुराज सिंह द्वारा वर्णित द्वारका-रास कदाचित् सामंती ऐश्वर्य की कल्पना पर आधारित है। राजसी वातावरण में नर्तन के अनेक रूप प्रचलित रहे हैं, उनकी रास के सामूहिक नृत्य से संगति निर्धारित करना द्वारका-रास की उद्भावना का उद्देश्य कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त यह भी सम्भावना की जा सकती है कि वृन्दावन-रास के अनुकरण पर ऐश्वर्य प्रधान द्वारका लीलाओं के अन्तर्गत रसात्मकता की सृष्टि इसके सृजन की प्रेरणा रही हो।

भागवत के रास से तुलना :—द्वारका-रास में लौकिकता का आग्रह होते हुए भी रास की प्रख्यात कथा का ही अनुकरण किया गया है। भागवत के वृन्दावन-रास का वस्तुगत आधार लेकर द्वारका-रास की सम्पूर्ण वस्तु का विधान हुआ है। केवल कृष्ण के मुरलीवादन द्वारा गोपियों को अर्द्धरात्रि में आकर्षित करने की घटना के स्थान पर कृष्ण के रास रचने की अभिलाषा का रुक्मिणी से कथन तथा रुक्मिणी के संकेत द्वारा अपनी सखियों को एकत्रित करने के वर्णन मौलिक कहे जा सकते हैं। रास का सामूहिक नृत्य कृष्ण की अन्तर्ध्यान लीला, रुक्मिणी की सखियों द्वारा कृष्ण की खोज और विलाप, रुक्मिणी का रुदन, महारास और जलक्रीड़ा आदि की घटनाएँ पूर्णतया भागवत के रास के अनुकरण पर ही वर्णित हुई हैं।

रास वस्तुतः ग्राम्य जीवन के साथ संगति रखता है और उसी रूप में उसका पुराण साहित्य एवं लोक-नाट्य के अन्तर्गत विकास हुआ है। अतएव ऐश्वर्य-प्रधान द्वारका-रास की परम्परा को न तो लोकप्रियता मिल सकी और न अन्य किसी कवि ने ही इस परम्परा को आगे बढ़ाया।

कृष्ण को वृन्दावन की लौकिक लीलाओं के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विवेच्य युग में इनके अन्तर्गत लोकरंजन के तत्वों की उत्तरोत्तर प्रधानता होती गई। इसका परिणाम यह हुआ कि वृन्दावन-लीलाओं के पौराणिक एवं

भक्तियुगीन काव्य में प्राप्त स्वरूप एवं आदर्शों के प्रति कवियों का आग्रह भी अभावग्रस्त होता गया। वृन्दावन लौकिक लीलाओं में भी माधुर्यपरक लीलाओं के प्रति इस युग के कवियों का विशेष आकर्षण रहा तथा उन्हीं के चित्रण में कवियों की वस्तुगत उद्भावक प्रतिभा का विकास हुआ है।

ख—मथुरा-लीला

कृष्ण की गोकुल और वृन्दावन लीलाओं के अन्तर्गत उनके ग्वाल-सखा और गोपी-वल्लभ रूप प्रधान रहे हैं। इन लीलाओं में राधा-गोपी, गोप और व्रजवासियों का कृष्ण के प्रति आसक्ति भाव व्यंजित हुआ है। कृष्ण असुर-संहारक रूप में भी अवतरित होकर लोकरक्षक सिद्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त कृष्ण के ऐश्वर्यपूर्ण व्यक्तित्व का अनुकरण एवं संवर्धन भी मथुरा-लीला के ही धरातल पर होता है, जिसकी परिणति आगे चल कर उनके द्वारकावासी व्यक्तित्व में होती है। मथुरा में कृष्ण की चपल किशोर प्रकृति गरिमा एवं दायित्व की भावना से मण्डित होती है। वस्तुतः मथुरा-लीला का वस्तुगत धरातल कृष्णचरित के उद्देश्यगत नवीन आयामों से सम्बद्ध है। कृष्ण का लोकरंजक व्यक्तित्व पूर्णतया लोकरक्षक रूप में प्रतिष्ठित होता है। भक्ति के वात्सल्य, सख्य एवं संयोगपरक मधुर भावों का अवसान तथा माधुर्य के ऐश्वर्य रूप का उदय होता है। लीला की भावभूमि के परिवर्तन के साथ ही गोकुल और वृन्दावन के पात्र भी कथा-प्रवाह में पीछे पड़ जाते हैं तथा नवीन पात्रों की अवतारणा होती है। मथुरा-लीला के अन्तर्गत भ्रमरगीत का प्रसंग सर्वाधिक मार्मिक एवं महत्वपूर्ण है क्योंकि इसी के द्वारा गोकुल और वृन्दावन की कृष्णलीलाओं का सूत्र मथुरा-लीलाओं से भावात्मक स्तर पर संयोजित होता है।

यह संकेत किया जा चुका है कि मथुरा-लीला की प्रकृति कृष्णभक्ति सम्प्रदायों द्वारा प्रतिपादित भक्ति के भावों के प्रतिकूल पड़ती है। वल्लभ सम्प्रदाय के अतिरिक्त चैतन्य, राधावल्लभ और हरिदासी सम्प्रदायों की भक्ति पद्धति के प्रभाव स्वरूप परम्परा से उनके काव्य में ब्रजवासी कृष्ण की ही लीलाओं को विस्तार मिला है। मथुरावासी कृष्ण का व्यक्तित्व कृष्णभक्ति सम्प्रदायों की सैद्धान्तिक मान्यताओं का वहन करने में असमर्थ सिद्ध हुआ है। वल्लभ-सम्प्रदाय के कवियों, विशेषकर सूरदास और नंददास का कृष्णलीला-काव्य इस प्रकृति का अपवाद कहा जा सकता है। इसका कारण कदाचित् यह

है कि वल्लभ-सम्प्रदाय में भगवद् विषयक आसक्तियों के अन्तर्गत विरहासक्ति का अत्यन्त महत्व है जिसकी अभिव्यक्ति मथुरा-लीला के ही धरातल पर सम्भव थी। यह द्रष्टव्य है कि इन कवियों की भी अनुभूति मथुरावासी कृष्ण के प्रति केवल भ्रमरगीत के प्रसंग में ही रम सकी है जो परोक्ष रूप से व्रजवासी कृष्ण के ही व्यक्तित्व से सम्बद्ध है। भागवत के अनुवादों में मथुरा-लीला की वस्तु का समावेश जिस रूप में हुआ है उसकी प्रकृति विशुद्ध वर्णनात्मक है। वस्तुतः कृष्ण-काव्य में मथुरा लीला की वस्तु के अभाव का मूल कारण रचनाकारों का साम्प्रदायिक संस्कार है जिसने प्रकारान्तर से सम्प्रदाय-मुक्त कृष्ण-काव्य को भी प्रभावित किया।

मथुरा-लीला की वस्तु का वर्गीकरण :—

वस्तु-वर्णन की प्रकृति के आधार पर कृष्ण की मथुरा-लीलाओं को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है—

(क) **वृन्दावन और मथुरा लीलाओं के संयोजक प्रसंग :**—इनके अन्तर्गत कंस का बलराम और कृष्ण को मथुरा बुलाने के लिए प्रेरित करना। अक्रूर का जल में कृष्ण दर्शन और कृष्ण के मथुरा भ्रमण की घटनाएँ आती हैं।

(ख) असुर-संहारक-लीलाएँ :—इन लीलाओं की प्रकृति पूर्णतया अलौकिक है। किन्तु इनके द्वारा वृन्दावन और गोकुल-लीलाओं के सदृश्य विस्मय की व्यंजना नहीं होती। इनके अन्तर्गत रजक, जरासंध, कालयवन, मुचकुंद, कुवलयापीड चाणूर और कंस-वध की लीलाएँ आती हैं।

(ग) **भक्त वत्सल लीलाएँ :**— इन लीलाओं के अन्तर्गत कृष्ण दरजी, माली, उग्रसेन, वसुदेव, देवकी, कब्जा आदि पर विविध भावों से कृपा करते हुए चित्रित किए गए हैं। इनमें, केवल कुब्जा-रमण का ही प्रसंग ऐसा है, जिसके द्वारा कृष्ण का रसिक व्यक्तित्व अभिव्यंजित हुआ है।

विवेच्य कृष्ण-काव्य में भी परम्परा के अनुरूप कृष्ण की मथुरा-लीलाओं का अभाव मिलता है तथा उनका वर्णन केवल भागवत के अनुवादों में ही हुआ है। मथुरा-लीला का स्वरूप पूर्णतया इतिवृत्तात्मक रहा है। इसके अतिरिक्त साम्प्रदायिक और सम्प्रदाय-मुक्त दोनों ही वर्ग के कवियों द्वारा रचित भ्रमर-गीतों तथा तत्सम्बन्धी स्फुट पदों और मुक्तकों के अन्तर्गत भी मथुरा-लीला की वस्तु का एक पक्ष वर्णित हुआ है।

इस सम्बन्ध में वृन्दावनदेव कृत गीतामृत गंगा के अन्तर्गत वर्णित 'कंसबध लीला' का उल्लेख आवश्यक है। निम्बार्क-सम्प्रदाय के कवि होते हुए भी

उन्होंने इस रचना में कृष्ण की ब्रज-लीलाओं के सदृश्य उनकी असुर संहारक मथुरा-लीलाओं का भी वर्णन किया है, जब कि वल्लभ सम्प्रदायेतर कृष्ण-भक्ति सम्प्रदायों के काव्य में कृष्ण की असुर संहारक, लीलाओं का अभाव मिलता है। यद्यपि कंस-बध लीला के अन्तर्गत बलराम-कृष्ण के मथुरा-गमन से लेकर उग्रसेन को राज्य-दान तक की घटनाओं का सांकेतिक रूप में ही वर्णन हुआ है, तथापि साम्प्रदायिक संदर्भ में इनका पर्याप्त महत्व है।

भ्रमरगीत

जिस प्रकार कृष्ण की वृन्दावन लीलाओं में रासलीला के अन्तर्गत माधुर्य के संयोग पक्ष का सर्वश्रेष्ठ रूप अभिव्यक्ति हुआ है, उसी प्रकार माधुर्य से विप्रलम्भ पक्ष का चमोत्कर्ष मथुरा-लीला के भ्रमरगीत प्रसंग में प्राप्त होता है। विप्रलम्भ शृंगार के लिए भ्रमरगीत का वस्तुगत धरातल इतना उपयुक्त सिद्ध हुआ है कि साम्प्रदायिक सीमाओं में आबद्ध न रह कर लक्षण ग्रन्थों के प्रणेताओं के लिए भी यह विषय विप्रलम्भ शृंगार के शास्त्रीय विवेचन का माध्यम बन गया। अष्टछाप के कवियों विशेषकर सूरदास, और नन्ददास ने भ्रमरगीत को भक्ति और दर्शन की उदात्त भूमि प्रदान कर भगवद्‌भक्ति की विरहासक्ति की भावना से परिपुष्ट किया। विवेच्य युग तक भ्रमरगीत की वस्तु एवं भावधारा का एक निश्चित काव्यगत स्वरूप बन चुका था, जिसका साम्प्रदायिक और सम्प्रदाय-मुक्त दोनों ही वर्ग के कवियों ने समान रूप से आधार लिया है।

भ्रमरगीत का साम्प्रदायिक आधार :—भ्रमरगीत का प्रसंग अपनी प्रकृति एवं परम्परा से केवल वल्लभ-सम्प्रदाय के ही काव्य में वर्णित हुआ है। अन्य सम्प्रदायों के साधनागत दृष्टिकोण से तादात्म्य न होने के कारण उनके काव्य में भी कुछ अपवादों को छोड़ कर भ्रमरगीत के प्रति रचनाकारों की दृष्टि प्रायः उपेक्षात्मक रही है। निम्बार्क, चैतन्य, राधावल्लभ और हरिदासी सम्प्रदायों में वस्तुतः राधा-कृष्ण की माधुर्यनिष्ठ नित्यलीला का विधान हुआ है। इसके अन्तर्गत विरह के लिए कोई स्थान नहीं है। भक्त आराध्य युगल के एकरस नित्यविहार का ही भावात्मक स्तर पर रसास्वादन करता है। इनके द्वारा पल्लवित सहचरी का उपास्यभाव भी राधा-कृष्ण की नित्यलीला की ही भूमि पर अवस्थित है। वस्तुतः संयोग प्रधान लीलाओं की भाव-परिधि में विरह मूलक भ्रमरगीत की वस्तु का समाविष्ट न हो सकना एक प्रकार से स्वाभाविक ही कहा जायेगा।

भ्रमरगीत-विषयक काव्य :—साम्प्रदायिक काव्य में भ्रमरगीत विषयक रचनाओं का आलोच्य-काव्य में अभाव दिखाई पड़ता है, किन्तु सम्प्रदाय-मुक्त कवियों द्वारा इस विषय की अनेक रचनाओं का प्रणयन हुआ। वल्लभ-सम्प्रदाय में गोस्वामी हरिराय कृत 'सनेहलीला' नागरीदास कृत 'गोपी-प्रेम-प्रकाश' आदि भ्रमरगीत सम्बन्धी स्वतन्त्र रचनाएँ मिलती हैं। इसके अतिरिक्त भारतेन्दु, हरिराय आदि ने भ्रमरगीत सम्बन्धी स्फुट पद भी रचे। साम्प्रदायिक दृष्टि से मिलने वाले अपवादों में चाचा वृन्दावनदास कृत 'भ्रमरगीत-पदबन्ध' सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। चाचा जी ने राधाकृष्ण की नित्यलीला का गान करते हुए भी विरहासक्ति प्रधान भ्रमरगीत के प्रसंग को अपनी प्रतिभा से अलंकृत किया है।

सम्प्रदाय-मुक्त कवियों द्वारा भ्रमरगीतों की रचना अपेक्षाकृत अधिक संख्या में हुई। यह भ्रमरगीत की परम्परा की लोकप्रियता का प्रतीकात्मक तथ्य है। इस वर्ग की रचनाओं में अक्षर अनन्य कृत 'प्रेमदीपिका' आलम कृत 'भंवरगीत', रसरूप कृत 'उपालम्भ-शतक', बख्शी हंसराज कृत 'विरह-विलास' रसनायक कृत 'विरह-विलास' संतदास कृत 'गोपीसनेह बारह-खड़ी' हरिराय कृत 'गोपी-श्याम-सन्देश' कुशलसिंह कृत 'गोपी-सागर', गंगादत्त कृत 'लीला-सागर', रत्नसिंह कृत 'नटनागर-विनोद' प्रागन कृत 'भ्रमरगीत' आदि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त मतिराम, देव, पद्माकर, आदि ने भ्रमरगीत के गोपी-विरह तथा उद्धव-गोपी-संवाद के प्रसंग पर आधारित मुक्तक छन्दों की भी रचना की।

भ्रमरगीतों का वस्तु-संगठन :—सामान्य रूप से भ्रमरगीत सम्बन्धी सभी रचनाओं में भागवत दशम-स्कंध के अध्याय ४६, ४७ की भ्रमरगीत की कथा-वस्तु का आधार लिया गया है। ब्रजवासीदास, नागरीदास, भारतेन्दु आदि के भ्रमरगीतों एवं तत्सम्बन्धी स्फुट पदों पर सूर के भ्रमरगीत का प्रभाव मिला है। भ्रमरगीत की कृष्ण-काव्य में गृहीत कथा के अन्तर्गत उद्धव के ब्रजगमन का हेतु, उद्धव की नन्द यशोदा से भेंट, कृष्ण का संदेश, भ्रमर के प्रति उपालम्भ, गोपी-उद्धव-संवाद, उद्धव की कृष्ण से भेंट, ब्रज-दशा के कथन के क्रमानुसार वस्तु का नियोजन मिलता है। विवेच्य युग के अधिकांश भ्रमरगीतों की कथा-वस्तु केवल गोपी-उद्धव-संवाद तक ही सीमित रही। उनमें प्रारम्भ और अन्त की घटनाओं की प्राय: उपेक्षा मिलती है। इस दृष्टि से भ्रमररगीत का वस्तुगत धरातल उत्तरोत्तर संकुचित होता गया। स्फुट पदों और छन्दों में तो भ्रमरगीत

का रूप गोपियों की विरहानुभूति के चित्रण तथा निर्गुण की अपेक्षा सगुण की श्रेष्ठता के प्रतिपादन तक ही सीमित रह गया।

ग—द्वारका-लीला

भागवत में कृष्ण की द्वारका लीलाओं के अन्तर्गत उनके ऐश्वर्य पूर्ण शासक, बहुनायक, असुरसंहारक और भक्तवत्सल व्यक्तित्वों का विकास हुआ है। वृन्दावनवासी कृष्ण का ललित व्यक्तित्व द्वारका में पूर्णतया ऐश्वर्य मण्डित हो जाता है। द्वारका में वे अलौकिक व्यक्तित्व सम्पन्न वीर पुरुष के रूप में अवतरित होते हैं यहाँ वे अनेक असुरों का संहार और भक्तों का उद्धार करते हैं। द्वारका-लीला की सम्पूर्ण वस्तु के अन्तर्गत केवल कुरुक्षेत्र मिलन का ही प्रसंग ऐसा है जिसके माध्यम से कृष्ण के व्रज-वल्लभ व्यक्तित्व की व्यंजना होती है।

द्वारका-लीला के रुक्मिणी-परिणय और सुदामा-दारिद्रय निवारण के अतिरिक्त अन्य प्रसंग कृष्ण-काव्य में परम्परा से ही कवियों की सहानुभूति नहीं प्राप्त कर सके। कदाचित् इसीलिए इस युग में भी कृष्ण की द्वारका-लीलाओं की वस्तु का समावेश भागवत के अनुवादों रुक्मिणी-हरण तथा सुदामाचरित विषयक रचनाओं में ही मिलता है। साम्प्रदायिक और सम्प्रदाय-मुक्त दोनों ही वर्ग के कवि वृन्दावनवासी कृष्ण की तुलना में द्वारकावासी कृष्ण के प्रति आकृष्ट नहीं हो सके।

रुक्मिणी-मंगल :—कृष्ण-काव्य में राधा और गोपियों के प्रेमादर्श की समकक्षता में रुक्मिणी का प्रेम समादृत न हो सका। इस प्रसंग की कृतियाँ अधिकतर सम्प्रदाय-मुक्त कवियों द्वारा ही रची गयीं। साम्प्रदायिक काव्य में केवल राधावल्लभ-सम्प्रदाय के गोस्वामी रूपलाल कृत 'रुक्मिणीवर-प्रसाद' और रामकृष्ण कृत 'रुक्मिणी-मंगल' नामक रचनाओं का साम्प्रदायिक संदर्भ में विशेष महत्व है क्योंकि माधुर्योपासना की प्रधानता के कारण परम्परा से राधावल्लभ-सम्प्रदाय के काव्य में रुक्मिणी-हरण का प्रसंग पूर्णतया उपेक्षित रहा है।

आलोच्य काल में सम्प्रदाय-युक्त कवियों द्वारा रचित रुक्मिणी-मंगलों की पुष्ट परम्परा मिलती है। इनमें देवराम कृष्ण का 'रुक्मिणी-मंगल' (१६५३ ई०), विष्णुदास का 'रुक्मिणी-मंगल' (१७७७ ई०) हीरालाल का 'रुक्मिणी-मंगल' (१७८२ ई०), ठाकुरदास का **रुक्मिणी-मंगल** (१८०३ ई०), रामलाल का

रुक्मिणी-मंगल (१८०५ ई०), मघ्घू लाल का 'रुक्मिणी-स्वयंवर' (१८०८ ई०), रघुराजसिंह कृत 'रुक्मिणी-परिणय' (१८५० ई०) आदि उल्लेखनीय हैं। सामान्य रूप से रुक्मिणी-हरण विषयक सभी रचनाओं में भागवत की रुक्मिणी-हरण विषयक कथा को स्वीकार किया गया है। कुछ रचनाओं में भागवत की रुक्मिणी विषयक प्रख्यात कथा के किसी प्रसंग के विस्तार की भी प्रवृत्ति मिलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि रुक्मिणी-हरण के प्रसंग की ऐश्वर्यपूर्ण शृंगारी प्रकृति समसामयिक सामन्ती जीवन से तादात्म्य होने के कारण राज्याश्रित कवियों को आकृष्ट करने में विशेष सहायक हुई। इन रचनाओं में रुक्मिणी और कृष्ण को सामन्ती रंग में रंगने के भी यत्न दिखाई पड़ते हैं। वस्तुतः रुक्मिणी-मंगलों के सृजन की प्रेरणा भक्ति प्रसूत न होकर सामन्ती वातावरण में सन्निहित ज्ञात होती है।

सामान्य रूप से सभी रुक्मिणी-मंगलों की कथा में रुक्मिणी का कृष्ण के प्रति पूर्वराग, कृष्ण के नाम रुक्मिणी का पत्र भेजना, देवी का प्रकट होकर रुक्मिणी को आशीष देना, विवाह, कृष्ण द्वारा रुक्मिणी की प्रेम-परीक्षा आदि प्रसंगों का समावेश हुआ है। यद्यपि इन रचनाओं की वर्ण्यवस्तु का मूल भागवत दशम-स्कंध उत्तरार्द्ध में वर्णित रुक्मिणी-हरण की ही कथा है तथापि कथानक के स्वरूप एवं संगठन को दृष्टि में रखते हुए रुक्मिणी-मंगलों के दो वर्ग किए जा सकते हैं। प्रथम वर्ग के अन्तर्गत वे रचनाएँ आती हैं जिनमें भागवत की रुक्मिणी-हरण की कथा का यथावत अनुकरण किया गया है। ऐसी रचनाओं में भागवत के भाषानुवाद ही भागवत के सर्वाधिक निकट हैं। दूसरे प्रकार की रचनाओं में परम्परागत कथा का आधार लेते हुए भी कथानक का विस्तार युगीन पृष्ठभूमि में स्वतन्त्र रूप से किया गया है। रघुराजसिंह कृत 'रुक्मिणी-परिणय' इस परम्परा की प्रतिनिधि रचना है। रुक्मिणी-परिणय में चित्रित वातावरण पूर्णतया सामंती ऐश्वर्य से प्रभावित है। रघुराजसिंह ने कृष्ण और रुक्मिणी के वैवाहिक जीवन के उल्लास का भी चित्रण किया है जिनकी परिणति द्वारका-रास के अन्तर्गत हुई है।

सुदामा-चरित :—भागवत के अनुसार सुदामा संदीपन गुरु के आश्रम में कृष्ण के सहपाठी सखा थे। वे अत्यन्त दीन और दुर्बल ब्राह्मण थे। कृष्ण जब द्वारका में शासन करने लगे तो सुदामा की पत्नी सुशीला ने उनसे आग्रह किया कि वे अपने ऐश्वर्य-सम्पन्न सखा कृष्ण के पास जाकर अपने दारिद्रय का परिहार करें। पत्नी के आग्रह पर कृष्ण को भेंट देने के लिए सुदामा तन्दुल

लेकर उनके पास गये। कृष्ण ने सुदामा को सब प्रकार से सन्तुष्ट करके उनका दारिद्र्य दूर किया। भक्त के दैन्य एवं भगवद्-कृपा की भावभूमि पर अवस्थित होने के कारण यह कथा परम्परा से अत्यन्त लोकप्रिय रही है किन्तु सुदामा-दारिद्रय भंजन की कथा साम्प्रदायिक कृष्ण-काव्य में विशेष समादृत नहीं हो सकी। भक्तिकाल में सूरदास और नन्ददास कृत सुदामा-चरित इस प्रवृत्ति के अपवाद ही कहे जायेंगे।

सम्प्रदाय-मुक्त कृष्णभक्ति-काव्य की परम्परा में नरोत्तमदास कृत 'सुदामाचरित' इस प्रसंग की सर्वाधिक लोकप्रिय रचना रही है। आलोच्य काव्य में भक्त सुदामा की कथा अपेक्षाकृत अधिक लोकप्रिय हुई तथा तत्सम्बन्धी अनेक स्वतन्त्र कथा-प्रबन्धों की रचना हुई। ऐसा प्रतीत होता है कि पददलित एवं शोषित जनता को भक्त सुदामा की कथा सांत्वना प्रदान करती रही होगी। ऐश्वर्य की ही छाया में दारिद्रय पनपता है, कदाचित् इसीलिए सामंती ऐश्वर्य की प्रेरणा से रचे गये रुक्मिणी-मंगलों की परम्परा के समानान्तर युग के दारिद्रय को वाणी देने वाले सुदामा-चरितों की भी रचना को अनुकूल वातावरण मिला। आलोच्यकाल के सुदामाचरितों में खंडन कृत सुदामाचरित (१७२५ ई०), वीर वाजपेयी कृत सुदामा चरित' (१७४१ ई०) जेठामल कृत 'सुदामाचरित' (१७५८ ई०), अमरसिंह कृत सुदामाचरित (सं० १७८८ ई०), गोपाल कृत सुदामा-चरित (१७९८ ई०), प्राणनाथ कृत 'सुदामाचरित' (१८०३ ई०), देवीदास कायस्थ कृत 'सुदामाचरित' (१८०८ ई०), बालकदास कृत 'सुदामा-चरित' (१८३३ई०) हृदयराम कृत 'सुदामाचरित' (१८५० ई०), महराज दास कृत 'सुदामाचरित' (१८६२ ई०), गिरधर लाल द्विवेदी कृत 'सुदामाचरित' (१७८६ ई०) उमादास कृत 'सुदामाचरित' (१८७९ ई०), जयराम कृत 'सुदामाचरित के भजन' (१८९१ ई०) शालिग्राम वैश्य कृत 'सुदामाचरित' (१८९३ ई०) जतिराम कृत 'सुदामा-मंगल (१९वीं शताब्दी) आदि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं।[१] इन रचनाओं में कृष्ण और सुदामा की मैत्री की परम्परागत कथा का ही आधार लिया गया है। इनके वस्तुगत केवल दो प्रयोजन दृष्टिगत होते हैं, प्रथम तो सुदामा के दारिद्रय का अतिरेक और दूसरे कृष्ण का आदर्श मित्र के रूप में चित्रण।

---

[१] हलधर दास कृत सुदामा-चरित्र, भूमिका पृ० ३५-३९

काव्य के सन्दर्भ में कृष्ण-कथा के उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि परवर्ती कष्णभक्ति-काव्य में सामूहिक रूप में उसके प्राय: अधिकांश परम्परागत प्रसंगों को मौलिक एवं अनूदित कृतियों में किसी न किसी रूप में अभिव्यक्ति मिली है। सामान्यतया कृष्णभक्ति सम्प्रदायों की मान्यताओं का प्रभाव अपवादों को छोड़ कर उनके काव्य में वर्णित कृष्णलीलाओं पर देखा जा सकता है। किन्तु वस्तुगत नवीन उद्भावनाओं की दृष्टि से राधा-कृष्ण की वृन्दावन तथा राधा की नंदगाँव बरसाने की लौकिक लीलाएँ ही महत्वपूर्ण हैं। विवेच्य युग में कृष्णलीलाओं का परम्परागत पौराणिक रूप विलुप्त होता गया तथा उनके अन्तर्गत लोकरंजक तत्वों की उत्तरोत्तर प्रखरता होती गई।

काव्य-रूप

प्रत्येक काव्यधारा का उसकी प्रकृति एवं परम्परा के अनुरूप एक अपना निश्चित काव्य-रूप बन जाता है। किन्तु विकास की प्रक्रिया में वैयक्तिक रुचि, प्रतिभा एवं युग चेतना के आधार पर उस धारा के अनेक कवि परम्परा का संवहन करने के साथ ही अन्य काव्य-रूपों का भी प्रयोग करते हैं। समीक्ष्य-युग के अधिकांश कृष्णभक्त कवियों ने कृष्ण-काव्य की परम्परा के अनुरूप गेय पदों और मुक्तकों में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कीं। इसके अतिरिक्त कुछ कवियों ने प्रबन्ध-काव्यों और लीला-नाट्यों की रचना द्वारा नवीन प्रयोग भी किये, यहाँ उन्हीं का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

गीति-काव्य

गीत एक अनुभूति-निष्ठ रचना है। उनमें रचनाकार के भावों का निश्चल एवं तरल रूप अभिव्यक्त होता है। अनुभूति-निष्ठता के कारण गीति-काव्य में आत्माभिव्यक्ति के लिए प्रचुर अवकाश रहता है। शुद्ध-गीत में वस्तु तत्त्व निमित मात्र होता है अथवा होता ही नहीं। वह मूलतः मनोवेग प्रसूत होता है। इसलिए गीतों में अनुभूति के अनुरूप अन्तर्लय संकलित भावान्विति एवं आकार की संक्षिप्तता के गुण स्वभावतः विद्यमान रहते हैं। गीत-रचना की कोई निश्चित पद्धति नहीं होती। भावोच्छलन की, स्वाभाविकता, निश्छलता और तीव्रता का संकलन ही उसके स्वरूप का निर्धारण करता है। शुद्ध-गीत की कसौटी यह है कि वह अनायास ही हमारी अन्तश्चेतना को प्रबुद्ध करके उसमें अपने अनुरूप एक भावलोक का सृजन करने में सक्षम हो। यह सत्य है कि अनुभूति तत्त्व किसी भी गीत का प्राण होता है लेकिन व्यावहारिक क्षेत्र में रचनाकार की अनुभूति की सौन्दर्यपूर्ण अभिव्यक्ति ही उसे अपेक्षित प्रभावान्वित प्रदान करती है। गीतकार को रमणीय कल्पना, भावानुकूल भाषा, तथा उपयुक्त छन्द-विधान की भी आवश्यकता होती है। श्रेष्ठ गीतों में इसलिए अनुभूति प्रवणता के साथ ही साहित्यिक सम्पन्नता भी पायी जाती है। किन्तु

भाषा-सौन्दर्य, छंद-विधान, अलंकार-विन्यास आदि के सभी तत्त्व गीतस्थ अनुभूति की लावण्यता में घुल जाते हैं।

आत्माभिव्यक्ति-मूलक होते हुए भी गीति-काव्य अन्य काव्य-रूपों की तुलना में समानानुभूति के जागरण में अधिक सहायक होता है। गीतस्थ भावलोक सृजन प्रेरणा की शुद्धता तथा मनोवेग की तीव्रता के परिणामस्वरूप हमारी अन्तश्चेतना को अनायास ही आच्छादित कर लेता है। अनुभूति की सर्वोपरिता एवं भाव की एकतानता के कारण गीत में वस्तुतत्व भी भाव संवलित होकर आता है। जहाँ गीतकार वस्तु का संयोजन करता भी है, वहाँ प्रकारान्तर से उसकी भावचेतना ही कार्य करती हुई लक्षित होती है।

कृष्ण-काव्य का विशिष्ट काव्य-रूप

गीति-काव्य कृष्णभक्ति-काव्य का प्रमुख काव्य-रूप है। पौराणिक और कल्पना प्रसूत विविध कृष्णलीलाओं का गीति-काव्य से अत्यन्त पुरातन सम्बन्ध है। कृष्ण-काव्यधारा के कवियों द्वारा रचित गीति-काव्य में आत्माभिव्यक्ति का स्वरूप वैयक्तिक एवं परोक्ष दोनों ही प्रकार का रहा है। किन्तु साम्प्रदायिक भक्ति भावना के संस्कार स्वरूप कृष्णलीला के किसी न किसी पात्र के माध्यम से उन्होंने आत्मानुभूति के चित्रण की पद्धति को अधिक प्रश्रय दिया है। उनके गेय पदों में अनुभूति का तीव्र एवं मर्मस्पर्शी स्वरूप कृष्णलीलाओं के भावलोक को प्रभावोत्पादक बनाने में पूर्ण सक्षम रहा है। कदाचित् इसीलिए साम्प्रदायिक सिद्धान्तों, कृष्णलीलाओं और काव्य-गुणों का सामूहिक रूप में संवहन करते हुए भी कृष्णभक्त कवियों का गीति-काव्य पर्याप्त लोकप्रिय रहा है। कृष्ण-लीलाओं के समानान्तर उसमें लोकतत्त्वों का भी उत्तरोत्तर समावेश होता गया। एक सीमा तक कृष्ण-काव्य को लोक-काव्य के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय बहुत कुछ उसके इसी विशिष्ट काव्य रूप को ही है।

गेय पदों की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

इस युग के सभी पदकारों के आत्मबोध मूलक पदों में उनका अन्तर्जगत प्रतिविम्बित हुआ है। इसके अतिरिक्त विविध कृष्णलीलाओं की प्रख्यात वस्तु भी अनेक पदों में गृहीत हुई है। यह निर्दिष्ट किया जा चुका है कि वस्तु के क्षेत्र में विवेच्य युग के कृष्णभक्ति कवियों की प्रतिभा का सर्वाधिक विकास वृन्दावन तथा राधा की नंदगाँव-बरसाने की लीलाओं के अन्तर्गत हुआ। यद्यपि कुछ कवियों ने वात्सल्य और सख्य भावाश्रित लीलाओं को भी पदों में वर्णित किया, तथापि गीति-काव्य की दृष्टि के माधुर्य लीलाएँ हीं महत्वपूर्ण हैं।

उत्सवपरक रागबद्ध वर्णनात्मक पदों में वस्तु का स्वरूप रूढ़िगत रहा है। इस प्रकार कृष्ण-कथा की काव्य में गृहीत संकुचित परिधि का प्रभाव गीत रचना के क्षेत्र में भी लक्षित होता है।

आलोच्य कृष्ण-काव्य, गीति-रचना की दृष्टि से भक्तिकालीन कृष्ण-काव्य का अवशेष मात्र प्रतीत होता है। इस युग में उसकी परम्परा उत्तरोत्तर क्षीण होती गयी। देव, मतिराम, पद्माकर आदि सम्प्रदाय-मुक्त कवियों का तो गीति-रचना के क्षेत्र में कोई भी योगदान लक्षित नहीं होता। उन्होंने रीति-परम्परा की अलंकरण वृत्ति के प्रभाव स्वरूप गेय पदों की तुलना में मुक्तकों को ही अधिक प्रश्रय दिया। साथ ही उनके प्रभाव स्वरूप अनेक साम्प्रदायिक कवि भी केवल मुक्तककार के ही रूप में दिखायी पड़ते हैं। सहचरिशरण, शीतलदास, हठी आदि कवियों ने विविध मुक्तकों में ही अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की तथा पद-शैली के प्रति उनका दृष्टिकोण पूर्णतया उपेक्षात्मक रहा है।

इस युग का गीति-काव्य मुख्य रूप से कृष्णभक्ति सम्प्रदायों में प्रचलित कीर्तन-पद्धति की प्रेरणा से रचा गया। सामूहिक गान के लिए उपयुक्त होने के कारण कृष्णभक्ति साम्प्रदायों में पद-शैली की उपयोगिता पूर्ववत बनी रही। सभी पदकारों के पदों में शास्त्रीय संगीत का आधार अनिवार्य रूप में लिया गया है। इसके अतिरिक्त लोकधुनों और लोकगीतों की भावधारा का स्पर्श देकर उनके अन्तर्गत लोक-संगीत का भी सम्यक निर्वाह किया गया है। गोस्वामी रूपलाल, चाचा वृन्दावनदास, प्रेमदास, भारतेन्दु आदि के विविध राग-रागनियों में रचित अनेक पदों में शास्त्रीय एवं लोक-संगीत का सुन्दर सामंञ्जस्य मिलता है। कुछ गीतों में तो इन कवियों की अन्तश्चेतना का लोक के साथ इतना घनीभूत रूप में तादात्म्य हुआ है कि उनकी आत्माभिव्यक्ति पूर्ण रूप से गौण पड़ गयी है।

साम्प्रदायिक उत्सवों और कृष्णलीलाओं की पारस्परिक सम्बद्धता गीति-काव्य की दृष्टि से अनुकूल नहीं सिद्ध हुई। सामूहिक गायन के उद्देश्य से रचे जाने तथा निश्चित कथा-सूत्र पर आधारित होने के परिणाम स्वरूप अधिकांश पदों में इतिवृत्तात्मक तत्त्व प्रधान हो गये हैं। राधा-कृष्ण की जन्म-बधाई, वसन्त, होली, साँझी, गोवर्धन-पूजा, दीपदान आदि उत्सवों के पद आत्माभि-व्यक्ति की दृष्टि से अपना कोई मूल्य नहीं रखते। उनकी रचना मात्र परम्परा के निर्वाह हेतु की गयी प्रतीत होती है। ऐसे गीतों में अनुभूति की तीव्रता, संकलित भावान्वित, सौंदर्य-दृष्टि और काव्य-गरिमा का भी पूर्ण अभाव रहा है। गीतामृतगंगा, लाड़सागर आदि रचनाओं के कथात्मक पदों का स्वरुप भी इसीं प्रकार का है। यद्यपि उनमें शास्त्रीय एवं लोक-संगीत के तत्वों का

युगपद् निर्वाह हुआ है, तथापि गीति-काव्य की दृष्टि से उनका विशेष महत्व नहीं है ।

कुछ प्रमुख कवियों का गीति-काव्य

इस युग के कृष्ण-काव्य में यद्यपि गीति-काव्य की परम्परा क्षीण होती गई तथापि धनानन्द, वृन्दावनदेव, हरिराय और भारतेन्दु के अनेक पद गीति-काव्य कीं दृष्टि से श्रेष्ठ भी बन पड़े हैं। शास्त्रीय और लोक-संगीत का समन्वित आधार लेते हुए इन्होंने अपने पदों में संकलित भावान्वित, आत्माभिव्यक्ति एवं कलात्मकता का समुचित रूप में समावेश किया है। आत्मानुभूति तथा कृष्ण-लीलाओं के संक्षिप्त मार्मिक भाव-प्रसंगों का अनुभूत्यात्मक अंकन इनके पदों में सरलतापूर्वक देखा जा सकता है।

घनानन्द के गेय-पदों में निम्बार्कीय माधुर्योपासना के संस्कार स्वरूप आत्माभिव्यंजना का स्वरूप मुख्य रूप से माधुर्य भावाश्रित रहा है। उन्होंने अधिकतर गोपी अथवा सहचरी के माध्यम से आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति की है :—

मुरली मेरेई गुन गावै ।
सुनरी सखी स्याम सुन्दरि क्यों न महारस पावै ।
हौं ही भई बाँसुरी उनकी याही तै अति भावै ।
अतुल प्रेम के भेद भाव को यौं कहि कौन सुनावै ।
याकी अकथ कथा है हेली ह्यां मति गतिहि घुमावै ।
फिरि आनन्दघन पिय त्यों मेरेई प्रान पपीहनि तावै ।[1]

कुछ पदों में वात्सल्य और दैन्य भावों का भी आधार लिया गया है किन्तु उनकी संख्या बहुत कम है। घनानन्द के वात्सल्य-मूलक पदों में अनुभूति की वह तल्लीनता नहीं मिलती जो उनके माधुर्य विषयक पदों में सहज ही अवतरित हुई है। उनके दैन्य भाव का स्वरूप भी निरपेक्ष्य नहीं है, उसकी अभिव्यक्ति अधिक तर गोपी अथवा सहचरी के माध्य से हुई है।

घनानन्द के गेय पदों में उनके मुक्तकों के समान भाषा के लाक्षणिक प्रयोगों तथा संकलित प्रभाव का उत्कृष्ट रूप में समावेश मिलता है। उनके पंजाबी और फ़ारसी मिश्रित पदों में भी शब्द-विन्यास सौरस्यपूर्ण है तथा वह कवि की अनुभूति का संवहन करने में पूर्ण सक्षम रहा है। जैसे :—

---

[1] घनानन्द-ग्रन्थावली. पद २०४

मेडां दिल तैनू लौडै नू क्यों मु मोड़ डाखा

इस वो निमानी नू विरह् सिकैं दा तैनू की परवाह् ।

आनंदघन बडा तिना दा भाग जिना नाल तुसी दो मोह्ब्बत जोड़[१]

घनानंद के सभी पदों में भावतत्व का प्राधान्य मिलता है, कुछ पदों में तो वस्तु तत्त्व निमित्त मात्र प्रतीत होता है। इसलिए उनके पद प्रायः आकार में संक्षिप्त हैं तथा उनमें अनुभूति की तीव्रता, एवं काव्य-गरिमा का युगपद् समाहार हुआ है।

वृन्दावनदेव के गेय पदों का क्रम विविध कृष्णलीलाओं की प्रख्यात वस्तु के अनुरूप नियोजित हुआ है। इसीलिए उनमें निरपेक्षता के साथ कथात्मक एकसूत्रता भी लक्षित होती है। वृन्दावनदेव के गेय पदों का भागवत आधार की दृष्टि से विशेष महत्त्व है। निम्बार्कीय भावधारा के अनुगामी होते हुए भी उन्होंने माधुर्य के अतिरिक्त वात्सल्य और सख्य भावाश्रित कृष्णलीलाओं का भी चित्रण किया है :—

आँगन खेलत बाल गोविन्द ।

इन्द्र नीलमनि वरन स्याम तन, नख शिष आनन्द कंद ।

विथुर रही सिर कुटिल लटूरी मृदु मुसकत मुख चंद ।

घुटुरन चलत किंकिनी नूपुर बाजति मन्दहि मंद ।

थिर हूँ रहति किलकि रेंगत अति निरखि यशोमति नंद ।

वृन्दावन प्रभु अद्भुत लीला गावत चारयो छंद ।[२]

कलात्मक दृष्टि से वृन्दावनदेव के गेयपद उत्कृष्ट कोटि के है। उनमें भाव एवं काव्य-तत्त्वों का सुन्दर सामंजस्य मिलता है।

हरिराय की समस्त रचनाएं यद्यपि गेय पदों में ही रची गयीं, तथापि उत्सव परक होने के कारण गीति काव्य की कसौटी पर उनके बहुत कम पद खरे-उतरते हैं। वे संक्षिप्तता और गेयता के गुणों से युक्त होते हुए भी आत्मानुभूति की दृष्टि से सम्पन्न नहीं कहे जा सकते। वृन्दावनदेव के पदों के सदृश्य हरिराय के पदों में भी कथात्मक एकसूत्रता मिलती है। उनके अनेक पदों में कृष्णलीलाओं की प्रख्यात वस्तु का वर्णनात्मक रूप में समावेश हुआ है। आमाभिव्यंजन

---

[१] घनानंद-ग्रन्थावली पद ५४७

[२] गीतामृत गंगा पृ० २ पद २३

की दृष्टि से हरिराय के पदों में दैन्य एवं विरह सम्बन्धी पद ही महत्व रखते हैं। उनमें भाव को प्रभावोत्पादक रूप में पल्लवित करने की प्रवृत्ति मिलती है :—

हा हा हरि बरि रही आस।
देखोंगी मुख कमल मनोहर, मधुकर बेनु और मंद हास।
विरह बढ़यौ उर रह्यो न जाइ छाई आरति लेत उसास।
अवधि गनति सुधि सबै गवाई, मन कौ मिथ्यौ विवेक बिसवास।
'रसिक-प्रीतम, कौ टरत न चित तै, टरयौ उसी सुबेस बिलास।।[१]

भारतेन्दु के गेयपद भावपूर्ण और सरस हैं। उनके आत्मनिवेदन तथा कृष्णलीला विषयक पदों में गीति-काव्य के तत्त्वों का उत्कृष्ट रूप में समावेश हुआ है। आत्माभिव्यक्ति की दृष्टि से भारतेन्दु के विनय के कुछ पद तो पर्याप्त सफल बन पड़े हैं :—

अहो हरि वह दिन बेगि दिखाओ।
दै अनुराग चरन पंकज को सुत-पितु मोह मिटाओ।
और छोड़ाइ सब जग वैभव नित ब्रजवास बसाओ।
जुगल रूप रस अमृत माधुरी निस दिन नैन पिआओ।
प्रेममत्त ह्वै डोलत चहुँ दिसि तन की सुधि बिसराओ।
निस दिन मेरे जुगल नैन सों प्रेम-प्रवाह बहाओ।।
श्री बल्लभ-पद कमल अमल में मेरी भक्ति दृढ़ाओ।
हरीचन्द को राधा-माधव अपनो करि अपनाऔ।।[२]

कृष्ण-लीला विषयक पदों में उनकी अनुभूति का कृष्ण-लीला के पात्रों की भावनाओं के साथ सुन्दर तदाम्य हुआ है :—

नैना वह छवि नहिंन भूले।
दया भरी चहुँ दिसि को चितवनि नैन कमल-दल फूले।
वह आवनि वह हँसनि छबीली वह मुसकान चितु चोरै।
वह बतरानि मुरनि हरि की वह वह देखन चहुँ कोरैं।
वह धीरी गति कमल फिरावन कर ले गायन पाछे।
वह बीरी मुख बैनु बजावति पीत पिछौरा काछे।
परबस भए फिरत हैं नैना एक छन टरत न टारै।
'हरीचन्द' ऐसी छवि निरखत तन मन धन सब हारै।।[३]

---

१ हरिराय का पद साहित्य, पद सं० ३३१
२ भारतेन्दु-ग्रंथावली पृ० ५६, पद सं० ३६
३ भारतेन्दु-ग्रंथावली पृ० ६० पद स० ५०

सामूहिक रूप से आलोच्य युग का कृष्ण-काव्य, गीति-काव्य की दृष्टि से सम्पन्न नहीं कहा जा सकता, उसमें सहज अन्तःप्रेरणा एवं आत्माभिव्यक्ति के स्थान पर वर्णनात्मकता का प्राचुर्य मिलता है। भारतेन्दु के उपरान्त तो कृष्ण काव्य के अन्तर्गत गीति-काव्य की परम्परा एक प्रकार से समाप्त ही हो गई।

मुक्तक-काव्य

मुक्तक पूर्व और पर से निरपेक्ष्य मार्मिक संवेदना को कलात्मक रूप में अभिव्यक्त करने वाला एक-छंदाश्रित काव्य रूप है। उसमें नैरन्तर्यपूर्ण कथा-प्रवाह नहीं होता, वह अपने में ही पूर्ण होता है। मुक्तक में आत्माभिव्यक्ति का सहज उद्रेक नहीं होता। मुक्तककार की दृष्टि वस्तुनिष्ठ अधिक होती है, साथ ही उसे अपनी रचना को प्रभावयुक्त एवं अर्थ-सम्पन्न भी बनाना पड़ता है। परिणामतः मुक्तक में रचनाकार की चमत्कार वृत्ति ही विशेष रूप से पल्लवित होती है। छंद की सीमित परिधि में ही मुक्तककार को रस, अलंकार, ध्वनि आदि के समस्त उपकरणों को संगुंफित करना होता है। मुक्तक में गीत के सदृश्य अनुभूति और अभिव्यक्ति का तादाम्य नहीं होता। वह अपने में पूर्ण सचेष्ट कला प्रधान छंद-बद्ध रचना है।

आलोच्ययुग में मुक्तक कृष्णभक्ति-काव्य का प्रतिनिधि काव्य-रूप रहा। भक्तिकाल में कृष्ण-काव्यधारा के अन्तर्गत जो लोकप्रियता पद-शैली को प्राप्त थी, इस युग में वही मुक्तकों को प्राप्त हुई। जीवन की खंडित कल्पना एवं उसका चित्रण इसी काव्य-रूप के माध्यम से अधिक सरलता पूर्वक हो भी सकता था। कुछ साम्प्रदायिक कवियों ने तो एक मात्र इसी काव्य-रूप को अपनाया, साथ ही साम्प्रदायिक सिद्धान्तों के उपदेशात्मक कथन हेतु मुक्तक शैली ही सबसे अधिक गृहीत हुई। विषय की दृष्टि से दोनों ही धाराओं के मुक्तकों में भक्ति, शृंगार और नीति के विषय प्रधान रहे हैं, तथा कहीं-कहीं इनका परस्पर अन्तर्भाव भी हुआ है।

मुक्तकों के विविध रूप

शैली की दृष्टि से इस युग के कृष्णभक्ति-काव्य में मुक्तकों के निम्न रूप प्रयुक्त हुए हैं:—

१-शुद्ध-मुक्तक
२-रागबद्ध-मुक्तक
३-वर्णनात्मक-मुक्तक
४-संख्यावाची-मुक्तक
५-वर्णमालाश्रित-मुक्तक
६-छंदाश्रित-मुक्तक
७-ऋतु और उत्सवपरक-मुक्तक
८-दृष्टिकूट-मुक्तक

शुद्ध-मुक्तक :—शुद्ध-मुक्तकों से तात्पर्य ऐसे मुक्तकों से है जिनका स्वरूप पूर्णतया निरपेक्ष्य रहा है। इनके अन्तर्गत राधा-कृष्ण की किसी लीला अथवा उससे सम्बन्धित भाव का संगुफित रूप में चित्रण हुआ है। शुद्ध-मुक्तकों की रचना अधिकतर देव, मतिराम, पद्माकर आदि सम्प्रदाय-मुक्त कवियों के द्वारा हुई। साम्प्रदायिक मुक्तककारों में घनानन्द के मुक्तक भाव और अभिव्यक्ति की दृष्टियों से उच्चकोटि के हैं। जैसे :—

> रूप गुन-आगरि नवेली नेह-नागरि तू,
> रचना अनूपम बनाई कौन विधि है।
> चलन चितौनी बंक भौंहनि चपल हौंनि
> बोलनि रसाल मैन-मंत्रहू कौं सिधि है॥
> अंग अंग केलि कला संपति बिलास धन,
> आनन्द उज्यारी मुख-सुख रंग-रिधि हैं।
> जब-जब देखिये नई सीं पुनि पेखियै यों,
> जानि परी जान प्यारी निकाई की निधि है।[1]

चाचा वृन्दावनदास, किशोरीदास, सहचरिशरण, ललितकिशोरी, भारतेन्दु आदि ने कवित्त और सवैया छंदों के अतिरिक्त दोहे का भी उपदेश कथन एवं सिद्धान्त-निरूपण के प्रसंगों में शुद्ध-मुक्तक के रूप में व्यवहार किया है। किन्तु कलात्मक दृष्टि से इनके कवित्त और सवैया छंद ही महत्वपूर्ण है। दोनों में सिद्धान्त-निरूपण की प्रधानता के कारण कलात्मक सौन्दर्य का प्राय: अभाव मिलता है :—

किशोरीदास

> सब भावन को मुकुटमणि, सहचरि भाव अनूप।[2]
> किशोरदास और न निकटि, सखी भाव तद्रूप॥

चाचा वृन्दावनदास

> नाम द्रवित रसना रहै, हियौ द्रवित रहै प्रेम।
> लोचन नीर द्रवै सदा, कहो रहै तब नेम॥[3]

---

[1] घनानन्द-ग्रन्थावली— पृ० ५३, छंद १६२

[2] सिद्धान्त-सरोवर—पृ० ५६ दो० ६३६

[3] रसपथ-चन्द्रिका पृ० ८ दो० ८०

ललितकिशोरी

वृन्दावन रस माधुरी, दुर्लभ नियम पुरान।
गौर चन्द्र करि कृपा सौं, पतितन कीनी दान ॥[1]

भारतेन्दु

निज अंगीकृत जीव को दसा देखि अति दीन।
क्यों न द्रवत हरि वेग हीं करुणा करन प्रवीन ॥[2]

रागबद्ध-मुक्तक :—इस वर्ग के मुक्तकों में गीत और मुक्तक के तत्वों का समन्वय मिलता है। इनकी रचना केवल साम्प्रदायिक कवियों द्वारा ही हुई। इनमें हरिराय, चाचा वृन्दावनदास, नागरीदास, ललितकिशोरी आदि के रागबद्ध-मुक्तक विशेष महत्व के हैं। इन कवियों ने कवित्त, छप्पय, दोहा, कुण्डलिया आदि छन्दों की रचना संगीत के विविध रागों के अन्तर्गत की है। अपनी रागमयता तथा भावप्रधानता के कारण रागबद्ध-छन्द गीत भी हैं, तथा चमत्कारपूर्ण अभिव्यक्ति एवं विषयपरकता के कारण मुक्तक भी। हरिराय का एक रागबद्ध मुक्तक देखिये :—

राग-ईमन

तन की निकाई वाकी, कही न जाइ मोपै।
जब तें हौं देखि आइ, लागि रही है मन।
है तौ मिलिबे ही जोग, रावरे ही भोगबे कों,
करोंगी उपाय जाइ, पाऊँ जो मुख वचन ॥
मोहि सीख दीजै, मोपै छिनहू न रह्यौ परत,
जहाँ लौं तिहारे ढिग बैठी न देखों धन।
'रसिक-प्रीतम' दूती सांची सोई कहियत,
पिय के काज बीचि डार धन-जीवन ॥[3]

रागबद्ध-मुक्तकों में वस्तु-विन्यास सीमित होते हुए भी अंशतः वर्णनात्मक हो गया है। उनमें गीति और मुक्तक के समन्वय के साथ ही रचनाकारों की दृष्टि लय-विधान पर अधिक रही है।

---

[1] अभिलाष-माधुरी पृ० १२

[2] भारतेन्दु-ग्रंथावली पृ० ३६ दो० १३

[3] हरिराय का पद साहित्य, पद सं० २०६

वर्णनात्मक-मुक्तक :—इस प्रकार के मुक्तक अधिकतर कवित्त सवैया छप्पय, कुण्डलिया आदि विस्तृत छन्दों के अन्तर्गत रचे गये। इनके अन्तर्गत छन्द की सीमित परिधि में कृष्ण-लीला अथवा किसी भाव को पल्लवित करते हुए अपने में एक पूर्ण चित्र सृजन की प्रवृत्ति मिलती है। सम्प्रदाय-मुक्त कवियों द्वारा रचित अधिकांश मुक्तक इसी प्रकार के हैं। घनानन्द और नागरीदास के मुक्तकों में भाव चित्र विशेष प्रभावोत्पादन बन पड़े हैं :—

घनानन्द

रसिक रंगीले भली भाँतिनि छबीले,
घनआनन्द रसीले भरे महा सुखसार हैं।
कृपा-धन-धाम स्यामसुन्दर सुजान माद,
मूरति सनेही बिना बूझें रिझवार हैं।
चाह-आलबाल औ अचाह के कल्पतरु,
कीरति-मयंक प्रेमसागर अपार हैं।
नित हित सगी मन मोहन त्रिभंगी मेरे,
प्राननि अधार नन्दनन्दन उदार हैं॥[१]

नागरीदास

वृन्दावन-कानन में भीर है विमानन की,
देववधू देखि देखि भई हैं मनचला।
बंसी कल गान के वितान धुनि वायु बंध्यौ
रमा लोक लौकित ह्वै भूलि उर अंचला।
द्वै-द्वै बीच गोपिन के ललित त्रिभंगी लाल,
नागरिया पदन्यास बजै छनछलछला।
रास-रंग मंडल अखंड रत भेद हाव,
संग ह्वै भ्रमत मानों मेघ चक्र चंचला॥[२]

इन मुक्तकों में वस्तु एवं भावान्वित का समन्वित रूप बहुत कुछ गीति-काव्य के सदृश्य है तथा उनमें वस्तु एवं अभिव्यंजना का सुन्दर सामंजस्य हुआ है

संख्यावाचक-मुक्तक :—इस युग के साम्प्रदायिक कृष्ण-काव्य में संख्या

---

[१] घनानन्द-ग्रन्थावली—पृ० १५६ छंद ३६

[२] नागर-समुच्चय, रास अनुक्रम के कवित्त

वाचक मुक्तकों की रचना पर्याप्त लोकप्रिय हुई। संख्यावाचक मुक्तकों में एक ही विषय से सम्बद्ध एक ही प्रकार के छन्दों का निश्चित संख्या के अनुसार प्रयोग हुआ है तथा उसी संख्या के आधार पर मुक्तकों का नामकरण भी किया गया है। संख्याश्रित मुक्तक संस्कृत के 'कुलक' मुक्तकों के ही परिवर्तित रूप हैं।

इस युग के कृष्ण-काव्य में संख्याश्रित जिन मुक्तक शैलियों को प्रश्रय मिला, उनमें अष्टक, पचीसी, बत्तीसी, शतक और सतसई प्रमुख हैं। साम्प्रदायिक काव्य में अष्टक शैली सबसे अधिक लोकप्रिय हुई। राधा-कृष्ण, साम्प्रदायिक आचार्यों तथा वृन्दावन, यमुना आदि कृष्णलीलाओं के विविध उपकरणों को लेकर चाचा वृन्दावनदास, नागरीदास, चतुरशिरोमणि लाल, अनन्यअली चन्द्रलाल गोस्वामी आदि कवियों ने अनेक अष्टकों की रचना की।[1] अधिकांश अष्टक साम्प्रदायिक उपासना, पूजा और उत्सवों की प्रेरणा से रचे गये। सभी अष्टकों में प्रत्येक छन्द के अन्तर्गत शीर्षक के अनुरूप ही वस्तु का नियोजन हुआ है। पचीसी और शतक शैली के संख्यावाचक मुक्तक अपेक्षाकृत कम लोकप्रिय हुए। साम्प्रदायिक काव्य में तो सतसई शैली की एक भी रचना का उल्लेख नहीं मिलता। सम्प्रदाय-मुक्त कवियों में केवल मतिराम की ही सतसई अपवाद रूप में प्राप्त होती है। किन्तु वह भी पूर्णतया कृष्णलीलापरक नहीं है।

पचीसी मुक्तकों में नागरीदास कृत 'अरिल्ल-पचीसी', 'पावन-पचीसी', चाचा वृन्दावनदास कृत 'नवनीत चोर पचीसी' आदि कुछ ही रचनाएँ मिलती हैं। इसी प्रकार शतक शैली के भी अन्तर्गत ललितकिशोरी कृत 'युगल-विहार शतक', 'श्रृंगार-शतक', 'वृन्दावन-शतक' और हठी कृत 'राधासुधा-शतक'

---

[1] इन कवियों द्वारा रचित कुछ अष्टकों की नामावली इस प्रकार है—
चाचावृन्दवानदास—वसंताष्टक, कृष्णचरणाष्टक, वृषभानुजाष्टक, यमुनाष्टक, करुणाष्टक, स्वामिनीचरणप्रतापाष्टक, हरिचरण-प्रतापाष्टक. हितकृपाष्टक, हरिवंशाष्टक मथुराप्रतापाष्टक विपनेश्वरी-अष्टक आदि।

नागरीदास:—दोहानन्दाष्टक, भोजनानन्दाष्टक, लग्नाष्टक, अरिल्लाष्टक, फाग-गोकुलाष्टक आदि।

चतुरशिरोमणि लाल—हिताष्टक, श्री हिताष्टक, हरिवंशाष्टक, सुरताष्टक, प्रार्थनाष्टक आदि।

अनन्यअली:—आशाष्टक, चरणाष्टक।

चन्द्रलाल गोस्वामी:—हिताष्टक, यमुनाष्टक।

आदि मुक्तक अपवाद रूप में ही रचे गये। अष्टकों की रचना प्रेरणा जहाँ साम्प्रदायिक पूजा-विधान में सन्निहित है, वहीं पचीसी और शतकों की रचना का प्रयोजन मुख्यता काव्यात्मक रहा है। 'राधासुधा-शतक' शतक शैली की सबसे महत्वपूर्ण रचना है। इसमें कवित्त छंदों के अन्तर्गत राधा के रूप, गुण एवं माहात्म्य का अलंकृत शैली में चित्रण किया गया है।

वर्णमालाश्रित-मुक्तक :—इस प्रकार के मुक्तकों में प्रत्येक चरण वर्णमाला के अक्षर क्रम से प्रारम्भ हुआ है। वर्णमालाश्रित मुक्तक में 'बारहखड़ी' की ही शैली गृहीत हुई, वह भी केवल साम्प्रदायिक काव्य में। बारहखड़ी शैली में रचित मुक्तक रचनाओं में वृन्दावनदास कृत 'बारहखड़ी-भजन-सार-बेली', रामहरि कृत 'ध्यान-रहसि' और ललितकिशोरी कृत 'अभिलाष-माधुरी' में संकलित बारहखाड़ियाँ उल्लेखनीय हैं। बारहखाड़ियों में एक मात्र दोहा छंद ही प्रयुक्त हुआ है :—

ललितकिशोरी

> **ग गा गुलमिहंदी खिली, ओर घोर बहुरंग।**
> **मल्ली चम्पक मोतिया, सोन जुही के संग॥**
> **घ घा घनी सुगन्ध मिलि, सीतल मन्द समीर।**
> **लहरदार वरहान में थिरकत डोलत नीर॥**[1]

रामहरि

> **क का कुँवर किसोरी कमल पद करुनानिधि सुकुमार।**
> **कर मन तिन को आश्रय कौन विलम्ब विचार॥**
> **ख खा खोर सांकरी खिरक में खरी छबीली बाल।**
> **खोर सीख कर केसरी खरे छरे हैं लाल॥**[2]

बारहखड़ियों में रचनाकारों की दृष्टि वस्तु विन्यास एवं कलात्मक सौष्ठव पर न रह कर दोहों के वर्ण क्रमानुसार श्रृंखलाबद्ध नियोजन पर ही रही है।

छंदाश्रित-मुक्तक :—इन मुक्तकों में बहुत लोकप्रिय छंदों का प्रयोग होता है तथा छंदों के ही आधार पर मुक्तकों का नामकरण किया जाता है। इस युग के कृष्ण-काव्य में केवल नागरीदास कृत 'रास के कवित्त' वा 'छूटक के कवित्त'

---

[1] अभिलाष-माधुरी—पृ० ७५

[2] रामहरि-ग्रंथावली—पृ० ५६

ाँदनी के कवित्त', आदि कुछ ही छंदाश्रित मुक्तक प्राप्त होते हैं। छंदाश्रित ौर संख्यावाचक मुक्तकों में छंद-प्रयोग की दृष्टि से पर्याप्त साम्य है। दोनों ी प्रकार की मुक्तक रचनाओं में एक ही छंद आदि से अंत तक व्यवहृत हुआ है। अन्तर केवल इतना है कि संख्यावाचक मुक्तकों का नामकरण उसमें प्रयुक्त छंदों की संख्या के आधार पर हुआ है तथा छंदाश्रित मुक्तकों में शीर्षक छंद के अनुरूप रक्खा गया है।

ऋतु और उत्सवपरक-मुक्तक :—इस प्रकार की मुक्तक रचनाओं में विविध उत्सवों तथा ऋतुओं के अनुसार छंदों का संकलन हुआ है। इस वर्ग के मुक्तक-कारों में चाचा वृन्दावनदास, घनानन्द, नागरीदास, ललितकिशोरी, और भारतेन्दु विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके द्वारा होली, वसन्त, बारहमासा, षटऋतु, साँझी, चैतचाँदनी, हिंडोला-पालना आदि से सम्बन्धित मुक्तक प्रचुर संख्या में रचे गये। इन मुक्तकों में गृहीत वस्तु का स्वरूप प्राय: रूढ़िगत रहा है तथा विविध छंदों में किसी दृश्य-चित्र को संगुम्फित करने की प्रवृत्ति प्रधान रही है।

रागाश्रित-मुक्तक :—ऐसे मुक्तकों का स्वरूप शास्त्रीय एवं लोकगीतों की बहुप्रचलित शैलियों के आधार पर निर्मित हुआ है। नागरीदास, भारतेन्दु, नारायणस्वामी, ललितकिशोरी आदि द्वारा रचित रेखतें, गजलें और लावनियाँ रागाश्रित कोटि के ही मुक्तक हैं।

दृष्टिकूट-मुक्तक :—दृष्टिकूट मुक्तकों में गूढ़ार्थ तथा कष्ट-बोध्य उक्तियों में काव्य-सौंदर्य सन्निहित रहता है। इनमें समाधि भाषा, अलंकार, वक्रोक्ति आदि तत्त्वों के समावेश के कारण शब्दक्रीड़ा की प्रवृत्ति प्रधान रहती है। आलोच्य कृष्ण-काव्य में दृष्टकूट-मुक्तक वृन्दावनदेव, भगवतरसिक, नारायण-स्वामी, और भारतेन्दु द्वारा रचे गये। इन मुक्तकों में परम्परा से पद-शैली को ही प्रश्रय मिला है। उपर्युक्त सभी कवियों के दृष्टकूटों का भी स्वरूप पदात्मक है।[1]

भारतेन्दु के दृष्टिकूट पदों में चमत्कार की प्रवृत्ति सबसे अधिक मिलती है। उनके मानलीला विषयक दृष्टिकूटों में ज्योतिष का आधार लिया गया है। राधा की कृष्ण के प्रति निम्न उद्धृत उक्ति में विभिन्न राशियों के कथन द्वारा ामत्कार की सर्जना की गयी है :—

---

[1] गीतामृत गंगा पृ० ३३ पद ६४, व्रजविहार पृ० २२०, निम्बार्क-माधुरी पृ० ३६२ पद २६

प्यारे जान दैहौं आज ।
कोटिन मकर करो नहिं छाँडों प्राननाथ ब्रजराज ।
मीन-मेष बिनु बात करत तुम कहूँ मिथुन ललचाने ।
धनि-धनि पिय तुम तुल नहिं दूजो सबके घटन समाने ।
करकत हिय बीछी सी बातें सौतिन संग जो कीनी :
तासों राखो लाय हिये अब करि करि अधिक अधीनी ।
तौ वृषभानुराय की कन्या जो अब तुमहिं न छाँडौं ।
बड़ो परब यह पुन्य उदय मोहिं मिलि तुमसों रंग मांडौ ।
वच्छिन होन देउँ नहिं कबहूँ करौं लाख चतुराई ।
हरीचन्द मेरे अयन विराजो सदा अबै बृजराई ।[1]

मुक्तक की इन सभी शैलियों में कवित्त-सवैया और दोहा छंद सबसे अधिक प्रयुक्त हुए हैं। साम्प्रदायिक और सम्प्रदाय-मुक्त दोनों ही धाराओं के कवियों ने अपनी मुक्तक रचनाओं में इन्हीं छंदों को प्रधानता दी है। मुक्तक के कलात्मक सौन्दर्य एवं चमत्कारपूर्ण प्रभाव की दृष्टि से ये छंद अन्य छंदों की तुलना में अधिक उपयुक्त भी सिद्ध हुए।[1] इनके स्वरूप पर आगे छंद-विवेचन के संदर्भ में विचार किया गया है।

प्रबन्ध-काव्य

प्रबन्ध-काव्य में वस्तु-विन्यास सुशृंखलित रहता है। कथा की आधारभूमि एवं रचनाकार के दृष्टिकोण को लक्ष्य में रखते हुए प्रबन्ध-काव्य की दो कोटियाँ निर्धारित की गयी हैं--महाकाव्य और खण्डकाव्य। महाकाव्य का प्रणेता जीवन की समग्रता का चित्रण करता हुआ कथा को व्यापक भावभूमि में ग्रहण करता है, किन्तु खण्डकाव्यकार की दृष्टि सीमित रहती है। वह जीवन के किसी एक पक्ष को ही ग्रहण करता है। प्रबन्धकार वस्तु एवं भाव तत्त्वों का परस्पर अन्तर्भाव करके कथानक को आदि से अंत तक अक्षुण्ण बनाए रखता है। कथानक के बीच-बीच में वह भावाकर्षक एवं रस व्यंजक स्थलों की सर्जना करता हुआ घटनाओं के पूर्वापर सम्बन्ध के प्रति विशेष रूप से सचेष्ट रहता है तथा कथानक के अन्तर्गत उसे गति देने वाले चरित्रों के वहिर्जगत और अन्तर्जगत का उद्घाटन करता है। परिणामतः प्रबन्धकार को वस्तु के सुशृंखलित नियोजन के साथ ही वातावरण की अवतारणा पर भी दृष्टि रखनी

---

[1] भारतेन्दु-ग्रन्थावली, पृ० ४५८, पद सं० ६४

पड़ती है। सफल प्रबन्धकार एक लौकचेता एवं व्यापक अनुभव सम्पन्न कलाकार होता है। उसकी दृष्टि का क्षितिज पर्याप्त विस्तीर्ण एवं संवेदना गम्भीर होती है।

सुश्रृंखलित तथा पूर्वापर सम्बन्ध-युक्त वस्तु-विन्यास को ही प्रबन्ध की कसौटी मान लेने पर विवेच्ययुगीन कृष्णभक्त कवियों द्वारा रचित अनेक रचनाएँ प्रबन्ध की कोटि में आ जायेंगी। साम्प्रदायिक इतिहास तथा चरित्र काव्यों में किशोरीदास कृत 'निजमत-सिद्धान्त', सहचरिशरण कृत 'ललित प्रकाश', चाचा वृन्दावन दास कृत 'हितरूपचरित्र वेलि' और सुबल श्याम द्वारा अनूदित 'ब्रजभाषा चैतन्यचरितामृत' जैसी रचनाएँ श्रृंखलाबद्ध वस्तु योजना की दृष्टि से प्रबन्धात्मक ही कही जायेंगी। किन्तु इन सभी रचनाओं में कृष्ण-लीलाएँ उनकी मुख्य प्रतिपाद्य नहीं हैं। वे वस्तुक्रम के अन्तर्गत सांकेतिक रूप में ही आई है तथा कहीं-कहीं उनका पूर्णतया अभाव रहा है। भागवत के अनुवादों में अवश्य मूल के अनुरूप कृष्णलीलाएँ वर्णित हुई हैं तथा कुछ अनुवादों में सम्पूर्ण कृष्णचरित्र भी विवेचित हुआ है, किन्तु इन्हें रचनाकारों का मौलिक कृतित्व नहीं कहा जा सकता। उनमें प्रबन्ध की काव्योचित गरिमा का पूर्ण अभाव लक्षित होता है। अतएव उक्त रचनाओं की वस्तु में पूर्वापर सम्बन्ध होते हुए भी उन्हें हम हम कृष्णलीला-परक मौलिक प्रबन्ध काव्यों की कोटि में नहीं रख सकते।

इसी प्रकार छद्मलीलाओं, लीला-काव्यों तथा लीला सम्बन्धी विस्तृत वर्णनात्मक पदों में भी प्रबन्ध के तत्व खोजे जा सकते हैं, विशेषकर वे पद अथवा लीला-काव्य जिनमें सामूहिक गेयता की प्रवृत्ति प्रधान है और कथा के विकास पर रचनाओं की दृष्टि नहीं रही है। वर्णनात्मक पदों को एक सीमा तक 'प्रबन्ध-गीत' की संज्ञा दी जा सकती है, किन्तु केवल कथा सूत्र एवं विस्तार को दृष्टि में रखते हुए इन्हें हम प्रबन्ध-काव्य की किसी भी कोटि में नहीं ले सकते।

स्वरूप की दृष्टि से सभी प्रकार के प्रबन्ध न तो महाकाव्य की कोटि में आते हैं और न उन्हें खंडकाव्य ही कहा जा सकता है। ब्रजप्रेमानन्दसागर, ब्रजविलास, रुक्मिणी-मंगलों और सुदामा-चरितों के भी अन्तर्गत उक्त दोनों काव्य-रूपों में से किसी के भी लक्षणों का सम्यक निर्वाह नहीं हुआ है। इनमें रचनाकारों का उद्देश्य कृष्णचरित को वर्णनात्मक रूप देना मात्र रहा है। इस दृष्टि से इन सभी रचनाओं को कथा-प्रबन्ध कहना अधिक उचित प्रतीत होता है।

कृष्ण-लीलापरक कथा-प्रबन्धों का वर्गीकरण

आलोच्य युग के कृष्णलीलापरक कथा-प्रबन्ध-काव्यों के शैली कीं दृष्टि से दो रूप मिलते हैं :—

१- दोहा-चौपाई तथा अन्य छन्दों में रचित अख्यानक शैली के प्रबन्ध ।

२. पद-शैली के कथा-प्रबन्ध ।

आख्यानक शैली के कथा-प्रबन्ध

विविध छन्दों में रचित आख्यानक शैली के कथा-प्रबन्धों के अन्तर्गत मुख्य रूप से प्रेमाख्यानक काव्यों तथा रामचरितमानस के अनुकरण पर कृष्णचरित एवं कृष्ण की विविध लीलाओं को वर्णनात्मक रूप देने की प्रवृत्ति मिलती है । भावधारा की दृष्टि से इस प्रकार के कथा-प्रबन्धों में माधुर्य और एश्वर्यपरक कृष्णलीलाएँ वर्णित हुई हैं । माधुर्य-परक कथा-प्रबन्धों में ब्रज और मथुरा-वासी कृष्ण का चरित वर्णित हुआ है तथा ऐश्वर्य-परक कथा-प्रबन्धों में द्वारिकावासी कृष्ण के भक्त-वत्सल राजन्य रूप का वर्णन मिलता है । स्थूल रूप से वात्सल्य और माधुर्य भावों की साम्प्रदायिक स्वीकृति के प्रभाव स्वरूप प्रथम कोटि के कथा-प्रबन्धों की रचना अपवादों को छोड़ कर प्राय: साम्प्रदायिक कवियों के ही द्वारा हुई तथा ऐश्वर्य परक कथा-प्रबन्ध अधिकतर सम्प्रदाय-मुक्त कवियों के द्वारा रचे गये । परन्तु दानलीला, रासलीला, भ्रमरगीत, रुक्मिणी-हरण और सुदामा दारिद्रय-भंजन के प्रसंग इतने लोकप्रिय और बहु-प्रचलित हो गए कि इनसे सम्बन्धित कथा-प्रबन्ध साम्प्रदायिक और सम्प्रदाय-मुक्त दोनों ही कोटि के रचनाकारों द्वारा समान रूप से रचे गए । दोनों प्रकार के कथा-प्रबन्धों में दोहा-चौपाई की शैली प्रधान रही है, किन्तु ऐश्वर्य परक कथा प्रबन्धों में कवित्त, सवैया, रोला आदि अन्य छंदों का भी प्रयोग हुआ है ।

आख्यानक शैली के कृष्णलीलापरक कथा-प्रबन्धों को उनकी वर्ण्यवस्तु के आधार पर भी वर्गीकृत किया जा सकता है । डा० सियाराम तिवारी ने कृष्णलीलापरक कथा-प्रबन्धों को कृष्णभक्तिमूलक खण्डकाव्य[१] कहते हुए उन्हें रुक्मिणी-हरण विषयक, रासलीला विषयक, दानलीला विषयक, सुदामा-विषयक, कृष्ण-प्रवास सम्बन्धी तथा विविध वर्गों के अन्तर्गत वर्गीकृत किया है । परन्तु कृष्णलीलाओं के विकास क्रम की दृष्टि से उक्त क्रम में इस प्रकार परिवर्तन किया जा सकता है, दानलीला विषयक, रासलीला विषयक कृष्ण-

प्रवास सम्बन्धी, रुक्मिणी-हरण विषयक, सुदामा विषयक और विविध। इनमें दानलीला, रासलीला और कृष्ण-प्रवास सम्बन्धी कथा-प्रबन्ध माधुर्यपरक हैं तथा रुक्मिणी-हरण सम्बन्धी कथा-प्रबन्ध ऐश्वर्यपरक हैं।

काव्य में अभिव्यक्त कृष्ण-कथा के विगत विवेचन में उपर्युक्त सभी प्रकार की प्रबन्धात्मक रचनाओं का उल्लेख किया जा चुका है। अतएव यहाँ उनकी सामान्य प्रवृत्तियों का विवेचन ही अपेक्षित होगा।

माधुर्य-परक-कथा-प्रबन्ध :—इस कोटि के कथा-प्रबन्धों में कृष्ण और गोपियों के प्रेम की अभिव्यंजना ही रचनाकारों का अभिप्रेत रही है। दानलीला विषयक अधिकांश रचनाओं में सूरदास द्वारा वर्णित दानलीला का आधार लिया गया है। इन कथा-प्रबन्धों में मुख्य रूप से कृष्ण द्वारा गोपियों से दही का दान लेने का प्रसंग वर्णित हुआ है। परन्तु वस्तु-नियोजन में लगभग सभी रचनाकारों ने स्वच्छन्दता से काम लिया है। अधिकांश दानलीलाओं में लौकिकता उभर आई है तथा दधि-दान के स्थान पर देह का दान प्रधान हो गया है। दानलीला का प्रख्यात कथावृत्त यद्यपि सीमित है, तथापि रचनाकारों ने उसे नवीन नाटकीय एवं रोचक उद्भावनाओं से अलंकृत किया है।

रासलीला विषयक कथा-प्रबन्धों की वस्तु का स्रोत मुख्य रूप से भागवत पुराण रहा है तथा लगभग सभी रचनाकारों ने भागवत के रासलीला सम्बन्धी अंश 'रासपंचाध्यायी' का ही आधार लिया है। परिणामतः अधिकांश रचनाओं में 'रासपंचाध्यायी' के कथानक का विस्तार देने की प्रवृत्ति मिलती है। रासलीला सम्बन्धी सभी कथा-प्रबन्धों में प्रकृति का एक रूढ़ि के रूप में वर्णन हुआ है, जो आदर्श एवं परम्पराभुक्त है। अनेक रचनाओं में रासलीला की रसचेतना माधुर्य से शृंगार के धरातल पर उतर आई है

कृष्ण-प्रवास सम्बन्धी कथा-प्रबन्ध अधिकतर भ्रमरगीत के नाम से मिलते हैं। इस कोटि की रचनाओं में कथानक को प्रायः स्वतन्त्र ढंग से नियोजित करने की प्रवृत्ति मिलती है तथा अधिकांश रचनाओं में गोपी-उद्धव संवाद के प्रसंग को ही विस्तार देने की प्रवृत्ति पल्लवित हुई है। परिणामतः उनमें अन्योक्ति का निर्वाह और निर्गुण-सगुण का खंडन-मंडन प्रधान हो गया है, जो कहीं-कहीं अत्यन्त साधारण स्तर का लक्षित होता है। विप्रलम्भ शृंगार की अभिव्यक्ति में सक्षम होने के कारण भ्रमरगीत विषयक रचनाओं में रीति प्रभाव भी आ गया है। अलंकृत वर्णनों एवं छन्द-प्रयोग के क्षेत्र में यह प्रभाव सर्वाधिक मात्रा में लक्षित होता है। परन्तु भ्रमरगीत के प्रख्यात कथावृत्त का आधार लेकर रचे गये प्रायः सभी कथा-प्रबन्धों में प्रबन्धत्व का निर्वाह बड़ी

कुशलता के साथ हुआ है। कुछ कवियों ने भ्रमर का प्रवेश नहीं किया है, परन्तु सामान्यता भ्रमर का प्रवेश एक काव्यरूढ़ि के रूप में हुआ है।

ऐश्वर्यपरक कथा-प्रबन्ध :—इस कोटि के कथा-प्रबन्ध रुक्मिणी-परिणय और सुदामा दारिद्रय-भंजन की कथाओं को लेकर रचे गये। कृष्ण-कथा के स्वरूप विश्लेषण के संदर्भ में हम संकेत कर चुके हैं कि इनकी रचना में साम्प्रदायिक कवियों की अपेक्षा सम्प्रदाय-मुक्त कवियों का अधिक योग रहा है। रुक्मिणी और सुदामा सम्बन्धी सभी कथा-प्रबन्ध सुखान्त प्रकृति के हैं।

रुक्मिणी-परिणय की कथा को लेकर रचे गये कथा-प्रबन्ध स्वरूप की दृष्टि से मंगल-काव्यों की कोटि में आते हैं। बंगला में रचित मंगल-काव्यों में मूलतः किसी देवी अथवा देवता की पूजा भावना को उत्कर्ष देने की प्रवृत्ति मिलती है किन्तु हिन्दी भक्तिकाव्य की परम्परा में जो मंगल-काव्य रचे गये उनके अन्तर्गत मंगल शब्द विवाह विषयक रचनाओं के लिए रूढ़ रूप में प्रयुक्त हुआ है। रुक्मिणी-हरण की कथा में कृष्ण द्वारा रुक्मिणी के मंगल का भाव सन्निहित है, कदाचित् इसीलिए इस विषय की अधिकांश रचनाएँ 'रुक्मिणी-मंगल' नाम से प्राप्त होती हैं। इसके अतिरिक्त 'रुक्मिणी-परिणय' रुक्मिणी-हरण', रुक्मिणी-व्याहलो' आदि नाम से भी इस परम्परा की रचनाएँ मिलती हैं, जिनका उल्लेख कृष्ण-कथा के प्रसंग में किया जा चुका है।

आलोच्यकाल के सुदामाचरितों में खंडन कृत सुदामाचरित (१७२५ ई०), वीर वाजपेयी कृत सुदामाचरित (१७४१ ई०), जेठमल कृत सुदामाचरित (१७५८ ई०), अमरसिंह कृत सुदामाचरित (सं० १७८८ ई०), गोपाल कृत सुदामाचरित (१७९८ ई०), प्राणनाथ कृत सुदामाचरित, (१८०१ ई०), देवीदास कायस्थ कृत सुदामाचरित (१८०८ ई०), बालकदत्त कृत सुदामाचरित (१८३३ ई०) हृदयराम कृत सुदामाचरित (१८५० ई०), महाराजदास कृत सुदामाचरित (१८६२ ई०), गिरधरलाल द्विवेदी कृत सुदामाचरित (१७८६ ई०) उमादास कृत सुदामाचरित (१८७९ ई०), जयराम कृत सुदामाचरित के भजन (१८९१ ई०), शालिग्राम कृत सुदामाचरित (१८९३ ई०), जतिराम कृत सुदामा-मंगल (१९वीं शताब्दी) आदि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं।[1]

दोनों ही प्रकार के ऐश्वर्यपरक कथा-प्रबन्धों में रुक्मिणी और सुदामा की भागवत की प्रख्यात कथाओं का ही आधार लिया गया है। इनमें वर्णित

---

[1] हलधरदास कृत सुदामाचरित्र, भूमिका पृ० ३५-३९

वातावरण अधिकतर सामंती ऐश्वर्य से प्रभावित रहा है। रघुराजसिंह कृत रुक्मिणी-परिणय' में रुक्मिणी और कृष्ण की प्रेमकथा तो निमित रूप में ही ग्रीत हुई है। कवि का मुख्य उद्देश्य सामन्ती ऐश्वर्य का चित्रण करना ज्ञात होता । इन कथाप्रबन्धों में छंद-प्रयोग की दृष्टि से प्राय: अनेकरूपता मिलतीं हैं। नके अन्तर्गत दोहा-चौपाई के अतिरिक्त सवैया, छप्पय, कवित्त, आदि वर्णनात्मक छंदों का भी प्रयोग हुआ है। रुक्मिणी-मंगलों में शृंगार और सुदामा-चरितों में करुण रसों की अभिव्यक्ति हुई है। दोनों ही प्रकार के कथा-प्रबन्ध व्रजलोक संस्कृति एवं भक्ति-भावना से सर्वथा शून्य हैं। परिणामत: अपवाद रूप में कुछ सुदामा-चरितों को छोड़ कर उनमें वर्णित कथा माधुर्य परक कथा-प्रबन्धों के ादृश्य मर्मस्पर्शी नहीं बन पाई है।

दद-शैली के कथा-प्रबन्ध

इस वर्ग के कथा-प्रबन्धों में वृन्दावनदेव कृत गीतामृतगंगा और चाचा न्दावनदास कृत लाड़सागर उल्लेखनीय हैं। इन दोनों ही रचनाओं में राधा-ष्ण की वात्सल्य और माधुर्य लीलाएँ पदों के अन्तर्गत वर्णित हुई हैं।

गीतामृत गंगा :—यह रचना चौहद घाटों में विभाजित है तथा उसका योजन भक्तिरस से भक्तों के मानस को अभिसिंचित करना बताया गया है:—

वृन्दावन गिरि तें चली रस की उठत तरंग।
करुहु स्नान भक्ति मन इहि गीतामृत गंगा॥

गीतामृत गंगा का प्रतिपाद्य जन्म से लेकर विवाह संस्कार तक राधा-ष्ण की विविध लीलाओं का वर्णन है। प्रत्येक घाट कृष्ण की एक लीला से म्बद्ध होने के कारण अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखता है। किन्तु कवि ने लीलाओं विकास क्रम में आन्तरिक सम्बन्ध स्थापित करके रचना को प्रबन्धात्मक रूप ा चाहा है। इसके अन्तर्गत व्रजलोक संस्कृति, सामाजिक परम्पराओं, राधा-ष्ण के रति-विलास, कृष्ण-तीर्थों के महत्त्व के वर्णन के साथ कवि ने अपनी क्ति भावना का सफल प्रकाशन किया है।

सामान्यतया गीतामृत गंगा में माधुर्य भाव ही प्रधान है किन्तु प्रथम घाट अन्तर्गत ग्रन्थ-रचना का प्रयोजन बताते हुए कवि ने कृष्ण की वाल-लीलाओं प्रसंगों में वात्सल्य भाव की भी अभिव्यक्ति की है। अधिकांशत: निम्बार्कीय नाकारों ने अपनी साधना के सिद्धान्तानुसार कृष्ण-चरित के माधुर्य पक्ष के क्ष वात्सल्य भाव की उपेक्षा की है। इस दृष्टि से गीतामृत गंगा का निम्बार्कीय जभाषा कृष्ण-काव्य में महत्वपूर्ण स्थान है।

गीतामृत गंगा की प्रबन्ध-योजना में राधा-कृष्ण, गोपी-कृष्ण और गोपियों के परस्पर वार्तालाप के प्रसंग में कथोपकथनों की सुन्दर योजना हुई है। समस्त रचना में कवि की भाषा व्रजभाषा के लालित्य का सरलता और स्वच्छन्दता-पूर्वक वहन करती हुई मिलती है। कवि ने व्रजभाषा के स्थानीय शब्दों के अतिरिक्त पंजाबी, मारवाड़ी, मराठी, और बँगला शब्दों का भी सफलतापूर्वक प्रयोग, किया है।

लाड़सागर :—मुख्य रूप से पद-शैली में रचित इस प्रबन्ध काव्य में राधा-कृष्ण के माधुर्य भाव को वात्सल्य के बिन्दु से विकसित करके उनके पाणिग्रहण संस्कार की भूमिका में पर्यवसित किया गया है। लाड़सागर की सम्पूर्ण वर्ण्यवस्तु राधा-बालविनोद, कृष्ण-बालविनोद, विवाह-उत्कण्ठा, कृष्ण-सगाई, कृष्ण प्रति जसुमति शिक्षा, विवाह-मंगल, लाड़िली जू कौ गोनाचार, लाल जू को मेहिमानी को बरसाने जाइबो। श्री व्रजविनोद राधा-छवि सुहाग, जसुमति-मोद प्रकाश और राधा-लाड़-सुहाग शीर्षकों के अन्तर्गत वर्णित हुई है। पद तथा लोकगीतों की शैली में रचे जाने के कारण लाड़सागर के कथाप्रवाह में शिथिलता आ गयी है। व्रजप्रदेश की लोकरीतियों तथा वातावरण के चित्रण में उलझ कर कवि कथा-तन्तु को विकसित करना भूल जाता है। लाड़सागर के विविध प्रसंगों से सम्बन्धित अनेक पदों की वस्तु अपने में पूर्ण है। उनका कथा विकास में कोई प्रत्यक्ष योग नहीं दिखाई पड़ता।

दो कथा-प्रबन्ध : ब्रजप्रेमानन्दसागर और ब्रजविलास

व्रजप्रेमानन्दसागर :—चाचा वृन्दावनदास कृत व्रजप्रेमानन्दसागर कृष्ण-काव्यधारा का प्रतिनिधि कथा-प्रबन्ध है। इसकी कथावस्तु का विकास ६८ लहरियों में हुआ है जो सागर के रूपकत्व के अनुरूप संख्या क्रमानुसार नियोजित हुई हैं। इन लहरियों में राधा, कृष्ण की गोकुल-वृन्दावन और नन्दगाँव-बरसाने में सम्पन्न होने वाली विविध लीलाओं का वर्णन हुआ है। सभी लहरियों के अन्तर्गत वर्णित लीलाएँ अपने में पूर्ण हैं। अधिकतर एक लहरी के अन्तर्गत एक ही लीला वर्णित हुई है किन्तु माखन-चोरी, राधा-कृष्ण विवाह जैसी कुछ लीलाओं का एकाधिक लहरियों में भी विस्तार हुआ है। सभी लहरियों में वर्णित लीलाओं में पूर्वापर सम्बन्ध निर्धारित किया गया है।

ब्रजप्रेमानन्दसागर में राधा-कृष्ण की लीलाओं के अन्तर्गत उनसे सम्बन्धित पौराणिक स्रोतों का आधार केवल नाममात्र को लिया गया है। चाचा जी की सूक्ष्म अनुभव शक्ति एवं लोक-दृष्टि के संश्लेष से राधा-कृष्ण की अधिकांश

लीलाओं का विकास ब्रज-लोकजीवन की भूमिका में हुआ है। ब्रज-लोकजीवन का इतना सूक्ष्म पर्यवेक्षण एवं कृष्णलीलाओं के धरातल पर उनका रसात्मक अंकन सम्पूर्ण कृष्ण-काव्य में अन्यत्र नहीं मिलता। राधा-कृष्ण की शैशव एवं किशोर लीलाओं के अन्तर्गत ब्रज के लोकोत्सवों, धार्मिक विश्वासों, संस्कारों आदि का अत्यन्त सजीव चित्रण ब्रजप्रेमानन्दसागर में हुआ है। यद्यपि उसका सूर द्वारा वर्णित ब्रजलोक संस्कृत से पर्याप्त साम्य है तथापि सम्पूर्ण कथा के अवान्तर तत्त्वों, भक्ति के विविध भावों, दार्शनिक अभिव्यक्तियों, काव्यगुणों आदि की सापेक्ष्यता में लोक संस्कृति का चित्रण सूर का प्रमुख उद्देश्य नहीं कहा जा सकता। वे लोकजीवन की झलक देकर अन्त में भक्ति के धरातल पर उतर आते हैं। इसके विपरीत ब्रजप्रेमानन्दसागर में राधा-कृष्ण की लीला-भूमि ब्रज के लोकजीवन की विस्तृत झाँकी प्रस्तुत करना चाचाजी का मुख्य उद्देश्य रहा है।

ब्रजप्रेमानन्दसागर में राधा-कृष्ण की विविध लीलाओं के अन्तर्गत वात्सल्य शृंगार, करुण, अद्‌भुत और हास्य रसों की निर्झरिणी प्रवाहित हुई है। राधा-वल्लभीय रस-साधना के संस्कार स्वरूप अलौकिक लीलाओं के प्रति चाचाजी का आकर्षण नहीं दिखाई पड़ता। जहाँ कहीं उनका वर्णन हुआ भी है, जहाँ चाचा जी की लोक-सुलभ कल्पना के स्पर्श से वे रसानुभूति की उपकारक ही सिद्ध हुई हैं। ब्रजप्रेमानन्दसागर का लोकनिष्ठ भावलोक उनसे विदीर्ण नहीं होने पाया है। इतिवृत प्रधान होने के कारण ब्रजप्रेमानन्दसागर में काव्य सौष्ठव का आंशिक रूप में ही समावेश हो सका है। किन्तु वातावरण सृजन और रूप-चित्रण के प्रसंगों में उपमा, उत्पेक्षा, रूपक, सन्देह, आदि बहुप्रचलित अलंकारों का स्वाभाविक रूप में समावेश हो गया है। श्रावण-तृतीया के अवसर पर क्रीड़ारत राधा और उसकी रूपवती सखियों के सामूहिक सौन्दर्य का एक दृश्य देखिये :—

सज-सज आई सब जु सहेली। गावत मंगल भई जु भेली ॥
तन. साजा मन अधिक उमाह। तीज खेल कौ अति उत्साह ॥
अति लड़ि आगे लै सब चली। सोभित करी भानुपुर गली ॥
किधों अद्‌भुत सागर अनुराग। किधों चल्यो पगनि रूप की बाग ॥
अद्‌भुत सिसु लीड़त जु एह। किधो रूप घन आवनि सदेह ॥
आसि बानिक सौं गवनी लगी। जो देखियत तीज सुख फली ॥
प्रेम सरोवर तट अति कमनी। मनमथ को मन मोहनि अवनि ॥
तहाँ हिंडोरो निर्मित कियो। मनों अवनि. चैतनि हियो ॥[1]

---

[1] ब्रजप्रेमानन्दसागर पृ० ६६

ब्रजलोक संस्कृति के व्यापक पर्यवेक्षण, पात्रों के मनोवैज्ञानिक चित्रण एवं कथावस्तु के रोचक संयोजन की दृष्टि से ब्रजप्रेमानन्दसागर कृष्ण-काव्यधारा का प्रतिनिधि कथा-प्रबन्ध है।

ब्रज विलास :—ब्रजविलास में सूरसागर और भागवत की मथुरा तक की कृष्णलीलाओं का समन्वित रूप में समावेश हुआ है। ब्रजवासीदास ने ब्रज-विलास की सम्पूर्ण वस्तु को विविध लीलाओं के अन्तर्गत विभाजित किया है। यद्यपि प्रत्येक लीला अपने में पूर्ण है, तथापि उनका पूर्वापर सम्बन्ध भी निर्धारित किया जा सकता है।

ब्रजविलास की कृष्ण-कथा में लौकिक और अलौकिक कृष्णलीलाओं को समान महत्त्व मिला है। मुखरूप से सूरसागर तथा गौणरूप में भागवत का आधार लिए जाने के कारण ब्रजविलास में उसकी भक्ति-परक और दार्शनिक अभिव्यक्तियों को भी प्रश्रय मिला है। किन्तु कथा के सदृश्य उनका स्वरूप भी अनुकरणात्मक ही रहा है। प्रबन्ध की मौलिक कल्पना एवं वस्तु के स्वतन्त्र विकास का ब्रजविलास में सर्वथा अभाव है। इसमें चित्रित ब्रजलोक संस्कृति का स्वरूप भी युग निरपेक्ष्य और पुरातन है, ब्रजविलास में ब्रजप्रेमानन्दसागर के सदृश्य समसामयिक ब्रजलोक संस्कृत का व्यापक एवं सूक्ष्म चित्रण नहीं मिलता। भागवत और सूरसार में वर्णित कृष्णलीलाओं की प्रख्यात कथावस्तु को ही ब्रजवासीदास ने ब्रजविलास में मुख्य रूप से ग्रहण किया है तथा उन्हें मौलिक भावनाओं से अलंकृत करने की चेष्टा नहीं मिलती।

अन्य कथा-प्रबन्ध :—अठाहरवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों में उल्लिखित कृष्णलीलाओं के अतिरिक्त कृष्णचरित के अन्य प्रसंगों को भी लेकर कथा-प्रबन्धों की रचना प्रवृत्ति विकसित हुई। इस प्रकार की प्रबन्धात्मक रचनाएँ भक्ति प्रेरित नहीं हैं, तथा उनमें कृष्णचरित को वर्णनात्मक रूप देने का यत्न मात्र मिलता है। उनकी प्रेरणा भागवत, महाभारत, गीता आदि कृष्णचरित विषयक रचनाओं में लक्षित होती है। अठारहवीं शताब्दी के इस कोटि में कथा-प्रबन्धों में राजसिंह का विलास (सं० १६६३), क्षेमकरन मिश्र का कृष्ण-चरितामृत (सं० १७७१) वीरवर कायस्थ का कृष्णचन्द्रिका (सं० १७७७), रामप्रसाद का कृष्णचन्द्रिका (सं० १७७६), जगदीश का माघ के शिशुपालवध का अनुवाद, (सं० १७८०) मेदिनीलाल मल्ल का 'श्री कृष्ण प्रकाश' (सं० १७६०), सूरति मिश्र का कृष्ण-चरित (सं० १७६४) उल्लेखनीय हैं। कृष्ण-चरित्र विषयक कथा-प्रबन्धों की यह परम्परा उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक चली आती है। उन्नीसवीं शताब्दी के इस परम्परा के कथा-प्रबन्धों के कवि

चन्ददास का कृष्ण-विनोद (सं० १८०७), साहबसिंह का कृष्णविलास (सं० १८०८), अखैराम का 'कृष्णचन्द्रिका' (सं० १८११), विक्रमादित्य का 'हरि-भक्तिविलास' (सं० १८२८) मंचित का कृष्णायन (सं० १८३६), देवदत्त का वीरविलास (सं० १८१८), गुमान मिश्र का कृष्ण-चन्द्रिका (सं० १८३८) राधाकृष्ण का 'कृष्णचन्द्रिका' (सं० १८५०), जयसिंह का 'कृष्ण-तरंगिणी (सं० १८७३), राय विनोदीलाल का कृष्णविनोद (सं० १८७६,) रघुबरदास का 'कृष्णचरितामृत' गीता विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन सभी में अधिकांश काव्यों के कथानक का आधार श्रीमद्भागवत रहा है, किन्तु प्रत्येक कवि ने अपनी प्रतिभा द्वारा उसका मौलिक रूप में ग्रंथन करके कृष्ण-चरित्र को चित्रित किया है।[१]

लीला-नाट्य

लीला-नाट्य काव्य और नाटक के तत्त्वों से समन्वित एक प्रबन्धात्मक काव्य-रूप है। इसका स्वरूप पद्यमय होता है तथा कथावस्तु का संगठन नाटकीय पद्धति पर कथनोपकथनों के द्वारा किया जाता है। अभिनेय तत्त्वों के समावेश के लिए इनके बीच-बीच में वार्त्ता का भी प्रयोग मिलता है। कृष्ण-काव्यधारा में लीला-नाट्यों की रचना परम्परा से पर्याप्त लोकप्रिय रही है। कृष्णलीलाओं की वस्तु एवं भावधारा को लोक-सुलभ बनाने में लीला-नाट्यों ने पर्याप्त योग दिया हैं।

आलोच्य युग में कृष्णलीलाओं पर आधारित लीला नाट्यों की रचना प्रचुर मात्रा में हुई। चाचा वृन्दावनदास, नारायणस्वामी, और ललित सखी इस युग के प्रमुख लीला-नाट्यकार हुए। कथावस्तु की दृष्टि से इनके द्वारा रचित लीला-नाट्यों के दो रूप प्राप्त होते हैं। प्रथम प्रकार के लीला-नाट्य रासलीला, पनघट-लीला, दानलीला, माखन-चोरी लीला तथा विविध लोकोत्सवों की परम्परागत वस्तु को लेकर रचे गये तथा दूसरे प्रकार के लीला-नाट्यों में रचनाकारों की वस्तु विषयक मौलिक उद्भावनाएँ मिलती हैं। इस प्रकार के लीला-नाट्यों की रचना सामाजिक पृष्ठभूमि में हुई है तथा इनमें वर्णित लीलाओं का कोई पौराणिक आधार नहीं मिलता। दोनो ही प्रकार के लीला-नाट्यों में कृष्ण अथवा राधाके छद्मवेश धारण के प्रसंगो की भी योजना हुई है।

---

[१] रीतिकाल के प्रमुख प्रबन्ध-काव्य पृ० ११५-११८।

लीला-नाट्यों का उत्स मध्ययुग के रासलीला नाटकों में मिलता है किन्तु विवेच्य युग में रचित लीला-नाट्यों का नामकरण उनमें वर्णित विविध लीलाओं के आधार पर हुआ है। लीलानाट्यों के स्वरूप निर्माण में रचनाकारों की दृष्टि उनमें लोकरंजक तत्वों के समावेश पर विशेष केन्द्रित रही हैं। लीला-नाट्यों की रचना विशुद्ध काव्य के प्रयोजन से नहीं हुई है। उनका स्वरूप नाटकों की शैली पर निर्मित हुआ है। इनमें घटनाओं के आरोह-अवरोह, संवाद योजना तथा कुतूहल के विविध तत्त्वों का समावेश लीला-नाट्यों की अभिनयात्मक प्रकृति के प्रमाण हैं। अभिनय की दृष्टि से उपयुक्त बनाने के प्रयोजन से ही इनमें पद्य के साथ वर्ता का भी प्रयोग हुआ है।

लाड़सागर के पदों में वर्णनात्मकता के साथ ही संवादों की भी सुन्दर योजना हुई है। संवादों के माध्यम से चाचाजी ने लाड़सागर में प्रबन्धोचित नाटकीय तत्त्वों का समावेश किया है। पात्रों के चरित्रों को भी उभारने में लाड़सागर के कथोपकथन पर्याप्त सीमा तक सहायक हुए हैं। सम्पूर्ण रचना में आदि से अन्त तक प्रेम की अजस्र धारा प्रवाहित हुई है। इस दृष्टि से लाड़सागर के प्रबन्धत्व का आधार बहुत कुछ उसकी भावधारा को माना जा सकता है।

लीला-नाट्यों में गृहीत अधिकांश लीलाएँ शृंगारपरक हैं, किन्तु चाचा वृन्दावनदास, नारायणस्वामी और ललित सखी के लीला-नाट्यों में राधा-कृष्ण की वात्सल्य लीलाओं का भी आधार लिया गया है, इनमें भी माखन-चोरी लीला सबसे अधिक वर्णित हुई है। रचनाकारों ने उसके प्रख्यात कथानक को अपने ढंग से परिवर्तित तथा मौलिक उद्भावनाओं से अलंकृत करके नियोजित किया है। ललित सखी कृत 'कहानी-रहसि' इस युग के लीला-नाट्यों की महत्वपूर्ण कड़ी है। इसके अन्तर्गत राधा और उसकी माता कीर्ति का रोचक वार्तालाप दोहा और कवित्त छंदों के अन्तर्गत वर्णित हुआ है। राधा अपनी माता से कहानी कहने का आग्रह करती है। कीर्ति, राधा को उसके जन्मोत्सव के समय की उल्लास एवं अनुराग व्यंजक विविध घटनाओं को सुनाती है। राधा का प्रश्न दोहे में तथा कीर्ति का उत्तर कवित्त छंदों में वर्णित हुआ है।

छद्मलीलाओं की वस्तु का विश्लेषण करने पर उनमें भी अभिनेय तत्त्व प्रचुर मात्रा में मिल जाते हैं। इनके अन्तर्गत नियोजित कथोपकथन कथावस्तु के नाटकीय संयोजन में विशेष सहायक हुए हैं। इस दृष्टि से छद्म-लीलाओं की भी रचना-प्रेरणा लोक-नाट्यों में सन्निहित ज्ञात होती है। राधा-कृष्ण की दानलीला, पनघटलीला, मानलीला, रासलीला आदि के प्रख्यात कथानकों

पर आधारित छद्मलीलाओं को लेकर रचे गए लीला-नाट्यों में कथावस्तु और पात्र योजना का एक रूढ़िबद्ध विधान मिलता है। राधा, कृष्ण, राधा की सखियों और ग्वाल-सखाओं के कथोपकथनों के बीच इन लीलाओं का कथानक विकसित हुआ है। इनमें वस्तु का संयोजन आदि से अंत तक जिज्ञासा एवं रोचकता पूर्ण रहा है, तथा राधा-कृष्ण के मधुर मिलन में ही अधिकांश लीला-नाटयों की समाप्ति हुई है। सभी लीला-नाट्यों के अन्तर्गत अधिकतर दोहा, सोरठा, चौपाई, रोला और कवित्त छंदों का प्रयोग हुआ है। उन्नीसवीं शती में नारायणस्वामी द्वारा रचित लीला-नाट्यों में लावनी, रेखता गजल आदि छंद शैलियों का भी प्रयोग मिलता है। इन छंदों के समावेश से यद्यपि लीला-नाट्यों में लोकरंजक तत्वों की अभिवृद्धि हुई तथापि उनकी भक्तिनिष्ठ संवेदना को पर्याप्त आघात पहुँचा।

इस प्रकार स्पष्ट है कि विवेच्य कृष्णभक्ति-काव्य में काव्य-रूपों के प्रयोग में अनेकरूपता तो विकसित हुई, किन्तु मुक्तकों को छोड़ कर सभी के अन्तर्गत वर्णनात्मक एवं लोकरंजक तत्वों की उत्तरोत्तर प्रधानता होती गयी। इस युग में भक्तिकाल के गेय पदों का स्थान मुक्तकों ने ले लिया। अपवादों को छोड़कर अधिकांश रचनाकारों के गेय पदों में भक्तियुगीन गीति-काव्य का वैभव सुरक्षित नहीं रह सका है। उन पर लोकगीतों की भावधारा एवं शैली का प्रभाव बढ़ता गया जिसके परिणामस्वरूप उनमें वर्णनात्मक तत्वों का प्राचुर्य हो गया। कथा-प्रबन्धों और लीला-नाट्यों की प्रकृति तो पूर्णतया वर्णनात्मक है। अस्तु, काव्य-रूपों की यह अनेकरूपता कृष्णभक्ति-काव्य के लिए प्रतिकूल ही सिद्ध हुई। इनके अन्तर्गत उसकी आत्मा सुरक्षित न रह सकी।

● ●

चित्रण-कला

अपने व्यापक अर्थ में कला रचनाकार के सम्पूर्ण आत्म की अभिव्यक्ति है। कलाकार के अन्तर्जगत से उसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। उसके भावलोक का सौंदर्यपूर्ण अभिव्यंजन ही कला का प्रयोजन है। इसके विपरीत संकुचित अर्थ में कला का उद्देश्य मात्र चमत्कारपूर्ण अभिव्यक्ति रह जाता है तथा उसका क्षेत्र अभिव्यंजना के विविध प्रसाधनों तक ही सीमित रहता है। कला के इन दोनों अर्थों के अनुरूप काव्य-रचना और उनके मूल्यांकन की परम्पराएँ भी मिलती है। किन्तु यहाँ कला का स्थूल अर्थ ग्रहण करते हुए समालोच्य कृष्णभक्ति-काव्य के अन्तर्गत दृश्य-चित्रण, प्रकृति-चित्रण तथा उक्ति-वैचित्र्य और अलंकार-विधान की सामान्य प्रवृत्तियों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

दृश्य-चित्रण

समालोच्य कृष्णभक्ति-काव्य में जिस प्रकार कृष्णलीलाओं में पौराणिक तत्वों का अभाव मिलता है, उसी प्रकार कृष्णलीलाओं के पुराणाश्रित दृश्यों के चित्रण की प्रवृत्ति भी गौण पड़ गई। राधा-कृष्ण की विविध लीलाओं में लौकिक एवं काल्पनिक तत्वों की प्रधानता अधिकांश कवियों द्वारा चित्रित दृश्यों में भी अभिव्यक्ति हुई है। उन्होंने राधा-कृष्ण की लीलाओं के जो दृश्य चित्रित किये हैं उनमें कल्पना का आधार प्रमुख है। फिर भी भागवत का प्रत्यक्ष आधार लेकर रचे गये काव्यों में अनुकरणशीलता की प्रवृत्ति प्रधान रही है। भागवत में वर्णित दृश्यों और रूप-चित्रों के सौंदर्य से प्रभावित होकर भी कुछ कवियों ने स्फुट रूप में उनका आधार लिया है। इस प्रकार के दृश्य एक प्रकार से रूढ़ कहे जायेंगे क्योंकि कवियों ने उन्हें परम्परा से ग्रहण किया है। इस सम्बन्ध में रास का उदाहरण लिया जा सकता है। रासलीला के अन्तर्गत कृष्ण-राधा और गोपियों के सामूहिक नृत्य, उल्लास और रूप-सौंदर्य का जो चित्रण भागवत में मिलता है उसकी छाया कतिपय कवियों द्वारा चित्रित रास के दृश्यों पर मिलती है। जैसे :—

वृन्दावनदेव :—नाचत हीर मण्डल पर दोऊ अंग अंग फबि रहे फूलन भूषन ।
नृत्यत मनौ शशि मण्डल पै सौदामनि के संग सजल घन ।[1]

घनानन्द :—कुसुमित वृंदावन जमुना तट पूरन सरद ससी है
आनँदघन भामिनि दामिनि मिलि अद्भुत छबि बरसी है ।[1]

भगवत रसिक :—द्वै दामिनि के बीच में घन एक बिराजै
रूप अनूप अद्भुत छवि छाजै ।[2]

उपर्युक्त काव्यांशों में भागवत के 'गायन्तस्त तड़ित इव ता मेघ चक्रे विरेजुः'[3] की छाया स्पष्ट है । भागवत के दृश्य-चित्रों को अपेक्षाकृत अधिक सुसंगठित रूप में भी चित्रित करने की प्रवृत्ति मिलती है, किन्तु अपवाद रूप में । इस प्रकार के दृश्यों में भागवत के वर्णनात्मक अंशों की उपेक्षा करके एकाधिक चित्रों के संश्लेष द्वारा एक पूर्ण दृश्य का निर्माण किया गया है :—

वृंदावन कानन में भीर है विमानन की,
देववधू देखि देखि भई हैं मनचला।
बंसी कल गान कै वितान धुनि वायु बंध्यौ,
रमा लोक लोभित ह्वै भूली उर अंचला ।
द्वै द्वै बिच गोपिन के ललित त्रिभंगीलाल,
नागरिया पदन्यास बजे छन छंछला ।
रास रस मंगल अखंड रत भेद हाव,
संग ह्वै भ्रमत मानों मेघ-चक्र चंचला ।[4]

इस कवित्त में भागवत में वर्णित महारास के निम्न अंश का आधार तो लिया ही गया है :—

रासोत्सवः सम्प्रवृत्तो गोपीमण्डल मण्डितः ।
योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः ।
प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्वनिकटं स्त्रियः ॥ ३ ॥

---

१ गीतामृत गंगा, पृ० २६, पद ८
२ घनानंद-ग्रंथावली, पद ५३८
३ निम्बार्क-माधुरी, पृ० ३६१, पद २३
४ भागवत १०; ३३ : ८
५ नागर-समुच्चय, रास अनुक्रम के कवित्त, छं० ३

यं मन्येरन् नभस्तावद् विमानशत संकुलम् ।
दिवौकसां सदाराणामौत्सुक्यापहृतात्मनाम् ।। ४ ।।
ततो दुन्दभयो नेदुर्निपेतुः पुष्पवृष्टय : ।
जगुर्गन्धर्वपतयः सस्त्रीकास्तद्यशोऽमलम् ।। ५ ।।
वलयानां नूपुराणां किङ्किणीनां च योषिताम् ।
सप्रियाणाम भूच्छब्दस्तुमुलो रासमण्डले ।।[१] ६ ।।

साथ ही घन और दामिनी के संयोग की भागवत की कल्पना भी 'मेघचक्र-चंचला' में प्रतिछायित हुई है। मंडलाकार नृत्य और रास के अनुपम उल्लास की पूर्णता के निदर्शन हेतु ही कदाचित् ऐसा किया गया है। किन्तु जैसा कि संकेत किया जा चुका है कि इस प्रकार के दृश्य अल्प संख्या में ही मिलते हैं।

रास विषयक अधिकांश दृश्यों में एक रूढ़ि का पालन हुआ है। रास में राधा-कृष्ण की विविध मुद्राओं एवं चपलता का नृत्य और संगीत के ध्वन्यात्मक वर्णों द्वारा जो चित्रण हुआ है, वह प्रायः सर्वत्र एक-सा है। ऐसे चित्र रूढ़ होने के साथ ही एक सीमा तक पारिभाषिक भी हो गये हैं। परिणामतः उनमें नृत्य की सूक्ष्म गतिविधियों एवं अनुभवों का आलेखन होते हुए भी रसात्मक प्रभावान्वित का अभाव मिलता है। घनानन्द के निम्न उद्धृत पद में रास का ध्वन्यात्मक वर्णों पर आश्रित दृश्य इसी प्रकार का है :—

रास मंडल में नाचत दोऊ तकट धिकट धिधिकट
धिलांग थेई थेई तत् थेई ।
होड़ा होड़ी भेद भजावत तत धुक धुक कत,
कंथुगातक थुंगाधिधि तकट थेई ।
हाव भाव लावन्य कटाछिन प्यारी पियहि परम सुख देई ।
आनंदघन रस रंग पपीहा रीझ रीझ आंकौ भर लेई ।।[२]

अधिकांश कवियों ने प्रायः काव्य में गृहीत कृष्णलीलाओं में वात्सल्य और माधुर्य लीलाओं, विशेषकर माखन-चोरी, गोचारण, पनघटलीला, मानलीला, आदि के दृश्य चित्रित किए हैं। इसके अतिरिक्त होली, फूलडोल, वसंत आदि लोकोत्सवों से सम्बन्धित दृश्य भी पदों और मुक्तकों के अन्तर्गत गुम्फित हुए हैं। किन्तु लोकोत्सवपरक दृश्य-चित्रों में रचनाकारों की चित्रण-कला का एक

---

[१] भागवत स्कंध १०, अध्याय ३३
[२] घनानंद-ग्रंथावली, पद १७

रूढ़ रूप अभिव्यक्त हुआ है।[१] इसका कारण लोकोत्सवों का बहुप्रचलित पूजा विधान है, जो इनके सृजन की मूल प्रेरणा रहा है। ऐसे दृश्य-चित्र हमारी भावना में गहरे नहीं उतर पाते। उनमें आत्म संवेदन तथा प्रभावान्वित का प्रभाव मिलता है। कृष्णलीला परक दृश्य-चित्र अपेक्षाकृत मौलिक हैं। इनमें कल्पना द्वारा उद्भावित प्रसंगों की अवतारणा हुई है। जैसे :—

आई केलि मंदिर में प्रथम नवेली बाल,
जोरा-जोरी पिय मन-मानकि छुड़ाएँ लेति।
सौ सौ बार पूंछे एक उत्तरु मरु कै देति,
घूंघट के ओट जोति मुख की दुराएँ लेति।
चूमन न देति 'हरिचं दै' भरी लाज अति,
सकुचि सकुचि गोरे अंगहि चुराएँ लेति।
गहि तहि हाथ नैंन नीचे किए आँचर में,
छवि सों छबीली छोटी छातिन छिपाएँ लेति।[२]

इस प्रकार के दृश्यों में छंद अथवा पद की सीमित परिधि में वस्तुस्थिति का भी सांकेतिक चित्रण हुआ है। हरिराय के निम्न छन्द में सखियों से घिरी हुई एक सुरतांत जागृत गोपी का चित्र ऐसा ही है :—

आलस भोर उठी री सेज तें कर सों मीडत अँखियाँ।
सिगरी रैन जगी पिय के संग देखि चकित भई सखियाँ॥
काजल अधर कपोलन लीक लगी है रची महावर नखियाँ॥
रसिक-प्रीतम दरपन लै प्यारी, चीर सूँभार मुख ढँकियाँ।[३]

रीति कवियों द्वारा माधुर्यपरक कृष्णलीलाओं के विविध प्रसंगों पर आधारित काल्पनिक दृश्य अपेक्षाकृत अधिक चित्रित हुए हैं। इनमें कृष्णलीला का आधार निमित्त रूप में ही लिया गया है। प्रायः दृश्यों में काल्पनिक संदर्भों की उद्भावना की ही प्रवृत्ति प्रधान रही है, कुछ उदाहरण प्रासंगिक होंगे :—

---

[१] शृंगाररससागर, भाग १ और ३ में संकलित उत्सवपरक पद

[२] भारतेन्दु-ग्रन्थावली, पृ० १७३

[३] हरिराय का पद साहित्य, पद सं० १६६

मतिराम :—आई हौं पाँव दिवाय महावर, कुंजन तें करिकैं सुख सैनी ।
सांवरे आजु संवाइयो है अंजन, नैनन कौ लखि लाजति ऐनो ।
बात के बूझत ही मतिराम कहा कहिए भटू भौंह तनैनी ।
मूंदी न राखत प्रीति भटू, यह गुंथी गुपाल के हाथ की बेनी ।।

देव :—खेलत फाग खिलार खरे अनुराग भरे बड़भाग कन्हाई ।
एक ही भौन में दोहन देखि के 'देव' करी इक चातुरताई ।
लाल गुलाल सों लीन्हीं मुठी भरि बाल की भाल की ओर चलाई ।
वा द्रिग मूंदि उतै चितई इन भेंटी इतै वृषभान की जाई ।

पद्माकर :—फाग के भीर अभीरन में गहि गोविंदहिं लै गई भीतर गोरी ।
भाई करी मन की पद्माकर ऊपर नाय अबीर की झोरी ।
छीन पितम्बर कमर तें सु बिदा दई मीड़ि कपोलन रोरी ।
नैन नचाइ कहो मुसकाइ लला फिरि आइयो खेलन होरी ।।

लोकगीतों की शैली में रचित पदों में अभिव्यक्त दृश्यों के अन्तर्गत वातावरण की व्यापक अवतारणा हुई है । किसी लीला विशेष से सम्बन्धित दृश्य के चित्रण में पदकारों की कल्पना उसकी सीमित परिधि में ही लोक की झाँकी चित्रित करने में यत्नशील दिखाई पड़ती है । कृष्ण-जन्म-बधाई, विवाह, होली आदि के लोक-गीतात्मक पदों में इस प्रकार के दृश्यों का प्राधान्य मिलता है ।[१] जैसे :—

दधि की कीचा महर की पौरी । कृष्ण जन्म सुनि गोपी दौरी ।
भवन भवन ते बही पनारी । सोभित गोकुल गली महारी ।।
आज जन्म दिन नंद कुँवर कौ । नाचति भामिनि आनंद भर कौ ।
मुदित परस्पर हँसि हँसि भेटैं । लै लै माखन बदन लपेटैं ।
झूमत नाचै ब्रज की जुवती । मनु चकोर बिहंसी ससि उवती ।
गोरस हरदी मंडित जंगा । भीजि लगे तन वसन सुरंगा ।
कोतिक निरसि देव मन हरषैं । नंद सदन पर कुसुमनि बरसैं ।
भयो कुलाहल गोकुल नगरी । आवत गाम गाम तें डगरी ।

---

१ शृंगाररससागर, भाग १, २ और ३ में संकलित कृष्ण-जन्म-बधाई और होली के पद तथा लाड़सागर के विवाह-प्रकरण के पद इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं ।

ब्रजपति भवन पंक पय दधि की। उपमा हू नहिं बनत उदधि की।
देति असीस छोर गहि अंचल। तुव सुत राज करौ इहि भुव तल।
बलि हित रूप गोप आनंदन। वृन्दावन हित जमुमति नंदन।[१]

इस पद में कृष्ण-जन्म पर गोकुल के उल्लास का दृश्य चित्रित हुआ है किन्तु सम्पूर्ण गोकुल के आनन्दमय वातावरण के चित्रण हेतु अनेक सांकेतिक खंड-दृश्यों को सुश्रृंखलित कर दिया गया है। कृष्ण-जन्म की सूचना प्राप्त कर आनन्द विभोर गोपी का नंद के घर की ओर दौड़ना, गोपियों का पारस्परिक हास, सामूहिक नृत्य, देवों की गोकुल पर पुष्पवर्षा आदि की झलक देते हुए उल्लासमय वातावरण का पूर्ण दृश्य चित्रित किया गया है, किन्तु इस प्रकार के दृश्यों में वातावरण चित्रण के आग्रहवश आंशिक वर्णनात्मकता का भी समावेश हो गया है।

उपर्युक्त विवेचित सभी चित्र अपने में पूर्ण होते हुए भी दृश्य को खंडित रूप में ही प्रस्तुत करते हैं। वस्तुस्थिति का सूक्ष्मचित्रण करते हुए दृश्यांकन की प्रवृत्ति प्रबन्ध-काव्यों में दिखाई पड़ती है। इस दृष्टि से चाचा वृंदावनदास के के ब्रजप्रेमनान्दसागर में चित्रित दृश्य विशेष महत्वपूर्ण हैं। उनमें लोक का व्यापक चित्रण हुआ है। माखन-चोरी, राधा की शैशवकालीन क्रीड़ाओं आदि के दृश्य इसी प्रकार के हैं। इनमें किसी लीला अथवा लोक से सम्बन्धित सूक्ष्म दृश्य शृंखलाबद्ध रूप में चित्रित हुए हैं। लाड़सागर के वर्णनात्मक पदों में अभिव्यक्त दृश्य भी इसी प्रकार के हैं।

समीक्ष्य युगीन कला की अलंकरण वृत्ति तथा शृंगारिकता का भी प्रभाव राधा-कृष्ण के रूप-चित्रों एवं उनकी विविध लीलाओं से सम्बन्धित दृश्यों पर दिखाई पड़ता है। इस युग में कला की प्रवृत्ति चमत्कार मूलक थी। उसमें आत्म संवेदन और गांभीर्य का अभाव रहा है। नागर समाज में निर्मित रीति-काव्य तो उससे प्रभावित हुआ ही, कृष्णभक्ति-काव्य भी उससे अछूता नहीं बचा। सहचरिशरण, भगवतरसिक, हठी आदि द्वारा चित्रित रूप-चित्रों एवं दृश्यों पर ऐश्वर्य और विलास की छाया स्पष्ट लक्षित होती है। कृष्ण और राधा के सामन्ती ऐश्वर्य से मंडित विकृत रूप-चित्र इस प्रकार हैं :—

---

[१] शृंगाररससागर, भाग ३, पृ० १३० पद १७१

कृष्ण :—स्याम चरन तरवसी अहुनता सहज सुनायक,
एड़िन जावक चित्र रंगे नख अति सुख दायक ।
छदला किटकिरेदार चरन अंगुरिन दस सोहै,
बाजूवंद नग जड़े मृदुल उपमा कौं को है ।
पाद पीठ दुहूँ फूल मध्य नायक तँह हीरा,
जगमग जोति विसाल हरै नैनन की पीरा ।
पायजेब दुहूँ पाय नूपुरन मनिगन जाला,
मुक्तन लारे लगे मंजु मृदु शब्द रसाला ।
अघन जानु ते उतरि पायजामा तहँ आयो,
मोहरन मुक्ता मंजु जंजीरन अति छबि छायो ।
ता तर बूटा कसीदा रंग उमंग कौ,
नेफा नारौ ललित फुंदना पीत रंग कौ ।।[१]

राधा :— सारी जरतारी लगी मनिन किनारी दुति,
दामिनी कहारी पात जात रूप कंद है ।
हार हिये भूषन जराऊ भाल बेंदी लाल,
अधर प्रवाल बिम्ब जसै जीव बंद है ।
उमा की रमा को सुखमा की देवमा की,
हठी रम्भा इन्दुमा सी उपमा-सी गति मंद है ।
तारापति कैसी मुख गहत गुविंद बारी,
तखत पै बैठी राधे वखत बिलन्द है ।[२]

इन चित्रों में राधा-कृष्ण के रूप की सहज माधुर्यता विनष्ट-सी हो गई है । राधा-कृष्ण के रूप-परिवर्तन के साथ उनकी माधुर्य केलि का स्वरूप भी परिवर्तित हुआ तथा उसकी उदात्त चेतना उद्दाम शृंगारिकता में बदल गई । उनकी लीलाएँ रस साधना एवं आनन्द की हेतु न रह कर लौकिक क्रीड़ा-विलास की प्रति छाया मात्र रह गईं । राधा-कृष्ण के रूप तथा उनकी लीलाओं के ऐसे

---

[१] निम्बार्क-माधुरी, पृ० ३५६

[२] राधासुधा-शतक, कवित्त सं० १६

चित्र उनके चिरमान्य आराध्य के रूप की तुलना में हमारी सहानुभूति नहीं प्राप्त कर पाते।

प्रकृति-चित्रण

कृष्णलीलाओं का प्रकृति से घनिष्ट एवं भावात्मक सम्बन्ध है, विशेषकर उन लीलाओं का जो गोकुल और वृन्दावन में सम्पन्न होती हैं। राधा-कृष्ण के लीलात्मक रूप की प्रतिष्ठा एवं सौन्दर्य की कल्पना प्रकृति की पृष्ठभूमि में पर्याप्त मनोरम बन पड़ी है। ब्रज-प्रदेश का दिव्य एवं आदर्श प्राकृतिक सौन्दर्य उनके प्रभाव को गांभीर्य प्रदान करता है। किन्तु कृष्णभक्ति-काव्य में प्रकृति का एक सीमित और रूढ़ रूप अभिव्यक्त हुआ है को कृष्णलीलाओं की प्रकृति को देखते हुए स्वाभाविक भी प्रतीत होता है। सभी कवियों ने यमुना, वन, कुंज, द्रुम, लता, पूर्णिमा वसंत आदि का एक-सा चित्रण किया है, किन्तु कृष्ण-भक्ति-काव्य में चित्रित प्रकृति के समस्त उपकरण कृष्णलीलाओं की सहज रसवत्ता एवं सौंदर्य के प्रभाव स्वरूप चिर परिचित होते हुए भी हमारे अन्तस् का स्पर्श करते हैं।

कृष्णलीलाओं अथवा लीला की कल्पना से भिन्न होकर प्रकृति कृष्ण-भक्तों को आनन्दित नहीं करती। ब्रज की सम्पूर्ण प्रकृति कृष्ण की ही रूपात्मक अभिव्यक्ति है। अतएव काव्य के अन्तर्गत उसका स्वतन्त्र अथवा आलम्बन रूप में चित्रण नहीं मिलता। किन्तु आलम्बन रूप में चित्रित न होने पर भी कृष्णभक्त-कवियों ने उसका आत्म संयुक्त चित्रण किया है। इसके अतिरिक्त आराध्य युगल के रूप-चित्रण में उन्होंने प्रकृति के नाना उपमानों का भी आश्रय लिया है। उन्होंने प्रकृति के साथ मानवीय भावों की सम्बद्धता चित्रित की है। कृष्णलीलाओं और प्रकृति की इस अन्योन्य स्थिति के ही कारण उन्होंने कृष्ण के लीलाधाम का अलौकिक रूप चित्रित किया है, जो भक्तों की दृष्टि में लोकोत्तर आनन्द प्रदान करनेवाला है। इस सम्बन्ध में डॉ० रघुवंश का प्रस्तुत मत द्रष्टव्य हैं :—

"कृष्णभक्ति-कवियों ने भगवान के संसर्ग में प्रकृति को आदर्श रूप में उपस्थित किया है, किन्तु इनमें लीला की भावना प्रमुख है और इसीलिए

---

[१] ब्रजप्रेमानन्दसागर, पृ० १७२

[२] वही, पृ० १६०

इनके काव्य में प्रकृति लीला की पृष्ठभूमि के रूप में प्रभावित मुग्ध या उल्लसित हो उठती है। इन सभी कवियों ने वृन्दावन, यमुना, गोकुल आदि की आदर्श कल्पना की है। ये स्थल कृष्ण की नित्यलीला से सम्बन्धित होने के कारण चिरन्तन प्रकृति के रूप हैं[1]।"

कृष्णलीला के विविध स्थलों का अनेक कवियों ने आदर्श रूप चित्रित किया है। लीला के साथ लीला-धाम की आदर्श कल्पना भी उनके मन में सहज ही अवतरित हुई है, किन्तु कृष्णलीला के अन्य स्थलों की अपेक्षा वृन्दावन की आदर्श प्रकृति का चित्रण अपेक्षाकृत व्यापक रूप में मिलता है। कारण, वृन्दावन लीलाओं को सभी कृष्णभक्ति सम्प्रदायों में महत्व मिला है और इस युग में उन्हीं की प्रधानता भी रही है। वृन्दावन की प्रकृति लोकोत्तर एवं कालातीत है। वहाँ सदैव भगवान कृष्ण और उनकी अभिन्न सहचरी राधा की आनन्द कला का प्रसार रहता है। चाचा वृन्दावनदास के प्रस्तुत पद में वृन्दावन के आदर्श रूप की कल्पना स्पष्ट रूप में अभिव्यक्त हुई है :—

धन्य भई धरा जिन विपिन माथै धरयौ।
धरा चलि जायगी धाम यह एक रस,
निगम आगम कहै जनि सुमतनि परयौ।
सच्चिदानंद रूप यह ब्रजचंद कौ कियौ,
नर-नारि रस मधुर जग विस्तरयौ परयौ।
× × ×
त्रिगुन माया पवन जहाँ परसतु नहीं,
एक रस रहत है सदा फूल्यो फिरयो।
उमग कै वारि सींचत तरुनंदिनी चुवत रंग,
पत्र देखि नवल नित प्रति हरयौ।
वृन्दावन हित रूप धाम कौतिक अवधि,
दरसि परयौ लोक हित परम करुना ढरयौ।[2]

इस पद में वृन्दावन की लोकोत्तर प्रकृति का जो कथन किया गया है उसकी पृष्ठाभूमि में लीला का आध्यात्मिक भाव है। घनानन्द, राधा की

---

[1] प्रकृति और काव्य, पृ० ३१४

[2] वृन्दावन-जस-प्रकासवेली, पृ० ४

वन्दना में वृन्दावनवास की कामना करते हुये कहते हैं, "हैं राधा ! मुझे वृन्दावनवास दे—जिससे महामधुर रसकेलि का सौन्दर्य मेरे अन्तर में स्वतः स्फुरित हो जाये। वृन्दावन के कुंज हरे और सुख भरे हैं, उनमें विविध रंगों का विकास है। वहाँ यमुना तट पर वंशी की अमृतमय ध्वनि संचरित होती रहती है।" उनके एक अन्य पद में वृन्दावन की नित्य प्रकृति एवं उसके आदर्श रूप का सुन्दर कथन हुआ है :—

यह वृन्दावन यह यमुना तीर यह सारंग राग।
यह भाग भरी भूमि यह तरु लता झूमि यह विहंग
बड़ भाग राधा मोहन को सुहाग बाग।
याकी लहनि याही में पाइयति भोज्यो आनंदघन अनुराग।
नैननि को फल चाहिबो समझत स्यामा-स्यामा, सेवत हैं करि नित ही जाग।[१]

रास के प्रसंग में वृन्दावन की आदर्श प्रकृति का चित्रण तो रासलीला का वर्णन करने वाले प्रायः सभी कवियों ने किया है। कहना न होगा कि प्रकृति के जिस आदर्श-रूप की अवतारणा कृष्णभक्त-कवियों ने अपने काव्य में की है वह बहुत कुछ पुराण सम्मत एवं रूढ़ है। उसमें अतिप्राकृति तत्वों का प्राचुर्य है। आराध्य की लीलास्थली की अलौकिक प्रकृति के साथ कवियों की घनिष्ठ अत्मीयता वर्णित हुई है। नीचे दिए गए उदाहरण इस तथ्य के प्रमाण हैं :—

चंद्रलाल गोस्वामी :—लता द्रुम हेरों राधा कृष्ण कहि टेरों रज,
लपटाऊँ तनमें और सुख पाऊँ मन में।
एहो राधावल्लभ जू तुमही सो विनती है
जैसे बनै तैसे मोहि राखौ वृन्दावन में।[२]

चाचा वृन्दावनदास :—कुंज-कुंज आनंद की अभिलाषा भरनी।
द्रुम वलों चैतन्य घन अमृत कन भरनी।
पद अंकित पुलिन स्थली श्यामा जु विचरनी।
वृन्दावन हित रूप बलि मुहि दायक शरनी।[३]

---

[१] घनानंद-ग्रंथावली, पद ३०८
[२] अभिलाष-बत्तीसी पृ० २
[३] स्फुट पद पृ० १० पद २६४

भगवत रसिक :— सत चित आनंद रूप मय खग मृग द्रुम बेलो वर वृन्द ।
　　　　भगवत रसिक निरंतर सेवत मधु भये पीवत मकरंद ।[1]

भारतेन्दु :—ब्रज के लता पता मोहि कीजै ।
　　　　गोपीपद पंकज पावन की रज जामें सिर भीजै ।
　　　　आवत जात कुंज की गलियन रूप सुधा नित पीजै ।[2]

विमर्श्य कृष्णभक्ति-काव्य में कवियों की आत्मीयता वृन्दावन को लेकर रचे गए अष्टकों में अपेक्षाकृत प्रखर रूप में मुखरित हुई है । इनका विवेचन काव्य-रूपों के अन्तर्गत किया गया है ।

आदर्श रूप के अतिरिक्त समीक्ष्य काव्य में प्रकृति का उद्दीपन रूप भी प्रचुरता के साथ अभिव्यक्त हुआ है । कृष्णलीलाएँ ही मुख्य प्रतिपाद्य होने के कारण प्रकृति उनके सौन्दर्य एवं संवेदन को उद्दीप्त करने के प्रयोजन से महत्व-पूर्ण स्थान रखती हैं । आलोच्य कृष्णभक्ति-काव्य में उद्दीपन रूप में प्रकृति का चित्रण प्रमुख रूप से राधा-कृष्ण की संयोग क्रीड़ाओं के अन्तर्गत हुआ है, इस रूप में भी प्रकृति एक रूढ़ि के अनुरूप ही प्रयुक्त हुई है जिसके अन्तर्गत उल्लास की भावना प्रमुख है । चाचा वृन्दावनदास का वसंत की प्रकृति का एक भावोद्दीपक चित्र देखिए :—

गिरि पै सखी कौतिक देखि आज । रितुराज सदेह बन्यौ समाज ।।
तरु मोरै तरुन खिलार फाग । बंदनि फेंटनि कुसुमनि पराग ।।
दरसत फूले मनु खेल लाग । कै प्रेम नृपति कौ रूप बाग ।।
भंवरी गुंजत मकरंद पान । देखौ बेलि वधू किया करत गान ।।
झुकै पवन परसि आनंद मानि । भरे झूमक खेल वसंत जानि ।।[3]

सहिचरसुख भी इसी प्रकार कहते हैं :—

खेलत वसंत वन रसिक राज । रस रानी रंगनि लिये समाज ।।
नव भाव कुम्भ धरि चाह थाल । मधि प्रीति कली विकसी बिसाल ।।
सिंगार मौर मौदक रसाल । लिये रूप मंजरी सबै बाल ।।[4]

---

[1] ब्रजमाधुरीसार, पृ० २३२
[2] प्रेममालिका, पद ६७
[3] श्रृंगाररससागर, भाग १ पृ० ५९
[4] वही, पृ० २४

सभी कवियों के वसंत की प्रकृति के उल्लास व्यंजक चित्र प्रचुरता के साथ मिलते हैं। संयोग-क्रीड़ाओं के अन्तर्गत वसंत के समान पावस की प्रकृति का भी उद्दीपन रूप में पर्याप्त प्रयोग हुआ है। उसमें भी उल्लास की ही भावना प्रमुख रही है। गोस्वामी रूपलाल के वर्षा के एकपद से उद्धृत निम्न अंश द्रष्टव्य है :—

सुहावनी बूंद लगै मन भाई। सखी यह पावस की ऋतु आई। १।
चहुँ दिसि धुरवा जित तित दरसै। दामिनि दसनि छिनहि छिन सरसै। २।
बग पंकति सुखदाई माई। लखि लाल प्रिया उर लाई। ३।
कुहकनि मोर पपीहा सौहे। दादुर आगम रति पति मोहै। ४।[१]

स्पष्ट है कि प्रकृति के इस रूप में मानवीय उल्लास की भावना व्यक्त हुई है। राधा-कृष्ण की वसंत और पावस की सभी लीलाओं में प्रकृति का यही रूप अभिव्यक्त हुआ है। चाचा वृन्दावनदास का प्रस्तुत पद इसका प्रमाण है :—

उमड़े धन बीजु चमकै भारी।
अहो-अहो प्रान उठि देखौ पियाहि जगावति प्यारी।
तैसीय पावस ऋतु गहवर वन तैसीय रैनि अंध्यारी।
उठि लाल अंक भरि लीनी संकित सी सुकुमारी।
धवल महल में दमकत दिवला दिपति मणिन की जारी।
बरखत पानी विपिन रवानी सरसत सुख जु विहारी।
दादुर मोर सोर वन उपवन चहचर गरजत रवि जु दुलारी।
वृन्दावन हित रूप केलि कल निरखि मुदित सहचारी।[२]

मुक्तकों में प्रकृति का उद्दीपन रूप प्राय: अलंकृत और चमत्कृत शैली में व्यक्त हुआ है। प्रकृति के इस रूप में लीला के लौकिक रूप के साथ विलास की भावना प्रमुख रही है। रीति परम्परा के कवियों ने राधा-कृष्ण की लीलाओं के अन्तर्गत प्रकृति के इसी रूप को प्रधानता दी है। साम्प्रदायिक कवियों के मुक्तकों में भी विलास पूर्ण प्रकृति का ही वर्णन अधिक हुआ है। परिणामत: इनके अन्तर्गत भावात्मकता की अपेक्षा उल्लासपूर्ण वातावरण की

---

[१] वही, पृ० ९१

[२] श्रृंगाररससागर, भाग २, पृ० ११७

पृष्ठभूमि में राधा-कृष्ण की शृंगारिक क्रीड़ाओं और हास-विलास का चित्रण प्रधान हो गया है। वृन्दावन के प्राकृतिक सौन्दर्य और राधा-कृष्ण की प्रेम क्रीड़ाओं के संयुक्त चित्रण का मनोहरराय द्वारा रचित निम्न कवित्त द्रष्टव्य है :—

> वृन्दावन फूले भूले कोइल भंवर मोर,
> चातक चकोर कोलाहलन मचाए हैं।
> राधिका रमण बिहरन मंद-मंद गति,
> नख सिख मिलिबे कूं चाय चरचाए हैं।
> जाइ देखें सोइ मनोहर प्यारी अनुकूल,
> बांधि के प्रबंध सुख सार रस चाए हैं।
> हँसि हँसि हाथिन सौ हाथ जोरे मुख मोरे,
> नेन सौ जुरत नैन मेनन नचाए हैं।[१]

वियोग पक्ष में प्रकृति के उद्दीपन रूप की अभिव्यक्ति तत्सम्बन्धी लीलाओं के अभाव में बहुत कम हुई है। भ्रमरगीत तथा वियोगानुभूति परक स्फुट पदों में प्रकृति का आधार अवश्य लिया गया है, किन्तु उसका भी स्वरूप पर्याप्त सीमा तक रूढ़ि-ग्रस्त लक्षित होता है। रास के मध्य कृष्ण के अन्तर्ध्यान होने पर गोपियों की विरहोन्मत्त अवस्था का चित्रण पूर्णतया परम्परायुक्त एवं अनुकरणात्मक है। भ्रमरगीत तथा वियोग सम्बन्धी स्फुट पदों में भी मानवीय भावों के आरोप और उपालम्भ हेतु प्रकृति का यही रूप मिलता है। उपालम्भ-परक अभिव्यक्तियों में उसका रूप प्रायः ऊहात्मक रहा है। कुछ अंश दाहरण स्वरूप लिये जा सकते हैं :—

हरिराय :— कहियत फूल अनंग के बान।

> लगत कठिन ह्वै, सरस डौर लखि, मरम बचाउ करत नहिं आन॥
> उर धस रहत निकारैं न निकसत, हरति जुबति जन के मन मान।
> एतो बाल है कहा कुसुम को जानत मुरली नाद निदान।
> अब न उपाउ, कछू मोहि सूझत, मन में रहयै कछू न सयान।
> 'रसिक-प्रीतम' जौ आइ मिलें अब, काढ़ि देय रस रूप निधान।[२]

---

[१] राधारमण-रससागर, छंद० ४४

[२] हरिराय जी का पद साहित्य, पद सं० ३४२

पद्माकर :—ऊधौ यह सूधौ सौं संदेसो कहि दीजौ भलो,

हरि सौं हमारे ह्यां न फूले बन कुंज हैं।

किंसुक गुलाब कचनार और अनारन की

डारन पै डोलत अंगारन के पुंज हैं[१]।

भारतेन्दु :—'हरीचंद' कौइलै कुहूकि फिरै वन,

बाजै लाग्यौ जग फेरि काम को नगारो हाय।

दूर पान-प्यारो काको लीजिये सहारो अब,

आयो फेरि सिर पै बसंत बजमारो हाय[२]।

प्रकृति चित्रण के अन्तर्गत मनोहरराय, रूपलालगोस्वामी, अनन्यअली, चाचा वृन्दावनदास, ललितकिशोरी, भारतेन्दु आदि ने षट-ऋतुवर्णन और बारहमासाकी शैलियों का भी रूढ़ रूप में प्रयोग किया है। इनके अन्तर्गत राधा-कृष्ण का वर्णन विविध ऋतुओं के अनुसार हुआ है। किन्तु ऋतुवर्णन की इन दोनों ही शैलियों में प्रकृति का आश्रय लेकर भावों के उद्दीप्त रूप का चित्रण प्रधान रहा है। संयोगावस्था के सुख और वियोगावस्था के दुख की अभिव्यक्ति में भावना की अपेक्षा ऋतुओं के प्रभाव का वर्णन इनका मुख्य अभिप्रेत लक्षित होता है। विविध ऋतुओं तथा उसके अनुसार राधा-कृष्ण की क्रीड़ाओं के वर्णन में कोई निश्चित क्रम नहीं मिलता। शरद, हिम, शिशिर, वसंत, ग्रीष्म और पावस तथा उनकी पृष्ठभूमि में राधा-कृष्ण के विहार का वर्णन प्रायः स्वतन्त्र रूप में हुआ है। प्राकृतिक सौन्दर्य तथा रति भावना की विशेष उद्दीपक होने के कारण वसंत और पावस को अपेक्षाकृत प्रमुखता मिली है।

षटऋतु-वर्णन और बारहमासा के समान प्रकृति के वृक्ष, पर्वत, लता, कमल, भ्रमर, चन्द, चकोर, हंस, खंजन आदि उपकरणों का भी उपमान रूप में परम्पराविहित प्रयोग हुआ है। प्रकृति के उपमानों का आश्रय प्रायः रूप-चित्रण और नखशिख वर्णन के अन्तर्गत लिया गया है। रीतिकवियों ने अपनी अलंकरण वृत्ति के अनुरूप उनका चमत्कारपूर्ण प्रयोग किया है। उनके मुक्तकों में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से पल्लवित हुई है।

---

[१] जगद्विनोद छं० ३८२

[२] प्रेममाधुरी छं० ८५

उक्ति-वैचित्र्य और अलंकार-विधान

कृष्णभक्ति-काव्य में कृष्णलीलाओं के रसात्मक चित्रण के साथ उन्हें सुन्दर एवं प्रभावव्यंजक रूप में अभिव्यक्त करने की प्रवृत्ति मिलती है। राधा-कृष्ण के रूप सौन्दर्य एवं उसके प्रभाव की व्यंजना के लिए कृष्णभक्त कवियों ने उक्ति-वैचित्र्य तथा अलंकारों का आश्रय लिया है। विमर्श्य कृष्ण-भक्ति-काव्य में उक्ति-वैचित्र्य और अलंकार-प्रयोग के प्रति साम्प्रदायिक और रीति कवियों के दृष्टिकोण में प्रयोजनगत अन्तर मिलता है। सामान्यता साम्प्रदायिक कवियों के काव्य में अलंकरण की प्रवृत्ति रीति कवियों की तुलना में गौण रही है। देव, पद्ममाकर, मतिराम आदि के काव्य में कलात्मक दृष्टि-कोण का प्राधान्य इसका प्रमाण है। इसके विपरीत साम्प्रदायिक कृष्णपरक कवियों की रचनाओं में अलंकारों का प्रयोग प्रायः स्वाभाविक रूप में ही हुआ है। किन्तु कलात्मक दृष्टिकोण के इस अन्तर के होते हुए भी समीक्ष्य युग के साम्प्रदायिक और रीति कवियों के काव्य के मध्य कोई विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती। काव्य रचना के समसामयिक प्रवाह से दोनों ही परम्पराओं का कृष्णभक्ति-काव्य प्रभावित हुआ है। यह द्रष्टव्य है कि समालोच्य युग के कृष्णपरक कवियों का पद-काव्य कलात्मक दृष्टि से विशेष सम्पन्न नहीं है। उसका अधिकांश कीर्तन की प्रेरणा से रचा गया। अतः उसमें कलात्मकता का अभाव मिलना एक सीमा तक स्वाभाविक भी है किन्तु इसके अपवाद भी बराबर मिलते हैं। दोनों वर्ग के कवियों के मुक्तक ही उक्ति-वैचित्र्य एवं अलंकार-प्रयोग की दृष्टि से सफल कहे जा सकते हैं।

उक्ति-वैचित्र्य

उक्ति-वैचित्र्य का अर्थ है कथन की विचित्रता अथवा वक्रता। उक्ति-वैचित्र्य के द्वारा कवि का कथ्य मार्मिक एवं रस-प्लावित हो जाता है। इसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। सामान्य कथन से लेकर अलंकृत अभिव्य-क्तियों तक में उक्ति का चमत्कार विद्यमान रहता है। अर्थालंकारों की तो वह संपोषिका है, जिनका विवेचन आगे पृथक से किया जायगा। यहाँ केवल भाव प्रेरित उक्तियों के ही प्रयोग लिये गए हैं। कृष्णभक्ति-काव्य में कृष्णलीला के माखन-चोरी, मुरली, दानलीला, भ्रमरगीत आदि प्रसंग परम्परा से उक्ति-वैचित्र्य के कोश रहे हैं। इसके अतिरिक्त कृष्णभक्त-कवियों ने आत्माभिव्यंजन में भी उक्ति-वैचित्र्य का आधार लिया है। समा-

लोच्य कृष्णभक्ति-काव्य में भी भावप्रेरित उक्तियाँ प्रायः इन्हीं प्रसंगों में प्रयुक्त हुई है। जैसा कि संकेत किया जा चुका है कि इस क्षेत्र में साम्प्रदायिक और रीति दोनों ही वर्ग के कवियों की प्रवृत्ति क्रियाशील रही है किन्तु रीति तथा प्रेमव्यंजना को प्रधानता देने वाले घनानन्द आदि के काव्य में उक्ति-वैचित्र्य का निर्वाह अपेक्षाकृत प्रखर रूप में हुआ है। अधिकांश कवियों द्वारा प्रयुक्त उक्तियाँ रूढ़ हैं। जैसे :—

वृन्दावनदेव :—ता दिन तैं मैं सुजान बंधु पति सब सौं डारी तोरि।
वृन्दावन प्रभु हाथ बिकानी कहो कोउ बात करोरि॥

हरिराय :—तेरौ जोबन सिंगार और आभूषन, नव रूप जाल,
पिय के मन हरिवे को कर्यौ करतार है।

चाचा वृन्दावनदास :—
जल में जव ज्यों दीठ त्यों फिर न कभू बिलगते।
छिन छिन पल घड़ी याद निसवासर मास बरस जुग जाते।

नागरीदास :—नहिं कछु गृह काज बनत जिय ठोरी रहत लगी।
नागरिया मोहन मिलिबे की चिंता ज्वाल जगी॥

भारतेन्दु—सांची भय कहनावति वा अरी ऊँची दुकान की फीकी मिठाई।

इस प्रकार की रूढ़िमयी उक्तियों का प्रयोग रीति परम्परा के कवियों द्वारा प्रचुर मात्रा में किया गया है। उनकी दृष्टि राधा-कृष्ण की शृंगारिक चेष्टाओं एवं क्रीड़ाओं पर ही विशेष रूप से केन्द्रित रही है। नीति-निर्देश तथा सिद्धान्त-कथन में भी अनेक कवियों ने रूढ़ उक्तियों का आश्रय लिया है। इनका मूल प्रयोजन काव्य को प्रभावोत्पादक एवं सरल बनाना रहा है। इस कोटि की उक्तियाँ प्रायः रूढ़ हैं तथा उनमें कलात्मकता का भी अभाव मिलता है :—

चाचा वृन्दावनदास :—गौर स्याम के भजन न भीजौ प्रेम नहीं उर कपटी।
कूंवा परयो अकास उड़त खग तिनको करै जु झपटी।[१]

---

[१] जुगलस्नेह-पत्रिका पृ० ४

किशोरदास :—सहचरि श्री हरिदास की समसरि करै सो कौन।
सबै रसिक चंदन भये, मलियागिरि की पौन ॥[१]

ललित किशोरी :—हरें हरें विजनी करें, सिथलित नैन निहार।
डुलै न पानी अंग गति, बलि बलि जुगुल बिहार।[२]

भारतेन्दु :—अति सूछम कोमल अतिहि अति पतरो अति दूर।
प्रेम कठिन सबतें सदा नित इक रस भरपूर ॥[३]

घनानंद के उक्ति-वैचित्र्य मूलक प्रयोग—आलोच्य काव्य में उक्ति-वैचित्र्य का सर्वाधिक सफल प्रयोग घनानन्द के काव्य में मिलता है। उनके लक्षाणिक प्रयोगों, मुहावरों और लोकोक्तियों के अन्तर्गत अनेक भाव प्रेरित उक्तियाँ प्रेमव्यंजना में सहायक हुई हैं, किन्तु घनानन्द की सम्पूर्ण रचनाओं में उक्ति-वैचित्र्य द्वारा अन्तर्वृत्ति के निरूपण की क्षमता सुजानहित के छन्दों में अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में मिलती है। उनकी प्रबन्ध रचनाओं में उक्तियों का उतना सफल प्रयोग नहीं मिलता। इनके अन्तर्गत कृष्ण-लीला एवं कृष्ण-भक्ति का आधार प्रमुख रहा है। उनमें सुजानहित के छन्दों की सी उक्तिगत प्रखरता नहीं मिलती। पदावली में अवश्य कहीं-कहीं उक्तियों का सुन्दर प्रयोग हुआ जैसे :—

१—चटपटी लगाइ गार पिय मन कौ ठगी हौं बातनि मोह बढाइ।[४]
२—आनंदघन हित प्रान-पपीहा तरफरात रहैं बीर पीर को पावै।[५]
३—पाथर हियौ उडेयौ ही डोलै हरि के दुसह वियोग।[६]
४—ब्रजमोहन को अधर सुधा लै देहि सौतति के सालै।[७]
५—जा पर अपने ढ़ार ढ़रौ हौ कान्ह प्यारे ताहि चाहौ सु करौ।[८]

---

[१] सिद्धान्त-सरोवर पृ० ११ दो० ११४
[२] युगल-विहार-शतक दो० ८६
[३] प्रेम-सरोवर पृ० ३४
[४] घनानंद-ग्रंथावली पद स० ३६८
[५] वही, पद स० ४०८
[६] वही, पद स० ५२९
[७] वही, पद स० ५९२
[८] वही, पद स० ६३४

विरोधमूलक वैचित्र्य का विधान घनानन्द की उक्तियों में प्रचुर मात्रा में हुआ है। इनके माध्यम से कवि की अनुभूति अत्यन्त प्रभविष्णु बन गई है :—

१—बूड़ि-बूड़ि तरैं औधि-थाह आननंघन यों,
जीव सूक्यौ जाय ज्यौं ज्यौं भीजत सरवरी[१]

२—रावरे गुननि बाँधि लियो हियो जान प्यारे,
इतै पै अचंमो छोरि छोरि दीनी जु सुरति है।[२]

३—तुम्हू तें न्यारी है तिहारी प्रीति रीति जानी,
ढीले हूँ परेतें जरें गांठि सी घुरति है।[३]

४—दीठि आगे डोलौ जौ न बोलौ कहा बस लागे,
मोहि तौ वियोग में दीसत समीप हौ।[४]

५—तैं मुँह लगाई तातें मोहि मौन की कथा
रसना के उर एक रस रही बसै है।[५]

अनुभूति की तीव्र व्यंजना हेतु लक्षणामूलक उक्तियों का प्रयोग तो घनानन्द के काव्य का स्वाभाविक धर्म है। उनकी सभी उक्तियाँ मर्मोद्घाटिनी एवं हृदयस्पर्शिनी हैं। लक्षणामूलक होने के साथ ही वे भाव संवलित भी हैं। फलतः उनमें भावों की सूक्ष्म से सूक्ष्म अन्तर्दशाओं के उद्घाटन की पूर्ण क्षमता है। उनके द्वारा प्रयुक्त कुछ उक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :—

१—तौरि लाज सांवरै घिरै है सोभा साकरै
सु क्यों हू न निकास आस-पास लागिये रहै।[६]

२—बदरा बरसै रितु में घिरि के, नित ही अंखियां उघरी बरसे।[७]

---

[१] सुजान-हित, छं० ५८

[२] वही, छं० ६८

[३] वही, छं० ६९

[४] वही, छं० ९४

[५] वही, छं० १०५

[६] वही, छं० ६४

[७] वही, छं० ७८

३—जब ते निहारे घन आनंद सुजान प्यारे,
तब तें अनोखी आगि लागि रही चाह को।[1]

४—दिनन को फेर मोहि तुम मन फोरि डारयौ,
रहो घन आनंद न जानौं कैसे बीति है।[2]

५—अँखियानि में छावनि की अबनाई,
हियो अनुराग सै बोरति है।[3]

६—तुम कौन सी पाटी पढ़े हो लला
मन लेहु पै देहु छंटाक नहीं।[4]

७—मेरी मति बावरी ह्वै जाय जान राय प्यारे,
रावरे सुभाय के रसीले गुन गाय गाय।[5]

घनानन्द की उक्तियाँ कृष्णभक्ति-काव्य की परम्परा में सर्वथा मौलिक हैं। उनकी प्रवृत्ति अन्तर्मुखी एवं वैयक्तिक है। इसीलिए कृष्णलीला का तत्त्व उनमें गौण-सा पड़ गया है। घनानन्द की उक्तियों का वैचित्र्य प्रायः सर्वत्र अनुभूत्यात्मक है। किन्तु अनुभूति की गहनता एवं तीव्रता-को प्रभावव्यंजक रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय एक सीमा तक उनकी भाषा को भी है। शब्द संचयन के प्रति वे सर्वत्र जागरूक रहे हैं। भावानुकूल शब्दों के प्रयोग द्वारा उनकी उक्तियाँ एक ओर तो काव्य में विलक्षणता की सृष्टि करती हैं तथा दूसरी ओर रसात्मकता की उपकारक सिद्ध होती हैं।

घनानन्द के अतिरिक्त प्रायः अन्य सभी कवियों ने अधिकतर रूढ़ उक्तियों ही प्रयोग किया है।

अलंकार-विधान

काव्य में सौन्दर्य की अभिव्यक्ति शब्द और अर्थ दोनों के ही आश्रित रहती है। इसीलिए अलंकारों के 'शब्दा' ओर 'अर्था' दो भेद किए गये हैं। शब्दालंकारों के अन्तर्गत शब्द को चमत्कृत करने वाले अलंकार आते

---

[1] सुजान-हित, छं० ६१
[2] वही, छं० २२४
[3] वही, छं० ३५६
[4] वही, छं० २६७
[5] वही, छं० १२५

हैं तथा अर्थालंकारों की कोटि में वे अलंकार रक्खे जाते हैं जो अर्थ को रमणीयता प्रदान करते हैं। शब्दालंकार काव्यभाषा के सौन्दर्य-वर्धक उपादन हैं तथा अर्थालंकार काव्य के भावपक्ष को समृद्ध एवं प्रभावशाली बनाते हैं।

शब्दालंकार—शब्दालंकारों का वर्णयोजना से घनिष्ठ सम्बन्ध है। कलात्मक दृष्टिकोण को प्रधानता देने वाले कवियों के काव्य में तो वर्णयोजना का अद्भुत चमत्कार मिलता ही है, कृष्णलीलाओं का भक्ति प्रेरित गान करने वाले पदकारों के काव्य में भी इनका कम प्रयोग नहीं हुआ है।

अनुप्रास :—वर्णाश्रित होने के कारण अनुप्रास काव्य-भाषा विशेषकर व्रजभाषा का सहज श्रृंगार कहा जाता है। इसीलिए व्रजभाषा के सभी कवियों की भाषा अनुप्रास के पाश में आबद्ध मिलती है। अनुप्रास में कवि रस के अनुकूल वर्णों का क्रमिक विन्यास करता है। विमर्श्य कृष्णभक्ति-काव्य में पदों, मुक्तकों और लोकगीतों में समान रूप से अनुप्रास का उसके विविध रूपों में प्रयोग हुआ है, जिनमें आद्यानुप्रास और अन्त्यानुप्रास प्रमुख हैं। आद्यानुप्रास के कुछ प्रयोग द्रष्टव्य है :—

हरिराय :—कोक कोटिक कला रहत मन पीय कौ,
विविध कला माधुरी रति काम नाहिन बची।[१]

चाचा वृन्दावनदास :—वंदनवार वितान जगमगे सींव साथिये राजै।[२]

घनानन्द :—झूमि झूमि झालरै छबीली सीतल सौरभ है।[३]

भारतेन्दु :—गोरी गोरी गुजरिया भोरी कान्हर नट के संग
ललित जमुन तट नव वसंत करि होरी।[४]

पदों से उद्धत उक्त अंशों में एक वर्ण से प्रारम्भ होने वाले शब्दों की आवृत्ति के प्रभाव स्वरूप नाद सौन्दर्य की सर्जना हुई है। अन्त्यानुप्रास का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक हुआ है। वर्ण-मैत्री और तुक-विधान के लिए तो

---

[१] हरिराय जी का पद साहित्य प० सं० १४६
[२] श्रृंगाररससागर भाग १ पृ० ८२ पद १८३
[३] घनानन्द-ग्रन्थावली छंद ३१
[४] प्रेम-प्रताप, पद ४५

अन्त्यानुप्रास पदों और मुक्तकों में सभी कवियों द्वारा समान रुप से प्रयुक्त हुआ है। इस प्रक्रिया में संगीत की रक्षा हेतु शब्दों का स्वरुप विकृत भी हुआ है, किन्तु ऐसा प्रायः लय को तरलता एवं पूर्णता प्रदान करने के उद्देश्य से किया गया है। अन्त्यानुप्रास से पद अथवा छन्द में लय के सहज संचार द्वारा उनके विविध चरणों में एक विलक्षण आकर्षण की सृष्टि हुई है :—

हरिराय :— रति उपजावति भावति मन में गुह विसरावत दै दै सैनन।[१]

वृन्दावनदेव:——कोटि काम अभिराम श्याम तन निरखि निरखि नैनन फल लेखें।
नित नवरंगी ललित त्रिभंगी नटवर वेश करै।[२]

चाचा वृन्दावनदास :—मलयज गारि गुलाब वारि डारि सुधरता सों,
संवारि लेपत अंग भरि उमंग स्याम।[३]

घनानन्द :——रसिक रंगीले भली भांतनि छबीले,
घन आनन्द रसीले भरे महासुख सार है।[४]

नागरीदास :—सोभा संपति जीति मीत मिलि बैठे दम्पति,
चढ़े ललित ललितादि नवल नौका कछ कम्पति।[५]

भारतेन्दु :—हंसनि नटनि चितवनि मुसुकनि सुघराई,
रूप सुधा मथि कीनों नैनहू प्यान।[६]

मुक्तकों में कवित्त और सवैया छंदों के अन्तर्गत तो अन्त्यानुप्रास उनके प्रकृतिजन्य उपकरण के रूप में मिलता है। इन दोनों ही छंदों की गणनात्मक लय योजना में अन्त्यानुप्रास का समावेश सहज रूप में सम्भव है। इसीलिए रीतिपरम्परा तथा उससे प्रभावित कवियों के काव्य में वर्ण-मैत्री और अन्त्यानुप्रास की प्रचुरता मिलती है।

---

[१] हरिराय जी का पद साहित्य पद १८२
[२] गीतामृत गंगा पृ० ७ पद १२
[३] श्रृंगाररससागर भाग १ पृ० ३४ पद २८
[४] कृपाकंद, छंद ३६
[५] निम्बार्क माधुरी, पृ० ६१८
[६] प्रेम-माधुरी, छं० ४

रास के पदों में वर्णगत एक विशिष्ट सौन्दर्य मिलता है। उनके अन्तर्गत वर्ण-मैत्री एवं आनुप्रासिक वर्ण-विन्यास द्वारा नृत्य और संगीत के स्वरों की ध्वन्यात्मक अभिव्यक्ति हुई है। इससे भावानुकूल लय और पद के अपेक्षित प्रभाव की उद्भावना में पर्याप्त सहायता मिली है। विविध वर्णों के ही द्वारा नृत्य की मुद्राओं और भावों की अभिव्यंजना सम्भव हुई है। निम्न उद्धरण प्रमाण-स्वरूप लिये जा सकते हैं :—

वृन्दावनदेव :—मुकुट लटक पट चटक कटक कर चरण पटक मिरदंग बोरी।
तत्त खिरिरिरि ता तनतन नन सखी सुघर उघटत चहुँ ओरी।[१]

घनानन्द :—नई नई गति अति ललित रस बलित लेत लटक पद
पटकि मटक सों चोप चटक भरे भारी।[२]

भारतेन्दु :—मुरली रली भली, बाजत मिलि बीन लीन सुर खास।
ताल देत उत्ताल बजावत ताल ताल कर हास।[३]

वीप्सा और पुनरुक्ति-प्रकाश :—शब्दावृत्ति मूलक इन दोनों ही अलंकारों का प्रचुर प्रयोग मिलता है। वीप्सा में एक शब्द की आवृत्ति द्वारा भाषा में विशिष्ट गति का समावेश हुआ है। सामान्यतया सभी कवियों ने वीप्सा का प्रयोग भाषा-सौन्दर्य के साथ भावोच्छ्लन के प्रयोजन से किया है। फूल-डोल, चन्दन-यात्रा, वन-विहार, आदि उत्सवपरक पदों में वीप्सा के उदाहरण पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। जैसे :—

रूपलाल :—अरी घन गरजि गरजि बरसै बूंदनि स्यामा स्याम खरे।
सघन कुंज की छाँह लता गहे हँसि हँसि भुजा धरे।[४]

घनानन्दः—झपि झपि आवत नैना तेरे,
ढुरि ढुरि आनन्दघन गर लागी रस पागी।[५]

---

[१] गीतामृत गंगा, पृ० ३७ पद १३
[२] घनानन्द-ग्रन्थावली, पद ४१४
[३] राग-संग्रह, पद ११०
[४] शृंगाररससागर, भाग २ पृ० ९३ पद ३५
[५] घनानन्द-ग्रन्थावली पद ४९

चाचावृन्दावनदास :—फूलनि वसन आभरन फूलनि फूलि फूलि अंसनि भुज मेली।
फल हंसनि मृदु बोलनि फूलनि अंग अंग फूलनि रस भेली।[१]

प्रेमदास :—फूल फूलनि की कुंज मंजु गुंज अलि पुंज पुंज,
फूली फूली गावैं अलि वीन में प्रवीन है।[२]

कमलनयन :—उड़ि उड़ि परयौ पराग अवनि पर फूली लता चहूँ दिसि छाई।
मंद मंद गति सों पिय प्यारी आवत छवि पावत अधिकाई।[३]

इन उद्धरणों में रेखांकित शब्दों की आवृत्तियों से प्रत्येक चरण में भाव संवर्धक गति का समावेश हुआ है।

वीप्सा के समान पुनरुक्ति-प्रकाश का भी उत्सव विषयक पदों में प्राचुर्य मिलता है। कहीं-कहीं पुनरुक्ति-प्रकाश का वीप्सा के साथ मिश्रण भी हुआ है। पुनरुक्ति प्रायः भाषा के सौन्दर्य संवर्धन के साथ ही भाव को उत्कर्ष प्रदान करने में सहायक हुई है। जैसे :—

घनानन्द :—मंगल निधि ब्रजराज किसोर, मंगल ब्रज में चारयौ ओर।
मंगल घरु अरु बाहर मंगल सुख निरखत मंगल निस भोर।
मंगल अरसाने दृग राजत अधर मंगल रच्यौ तमोर :
आनन्दघन सब ही विधि मंगल स्रवननि मंगल मुरली चोर।[४]

रूपलाल :—नवल निकुंज नवल वृन्दावन नवल लाड़िली लाल।
नव भूषन नव मुकुट चंद्रिका नवल विराजत भाल।
नवल राग अनुराग नवल कल मुरली शब्द रसाल।
नव तरुनी इक नव वसंत लै आई नवल बाल।[५]

---

[१] श्रृंगाररससागर भाग २ पृ० १९ पद ५८
[२] वही पृ० १० पद ३०
[३] वही पृ० ६५ पद ३५
[४] घनानन्द-ग्रन्थावली, पद १
[५] श्रृंगाररससागर भाग १ पृ० १२ पद ३३

प्रेमदास :—फूलनि के भूषन वसन सो हैं फूलनि की,
फूली फूली डारैं कर लीन है ।
फ़ूलनि सौ नितै करै फूले फूले मन हरै,
प्रैमदासि हित फूली संग रंग भीन है ।[१]

यहाँ 'मंगल', 'नवल' 'नव' और 'फूलनि' शब्दों की पुनरुक्ति द्वारा भाषा में रुचिरता तो आई ही है, साथ ही इनसे भावोत्कर्ष को भी बल मिला है। इसी सम्बन्ध में शब्द-क्रीड़ा पर आश्रित कूट-शैली की स्थिति का भी निर्देश प्रासंगिक होगा। कूट-शैली का समीक्ष्य कृष्णभक्ति-काव्य में अभाव सा मिलता है। रीति कवियों के कृष्णलीला-काव्य में भी अलंकरण को ही प्रश्रय मिला, कूटत्व को नहीं। वृन्दावनदेव, भगवतरसिक, नारायणस्वामी, भारतेन्दु आदि के कुछ पदों में अवश्य कूटत्व की प्रवृत्ति मिलती है। इनके अन्तर्गत यमक, श्लेष, संख्यावाची शब्दों, रूपकातिशयोक्ति आदि अलंकारों का आश्रय एकाधिक अर्थों की व्यंजना के लिए लिया गया है। वैचित्र्य की सृष्टि दृष्टिकूटों का मूल प्रयोजन रहा है। इन कवियों के दृष्टिकूटों में नखशिख और रूप-सौन्दर्य का परम्परायुक्त चित्रण हुआ है। अंग-प्रत्यंगों का प्रतीक-पद्धति से कथन करते हुए एक शब्द का दूसरे शब्द से क्रमिक सम्बन्ध जोड़ा गया है। जैसे :—

देखो अचरज कनक लता चल तापर पूरनचंद।
नील नलिन तापर द्वै राजत तिन पर दोय मिलिन्द ॥
नीचै चम्पकली इक सोहति तातर बिम्बी दोय।
तिन मधि दमकति बीज दाड़िमी तरै अम्ब फल जोय।
तातर द्वै लागत अति नीके अरुन जु नलिन सनाल।
नित मधि द्वै श्रीफल भल दीसत तिन तर वेंलि सिंवाल।
ताकै मूल अलौकिक वापी बँधी कनक सोपान।
तातर द्वै कदली द्वै तिन तर कनक केतकी कली समान।

[१] श्रृंगाररससागर भाग २, पृ० १० पद ३०

तिन तर द्वै पुनि कमल अधोमुख तिन दल पर दश इन्द ।
वृन्दावन प्रभु वनमाली जिहिं रस सींचत गोविंद ॥[१]

किन्तु दृष्टिकूटों की इस शैली को अपवाद एवं भक्तिकालीन दृष्टिकूटों के अवशेष के रूप में ही ग्रहण करना चाहिए। भारतेन्दु के कुछ दृष्टिकूट अवश्य मूलतः चमत्कार सृजन के उद्देश्य से रचे गए प्रतीत होते हैं। प्रतीकात्मक शब्दों में उन्होंने शिलिष्ट अर्थों का नियोजन किया है। मानलीला के निम्न उद्धृत पद में 'मकर' शब्द का विविध अर्थों में प्रयोग द्रष्टव्य है :—

मकर संक्रोन सखी सुखदाई ।
मकर कुंडल सों मकर विलोचनि क्यों न मिलत तू धाई ।
मकर केतु को भय नहिं मानत घर में रही छिपाई ।
वें तुव विन भें मकर बिना जल व्याकुल मुकरन पाई ।
मान मान तजु मान धरम कर कर धरि लै गर लाई ।
हरिचंद तजि मकर राधिके रहु त्योहार मनाई ।[२]

इसी प्रकार मानलीला के कुछ पदों में ज्योतिष के शब्दों को लेकर चमत्कार सृष्टि की गयी है। जैसे :—

दुतिय नृप भानु छठो तजु मान ।
करन चतुर्थ सदा सौतिन हिय कटि पंचमी सुजान ।
तो सम माती नाय और कोउ नव मन दय तू बाल ।
तुव बिन आठ वेदना पावत व्याकुल पिय नन्दलाल ।
दसम केतु पीड़त पिय को अति निज दुख अगिनि बढ़ाय ।
करु अभिषेक अमृत एकादश कुच पिय के हिय लाय ।
द्वादश बिनु जल तिमि हरि तुव विन लगतनि प्रथम न नेक ।
'हरीचंद ह्वै तृतिया पिय संग करूँ संक्रमन विधेक ।[३]

---

[१] गीतामृत गंगा, पृ० ३३ पद ६४

[२] राग-संग्रह, पद ८८

[३] वही, पद ५०

समालोच्य कृष्णभक्ति-काव्य में उपर्युक्त विवेचित शब्दालंकारों की ही प्रधानता मिलती है। कलात्मक प्रयोजनवश लाये गए, यमक, श्लेष आदि अलंकार अपेक्षाकृत कम प्रयुक्त हुए हैं। रीति कवियों ने अवश्य चमत्कार सृजन के उद्देश्य से इनका पर्याप्त प्रयोग किया है। वस्तुत: सहज नाद सौन्दर्य संगीतात्मकता, माधुर्यमयी पद योजना, भावानुरूप शब्द-विन्यास आदि व्रजभाषा के स्वाभाविक गुण हैं तथा उसकी सुललित एवं मृसण वर्ण-योजना लोकविश्रुत है। इसलिए भाव और भाषा सौन्दर्य की अभिवृद्धि हेतु उक्त शब्दालंकारों का का प्राचुर्य मिलना पूर्णतया स्वाभाविक भी है।

अर्थालंकार—अर्थ को अलंकृत करने वाले अलंकारों में स्थूल रूप से सभी प्रकार के अलंकारों का प्रयोग मिलता है, किन्तु सादृश्य, अतिशय और वैषम्यपरक अलंकारों की प्रधानता रही है।

उपमान :—अधिकांश अलंकारों के मूलाधार उपमान होते हैं। कवि प्रतिपाद्य के रूप, गुण, क्रिया और भाव की अभिव्यक्ति उपमानों के ही माध्यम से करता है। उपमान योजना कवि की अनुभूति और सौन्दर्य दृष्टि की परिचायक होती है। आलोच्य कृष्णभक्ति-काव्य में राधा-कृष्ण के रूप, लीला और प्रेम के चित्रण में प्राय: रूढ़ उपमानों का ही आधार लिया गया है। उनमें से अधिकांश ऐसे हैं जो भक्ति-कालीन कृष्ण-काव्य में प्रयुक्त हो चुके थे।[१] राधा-कृष्ण के चिरमान्य रूप के साथ उनका अभिन्न सम्बन्ध निश्चित हो चुका था। अत: समालोच्य कृष्णपरक कवियों के लिए उनका त्याग असम्भव-सा था। रीति-कवियों के काव्य में भी रूढ़ उपमानों का ही प्राचुर्य मिलता है। रीति-कवियों द्वारा रूढ़ उपमानों के प्रयोग का एक कारण उनका अलंकार विवेचन भी ज्ञात होता है। प्राय: सभी कवियों ने अपने अलंकार विवेचन में संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों का आधार लिया है। अतएव सैद्धान्तिक स्वीकृति के

---

[१] कुछ उपमानों की सूची इस प्रकार है :—
सूर्य, चन्द्र, सरिता, यमुना, गंगा, दामिनी, कमल, जलद, जलज, दाड़िम, बन्धूक, इन्द्रधनु, लता, बिम्बाफल, शंख, भ्रमर, खंजन, मीन, कोकिल, शुक, चक्रवाक, केहरि, चातक, सारंग, मृग, मराल पन्नग इत्यादि। वैष्णव भक्तिकाव्य में प्रयुक्त उपमानों लिए दृष्टव्य 'हिन्दी वैष्णव भक्तिकाव्य काव्यादर्श तथा काव्य-सिद्धान्त', पृ० ३८३-३८५—डॉ० योगेन्द्र प्रताप सिंह

साथ उनकी काव्य-रचना में परम्परा मान्य रूढ़ उपमानों का प्रयोग मिलना स्वाभाविक भी प्रतीत होता है।

परम्परागत एवं बहुप्रचलित उपमानों के साथ ही कुछ कवियों के काव्य में फारसी-उपमानों के भी प्रयोग की प्रवृत्ति पल्लवित हुई। इस क्षेत्र में नागरीदास, सहचरिशरण, शीतलदास आदि विशेष उल्लेखनीय है। इस युग तक सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन पर फारसी प्रभाव काफी गहरे उतर चुका था। राधा-कृष्ण की वेशभूषा के समान उनके सौन्दर्य निरूपण की भावभूमि भी परिवर्तित हुई। फारसी उपमानों के कुछ प्रयोग दृष्टव्य हैं :—

नागरीदास

१—जुल्फ की जंजीर सख्त दिल वो दस्तगीर किया।[१]

२—अरे प्यारे बरौं जाहिर हो है लाग।
क्योंकर दिल बारूद में छिपे इस्क की आग।[२]

३—इस्क उसी की झलक है ज्यों सूरज की धूप।
जहाँ इस्क तहाँ आप हैं, कादर नादर रूप॥[३]

सहचरिशरण

१—उर में घाव रूप को सेवै हित की सेज बिछावै।
दृग डोरे सुइयाँ कर बरनी टांके लगावै।[४]

२—निरखत तोहि उसिहैं जब सुधि बुधि सकल हरैंगी।
रसिक सहचरीशरण नागिने जुल्फें करैंगी।[५]

३—भृकुटि कमा सुखमा सुमुखादिक दृग बादामनुमा की।
दर दीवार मुश्ताक हुये सखि अय किशोर लख झांकी।[६]

---

[१] नागर-समुच्चय, पृ० ४७७

[२] वही, पृ० २८६

[३] वही पृ० २८६

[४] सरस-मंजावलि, छं० १०१

[५] वही, छं० ४४

[६] वही, छं० ७६

शीतलदास

१—कुंदन पर माणिक जड़े हुए जानी मिंहदी के बुंद कहीं।[1]

२—गरदन सरोज की कली भली या शंख नाल सुखदाई है।
या शमे कपूरी की आभा छवि जगमगात दरशाई है।[2]

ललितकिशोरी

१—करन ताँटक कुंडल नभ झलकते हैं सितारे से।

२—जुगल लाल मैंदान इश्क में घुंघट पट क्या ओटें हैं।
बरनी बान कमान भौंह से हरदम चलती चोटें हैं।[3]

फारसी उपमानों का प्रयोग प्रायः खड़ीबोली के ही साथ हुआ है तथा कहीं-कहीं रूढ़ उपमानों के लिए भी फारसी शब्दावली का प्रयोग मिलता है। फारसी उपमानों के प्रयोग से कृष्णभक्ति-काव्य की परम्परा में नवीन सौन्दर्य दृष्टि का समावेश तो हुआ किन्तु देशकाल एवं परम्परा के प्रतिकूल होने के कारण वे राधा-कृष्ण के चिरमान्य रूप के प्रभावात्मक अभिव्यंजन में बाधक सिद्ध हुए। परिणामतः, फारसी उपमान न तो लोकप्रिय ही हो सके और न उनसे राधा-कृष्ण के सौन्दर्य को उदात्त संवेदनात्मक धरातल ही प्राप्त हुआ।

सादृश्य अधिकांश अलंकारों के मूल में रहता है, इसीलिए इस वर्ग के अलंकारों का अपेक्षाकृत अधिक प्रयोग हुआ है, जिनमें उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक प्रमुख हैं।

उपमा—उपमा का उसके विविध रूपों में प्रयोग मिलता है। राधा-कृष्ण के रूप और लीलाओं के वर्णन में सौन्दर्य की अभिव्यक्ति हेतु उपमा पर्याप्त प्रभाव व्यंजक सिद्ध हुई। कारण, उपमा में धर्म जो उसका मूल आधार होता है अपने में अत्यन्त व्यापक है। साधर्म्य का ही आधार लेते हुए राधा-कृष्ण के रूप का चित्रण विविध उपमानों के द्वारा हुआ है। जैसे :—

---

[1] गुलजार-चमन, छं० ८

[2] वही छंद २१

[3] अभिलाष-माधुरी, छं० ११६

हरिराय

१—उर सोहै-सबकौ मन, बघना चहुँ दिस बांक।
ज्यों श्री उकसि न सबै रूपी व्रज अरी कौन ह्वै राक।[१]

२—भाँति भाँति हम भाव उघारे बहुत दीनता भाखी।
यों लगि रही स्याम के चरनन ज्यों गुरू लागी माखी।।[२]

३—भई दसा ज्यों चित्र पूतरी सकी न बसन संभारि।[३]

वृन्दावनदेव

१—सुकुमार सिवार से मर्कत तार से कज्जल सार से
वारनि वारि सुकावति बाला।[४]

२—दूर ही भये चकोर चंद लौं रूप सुधा रस पीवत।[५]

३—ओढ़ै पटपीत करन त्रिभुवन मन मोहै।
जैसे घन माल माँझ दामिनी दुति सौहै।[६]

घनानंद

१—चित्त चम्बुक लौह लौं चायनि च्वै चुहटै उहटैं नहिं जेतो गहौ।[७]

२—ऐसे क्यों सुखैये सोच तपनि हरयौ कै हरी,
जैसे या पपीहा-दीठि नीठि हू परै हौ।[८]

भारतेन्दु

१—मुख छवि लखि पूरन ससि लाजत सोभा अतिहि रसाल।
मृग से नैन कोकिल सी बानी अरु गयंद सी चाल।[९]

---

[१] हरिराय जी का पद साहित्य, पद सं २०

[२] वही, पद ३०४

[३] वही, पद ३६१

[४] गीतामृत गंगा, पृ० ३२, पद ३०४

[५] वही, पृ० ३८, पद १६

[६] वही पृ० ३८, पद १६

[७] सुजान-हित छं०, १५

[८] कृपानन्द छं० ४४

[९] प्रेम-मालिका पद १२

उत्प्रेक्षा :- उपमा से कहीं अधिक लोकप्रियता उत्प्रेक्षा को मिली। उत्प्रेक्षा में प्रस्तुत की अप्रस्तुत रूप में सम्भावना किए जाने के कारण भावोत्कर्ष एवं कल्पना के लिए उपमा से कहीं अधिक अवकाश रहता है। रीति कवियों ने भी उत्प्रेक्षा का पर्याप्त व्यवहार किया है। हरिराय के पदों में कहीं-कहीं उपमा का कथन होते हुए भी उत्प्रेक्षा का ही प्रयोग मिलता है :—

बदन कमल अलकावलि राजै, उपमा अद्भुत एक।
जोरि पांति सुर मानौं बैठें पीवत अमृत अनेक॥
चिबुक विराजत बदन चंद में उपमा एक खरी।
अधर बिम्ब तहाँ दसन लगत, मानों च्वै इक बूंद परी॥[१]

उत्प्रेक्षाओं के प्रयोग में कवियों की कल्पना का विकास एवं उद्भावक प्रतिभा का चमत्कार लक्षित होता है। रुढ़ उपमानों का आश्रय लेते हुए भी उत्प्रेक्षाओं का विधान मौलिक रूप में हुआ है। नीचे कुछ कवियों द्वारा प्रयुक्त उत्प्रेक्षाओं के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं जिनसे उनकी विलक्षण कल्पना शक्ति का परिचय मिल जायेगा :—

हरिराय

१—कोमल अरुण चरण जुग सौहैं, दस नख की अरुनाई।
मनहुँ भक्ति अनुराग इक ठौरें ह्वै यहाँ देत दिखाई।[२]

२—अंचर तर कुंडल छवि झलकत परत कपोलनि झांईं।
मानो भोर गयो रवि कंजन, किरन पियूष पिवाई॥[३]

३—दुहुन की देखि सखी लपटानि।
तरु तमाल मानों आलिंगन, लता कनक की आनि।[४]

चाचा वृन्दावनदास

१—झीने पट स्वास हलत ऐसी छवि पाई।
उड़गन पति ऊपर मनु रविजा वरि आई।[५]

---

[१] हरिराय जी का पद साहित्य, पद सं० २०
[२] वही, पद ४
[३] वही, पद ४०
[४] वही, पद १४३
[५] लाड़सागर पृ० २२८, पद १३

२—गावत भरी नवल अनुरागा, फूल्यो मनौ रूप को बागा ।[१]

३—पन्ना हरित लसत उर कंठुला मुक्ता माल सुहाई ।
मनहु नाभि सर बसन हंस शुक सैंनी भीर मचाई ।[२]

४—फूले बदन चपल गति लोचन लट ताँटक विलोलें ।
मानों राहु दिनेश कमल ससि नंद सदन उड़गन छवि देत[३]

५—हुलसि गुलाल भरन यों आई ।
पिय उर लागि बदन माड़यो मनु दामिनि घनहि समाई ।[४]

वृन्दावनदेव

१—झलमलात सखि लाल झगा में नील मनो सम अंग ।
मनहुँ सुरसुती धार धार धसि राजत जमुन तरग ।[५]

२—नील बरन सारी तन गोरे जा मधि झलकति सुन्दर बेनी ।
मानहुँ दुरि रही श्याम घटा तर मेरु संधि अलि सैनी ।[६]

रसिकगोविन्द

१—चटकीले पट नील पीत फहरत सुहाये ।
रस बरसन को उनै मनहुँ घन दामिनि आये ।[७]

२—कंठ कम्बु सम मुख प्रसन्न श्रम जलम कन नीके ।
मनहुँ चंद के लगि सुछंद रह बुंद अमी के ।।[८]

३—दीप सिखा सी नाक मुक्त पर मुख ढिंग डोलैं ।
मनहुँ चंद की गोद चंद को कुँवर कलोलैं ।[९]

---

[१] ब्रजप्रेमानन्द सागर, पृ० ६६

[२] लाड़सागर पृ० ३५, पद ६१

[३] रास-छद्म-विनोद, पद ८४

[४] शृंगाररससागर भाग १, पृ० ७७, पद ७६

[५] गीतामृत गंगा, पृ० २७७, पद ६४

[६] वही, पृ० ३२ पद ८६

[७] युगल-रसमाधुरी, छं० ६२

[८] वही, छं० ८३

[९] वही, छं० ८८

नूतन और प्रफुल्लित द्रुम बेली सेनी सजि ल्यायौ।
नव तरुणी भूषन धुनि दुन्दुभि ब्रज जन मन भायौ।
हिय अनुराग निसान जहाँ तहाँ सीमित सरसायौ।
चित हुलास आलिंगन मन सम्पत्ति बहुबिधि दरसायौ।
जै श्री हित रूप लाल रस छक्यौ सुख सागर बरसायौ।[१]

प्रेमदास :—राधे जू त्रिविध समीर कुंजर चढ़ि आयौ नृप रति पति मंत्री बसंत।
अलि गुंजन होति डिंडिभी जुवती मान न कर कोऊ संग कंत।
कुसुम बाण रह्यौ तानि धनुष धरि दुरगमत कंत।
तव पिय कातर ह्वै धीर धरें वैसे लखि मयमंत।
प्रेमदास हित हेम गिरि कुच में राखौ पियहि तुम हंसत।[२]

रसिकदास :—राधे तेरे तन वन वसंत आयौ।
आगम अंग अनंग निपखि अलि मन अनुराग जनायौ।
बहली भुजा फली उरजनि फल सुमनै हास विलास।
बहै त्रिविध मारुत सुखदाई वचन प्रकासति स्वास।
रसिक बिहारी कहै प्यारी जू रितु विलसै सचु पाइ।
हिल मिलि मिले लसत सेज पर आनंद कह्यौ न जाइ।[३]

सहचरि सुख :—राधे तन फूल्यौ मदन बाग।
हरि मधुकर को सफल भयौ भाग।
नव जलज चरन नव थलज पानि :
जहाँ जलज थलज उपमान मानि।
जंघा कदली दीपति की रासि।
तहाँ होत है वन कदली की रासि।[४]

---

१ शृंगाररससागर भाग १ पृ० १४ पद ३६
२ वही, पृ० ३९ पद ८१
३ वही, पृ० २१ पद ५५
४ वही, पृ० २१ पद ५५

नखशिख चित्रण में सांग-रूपकों को अत्यधिक विस्तार देने की प्रवृत्ति मिलती है, जिससे उनके अन्तर्गत एकरसता का संचार हो गया है। कहीं-कहीं विस्तृत रूपकों में उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का अन्तर्भाव भी हुआ है।

समालोच्य युग के सभी कृष्णभक्त कवियों में रूपक योजना के प्रति घनानन्द और भारतेन्दु का विशेष आग्रह लक्षित होता है। इन दोनों कवियों के अधिकांश रूपक प्रकृति के उपमानों और क्रिया-व्यापारों पर आश्रित हैं। घनानंद के रूपकों में सामासिक पदावली, सौन्दर्यबोध एवं प्रेमव्यंजना का समन्वित चमत्कार प्रायः सर्वत्र मिलता है। निरंग रूपक तो उनके काव्य के स्वाभाविक उपकरण से प्रतीत होते हैं। किन्तु सादृश्य के आधार पर सौन्दर्य और प्रेम को अभिव्यक्तिगत प्रभविष्णुता प्रदान करने के लिए सांग-रूपकों की प्रधानता रही है। उनके रूपकों का वैशिष्ट्य सौन्दर्य चित्रण के साथ विविध मनोदशाओं के उद्घाटन में लक्षित होता है। विरहिणी नायिका के रूप सौन्दर्य और अन्तर्जगत के चित्रण में होली का प्रस्तुत रूपक द्रष्टव्य है :—

पीरी परि देह छीनी राजत सनेह-भीनी,
कीनी है अनंग अंग अंग रंग बोरी सी।
नैन पिचकारी ज्यों चल्यौई करै रैन दिन,
बगराये बारनि फिरत झकझौरी सी।
कहाँ लौ बखानौं घनआनंद दुहेली दसा,
फाग मई भई जान प्यारे वह भौंरी सी।
तिहारै निहारै बिन प्राननि करत होरा
बिरह अंगारनि मगारि हिय हौरी सी।[१]

प्रेमजन्य आत्मगत अभिव्यक्तियों में रूपकों के माध्यम से उनकी मनोदशाओं का उद्घाटन हुआ है। जैसे :—

१—आसा गुन बांधि कै भरौसौ सिल धरि छाती,
पूरे पन सिंधु में न बूड़त सकायहौं।[२]

---

[१] सुजान-हित छं० १३६

[२] वही, छं० १६९

२—प्रेम को पयोदधि अपार हेरि कै विचार,
बापुरो हहरि वार ही तैं फिरि आयौ है।
ताकी कोऊ तरल तरंग संग छूटयौ कन,
पूरि लोकलोकनि उमंडि उफनायौ है।[१]

घनानन्द के रूपकों से उनकी विलक्षण उद्भावक प्रतिभा का परिचय मिलता है। प्रकृति तथा लोक के विविध व्यापारों के माध्यम से सौन्दर्य और प्रेम के निरूपण में उन्हें अपूर्व सफलता मिली है।

भारतेन्दु ने भी रूपकों के प्रयोग सौन्दर्य चित्रण तथा प्रेमाभिव्यक्ति हेतु किए हैं। उनके अन्तर्गत कहीं-कहीं श्लेष का भी आधार लिया गया है। घनानन्द के के समान भारतेन्दु के भी अधिकांश रूपक प्रकृतिमूलक हैं। कुछ रूपकों की भावभूमि परम्परागत है तथा उनमें चमत्कार वृत्ति का प्राधान्य है। राधा के रूप-चित्रण में वसंत के विविध उपकरणों का आरोप उन्होंने भी किया है :—

नैन लाल कुसुम पलास सैं रहै हैं फूलि,
फूल माल गले तन झालरि सी लाइ है।
भंवर गुंजार हरि नाम को उचार तिमि,
कोकिला कुहुकि वियोग राग गाई है।
'हरीचंद' तजि पतझार घर बार सबै,
बौरी बनि दौरि चारु पौन ऐसी धाई है।
तेरे बिछुरैं ते प्रान कंत कै हिमंत अंत
तेरी प्रेम-जोगिनी बसंत बनि आई है।[२]

सरिता के सांग-रूपक भारतेन्दु को विशेष प्रिय हैं। रूप-चित्रण और प्रेमाभिव्यक्ति हेतु उन्होंने सरिता के अनेक रूपक बांधे हैं। जैसे :—

१—प्यारी रूप नदी छवि देत।
सुखमा जलि भरि नेह तरंगनि बाढ़ी पिय के हेत।
नैन मीन कर पद पंकज से सोभित केस सिवार।

---

[१] सुजान-हित, छं० ११६

[२] प्रेम-माधुरी छं० ३४

वृन्दावनदेव :—शिशिर के शिर लौं फिरी वसन्त परी मैन सर धावन
ग्रीष्म विषम लगी जमहू ने तनहिं मैन ज्यौं तावन [१]

घनानन्द :—रोम रोम रसना ह्वै लहै जो गिरा के गुन ।
तऊ जान प्यारी निबरै न मैन आरतें ।[२]

भारतेन्दु :—कहा कहौं प्यारे जू बियोग मैं तिहारे चित,
विरह अनल लूक भरकि-भरकि उठे ।[३]

रीति-कवियों के काव्य में विरह के प्रसंगों में अत्युक्तिपूर्ण वर्णनों की प्रचुरता मिलती है । राधा-कृष्ण के सौन्दर्य तथा लीलाओं के चित्रण में वैषम्यमूलक अलंकारों का प्रयोग अपेक्षाकृत कम हुआ है । इनका प्रयोजन रूप, गुण और रंग आदि के वैषम्य द्वारा प्रतिपाद्यगत अनुभूति में सौन्दर्य की सर्जना होती है । राधा-कृष्ण के सौन्दर्य एवं संयोग लीलाओं के चित्रण में प्रेमभाव की अजस्रता के कारण वैषम्य परक अभिव्यक्तियों के लिए अधिक अवकाश नहीं मिला । भ्रमर-गीत विषयक पदों में अवश्य यत्र-तत्र इनका रूढ़ प्रयोग मिल जाता है । समालोच्य काव्य में घनानन्द द्वारा प्रयुक्त विरोध महत्वपूर्ण हैं । उनके सुजान-हित में विरोधों के सुन्दर प्रयोग मिलते हैं । घनानन्द के अधिकांश विरोध स्वाभाविक रूप में प्रभावव्यंजक बन पड़े हैं । जैसे :—

१—आनंद के घन लागै अचंभौं पपीहा पुकार तें क्यौं अरसैयै ।
प्रीति पगी अंखियानि दिखाय कै हाय अनीति सु दीठि छिपैयें ।[४]

२—मेरोई जीव जौ मारत मोहि तौ प्यारे कहा तुम सों कहनो है ।
आँखनि हू पहिचान तजी है कुछ ऐसोई भागनि को लहनो है ।[५]

३—जल बूड़ी जरैं दीठि पाय हू न सूझ करैं,
अमी पिये मरैं मोहिं अचिरज अति है ।[६]

---

[१] गीतामृत गंगा, पृ० ५५, पद ५७
[२] सुजान-हित, छं० १८४
[३] प्रेममाधुरी, छं० १३
[४] सुजान-हित, छं० १८६
[५] वही, छं० ५
[६] वही, छं० ५१

४—बूड़ि बूड़ि तरैं औधि-थह घनआनंद यौं,
जीव सूक्यौं जाय ज्यौं ज्यौं भीजत सरबरी [१]

इसके अतिरिक्त शब्दाश्रित विरोध भी मिलते हैं। ये सामान्यतया लक्षणा और मुहावरों पर आधारित हैं। इनका प्रयोग अनुभूति की तीव्रता के साथ चमत्कार सृजन के लिए हुआ है :—

१—औसर सम्हारौ न तौं अनआयबे के संग,
दूरि देस जायबे कौं प्यारौ नियराति है [२]।

२—कृपा-कान मधि-नैन ज्यौं त्यौं पुकार मधि-मौन [३]

३—रूखी रूखी बातनि हूँ सरसै सनेह सुठि,
हिय तें टरै न ये अनिख कर टारिबो [४]।

४—आँखै जौ न देखैं तो कहा है कछु देखति ये,
ऐसी दुखहाइनि की दसा आय देखियै। [५]

५—घनआनंद छावत भावत हौ दिन पार इतै उत रातैं पढ़े [६]।

६—बदरा बरसैं रितु मैं घिरि कै नित ही अँखियाँ उघरी बरसैं। [७]

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट हैं कि घनानन्द द्वारा प्रयुक्त विरोधों में चमत्कार के साथ अनुभूति की स्वच्छता और तीव्रता भी मिलती है। कारण, उनमें राधा-कृष्ण के सौन्दर्य और लीलातत्व का आधार स्थूल रूप में ही लिया गया है। अधिकतर उनकी अनुभूति ही सर्वोपरि रही है, अतः उनमें प्रभविष्णुता का तत्व भी स्वाभाविक रूप में विद्यमान रहा है।

समग्र रूप में, समालोच्य काव्य में कृष्णलीलाओं के समान पौराणिक दृश्यों का अभाव तथा कल्पनाश्रित एवं लोकरंजक दृश्यों की प्रधानता रही है। लोकगीतों तथा प्रबन्ध-काव्यों के अन्तर्गत प्राप्त दृश्यों में इतिवृत्तात्मक

---

१ सुजान-हित छं० ५८
२ वही, छं० ४१०
३ वही, छं० ४५१
४ वही, छं० १४९
५ वही, छं० १६४
६ वही, छं० ५०१
७ वही, छं० ७८

तत्वों को प्रमुखता मिली है। युग के सामन्ती, विलास एवं ऐश्वर्य के प्रभाव से राधा-कृष्ण भी अछूते नहीं बचे। कहीं-कहीं यह प्रभाव इस सीमा तक व्याप्त मिलता है कि अनेक स्थलों पर उनका पुरामान्य रूप तक विकृत हो गया है। प्रकृति-चित्रण में प्राय: सभी कवियों ने प्रकृति का रूढ़ एवं सीमित रूप ही ग्रहण किया है। भक्तिकाल के समान इस युग में भी उसके आदर्श और उद्दीपन रूपों के प्रति अधिकतर कवियों का आकर्षण बना रहा। राधा-कृष्ण के रूप और उनकी लीलाओं के चित्रण में प्रकृति के उपमानों की स्थिति प्राय: परम्परागत ही रही। उक्ति-वैचित्र्य और अलंकार-प्रयोग के क्षेत्र में अपवादों को छोड़ कर अधिकांश रचनाकारों की प्रकृति जहाँ परम्परा का अनुसरण करती हुई दृष्टिगत होती है, वहीं घनानन्द जैसे कवियों ने उसे अपनी मौलिक एवं प्रभाव-व्यंजक उद्भावनाओं से सम्पन्नता भी प्रदान की है।

●

पद-शैली, लोकगीत और छंद

विवेच्य कृष्णभक्ति-काव्य काव्य-रूपों की दृष्टि से विविधता सम्पन्न हैं। काव्य-रूपों के समानान्तर उसमें छंद-प्रयोग के क्षेत्र में भी अनेकरूपता लक्षित होती है। कृष्ण-काव्य की परम्पराविहित पद-शैली के अतिरिक्त मात्रिक और वर्णिक दोनों ही प्रकार के छंदों को इस युग के कवियों ने अपनी रचनाओं में स्थान दिया है। किन्तु वर्णिक छंदों की तुलना में मात्रिक छंदों का प्रयोग अधिक मात्रा में हुआ है। कुछ कवियों ने इतिवृत्तमूलक पदों के अन्तर्गत चौपाई, दोहा, रोला, हरिगीतिका आदि छंदों का परस्पर मिश्रण भी किया है। इस युग के कृष्णभक्ति-काव्य की पद-शैली तथा उसमें प्रयुक्त छंदों पर लोकगीतों की भावधारा एवं शैली का प्रचुर प्रभाव मिलता है। इसके अतिरिक्त ललितकिशोरी, नारायणस्वामी, भारतेन्दु आदि कुछ कवियों का फ़ारसी छंदों के प्रयोग के प्रति भी आकर्षण दिखाई पड़ता है। अस्तु, आलोच्य कृष्णभक्ति-काव्य में प्रयुक्त पदों और छंदों के अध्ययन को पद-शैली, लोकगीत और छंद के वर्गों के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है।

पद-शैली

परम्परा से कृष्णभक्ति-काव्य की शैली पद-शैली रही है। भक्तियुग के कृष्णभक्त-कवियों ने शास्त्रीय संगीत से पुष्ट करके कृष्णभक्ति-काव्य से उसकी अभिन्नता स्थापित की। इस युग में पद-शैली का प्रयोग साम्प्रदायिक कवियों की ही रचनाओं में मिलता है, सम्प्रदाय-मुक्त कवियों ने प्रायः मुक्तक शैली के कवित्त और सवैया छंदों को ही अपनी भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। पद-रचना की दृष्टि से सभी कृष्णभक्ति सम्प्रदायों की स्थिति इस युग में ह्रासोन्मुखी रही है। वृन्दावनदेव, घनानन्द, हरिराय, नागरीदास, चाचा वृन्दावनदास, भारतेन्दु आदि कुछ को छोड़ कर अधिकांश पदकारों के पदों का आधार प्रायः साम्प्रदायिक उत्सव रहे हैं। एक प्रकार से होली,

दीवाली, सांझी, रथ-यात्रा आदि उत्सवों को इस युग के कृष्णभक्त कवियों द्वारा रचित पदों का मुख्य प्रेरणा स्रोत कहा जा सकता है। उत्सव विषयक अधिकांश पद प्राय: वर्णनात्मक प्रकृति के हैं तथा सामूहिक गान के उद्देश्य से रचे जाने के कारण उनका स्वरूप लोकगीतों से प्रचुर मात्रा में प्रभावित रहा है।

काव्य में गृहीत कृष्ण-कथा की संकुचित परिधि का प्रभाव पदों में प्राप्त वस्तुतत्व पर भी लक्षित होता हैं। अलौकिक गोकुल और वृन्दावन लीलाओं से सम्बन्धित पद अपवाद रूप में ही रचे गये। इन पदों के अन्तर्गत अधिकतर वात्सल्य और श्रृंगारपरक लौकिक गोकुल एवं वृन्दावन लीलाएँ ही वर्णित हुई हैं।

पदों में प्रयुक्त संगीत की विविध शैलियाँ

सभी सम्प्रदायों के कवियों द्वारा रचित पदों में परम्परा के अनुसार शास्त्रीय संगीत का पुष्ट आधार प्राप्त होता है। उनकी रचना विविध रागों के अन्तर्गत हुई है, जो पदस्थ वस्तु एवं भावधारा के अनुकूल नियोजित हुए हैं। इस युग के पदकारों ने संगीत की ध्रुवपद और धमार की परम्परागत शैलियों के अतिरिक्त टप्पा, ठुमरी, दादरा आदि समसामयिक शैलियों का भी अपनी पद-रचना में आधार लिया है, किन्तु भक्तिकालीन कृष्णभक्ति-काव्य की तुलना में संगीत विषयक नूतन उद्‌भावनाओं की दृष्टि से इस युग का कृष्ण-काव्य सम्पन्न नहीं कहा जा सकता।

ध्रुवपद-शैली

ध्रुवपद का अर्थ है दृढ़ निश्चित, गम्भीर तथा पद का अर्थ है चरण अथवा चाल। इसलिए ध्रुवपदों में गम्भीर एवं विलम्बित लय का प्रयोग होता है। ये प्राय: देव स्तुति प्रार्थना गायन आदि से सम्बन्धित होते हैं। ध्रुवपद के गायन में तान-पल्टों आदि का व्यवहार नहीं किया जाता, केवल मीड़ और गमक का ही प्रयोग होता है। उसके चार भाग होते हैं—स्थायी, अंतरा, संचारी और आभोग। इनके अन्तर्गत भाव एवं लय की गम्भीरता उत्तरोत्तर संवर्धित होती जाती है।

भक्तिकालीन कृष्णभक्त कवियों की पद-रचना में ध्रुवपद शैली का प्रचुर मात्रा में समावेश मिलता है। किन्तु इस युग में ध्रुवपदों की परम्परा उत्तरोत्तर क्षीण होती गयी। केवल वृन्दावनदेव, हरिराय, घनानन्द, नागरीदास,

भारतेन्दु आदि कुछ ही पदकारों के पदों में इस शैली का आधार मिलता है। सामान्यतया ध्रुवपद शैली को वात्सल्य और माधुर्य के प्रसंगों में ही अपनाया गया है। नीचे ध्रुवपदों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं :—

राग-विभास

१—घनानन्द

स्यामसुन्दर की मुरली बाजै, सह सुरभेद सों स्रवन सुनत
सुधि बुधि सब बिसरै रह्यौ न परत बिन देखें ए री।
हा हा परति हौं पाय उपाय बताय जिवाय लै ह्वै हौं बित बिन
हित सौं तेरी चेरी तो पर वारी फेरी।
कासों कहौं बिथा या जिय की कोऊ जानत नाहिन हिय की
मन ही मन समुझाय रहति हौं तन परबस गुरुजन की घेरी।
आनन्दघन पिय को जब देखौं तब ही जनम सफल कर लेखौं,
तुही हितू तो ही सों इतनी विनती मेरी ॥[१]

राग-पूरिना

२—वृन्दावनदेव

प्रेम की मरोरनि मसोसैं मन मारिये।
द्रगनि के साथ ह्वै बिकानों पर हाथ इह,
दीजै काहि दोष कहो कौन पै पुकारिये।
भूल्यो धनधाम अब कहाँ घनश्याम आली,
बिना काम देह यों वियोगि आदि जारिये।
वृंदावन प्रभु कहूँ नैकहूँ निहारिये.
सुतन मन धन प्रान वारि वारि डारिये ॥[२]

---

[१] घनानन्द-ग्रंथावली, पद ४२१

[२] गीतामृत गंगा, पृ० ३१ पद ८१

राग मलार

३— भारतेन्दु :

आयौ पावस प्रचंड सब जग में मचाई धूम,
कारे घन घेरि चारों ओर छाय।
गरजि गरजि तरजि तरजि बीजु चमक चहुँ दिसि
सो बरखत जलधार लेत धरनि छिपाय।।
मोर रोर दादुर रव कोकिल कल झींगुर झनकारन,
मिलि चारहु दिसि तुम कलह घोर सी मचाय।
'हरीचंद' गिरधारी राधा प्यारी साथ लगाय,
ऐसी समय रहै मिलि कंठ लपटाय।।[१]

ध्रुवपद-शैली में रचित पदों के ऊपर 'ध्रुवपद' का उल्लेख बहुत कम पदों में मिलता है किन्तु रागों का निर्देश तो प्रायः सर्वत्र हुआ है। रागों के साथ तालों के उल्लेख की प्रवृत्ति भी कम दिखाई पड़ती है। घनानन्द के अधिकांश पदों में अवश्य रागों के साथ तालों का निर्देश हुआ है, इनमें मूलताल, इकताल, चौताल और तिताल प्रमुख हैं। घनानन्द के अनेक पदों का विस्तार केवल चार चरणों में ही हुआ है, जो ध्रुवपद शैली के चारों अगों–स्थायी, अंतरा, संचारी और आभोग से सम्बद्ध जान पड़ते हैं। ऐसे पद ध्रुवपद शैली के उत्कृष्ट नमूने हैं।[२]

राग-मलार

सुरति-सुख-बेली सरसति रंगनि।
ललित लहलही चपला चौंपनि चाँपति नव घन अंगनि
स्रमजल कन पुहपावलि प्रगटनि कूजित कोकिला-काकली-संगनि।
जमुनातट बृन्दावन आनंदघन झर लाग्यौ है उमंगनि।।[३]

संगीत एवं नृत्य की शब्दावली का प्रयोग

ध्रुवपद-शैली में प्रयुक्त होने वाले वाद्ययंत्रों की ध्वन्यात्मक तथा नृत्य विषयक शब्दावली के प्रयोग की प्रवृत्ति बहुत कम पदों में मिलती है। इस

---

[१] भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृ० ५०३, पद, ५२

[२] घनानन्द-ग्रन्थावली, पद सं० २२४, २२५, २३८, २४४, ४२४, ४३८, ४४३, ५००, ५०७, ५०६, ६१२, ६३४, ७७५ आदि।

प्रकार की शब्दावली प्रायः रास के पदों में ही प्रयुक्त हुई है । क्योंकि रास में नृत्य एवं संगीत का युगपद् विधान रहता है । वृन्दावनदेव, घनानन्द, नागरीदास और भारतेन्दु के पदों में संगीत एवं नृत्य विषयक शब्दावली स्थान-स्थान पर देखी जा सकती है :—

वृन्दावनदेव :—रास में नाचै मोहन लाला ।
लाग डाट अरु उरप तिरप में उछरत है वनमाला ।
तत्तरंग तक्किट किटि दिमि किटि तथुंगिटि तक दिगि तक
थुंगा दिमि किटि दिमि थो त्रुगड धा धिकि तक तथुं थुंग धलंग ।[1]

घनानंद :—ततथेई ततथेई थेई ततथेई तत तेथेई तेथेई ता थुंगा थुंगा ततथेई थेई
उघटत रसिकराय नटनागर नव नागरि सुघंग सों लेई ।[2]

नागरीदास :—थेई ता त्थेई थुंग धमकट तक्ताधा लांग ।
उमट सुघट ठाठ ठटक्यौ सु ठठक्यौ ।
देखि नवरंगों की ललित कटि भंगी तहां काढ़यौ है निकट
भूलि भटक्यौ सो भटक्यौ ।।[3]

भारतेन्दु :—फिर लीजै वह तान अहो पिय फिरि लीजै वह तान ।
नि नि ध ध प प म म ग ग रि रि सा सा मोहन चतुरसुजान ।
उदित चन्द्र निर्मल नभ मंडल थक गये देव बिमान ।
कुनित किंकनी नूपुर बाजत झन झन शब्द महान ।।[4]

संगीत और नृत्य सम्बन्धी शब्दावली के प्रयोग में प्रायः भक्तकालीन प्रवृत्ति का ही अनुकरण हुआ है ।

धमार शैली

कृष्णभक्ति-काव्य में ध्रुवपद के समान धमार-शैली भी परम्परा से पर्याप्त लोकप्रिय रही है । धमार-गीत वस्तुतः होली के गीत हैं, जिनमें

---

[1] गीतामृत गंगा, पृ० ३६, पद १०

[2] घनानन्द-ग्रन्थावली, पद २२५

[3] नागर-समुच्चय, रासलीला खण्ड से उद्धृत

[4] भारतेन्दु-ग्रन्थावली, पृ० ४६१, पद ७६

सामूहिक गान की प्रवृत्ति प्रधान रहती है। धमार गीतों का वैशिष्ट्य उनमें प्रयुक्त लय में होता है। ये गीत एक प्रकार से लोकगीतों की कोटि में आते हैं, अन्तर केवल इतना है कि कृष्णभक्त कवियों ने धमार गीतों को शास्त्रीय संगीत के किसी न किसी राग के अन्तर्गत रचा है, जब कि लोकगीतों में शास्त्रीय संगीत का आधार अनिवार्य रुप में नहीं रहता।

होली और धमार के पद सभी कृष्णभक्ति-सम्प्रदायों के कवियों द्वारा रचे गये। इनमें हरिराय, घनानन्द, चाचा वृन्दावनदास और भारतेन्दु के पद विशेष महत्व के हैं। धमार-शैली में हर्ष और उल्लास के व्यंजक धनाश्री, गौरी, काफ़ी राइसों, विहागरो आसावरी और परज रागों का प्रयोग सर्वाधिक मात्रा में हुआ है। धमार-शैली के पदों की प्रकृति वर्णनात्मक है तथा इनमें पुनरुक्ति-योजना द्वारा सामूहिक उल्लास की भावना को उद्दीप्त करने की प्रवृत्ति प्रधान रही है। अधिकांश पदों में पुनरुक्ति का विधान लोकगीतों की पद्धति पर हुआ है, जिसका विवेचन आगे किया जायगा।

समसामायिक संगीत शैलियाँ

इस युग में जिन नवीन संगीत शैलियों का विकास हुआ उनमें ख्याल, दादरा, ठुमरी, टप्पा, आदि प्रमुख हैं। संगीत की इन शैलियों का विकास बहुत कुछ रीति काव्य के समानान्तर हुआ है[1] श्रृंगारिक भावों की अभिव्यक्ति में विशेष सक्षम तथा चमत्कारमूलक होने के कारण कृष्णभक्ति-काव्य की परिधि में भी समावेश हुआ। घनानन्द, नागरीदास, भारतेन्दु, ललितकिशोरी और नारायणस्वामी के बहुत से पदों में इन शैलियों का आधार लिया गया है। घनानन्द और नागरीदास जैसे राजकीय वातावरण की छाया से प्रभावित पदकारों की पद-रचना पर तो इनका प्रभाव मिलना एक प्रकार से स्वाभाविक प्रतीत होता है। साथ ही इन्हें जन सामान्य में भी पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त हुई।

ख्याल-शैली—ख्याल शैली में तानों का विशेष महत्त्व है।[2] कृष्णभक्ति-काव्य में ध्रुवपद के उपरान्त ख्याल-शैली ही सर्वाधिक लोकप्रिय रही है। ख्याल की प्रकृति चपल एवं श्रृंगारिक भावों के अनुकूल होती है। इस शैली के पदकारों ने अपने पदों की रचना विलावल, ईमन, रामकली आदि रागों के अन्तर्गत की है।

---

[1] काव्य और संगीत का पारस्परिक सम्बन्ध, पृ० १८०-१८७

[2] संगीत-सागर, पृ० ९५

रामकली-ख्याल

घनानंद :—डगर न छोड़ें मेरी लंगर कन्हैया।
आनि अचानक घेरि लेत कैसे बचौं आकिली मैं दैया।
हौं सकुचौं न दीठि न मानै निपट निडर रस दान लिवैया।
आनंदघन घुरि लाजन भिजवै ऐसे गोकुल को है रहैया ॥[१]

ख्याल

भारतेन्दु :—सखियाँ री अपने सैंया के कारनां हरवा गूंथि गूंथि लाई।
बाग गई कलियाँ धुनि लाई चरि रचि माल बनाई।
हरीचंद पिय गल पहिराई हंसि हंसि कंठ लगाई ॥[२]

ख्याल

ललितमाधुरी :—जुगल नाम रस रसना पीवत छिन न अघाय किशोरी जू।
नैन सुधारस रूप निरंतर छबे रहैं रंग बोरी जू ॥
सरस नाम धुनि चाह भरे दिन रहैं श्रवन वलिगोरी जू।
हियौ टूट तब चरनन लागै आस मेड़ सब तोरी जू।
आठै जाम बसै उर नैनन ललित माधुरी जोरी जू ॥[३]

टप्पा, ठुमरी और दादरा :—ये तीनों शैलियाँ ख्याल से भी अधिक चंचल प्रकृति की हैं तथा इनका विकास भी ख्याल-शैली का परवर्ती है। टप्पों का गायन अधिकतर काफी, भैरवी, खम्माज, वरबा, पीलू आदि रागों में किया जाता है। ठुमरी की शैली टप्पे से भी अधिक चपल एवं शृंगारिक है। दादरा वस्तुतः ठुमरियों के चाल के ही गीत हैं,[४] 'दोनों में अन्तर केवल यह है कि दादरा प्रायः संक्षिप्त होता है तथा द्रुतलय में गाया जाता है। इन शैलियों का प्रयोग प्रायः उन्नीसवीं शती के ही पदकारों ने किया है। अठारहवीं शती में केवल हरिराय के पदों में दादरा का अपवाद रूप में प्रयोग हुआ है।

---

[१] घनानन्द-ग्रन्थावली, पद, ४०४
[२] भारतेन्दु-ग्रन्थावली, पृ० १६१, पद ६७
[३] अभिलाष-माधुरी, ललित माधुरी के पद
[४] संगीत-सागर, पृ० ६६, ६५

दादरा

चोरौं सखी बंसी आज दाव भलो पाय है।
यह उपकार प्यारी सदा हम मानैंगी
गोरी राग गाय रसिक सांवरो रिझायौ है।
बहुत अधरामृत स्याम चुबायौ मुरली बीच
दिन दिन की कसक आज काढ़ पायौ है।
रसिक-प्रीतम जो पै बिनती करे हजार बार
तो हू या बाँसुरी को भेद न पायो है।[१]

उपर्युक्त शैलियों का भारतेन्दु के पदों में सर्वाधिक मात्रा में आधार लिया गया है। उन्होंने प्रेम-तरंग, प्रेम-प्रलाप, तथा राग-संग्रह आदि रचनाओं में ठुमरी और दादरा के अनेक प्रयोग किये हैं।[२]

सभी शैलियों के पदों की रचना किसी-न-किसी राग के अन्तर्गत हुई है। कहीं-कहीं रागों के साथ तालों का भी उल्लेख हुआ है किन्तु किसी भी राग और ताल का निश्चित सम्बन्ध नहीं ज्ञात होता। एक राग में अनेक तालों का तथा एक ही ताल का अनेक रागों के अन्तर्गत प्रयोग इसका प्रमाण है। रागों का प्रयोजन मूलतः स्वर-विधान द्वारा पदस्थ भाव को मूर्तिमान करना रहा है। सभी पदकारों ने जिन रागों का प्रयोग किया है उनमें से अधिकांश राग परम्परागत है। रागों के प्रयोग में पदकारों ने उनकी विषयानुकूलता का सर्वत्र ध्यान रखा है।[३]

राधा-कृष्ण के जन्म, पालना, छठी, दसूठन, विवाह आदि प्रसंगों से सम्बन्धित पदों में हर्ष एवं उल्लास की व्यंजना करने वाले रागों का प्रयोग हुआ है। इनमें रामकली, चैती-गोरी, आसावरी, जैजैवंती, भैरो, विलावल, विभास, धनाश्री, काफी, दीपचंदी, जैतश्री, परज, सोरठ, देवगंधार, विहागरों, नायकी, सारंग, और ईमन प्रमुख हैं। चाचा वृन्दावनदास ने राधा-कृष्ण

---

[१] हरिराय का पद साहित्य, पद, १००
[२] भारतेन्दु-ग्रन्थावली, पृ० ४३९, पद ८, पृ० १८१, पद १४
[३] विषयानुसार रागों का प्रस्तुत विवेचन श्रृंगाररससागर तथा प्रमुख पदकारों के पद-संग्रहों के आधार पर किया गया है।

की जन्म-बधाई के प्रसंगों में ढ़ाढ़ी-ढ़ाढ़िन और ब्रजवासियों के उत्साह की व्यंजना हेतु अनेक पदों में मारु राग का भी प्रयोग किया है। मारु राग का यह प्रयोग उसके परम्परागत वीर रसात्मक रूप से सर्वथा भिन्न पद्धति पर हुआ है। बधाई के पदों की इतिवृत्तात्मकता विविध रागों के विधान से रससिक्त हो गयी है।

कृष्ण की बाल-क्रीड़ाओं तथा गोचारण, माखन-चोरी, छाक, गोदोहन आदि लौकिक गोकुल लीलाओं के पदों में जिन रागों का प्रयोग हुआ है, उनमें से अधिकांश राग बधाई के पदों के ही हैं। इसके अतिरिक्ति कान्हरा, हमीर, नट, भैरव, ललित, मालव आदि राग भी प्रयुक्त हुये हैं। इस वर्ग के पद आकार में संक्षिप्त है।

रासलीला, दानलीला, पनघटलीला, छद्मलीला, मानलीला आदि वृन्दावन की माधुर्यभाव प्रधान लीलाओं से सम्बन्धित पदों में कोमल प्रकृति के रागों का प्रयोग हुआ है। प्रेमभाव की अजस्रता, मार्दव एवं लालित्य के कारण ऐसे पदों में गोकुल लीलाओं के रागों के अतिरिक्त नायकी, सारंग, विभास, भूपाली, कल्याण, श्याम कल्याण, दादरा, केदारो, मालकोश, पीलू, खम्माच, विहाग, पूर्वी, पूरिया, आदि रागों की अधिकता मिलती है। इस युग में चूंकि काव्य के समान संगीत में भी शृंगार की सर्वाधिक व्याप्ति स्वीकृत हुई। अतएव शृंगार-मूलक पदों में रागों की बहुलता मिलना पूर्णतया स्वाभाविक है।

कृष्णभक्ति सम्प्रदायों में प्रचलित अधिकांश उत्सव राधा-कृष्ण की प्रेम एवं शृंगार-लीलाओं पर आधारित हैं। अतएव सांझी फूलडोल, चन्दन-यात्रा, उसीर-कुंज, रथ-यात्रा, जल-विहार आदि उत्सवों से सम्बन्धित पदों में माधुर्य लीलाओं के ही राग प्रयुक्त हुये हैं। उत्सवों के क्रमानुसार पदों में प्रयुक्त रागों का विवरण इस प्रकार हैं:—

१—**सांझी** :—सारंग, गौरी और पूर्वी

२—**फूलडोल** :—राइसो, देवगंधार, विहागरो, ईमन, धनाश्री, कान्हरो और आसावरी।

३—**चैतचांदनी** :—केदारौ शंकराभरन, पंचम और परज

४—**उसीर-कुंज** :—सारंग

५—**जल-विहार** :—कान्हरो, धनाश्री, विलावल और केदारो

६—**रथ यात्रा** :—मलार और देव गंधार

उत्सवपरक पदों में सारंग-राग का सबसे अधिक प्रयोग हुआ है। इन पदों में सामूहिक गान की प्रवृत्ति प्रधान रही है।

वसंत और होली के पदों में प्रयुक्त रागों में सामूहिक उल्लास एवं आनन्द का भाव सर्वाधिक मात्रा में पल्लवित हुआ है, ऐसे पद शास्त्रीय रागों से अनुशासित होने के साथ ही लोकगीतों की चेतना से भी अनुप्राणित हैं। वसन्त के पदों में एकमात्र वसन्त राग का प्रयोग मिलता है, किन्तु होली के पदों में अन्य रागों का भी आधार लिया गया है। इनमें-धनाश्री, काफी, गौरी, राइसौ, सारंग विहागरौ, आसावरी, कल्याण, कान्हरौ, परज और विलावत मुख्य है।

लोकगीत

कृष्णभक्ति-काव्य में जिस प्रकार कृष्णलीलाओं के चित्रण में व्रजलोक संस्कृति की अभिव्यक्ति हुई है, उसी प्रकार पद-रचना के अन्तर्गत व्रज के लोकगीतों का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में मिलता है। लोकगीतों में पदकारों की वैयक्तिक चेतना ब्रज-लोकमन से एकाकार हो गयी है। परिष्कृत व्रजभाषा तथा संगीत के रागों में आबद्ध होने के कारण कृष्णभक्ति-काव्य में प्रयुक्त लोकगीतों का स्वरूप निखर आया है।

लोकगीतों के विविध रूप

विवेच्य कृष्णभक्त-कवियों ने प्रायः ब्रजमण्डल में प्रचलित लोकगीतों को ही अपनी पद-रचना में प्रधानता दी है। ऐसे पदकारों में गोस्वामी रूपलाल, चाचा-वृन्दावनदास, हरिराय, प्रेमदास, किशोरी अलि और भारतेन्दु अग्रणी हैं। इन कवियों द्वारा रचित लोकगीतों के दो रूप निर्धारित किये जा सकते हैं। प्रथम वर्ग के अन्तर्गत ऋतु विषयक लोकगीत आते हैं, इनमें होली, रसिया, बारहमासा और कजली प्रमुख हैं तथा द्वितीय वर्ग में उत्सवपरक लोकगीतों को रक्खा जा सकता है। उत्सवपरक गीतों के भी दो रूप मिलते हैं—सामाजिक उत्सवों से सम्बन्धित गीत, जिनमें बधाई, सोहर, गाली, बन्ना ज्योंनार आदि की गणना की जाती है तथा साम्प्रदायिक लोकोत्सव विषयक गीत, जैसे, वसन्त, हिंडोला, सांझी आदि। इन गीतों में राधा-कृष्ण की माधुर्य लीलाओं की प्रख्यात वस्तु का सूक्ष्म आधार लिया गया है। कृष्णलीलाओं में लोकतत्वों के समावेश के माध्यम अधिकांशतः लोकगीत ही रहे हैं।

चाचा वृन्दावनदास और भारतेन्दु के लोकगीत

इस युग के सभी कृष्णभक्त कवियों में चाचा वृन्दावनदास ने लोकगीतों की रचना सबसे अधिक संख्या में की। लाड़सागर के तो अधिकांश पद लोक-

गीतों की छाप लिये हुये हैं।[१] व्रजप्रदेश के जन्म से लेकर विवाह तक के विविध संस्कारों से सम्बन्धित लोकगीतों की रचना में उन्हें अपूर्व सफलता मिली है। इसके अतिरिक्त होली, फूलडोल, सांझी, दीपावली आदि लोकोत्सवों से सम्बन्धित लोकगीत भी उन्होंने प्रचुर मात्रा में रचे। लोकदृष्टि एवं सामूहिक चेतना की प्रखरता के कारण यद्यपि उनके लोकगीतों में आत्माभिव्यक्ति गौण पड़ गई है। तथापि व्रजलोक संस्कृति के निरूपण की दृष्टि से उनका सम्पूर्ण कृष्ण-काव्य में महत्वपूर्ण स्थान है। चाचाजी के अधिकांश लोकगीत आकार में विस्तृत हैं तथा उनमें वस्तुतत्व एवं लोकानुभूति का सुन्दर सामंजस्य मिलता है। उनके विवाह विषयक एक लोकगीत का नीचे उद्धृत अंश देखिए :—

लखि सखि कौतिक रूप री, बरना बनि आयौ।
बड़े हो सजन कौ पूत, गोकुल रावरौ बरना बनि आयौ॥
धनि जसुमति जिन उर धारयो, बरना बनि आयौ।
यह रस रतन अभूत, गोकुल रावरौ बरना बनि आयौ॥
धन्य सखी नंद गांवनौ, बरना बनि आयौ।
जहाँ बढ़यौ राजकुमार, गोकुल रावरो बरना बनि आयौ॥
धनि ब्रजपति लाड़नि पल्यौ, बरना बनि आयौ।
धन्य सखा जै लार, गोकुल रावरौ बरना बनि आयौ॥
धनि वे गोधन वृंद री, बरना बनि आयौ।
जिनहिं चरावनि जाइ, गोकुल रावरो बरना बनि आयौ॥
धनि वृंदावन द्रुमलता, बरना बनि आयौ।
जहाँ बिहरत सचु पाई, गोकुल रावरो बरना बनि आयौ।
धनि वे ललित कदम्बरी, बरना बनि आयौ।
जिनकी शीतल छांह री, गोकुल रावरो बरना बनि आयौ।[२]

होली के गीतों में भी यही प्रवृत्ति मिलती है। राधा-कृष्ण और व्रजवासियों की फागक्रीड़ा के काल्पनिक कथासूत्र के विकास के साथ उल्लास की भावना उद्दीप्त होती चलती है :—

---

१ लाड़सागर, पृ० १०६, १४१, १७४, १९०, १९४, १९७ के पद विशेष द्रष्टव्य।

२ लाड़सागर, पृ० १७४, पद ११५

मान सरोवर मान तजि, मिलि चाँचरि खेलैं ।
जहाँ अवनी अति सुचारु. मिलि चांचरि खेलैं ।।
कानन कुसुमित गलिनु में, मिलि चांचरि खेलैं ।
बाढ़यौ है फागु बिहारु, मिलि चांचरि खेलैं ।।१।।
विद्युति निकर लज्यावनी, मिलि चांचरि खेलैं ।
अलिगन संग अनंत, मिलि चांचरि खेलैं ।।
बन दोहाई फिरी मदन की, मिलि चांचरि खेलैं ।
अवसर जानि वसंत, मिलि चांचरि खेलैं ।।२।।
पिय मन अति चंचल कीयौ, मिलि चांचरि खेलैं ।
मनसिज प्रबल प्रताप, मिलि चांचरि खेलैं ।
सैना रस संग्राम, मिलि चांचरि खेलैं ।
सजति प्रिया तब आयु, मिलि चांचरि खेलैं[1] ।।३।।

भारतेन्दु ने व्रज लोकगीतों से इतर भिन्न शैली के लोकगीतों की भी रचना की । उनके कुछ लोकगीतों की रचना पूर्वी प्रदेश में प्रचलित लोकगीतों की शैली पर हुई है । होली, कजली और बारहमासा की शैली में रचित गीतों में लोक-धुनों और विलम्बित लय का विधान इसका प्रमाण है। निम्न पद इसी लय में रचित है:—

आए कहाँ सौ आज प्रात रस भीने हो ।
अति जभांत अलसात लाल रस भीने हो ।
कित खेले तुम रैन फाग रस भीने हो ।
कौन को दियो सोहाग लाल रस भीने हो ।।[2]

भारतेन्दु ने होली के कुछ गीत 'डफ की होली' के नाम से रचे हैं । ऐसे गीतों में द्रुतलय का विधान हुआ है । इनमें सामूहिक उल्लास की अभिव्यक्ति के साथ संगीत की गति उत्तरोत्तर चंचल होती गयी है । जैसे:—

---

१ शृंगाररससागर भाग १, पद १५
२ भारतेन्दु-ग्रन्थावली, पृ० ३७५, पद ३२

होली डफ की

अरे गुदना रे—गोरी तेरे मुख पर बहुत खुल्यौ गुदना रे
अरे रसिया रे—गोरी वापै घायल मायल होय रह्यौ।
अरे दुपटा रे—गोरी तापै सुरख अबीरी और फब्यौ,
अरे मोहना रे—गोरी तेरे संग फिरै घर बार तज्यौ।[१]

कजली और बारहमासों की रचना भी भारतेन्दु ने उनके व्रज में प्रचलित रूपों से भिन्न पूर्वी शैली के आधार पर की है :—

कजली

दोऊ झूलैं आजु ललित हिंडोरे सखियाँ।
लखि सोभा मेरी सुनो री सिरानी अँखियाँ॥
फूले फूल बहु कुंज झुकि रही डलियाँ।
तहाँ बोले मोर कोकिला गावत अलियाँ॥
परे मंद मंद फुही दीने गल बहियाँ।
श्याम भीजत बचावत प्यारी करि छहियाँ॥
छवि बाढ़ौ अनूप तहाँ तौन घरियों।
तन मन हरीचंद बलिहारी करियों॥[२]

भारतेन्दु के लोकगीतों में लोकानुभूति का वह उद्रेक नहीं मिलता, जो चाचा वृन्दावनदास के गीतों में सहज रूप में अभिव्यक्त हुआ है। लोक-संगीत का भी उनमें अल्पमात्रा में ही समावेश हुआ है। फिर भी व्रज-प्रदेश के परम्परागत लोकगीतों की शैली से भिन्न रूप में गीतों की रचना करके उन्होंने कृष्णभक्ति-काव्य की परम्परा में नवीनता का समावेश किया और इस दृष्टि से उनका महत्त्व असंदिग्ध है।

पदों में लोकधुनों का प्रयोग

सभी प्रकार के लोकगीतों में संगीत-विधान बहुत कुछ लोकगीतों पर आश्रित रहा है। 'लोकधुनि' वस्तुतः सामूहिक लय है। इन गीतों में छंद-विधान

[१] भारतेन्दु-ग्रन्थावली पृ० ३८६, पद ७२
[२] वही, पृ० ५००, पद ४१

नहीं होता। मात्राओं के दोष का लय के द्वारा परिहार हो जाता है। लोकगीतों में वस्तु तत्त्व एवं अभिव्यंजना का अद्भुत सामंजस्य रहता है। भाव-लहरी के ही अनुरूप चरणों का विस्तार किया जाता है। सोहर, होली, रसिया आदि गीतों में पदकारों ने लोकधुनों के विधान में वस्तु एवं भावधारा के अनुरूप स्वतन्त्रता से कार्य लिया है। निम्न उद्धृत अंशों में प्रयुक्त लोकधुनें इसका प्रमाण हैं :—

राग-धनाश्री

चाचा वृन्दावनदास :—

ब्रज खेलत ब्रजराज कुमार, होरी डाँडौ रोपियो ।।टेक।।
पून्यो माघ विचार कै मन बाढ़यौ आनंद अपार।
विनती घोष नरेश सौं करन लगे पुनि बारम्बार ।।
होरी डाँडौ रोपियो।
पुनि सांडि दल बुलया कै लगन मुहूरत स्याम सुधाई।
डाडौं रोप्यो गोइरैं-देश भयाने कुशल मनाई ।।
होरी डाँडौ रोपियो[1] ।।

राग-गौरी

प्रेमदास :—

खेलत मंजु निकुंज में। रंग भीनी होरी।
स्याम राधिका गौरी। रंग भीनी होरी।
एकम एक मतौं कियो। रग भीनी होरी।
मृग मद केसरि घोरी। रंग भीनी हारी।
द्वैज भाव द्विज को लख्यौ। रग भीनी होरी ।।[2]

राग-चैती गौरी

गो० रूपलाल :—

बधावौ नंद राइ कैं अहौ हेली प्रगट्यौ है ब्रजचंद।
अहौ हेली सानंदा और नंदिनी सुनि लोर गवावति आई।
बधावौ ।।

---

[1] श्रृंगाररससागर, भाग १, पृ० ९०, पद २
[2] वही, १, पृ० ११०, पद १४

अहौ हेली बाजैं बहु बिधि बाजहीं रानी जसुमति कूषि मल्हाई ।
बधावौ...॥

अहो हेली चौक पुराई कै संग नीये ब्रजनारि ।
बधावौ ..॥[1]

राग-काफी

हरिराय :—

श्री ब्रजराज के धाम बधाई, बाजही । बधाई बाजही ॥
धुनि सुनि उठी अकुलाइ, मेघ ज्यों गाजहीं । मेघ ज्यों गाजहीं ॥
जहाँ तहाँ ले चली धाय, अटकि नंद पौरि पै । अटकि नंद पौरि पै ॥
ये गावत मंगल गीत, ऊँचे स्वर घोर पै ॥ ऊँचे स्वर घोर पै ॥[2]

प्रथम पद में 'होरी डाँडौ-रोपियो' की धुनि का तथा द्वितीय पद में प्रत्येक चरण के उत्तरार्द्ध में 'रंग भीनी होरी' की धुनि का विधान हुआ है। तीसरे पद की प्रथम पंक्ति के प्रारम्भिक वर्णों 'बधावौ नन्दराइ कै' की प्रत्येक चरण के अन्त में तथा मध्यवर्णों 'अहो होली' की प्रत्येक चरण के प्रारम्भ में लोकधुनि के रूप में आवृत्ति हुई है। चौथे पद में प्रत्येक चरण के उत्तरार्द्ध के वर्ण ही उसके अन्त में धुनि रूप में नियोजित हुए हैं। लोकधुनों की यह योजना शास्त्रीय रागों के अनुशासित रही हैं।

दुहरी लोकधुनें :—कुछ पदों में दुहरी लोकधुनें भी प्रयुक्त हुई हैं। ऐसे पदों में प्रथम धुनि के दो-तीन प्रारम्भिक शब्दों को जोड़ कर दूसरी धुनि बनाई गई है। दुहरी लोकधुनों का प्रयोग सबसे अधिक चाचा वृन्दावनदास के लोकगीतों में हुआ है। जैसे :—

राग-धनाश्री

परम रम्य रविजातटी । रस झूमक खेलैं ॥
रंग भीने राधा लाल । होरी रंग भरी रस झूमक खेलैं ॥
लाड़ गहर कौ झूमका । रस झूमक खेलैं ॥
कौविद उभे मराल । होरी रंग भरी रस झूमक खेलैं ॥१॥
मुरि मुरि झूमक देन में । रस झूमक खेलैं ॥
आवन लगे छबि औघ । होरी रंग भरी रस झूमक खेलैं ॥२॥[3]

[1] शृंगाररससागर, भाग ३, पृ० ७, पद ८
[2] हरिराय का पद साहित्य, पद सं० ३
[3] शृंगाररससागर भाग, १, पृ० १३७, पद २६

राग-गौरी

तलप सुभग कारन मनौ, मिलि होरी खेलें।
भरे मदन आवेस, मिथुन उदार री मिलि होली खेलैं ।।१।।
कोक कलासंग सहचरी, मिलि होरी खेलें।
बढ़वत रंग सुदेस, मिथुन उदार री मिलि होली खेलैं ।।२।।
भूषन रव बाजे बजै, मिलि होरी खेलैं।
छिन छिन बाढ़त चाव, मिथुन उदार री मिलि होली खेलैं ।।३।।[१]

लोकधुनों का एक रूप ऐसा भी है, जिसमें चरण-युग्म में तुक का विधान करते हुए प्रत्येक चरण का प्रारम्भ एक ही वर्ण से हुआ है। जैसे :—

राग-काफी

हाँ छगन मगनुवा जीवौ। हाँ लला पय धायि जु पीवौ ।१।
हाँ भाग्य भांडिन के आयौ। हाँ सबनि पै दाम दिखायौ ।२।
हाँ उदार लला की मौसी। हाँ फिरत है हौंसी हौंसी ।३।

लोकधुनों की योजना होली के प्रायः सभी पदों में मिलती है।[२] इसका कारण यह है कि इन गीतों में सामूहिक उल्लास की व्यंजना के लिए प्रचुर उपकरण रहते हैं। होली की लोकधुनें प्राय द्रुतलय में नियोजित हुई हैं।

अधिकांश लोकगीतों में कल्पना प्रसूत एक कथातंतु की योजना हुई है। उत्सवों तथा कृष्ण-लीलाओं से सम्बन्धित लोकगीतों में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से पल्लवित हुई है। सामूहिक लय तथा कथातंतु के युगपद् विन्यास के फलस्वरूप इन गीतों में भावात्मकता की अपेक्षा इतिवृत्तात्मकता का प्राधान्य है। कुछ गीतों का विस्तार तो शताधिक चरणों तक हुआ है। लोकगीतों की प्रकृति के अनुरूप इन पदों में कलात्मक शृंगार नहीं मिलता। इनमें लोकमन की निश्छल अभिव्यक्ति अपने सहज रूप में प्रभावशाली बन गयी है। सभी गीत प्रायः शास्त्रीय रागों में बँधे हुए हैं। इतिवत्तों के अत्यधिक विस्तार के कारण इन गीतों में कहीं-कहीं एकरसता आ गयी है, किन्तु प्रायः उसका लोकधुनों के द्वारा परिहार हो गया है।

---

[१] शृंगाररससागर, पृ० १११, पद १४

[२] वही, भाग ३, पृ० ६४, पद ९३

छंद

काव्य में छंद विधान का प्रयोजन भाव का सन्तुलित एवं रमणीय अभिव्यंजन है। इसीलिए कवि भाव के अनुरूप स्वरों के संयोजन द्वारा नाना छन्दों के अन्तर्गत आत्मानुभूति एवं वस्तुतत्त्व की अभिव्यक्ति करता है। विविध छंदों अन्तर्गत मात्रा, वर्ण और लय का प्रयोग उनके विशिष्ट नियमों के अनुसार होता है। वस्तुतः काव्य में छंद-प्रयोग का प्रयोजन भाव के अनुरूप लय का सन्तुलित एवं निश्चित विधान है। इसीलिए छंद भाव का अनुबन्धन होते भी रचनाकार की सौन्दर्य वृत्ति का परिचायक एवं उद्दीपक होता है।

कृष्णभक्ति-काव्य में परम्परा से छंदों की अपेक्षा पद-शैली की प्रधानता रही है, किन्तु विवेच्य युग में साम्प्रदायिक और साम्प्रदाय-मुक्त दोनों ही धाराओं के कृष्णभक्ति काव्य में छंद-प्रयोग की प्रवृत्ति बढ़ती गयी। सम्प्रदाय-मुक्त कवियों ने तो केवल कवित्त और सवैया छंदों को ही अपनाया। छंद के अन्तर्गत पद की अपेक्षा चमत्कार प्रदर्शन एवं अलंकृत अभिव्यक्तियों की अधिक सम्भावना इस प्रवृत्ति के मूल में ज्ञात होती है। यद्यपि विविध रागों के अन्तर्गत रचित पदों में भी किसी-न-किसी छंद का विधान अवश्य रहता है, तथापि रागानुशासित लय के अनुसार उनकी मात्राओं एवं वर्णों में संकोच अथवा विस्तार भी देखा जाता है। इसीलिए पदों में प्रयुक्त छंदों का स्वरूप उतना रूढ़ नहीं होता, जितना कि स्वतंत्र रूप में व्यवहृत छंदों का। इसके अतिरिक्त पदात्मक छंदों में विस्तार का भी कोई निश्चित नियम नहीं मिलता। पदकार स्वेच्छा से उनका कितने ही चरणों तक विस्तार कर सकता है।

सामान्य रूप से विविध काव्य-रूपों में छंद-प्रयोग उनकी प्रकृति के अनुरूप ही हुआ है। किन्तु छंदों के प्रयोग की अनेकरूपता को दृष्टि में रखते हुए किसी भी छंद को शैली विशेष से सम्बद्ध करना उचित नहीं प्रतीत होता। प्रबन्ध-शैली के दोहा, चौपाई, छप्पय आदि अनेक छंद अन्य काव्य-शैलियों में भी व्यवहृत हुए हैं। इसी प्रकार पदों में प्रयुक्त छंद प्रबन्ध-शैली के अन्तर्गत मिल जाते हैं। कवित्त और सवैया छंदों की स्थिति भी इसी प्रकार की है। मुक्तक के अतिरिक्त इनका प्रबन्ध तथा पद शैलियों में भी व्यवहार हुआ है। अतएव छंदों का स्वरूप काव्य-रूप अथवा शैली की अपेक्षा उनकी प्रयोगगत विविधता को लक्ष्य में रख कर करना उचित समझा गया है।

प्रमुख मात्रिक छंद और उनका स्वरूप

चौपइ, चौपई, पद्धरि और अरिल्ल :—इन छंदों का प्रयोग अधिकतर वर्ण-

नात्मक प्रसंगों में हुआ है। पदों में भी ये छंद कथातंतु के विकास हेतु ही प्रयुक्त हुए हैं। चौपाई के लिए सभी कवियों ने इसी नाम का प्रयोग किया है, किन्तु अनन्य अली ने इसे 'द्विपई' नाम से भी सम्बोधित किया है। छंदशास्त्र में निर्दिष्ट १६ मात्राओं के अन्य छंदों से उसकी कोई पृथकता लक्षित नहीं होती[१]। कहीं-कहीं तो १४ और १५ मात्राओं के चौपाई से इतर छंदों को भी चौपाई के नाम से व्यवहृत किया गया है। आलोच्य कृष्णभक्ति-काव्य में चौपाई के निम्न रूप प्रयुक्त हुए हैं।

चौपाई का पहला रूप १६ मात्राओं वाला है, जो सबसे अधिक व्यवहृत हुआ है। ब्रजविलास, ब्रजप्रेमानंदसागर, माधुर्यलहरी आदि रचनाओं तथा तथा पदों में चौपाई के इसी रूप का प्राचुर्य मिलता है।

चौपाई का दूसरा रूप १५ मात्राओं वाला है, जिनके अन्त में गुरू-लघु का विधान हुआ है। इसका भी प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। जैसे :—

रचि सिंगार ओर हत निहार। फिरि फिर उठि देखत रिझवार।३४।
दृग जल वरषत बाढ़त प्रीति। धरी रहति सेवा की रीति।३५।[२]

चौपाई का तीसरा रूप 'चौपाइया' नाम से मिलता है जो वस्तुतः १४ मात्राओं का सखी छंद है। इसके अंत में नगण अथवा गुरू की योजना रहती है। इस रूप में चौपाई का प्रयोग केवल वृन्दावनदास ने किया है:—

तव चरण कमल को दासी। भरि विरह, दवागिनि रासी।
हे देवि जिवावहु ताहीं। फिर थिती होइ ब्रजमाहीं।[३]

चौपाई के ऐसे भी अनेक प्रयोग मिलते हैं, जहाँ उसके १५ और १६ मात्राओं वाले रूपों का परस्पर मिश्रण हुआ है, यथा:—

गोपी सुनि के हर हर हंसी। लला चाह, उर ब्याह जु बंसी॥
पहिले बात जु मीठी करी। पीछें हासी जानी परी॥
महा चबाई है यह ग्राम। सुधरन दै है काको काम॥
लला ब्याहु नहिं काठी धरयो। ब्याहु न मिलैं बाट में परयो॥[४]

---

[१] छंद-प्रभाकर, पृ० ४७-४६
[२] नागर-समुच्चय, पृ० २८
[३] विलाप-कुसुमांजलि, चौ० १०
[४] ब्रजप्रेमानंदसागर, पृ० ३१

पद्धरि का इसी नाम से प्रयोग कदाचित् नागरीदास ने ही किया है। उनके वैराग्य-सागर में विविध ऋतुओं और उत्सवों से सम्बन्धित प्रसंगों में पद्धरि का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। पद्धरि वस्तुतः १६ मात्राओं वाले पादाकुलक का ही एक भेद है जिसके अन्त में जगण होना आवश्यक है :—

इक मिलत भुजनि भरि दौरि दौरि। इक टेर बुलावत और और।।

केउ चलै जात सह जौ सुनाय। पढ़ि गाय उठत भोगहिं सुनाय।।[१]

अरिल्ल के १६ मात्राओं के यगणांत रूप का विशुद्ध प्रयोग बहुत कम मिलता है। अधिकतर कवियों ने इसका २१ मात्राओं का प्लवंगम का पर्याय वाला रूप ही अपनाया है। चाचा वृन्दावनदास, प्रियादास, कृष्णदास आदि की रचनाओं एवं पदों में अरिल्ल के इसी रूप का प्रयोग हुआ है। चाचा वृन्दावनदास ने अपने पदों के अन्तर्गत अरिल्ल के चौथे चरण का विस्तार २४ मात्राओं तक करके उसमें विशिष्ट गेयता का समावेश किया है तथा साथ ही प्लवंगम के आदि में (S) और अंत (ISIS) की भी अवहेलना की है। उन्होंने ऐसा परिवर्तन पदगत संगीत के निर्वाह तथा लोकगीतों की सामूहिक गेयता की रक्षा के उद्देश्य से किया है :—

रावल कीनो बिदा हरषि कीरति जबै।
छोटे बड़े बुलाय किये एकत सबै।
सिद्ध परम अवधूत पुरातन जानिये।
हरि हाँ तिन जो कहै सुबचन सत्य बर मानिये।[२]

लाड़सागर में अरिल्ल के इस रूप के अनेक उदाहरण मिलते हैं।[३] कृष्णदास ने भी अरिल्ल के तीसरे चरण के अन्त में 'श्रीराधे' की लोकधुनि का नियोजन कर उसका शृंखलाबद्ध प्रयोग किया है किन्तु लोकधुनि का सम्बन्ध छंद के चरणों की मात्राओं से नहीं है।[४]

प्रियदास की 'चाहवेली' में अरिल्ल का सर्वथा भिन्न रूप व्यवहृत हुआ है। उन्होंने १६ मात्राओं वाले अरिल्ल का निर्वाह प्रत्येक चरण के पूर्वार्द्ध तक ही

---

[१] वैराग्यसागर, पृ० २८

[२] लाड़सागर, पृ० ८०, छंद २७६

[३] वही, पृ० ८०, ८८, ६०, ६४, ६५ आदि

[४] माधुर्य लहरी, पृ० ८८

किया है तथा उत्तरार्द्ध में ११, १२ अथवा १३ मात्राओं के वर्णों का अतिरिक्त विस्तार करते हुए तुक की योजना की है :—

हा हा सुखनिधि बदन चकोरी। हा हा तन छबि बोरी।
हा हा रस सागर गुण आगर। सांवल रंग चितचोरी।
हा हा परम प्रिय पिय प्यारी। हा हा सब सुख दैनी।
हा हा नवल लाल रंग-भीने। खंजन गंजन नैनी ॥[१]

चाचाजी के अनेक पदों में 'अरिल्ल्' के लिए 'मंगल-छंद' नाम भी मिलता है, जो वस्तुतः पद की वर्ण्यवस्तु का व्यंजक है, शैली का नहीं।

सखी और शृंगार—सखी १४ मात्राओं का (SSS) अथवा (। SS) चरणांत वाला छन्द है तथा शृंगार पादाकुलक का एक भेद है।[२] इन दोनों छन्दों का व्यवहार घनानन्द और भारतेन्दु के कुछ पदों में हुआ है:—

राग-काफी

सखी :—ब्रज मातौ मोहन डोलै। अब बचिहै दुरि कहि को लै ॥
घर अब ताक लगावै। फिर ऐसो अवसर पावै ॥[३]

शृंगार :—हिंडोरे झूलत कुंज कुटीर। हिंडोरे राधा औ बलवीर ॥
हिंडोरे सब गोपिन की भीर। हिंडोरे कालिंदी के तीर ॥[४]

चंद्रिका:—इस छन्द का स्वतन्त्र रूप में कहीं भी व्यवहार नहीं हुआ है। चाचा वृन्दावनदास के होली के पदों में यह लोकधुनों के साथ आया है। ऐसे स्थलों पर चन्द्रिका की १३ मात्राओं तथा अन्त में (S S ।) के अनुसार निर्मित चरण के साथ किसी लोकधुनि की योजना द्वारा सामूहिक गेयता का समावेश किया है:—

खेल राधा लाल री। रंग हो हो होरी ॥
कमनी रविजा तीर री। रंग हो होरी ॥
सोभित नव रंग चीर री। रंग हो हो होरी ॥[५]

---

[१] प्रियादास-ग्रन्थावली, पृ० २७
[२] छंद-प्रभाकर, पृ० ५१
[३] घनानन्द-ग्रन्थावली, पद ६०६
[४] प्रेमाश्रुवर्णन, पृ० १२३
[५] शृंगाररससागर, भाग १, पृ० २७७, पद १६७

दोहा—चौपाई के समान दोहा भी इस युग के कृष्णभक्ति-काव्य में बहुप्रचलित छंद रहा है। दोहे का प्रयोग वर्णनात्मक तथा सिद्धान्त-निरूपण के प्रसंगों में सबसे अधिक मात्रा में हुआ है। दोहों के लिए प्रायः सर्वत्र इसी नाम से अभिहित किया गया है। किन्तु, किशोरीदास ने 'सिद्धान्त-सरोवर' में दोहों के लिए 'साखी' नाम भी दिया है। ब्रजविलास, ब्रजप्रेमानन्दसागर आदि प्रबन्ध-काव्यों तथा भागवत के अनुवादों में दोहों का चौपाई के साथ प्रयोग हुआ है। किन्तु चौपाई और दोहों के विन्यास-क्रम में सभी कवियों ने स्वतंत्रता से काम लिया है। सुबल श्याम द्वारा अनूदित व्रजभाषा चैतन्य-चरितामृत ही कदाचित् एक मात्र ऐसी रचना है जिसमें कुछ स्थलों को छोड़ कर आद्योपांत दोहा ही प्रयुक्त हुआ है। मात्रा-विधान एवं शैली की दृष्टि से दोहे का उसके सामान्य रूप के अतिरिक्त निम्न विवेचित अन्य रूपों में भी प्रयोग मिलता है।

दोहे का प्रथम रूप वह है, जिसमें ९ या १० मात्राओं की एक लघु पंक्ति के योग से उसमें एक विशेष प्रकार की गेयता का समावेश किया है। जैसे :—

> **श्री गोबर्धन के सिखर ते, मोहन दीनी टेर।**
> **अंतरंग सो हम कहत हैं, सब ग्वालिन राखो घेर। नागरि दान दै॥**
> **एक भुजा कंकन गहै, एक भुजा गहि चीर।**
> **दान लेन ठाढ़े भये, गहवर कुंज कुटीर॥ मोहन जान दै॥**[१]

दोहे का एक प्रयोग 'उपदोहा' नाम से भी मिलता है, किन्तु इसका प्रयोग कदाचित् वृन्दावनदास की 'विलाप-कुसुमांजिलि' के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं हुआ है। उन्होंने दोहे के १३ और ११ की यति वाले रूप का विपर्यय करके ११ और १३ के यति-क्रम से रोले के चरण-युग्म को ही 'उपदोहा' नाम से अभिहित किया है :—

> तुव उर वर हे कनक, गौरि हे परम सुहावन।
> श्रमित अलस जुत नंद, सुवन सज्जा मन भावन॥२९॥[२]

चाचा वृन्दावनदास और नागरीदास के पदों में दोहे का प्रयोग रागों की 'अलापचारी' के लिए हुआ है। अलापचारी में प्रयुक्त दोहों की कोई निश्चित संख्या नहीं मिलती।

---

[१] हरिराय का पद साहित्य, पृ० ६८

[२] विलाप-कुसुमांजलि, छं २९

कुछ कवियों ने पदों में भी दोहे का प्रयोग किया है किन्तु किसी भी राग से दोहे का निश्चित सम्बन्ध नहीं ज्ञात होता। पदकारों ने संदर्भ एवं रुचि के अनुसार उसे विविध रागों में बांधा है, यथा :—

राग-धनाश्री

ब्रज मंडल सिगरौ जितौ, सब मेरे जिजमान।
जिनमें जितने कहौं, आये सब परधान ॥[1]

राग-विहागरौ

हुलसी गावति, भामिनी, ठाढ़ी राज दुवार।
डोला की रचना निरखि, बिथकित कौतिक हार ॥[2]

सोरठा—दोहा के समान सोरठा भी पर्याप्त लोकप्रिय रहा तथा इसके दोहे के विपर्यय वाले रूप में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया गया। किन्तु पदों के अन्तर्गत सोरठे के प्रयोग की प्रवृत्ति लोकप्रिय नहीं हो सकी। इसका कारण कदाचित् सोरठे की अतुकान्त प्रकृति है। कुछ पदों में अवश्य सोरठे का रागों की 'अलापचारी' के लिए प्रयोग हुआ है किन्तु इस रूप में भी वह अधिकतर दोहे के ही साथ आया है, स्वतंत्र रूप में नहीं।

उपमान, शोभन और रूपमाला:—उपमान में १३, १० का मात्रा क्रम तथा अंत में दो गुरू वर्ण होते हैं। शोभन १४, १० की यति का जगणांत छंद है तथा रूपमाला में १४, १० के मात्रा क्रम से एक गुरु और एक लघु की योजना रहती है। इनमें उपमान और शोभन का स्वतन्त्र रूप में प्रयोग केवल घनानन्द की रचनाओं में हुआ है तथा रूपमाला का भारतेन्दु के पदों में :—

उपमान :—आनंद के घन तुम बिना, मंजनूं नहिं भावै।
नयन असाडे लगनै तुजही नूं धावै।
हुण क्या कीजै लड़िले बेखन नहिं पावैं।
जुलुम करै ये बावरे मजनूं तरसावैं।[3]

हरिराय के कुछ पदों में भी यह छंद आया है।[4]

---

[1] हरिराय का पद साहित्य, पद सं० ५

[2] लाड़सागर, पृ० २१३, पद १७३

[3] घनानन्द-ग्रन्थावली, पृ० १८०

[4] हरिराय का पद साहित्य, पद सं० ११२

शोभन :—ललित अति रसबलित तरुन, तमाल कंचन बेलि।
राधिका हरि भाव हरि सूचत सदा नव केलि ॥[१]

रूपमाला :—संग श्री कीरति कुमारी पहिनि झीने चीर।
उरनि फूलनि माल जा पै, भंवर गन की भीर।
हाथ लिये कमल फिरावत, राधिका बलवीर।
सांझ समय सोहावना तँह, बहत त्रिविध समीर ॥[२]

घनानन्द के उपमान छंद की भाषा में फ़ारसी तथा पंजाबी शब्दावली का प्रचुर मात्रा में मिश्रण मिलता है।

प्लवंगम :—२१ मात्राओं के इस छंद में आदि में जगण और एक गुरु अथवा गुरु होना आवश्यक है। प्लवंगम का अरिल्ल नाम से वर्णनात्मक पदों में प्रचुर मात्रा में प्रयोग मिलता है, जिसका विवेचन पीछे किया जा चुका है। घनानन्द ने प्लवंगम से त्रिलोकी छंद की रचना की है, जो प्लवंगम और चन्द्रायण का मिश्रित रूप है :—

कान्ह तिहारी पाती, तुमहिं सुनाइहों
हाय हाय फिरि हाय कहूँ जो पाइहों ॥१॥

इसमें प्रथम चरण प्लवंगम का है तथा द्वितीय चरण चन्द्रायण का।

हरिगीतिका :—इस छंद का प्रयोग प्रबन्ध-शैली में तो अल्प मात्रा में ही हुआ किन्तु पद-शैली के अन्तर्गत यह पर्याप्त प्रचलित रहा है। चाचा वृन्दावन-दास के पदों में हरिगीतिका का चौपाई, रोला, अरिल्ल आदि के साथ मिश्रित प्रयोग भी हुआ है, जिसका विवेचन आगे किया जायेगा। ब्रजवासीदास ने ब्रज-विलास में रामचरितमानस की शैली के अनुकरण पर दोहों और चौपाइयों के बीच में हरिगीतिका का 'अनुष्टुप' नाम से प्रयोग किया है।[३]

विष्णुपद और लीलावती :—इन छंदों का वृन्दवनदास कृत 'विलाप-कुसुमा-जलि' के व्रजभाषा अनुवाद में 'श्रीधर' नाम से प्रयोग मिलता है, जो वस्तुतः विष्णुपद का ही पर्याय है। इसमें भी १६ और १० के मात्रा-क्रम से अन्त में गुरु वर्ण की योजना हुई है:—

---

[१] गोकुल-विनोद, पृ० २६६

[२] भारतेन्दु-ग्रन्थावली, पृ० ५६, पद ४६

[३] ब्रजविलास, पृ० ५६८

दै जलधारा मधुर अपारा; सुघर सुवासित जो।
ह्वै गुनसाली धाय प्रनाली, अति हरषित चित सो॥
चिकुर निकर में निज युग कर में धर हित अनगढ़ जू।
कबहुँ न लागो चित दै माजो ह्वै साँचो पन जू॥२॥[1]

घनानन्द द्वारा प्रयुक्त विष्णुपद की स्थिति इससे सर्वथा भिन्न है। उन्होंने ३२ मात्राओं के लीलावती छन्द को ही विष्णुपद कहा है:—

अटकनि इतै निपट भटकनि हौं सटकनि भली सबै दिस तैं रे।
गटकनि कृपा सुधानिधि चरितनि तिन तजि पियौ विषै विस तैं रे॥
परयौ अचेत प्रेत जीवत ही अजूहूँ सम्हरि मोह निस तैं रे।
नित हितमय उदार आनंदघन रस बरषत चातक तिस तैं रे॥[2]

शोभा :—भानु ने वर्णिक शोभा का लक्षणनिरूपण किया है, किन्तु वृन्दावन-दास कृत 'ब्रजभाषा-प्रेमभक्ति-चन्द्रिका' और 'विलाप-कुसुमांजलि' तथा वैष्णवदास रसजानि कृत 'गीतगोविंद ब्रजभाषा' अनुवाद में शोभा नाम से १० मात्राओं का एक नवीन छन्द प्रयुक्त हुआ है। शोभा के इस रूप में एक गुरु और दो लघु अथवा एक गुरु और दो लघु से पूर्ण होने वाले चरण युग्मों की योजना मिलती है :—

१—जब शशिधर अभिसारन। नेत्र भृंग की कोरन॥
समय विलोवत जाहीं। दिशि विदिशन बन माही॥[3]

२—रस पारिपाटी जाने। कवि जयदेव बखाने॥
विप्रलम्भ सुखरासी। प्रीति पुष्ठि परकासी॥[4]

त्रिपदी :—त्रिपदी का केवल मात्रिक रूप ही प्रयुक्त हुआ है, वह भी अपवाद रूप में। २८ मात्राओं की त्रिपदी का मनोहरराय कृत राधारमण रससागर में कुछ स्थानों पर प्रयोग हुआ है:—

---

[1] विलाप कुसुमांजलि, पृ० १८
[2] कृपाकंद, छंद ५६
[3] विलाप कुसुमांजलि, छं० १३
[4] गीतगोविंद ब्रजभाषा, पृ० ६

सोभित महाभाव भावित रस मन गज बंधनवारी।
अति आसक्ति युगल रस भीने नहि पटतर पवहारी ॥
छिन-छिन नव-नव महामाधुरी परिजन प्राण अधारी।
अवगुन गुन गंभीर अपरिमित शोभा सम्पत्ति धारी[१] ॥

वस्तुत: उद्धृत त्रिपदी की गति और मात्रा-विधान-सार छंद का है, किन्तु इसके प्रत्येक चरण को तीन स्थानों पर से तोड़ कर पढ़ा जा सकता है।

अष्टपदी :—इसका विस्तार आठ चरणों तक होता है। अष्टपदी में कोई भी छन्द प्रयुक्त हो सकता है। रसजानि ने गीतिगोविंद के व्रजभाषा अनुवाद में जयदेव की अष्टपदियों के आधार पर इनकी रचना की है।[२]

कामोल्लाला :—कामोल्लाला वस्तुत: 'उल्लाला' का ही परिवर्तित रूप है। भानु ने इसका उल्लेख नहीं किया है। कामोल्लाला का प्रयोग केवल वृन्दावन-दास की प्रेमभक्ति-चन्द्रिका में हुआ है:—

सुनि कब करि है इति ओर कहूँ, दृग कोर जु करि सनमान अनिल।
अब लै लै भौर सुढ़ारि हौं, मुख दै दै बीरी पान चलि[३] ॥

इसमें गति तो उल्लाला की ही है, किन्तु उल्लाला की मात्राओं से दो मात्राएँ अधिक प्रयुक्त हुई हैं।

कुंडल :—इसमें १२, १० के मात्रा क्रम में अन्त में दो गुरु वर्ण होते कुंडल का प्रयोग केवल पदों के अन्तर्गत हुआ है। जैसे :—

रथ चढ़ि नंदलाल पिय करत है वन फेरा।
आजु सखी लालन संग बिहरिवे की बेला ॥
रतन खचित सुन्दर रथ दिव्य वरन सोहैं।
छतरी ध्वज कलस चक्र सुर नर मन मोहैं ॥[४]

---

१ राधारमण रससागर, पृ० ३, छंद ८
२ गीतगोविंद-ब्रजभाषा, पृ० १६
३ प्रेमभक्ति-चंद्रिका, पृ० १२
४ भारतेन्दु-ग्रन्थावली, पृ० ५३१

सार और सरसी :—इन छंदों का पदों में सबसे अधिक प्रयोग हुआ है। हरिराय, घनानन्द, चाचा वृन्दावनदास, भारतेन्दु आदि के पदों में ये प्रधान छंद रहे हैं। चाचाजी के 'परज राग' में बँधे हुए अधिकांश पद इन्हीं छन्दों पर आधारित हैं। इसके अतिरिक्त आसावरी, केदारौ, विहाग आदि रागों से भी इन छंदों का निकट सम्बन्ध रहा है। सार और सारसी छंद वाले पद अधिकतर वर्णनात्मक प्रकृति के हैं। जैसे :—

सार

राग-केदारौ

बिबिध भाँति फूलनि रचि रुचि सो सखियन सेज सँवारी।
ता ऊपर मिलि बैठे दोऊ उदित भाव पिय प्यारी॥
हरि के सिर सोहत है पगिया, खिरकिन पेच बनाई।
ता ऊपर धरी चंद्रिका टेढ़ी, लागत परम सुहाई॥[1]

सारसी

राग-विहागरौ

मुख छवि लखि पूरन ससि लाजत, सोभा अतिहि रसाल।
मृग से नैन कोकिल सी बानी, अरु गयंद सी चाल।
नख सिख लौं सब सहजहिं सुन्दर मनहुँ रूप की जाल।
वृन्दावन की कुंज-गलिन में संग लीने नंदलाल[2]।

वीर, मरहठा-माधवी और करखा :—इनमें से प्रथम दो छंदों का प्रयोग घनानन्द के विलावल और सारंग रागों में रचित पदों में अपवाद रूप में हुआ है। वीर छन्द तो अपने शुद्ध-रूप में प्रयुक्त हुआ है, किन्तु मरहठा-माधवी के मात्रा क्रम में (११, ८, १०) परिवर्तन मिलता है। जैसे :—

---

[1] हरिराय का पद साहित्य, पृ० १७६

[2] भारतेन्दु ग्रन्थावली, प्रेममालिका, पृ० ४८

वीर

राग-विलावत

रूखे रहत कहाइ सनेही, रसिक छैल ब्रज मोहन स्याम।
वृन्दावन के चंद छबीले बजे अंधेर छलत हौ बाम।
कपटी कुटिल कालिमा मूरति बरसत विषहि सुधाधर नाम।
बीच दिये ही मिलौ विसासी, ऐसेन के ऐसे ही काम।[१]

मरहठा-माधवी

राग-सारंग

तेरे तीर गाय बलवीरहि, विहरौं यह है मोहि री।
बृन्दावन में लखौं निरन्तर तो छबि रही जू सोहि री।
तोसी तुहीं महारसबहिनि मैं, गहि पाई टोहि री।
परिचय रचै स्याम रंग बाढ़ै, कृपा दृष्टि सौं जोहि री[२]।

करखा छंद :—केवल चाचा वृन्दावनदास के पदों में प्रयुक्त हुआ है।[३] उनके लाड़सागर के बधाई और विवाह मंगल से सम्बन्धित पंचम राग में रचित अनेक पदों में यह छन्द आया है।

राग-पंचम

कुंवरि डोला निकसि खेत आयौ जबहि नंद सो करत विनती जु रावल धनी।
जोरि कर आज रवि तिलक ठाढ़ो भयौ छेष पति तुम जु लाइक न मो पै बनी।
तोइ फलफूल दल तुम जु सादर लिये मोहि उपमा दई भाँति भाँतिनु घनी।
सुधाकर बस अचिरज कहा लेखिये सकल गुण निकर कुल गोप सज्जन मनी॥

दो लोकप्रिय छंद शैलियाँ : मांझ और लावनी

मांझ : मांझ का प्रयोग आलोच्य कृष्णभक्ति-काव्य में बहुप्रचलित रहा। चाचा वृन्दावनदास की 'युगुल-स्नेह पत्रिका', सहचरिशरण की 'सरसामंजावलि,' गौरगणदास कृत 'गौरांगभूषण-मंजावलि,' शीतलदास कृत तीनों 'चंमन' आदि

---

१ घनानन्द-ग्रन्थावली, पद ४७५

२ वही, पृ० ४७१

३ लाड़सागर—पृ० १९४ पद १७३, पृ० २१०, पद १६५

रचनाएँ आद्योपांत मांझ में रची गई हैं। नागरीदास ने विविध उत्सवों और ऋतुओं के नाम पर मांझों की रचना की। यद्यपि मांझ के सभी रचनाकारों ने उसे छंद रूप में ही सम्बोधित किया है तथापि मांझ को कोई छन्द विशेष न मानकर एक छंद शैली मानना अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है। वस्तुतः मांझ का वैचित्र्य अपवादों को छोड़ कर उसमें प्रयुक्त भाषा में है, छंद-विधान में नहीं। मांझ में व्रजभाषा के साथ खड़ी-बोली के क्रिया रूपों तथा फ़ारसी और पंजाबी शब्दों के प्रयोग की बहुलता मिलती है। उसका वर्ण-विन्यास भी चपल प्रकृति का होता है। केवल चाचा वन्दावनदास कृत मांझें इस प्रवृत्ति की अपवाद ज्ञात होती हैं। उनकी भाषा विशुद्ध व्रजभाषा है तथा उनमें खड़ी-बोली, उर्दू अथवा पंजाबी का मिश्रण नहीं हुआ है।[१]

मांझ शैली में ताटंक छंद का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है। इसके अतिरिक्त सार, मत्त सवैया, छप्पय और रोला छन्द भी प्रयुक्त हुए हैं। नीचे इनके कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं:—

ताटंक :—

अहो अहो नंद नंद साँवरे छिन छिन बानक न्यारी है।
ओढ़े जरद दुसाला पारा केसर की सी क्यारी है।
आनंदघन हित प्यार ज्यानी मूरत लग दी प्यारी है।
महर लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाड़ी ज्यारी है[२]।

सार :—

इस्क की अँखियाँ अलसौहों, ह्वै इक टक मुस्कयावें।
धीरज धरम सरम की कैसी सुधि को बिसरावें।
भाव भरी भौहें मदमाती इतराती फिर जावें।
नागरीदास सरौं मरौं मत बहाय हाय रट लावें[३]॥

---

१ जुगुल-सनेह-पत्रिका, रासलीला की मांझ,
२ घनानन्द-ग्रन्थावली, इश्कलता, छं० १४
३ नागर-समुच्चय, सिंगार-सागर, सदा की मांझ छंद १

मत्त सवैया :—

वरणन कर चरण बिहारी के जे घर उपमा की भीरों के।
अंगुली दल दाड़िम सुमन कली नख प्रभा पुंज छवि बीरों के।
दिल बिस्मल पड़े तड़पते है अब तक चम्पक दल चीरों के।
दमके दिनकर के खाले से नग हीरे नुमा जंजीरों के[1]।

लावनी :—मांझ के समान लावनी का भी आलोच्च कृष्णभक्ति-काव्य में पर्याप्त प्रचलन रहा। हरिराय, नारायणस्वामी, ललितकिशोरी, भारतेन्दु आदि इस युग के प्रमुख लावनीकार हुये हैं। छंद शास्त्रियों ने लावनी को ताटंक के अन्तर्गत स्वीकार किया है तथा इसके अंत में गुरु एवं लघु के प्रयोग की स्वतन्त्रता बताई है।[2] किन्तु इन कवियों द्वारा रचित लावनियों में छंद प्रयोग की विविधता मिलती है। अतएव लावनी को कोई छंद या किसी छंद का भेद न मानकर एक शैली मानना उचित प्रतीत होता है। लावनी का अर्थ है 'लवणी', लावनी श्रृंगारिक प्रसंगों के लिए अत्यन्त उपयुक्त है। किन्तु संगीत शास्त्र में लावनी एक राग के रूप में प्रतिष्ठित है। तानसेन द्वारा निर्दिष्ट मिश्रित रागनियों में लावनी का भी उल्लेख मिलता है।[3] लावनी की प्रकृति लोकगीतों से अधिक प्रभावित है। धीरे-धीरे लावनी में उद्दाम श्रृंगारिक भावों तथा फ़ारसी शब्दों की प्रचुरता होती गई। भारतेन्दु के समय में लावनी का यही रूप सबसे अधिक प्रचलित था।

हरिराय की लावनियाँ संगीत शैली के आधार पर रची गई हैं, किन्तु नारायणस्वामी, ललितकिशोरी और भारतेन्दु कृत लावनियों में फ़ारसी शब्दों की प्रधानता मिलती है। कहीं-कहीं तो उनमें व्रजभाषा का सर्वथा अभाव लक्षित होता है। इनकी रचना भी सार, राधिका आदि छंदों में हुई है। सभी प्रकार की लावनियों में निश्चित चरण-समूह के उपरान्त प्रथम छंद के दूसरे चरण की पुनरावृत्ति हुई है, जो लावनी की गेय प्रकृति की द्योतक है :—

हरिराय :—

चल वृषभानु कुमारी बाग अवलोक बनी सोभा भारी।
भांति भांति के खिले हैं फूल, झुकी धरनी डारी॥

---

[1] गुलजार-चमन छंद, २

[2] छंद-प्रभाकर, पृ० ७०

[3] हिन्दी-साहित्य कोश, भाग १, पृ० ६८२

करौ विहार आज या उपवन सुनों कुंवरि जिय भावत है।
कुंज छबीली छबिली ऋतु बसंत सरसावत है।।
बोलत मोर चकोर हंस कोयल मधुरे सुर गावत है।
पवन सुहावन विविध विधि चलत अनंद बढ़ावत है।।
कुंज भवन मिलि बैठे दोऊ निरख रसिक जन बलिहारी।
भांति भांति के फूल खिले हैं झुकी धरनी डारी।

लावनी का प्रयोग केवल शृंगारिक प्रसंगों में ही हुआ है।

वर्णिक छंद

साम्प्रदायिक और सम्प्रदाय-मुक्त दोनों ही धाराओं की रचनाओं में वर्णिक छंदों में कवित्त और सवैया छंद सबसे अधिक व्यवहृत हुए। सम्प्रदाय-मुक्त कवियों ने इन दोनों छंदों का मुक्तक रूप ही अपनाया, किन्तु साम्प्रदायिक कवियों ने इनका पदों के अन्तर्गत राग-बद्ध रूप भी प्रयुक्त किया। अपनी मुक्तक प्रकृति के कारण राधा-कृष्ण की प्रेम-क्रीड़ाओं के निरपेक्ष्य चित्रण हेतु ये दोनों ही छंद अन्यों की अपेक्षा अधिक उपयुक्त भी सिद्ध हुए। देव, मतिराम, पद्माकर आदि सम्प्रदाय-मुक्त कवियों के तो ये सर्वाधिक प्रिय छंद रहे। साम्प्रदायिक कवियों में भी घनानन्द, मनोहरराय, हठी, सुन्दर कुंवरि, आदि की रचनाओं में इन्हीं दोनों छंदों की प्रधानता मिलती है। एक अर्थ में कवित्त और सवैया इस युग के कृष्णभक्ति-काव्य के प्रतिनिधि छंद कहे जा सकते है।

कवित्त :—कवित्त के वर्ण-संख्या तथा लघु-गुरु के क्रम-विधान के आधार पर अनेक भेद किए जा सकते है। किन्तु पदों में तथा स्वतंत्र रूप में कवित्त के मनहर घनाक्षरी और रूप-घनाक्षरी रूप ही अधिक व्यवहृत हुए हैं। मनहर में ३१ वर्ण तथा अंत में गुरु रहता है तथा रूप-घनाक्षरी में ३२ वर्णों के अन्त में लघु की योजना रहती है। इनमें ८, ८, ८, ७ के वर्ण-क्रम से भी यति योजना की जाती है। ३३ वर्णों की देव-घनाक्षरी का देव की ही रचनाओं में अधिक प्रयोग हुआ है। मनहर और रूप-घनाक्षरियों की तुलना में कवित्त का यह रूप अधिक लोकप्रिय नहीं हो सका।

कृष्णभक्ति-काव्य में कवित्त की इतनी अधिक लोकप्रियता का मुख्य कारण उसकी मुक्तक प्रकृति है। इसके अतिरिक्त प्रवाहमयी संगीतात्मक वर्ण-योजना, चरण विस्तारता एवं सरल रचना प्रक्रिया से भी प्रेरित होकर कवियों ने इसका अन्य छंदों की तुलना में अधिक व्यवहार किया। पदों में तो कवित्त

के प्रयोग का प्रमुख आधार इसका ध्वन्यात्मक वर्ण-विन्यास ही रहा है। ध्रुव-पद-शैली में रचित पदों में कवित्त की वर्ण-योजना अत्यन्त सटीक उतरी है। तथा इसका सम्बन्ध संगीत के विविध रागों से मिलता है :—

राग-विहाग में मनहरण: १६+१५ का वर्णक्रम

गायो न गोपाल, मन लायो ना रसाल लीला,
सुनी न सुबोधिनी ना साधुसंग पायो है।
सैयौ नहि स्वाद करि, घरी आधी घरी हरि,
कबहु न कृष्ण नाम रसना रटायौ है॥
बल्लभ श्री विट्ठलेस प्रभु की सरन जाई,
दीन मति-हीन होई सीस ना नवायौ है।
'रसिक' कहै बार-बार लाज हू न आवै तोहि,
मानुस जनम पाय मूढ़ कहा तैं कमायौ है॥[1]

गौड़-मलार में रूप घनाक्षरी : १६+१६ का वर्णक्रम:

गोरस को बेचि लौटि घोष को मैं जात हुती,
बीच में बादरा बरस पर्‌यौ धर-धर।
अंग अंग कंपि उठे कारी अंधियारी झुकी,
लागी री झकोर आन झंझा पौन झर झर।
लेऊँ री बलैया मैं वा धेनु के चरैया की,
बचाय लई दैया ओट पीत पाट कर कर।
ललितकिशोरी चौथचंद को कलंक भयो,
देखि सूनी चूनरी चवाव चल्यों घर-घर॥[2]

राग-विराग में घनाक्षरी

आजु गिरिराज के उच्चतर शिखर पर,
परम शोभित भई दिव्य, दीपावली।
मनहुँ नगराज निज नाम नग सत्य किय,
विविध मनि जटित तन धारि हारावली॥

---

१ हरिराय का पद साहित्य, पद सं० ६६३

२ अभिलाष माधुरी, पृ० २१७, पद ४३

औषधी-गन मनहु परम प्रज्वलित भई,
किधौ ब्रजवास हित बसी तारावली ।
दास 'हरिचंद' मन मुदित मन देखिकै,
करत जै जै बरषि देव कुसुमावली[१] ।।

पदों में प्रयुक्त कवित्तों में वर्ण-क्रम एवं उनकी संख्या में रागानुशासन के कारण हेर-फेर हुआ है, जो अस्वाभाविक नहीं है। ऐसे कवित्तों में रचनाकारों की दृष्टि वर्ण-क्रम की अपेक्षा लय पर अधिक रही है।

सवैया :—वर्ण-योजना की दृष्टि से सवैया २२ से २६ वर्णो तक का वर्णिक छंद है। इसमें प्रायः एक ही गण की प्रत्येक चरण में पुनरावृत्ति होती चलती है। परिणामतः कवित्त में स्वर योजना का एक निश्चित संगीतात्मक क्रम लक्षित होता है। गण प्रयोग के आधार पर सवैया के अनेक भेद किये जा सकते हैं,[२] किन्तु अधिकतर साम्प्रदायिक एवं सम्प्रदाय-मुक्त दोनों वर्ग के कवियों ने मगण, जगण और सगण की ही लय पर आश्रित सवैये रचे हैं।

कवित्त के समान सवैया भी इस युग के कृष्णभक्ति-काव्य में पर्याप्त लोकप्रिय छंद रहा। सवैया में गणात्मक वर्ण विन्यास संगीत से अनुशासित रहता है तथा इसमें गुरु के लघुवत् उच्चारण से लय में विशिष्ट स्वाभाविकता एवं प्रवाहमयता का समावेश हो जाता है। सवैया का वर्ण-संगीत अन्य वर्णिक छंदों की तुलना में अधिक मृसण एवं तरल होता है। मन्थर लयाश्रित होने के ही कारण इस छंद में वर्णनात्मकता एवं संगीतमयता का युगपद् विन्यास देखा जाता है। अपनी लय, अनुप्रासिक एवं सुच्चिक्कण वर्ण-योजना के प्रभाव-स्वरूप सवैया शृंगारिक प्रसंगों के लिए अत्यन्त उपयुक्त सिद्ध हुआ। इस छंद में परिष्कृत, कलात्मक, एवं भाव संकलित अभिव्यक्ति अन्य वर्णिक छंदों की तुलना में अधिक प्रभावशाली बन पड़ती है। आलोच्यकालीन कृष्ण-भक्त कवियों ने कृष्णलीला के विविध प्रसंगों के रसपूर्ण एवं कलात्मक चित्रण में इस छंद को प्रचुरता के साथ अपनाया। व्रजभाषा की कोमलकांत पदावली एवं अर्थ-गर्भित वर्णयोजना सवैया के लिए और भी अनुकूल सिद्ध हुई। इसीलिए राधा-कृष्ण की प्रेमलीलाओं के चित्रण में साम्प्रदायिक एवं सम्प्रदाय-मुक्त कवियों ने इसे समान महत्ता प्रदान की।

---

[१] **भारतेन्दु-ग्रन्थावली—पृ० ८२, पद १३**

[२] **छंद-प्रभाकर, पृ० २००**

सवैया में सन्निहित वर्ण-संगीत एवं उसकी शृंगार रस के लिए उपयुक्तता का प्रभाव यह पड़ा कि साम्प्रदायिक कृष्णभक्त कवियों ने भी इसे बिना किसी परिवर्तन के ही अपना लिया। घनानंद, वृन्दावनदास, भारतेन्दु के सवैये गुणात्मक विधान पर ही रचे गए हैं। कवित्त के समान उन्हें सवैयों को राग-बद्ध करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। देव, मतिराम, पद्माकर आदि सम्प्रदाय-मुक्त कवियों का तो यह अत्यन्त प्रिय छंद रहा। नीचे सवैयों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं:—

मतिराम :— ८ सगण, दुर्मिल सवैया

> नंदलाल गयो तितिहीं चलि कै जित खेलत बाल अली गन मैं।
> तहाँ आपुही मूंदे सलोनी के लोचन चोर मिहीचनि खेलन मैं।
> दुरवे को गईं सिगरी सखियाँ 'मतिराम' कहै इतने छिन मैं।
> मुसकाय कै राधिका कण्ठ लगाय छिप्यौ कहूँ जाय निकुंजन मैं[1]।

घनानंद :— ७ भगण और अंत में दो गुरु

> रूप निधान सुजान सखी जब तें इन नैननि नेकु निहारे।
> दीठि थकी अनुराग-छकी मति लाज के साज-समाज बिसारे।
> एक अचंभौ भयौ धनआनंद है नित ही पल-पाट उघारे।
> टारें टरें नहीं तारे कहूँ सु लगे मनमोहन-मोह के तारे॥[2]

भारतेन्दु :— ८ सगण, दुर्मिल

> मनमोहन तें बिछुरीं जब सों तन आँसुन सौं सदा धोवती हैं।
> हरिचंद जू प्रेम के फंद परीं कुल की कुल लाजहिं खोवती हैं।
> दुख के दिन को कोऊ भाँति बितै बिरहागम रैन संजोवती हैं।
> हम ही अपनी सदा जानैं सखी निसि सोवती हैं किधौं रोवती हैं।[3]

कवित्त और सवैया के अतिरिक्त अन्य वर्णवृत्तों के प्रति कवियों का आकर्षण नहीं दिखाई पड़ता।

मिश्रित छंद

मिश्रित छंदों से तात्पर्य ऐसे छंदों से है, जिनके अन्तर्गत दो छंदों का

---

[1] रसराज, छंद २७०

[2] सुजान हित, छंद १

[3] प्रेम-माधुरी, पृ० १७२

प्रयोग हुआ है। छंद-मिश्रण की यह प्रवृत्ति केवल पदों के अन्तर्गत ही मिलती है। स्वतन्त्र रूप में छप्पय और कुण्डलियाँ ही ऐसे छंद व्यवहृत हुए हैं, जो अपनी प्रकृति से मिश्रित कहे जा सकते हैं तथा जिन्हें कवियों ने परम्परा से ग्रहण किया। छंद मिश्रण की दृष्टि से चाचा वृन्दावनदास और किशोरीदास के पद विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। मिश्रित छंद वाले पद प्रायः वर्णनात्मक प्रकृति के हैं। पदों में छंद मिश्रण का प्रयोजन उनकी इतिवृत्तात्मक एकरसता का परिहार ज्ञात होता है। चाचा वृन्दावनदास ने लाड़सागर में मिश्रित छंद वाले अनेक पदों को 'मंगल छंद' नाम से अभिहित किया है। किन्तु मंगल शब्द वस्तुतः किसी छंद विशेष का पर्याय न हो कर सम्पूर्ण पद के उल्लासपूर्ण भावलोक का व्यंजक है। चाचा जी के 'मंगल छंद' वाले सभी पद इतिवृत्त-परक हैं तथा उनका स्वरूप लोकगीतों से पर्याप्त मात्रा में प्रभावित रहा है। इन पदों में जिन छंदों का मिश्रण हुआ है उनमें—चौपाई, प्लवंगम, गीतिका और हरिगीतिका प्रमुख हैं। लाड़सागर के ये पद सूहो, विलावल तथा परज रागों के अन्तर्गत रचे गये हैं।[१]

छप्पय :—इसका प्रयोग वर्णनात्मक प्रसंगों के अतिरिक्त भक्तलाल ग्रन्थों तथा आचार्यों के चरित्र-निरूपण में प्रचुर मात्रा में हुआ है। भारतेन्दु और राधाचरण गोस्वामी के भक्तमाल आद्योपांत छप्पय में ही रचे गये हैं। वस्तुतः छप्पय परम्परा से ही भक्तमालों का अभिन्न छंद रहा है। कृष्णदास की माधुर्य-लहरी में कुछ स्थलों पर इसका शृंखलाबद्ध प्रयोग मिलता है। इसके अतिरिक्त स्फुट रूप में भी छप्पय की रचना पर्याप्त लोकप्रिय रही।

पदों में छप्पय का व्यवहार अल्प मात्रा में ही मिलता है। लाड़सागर में चाचा वृन्दावनदास ने अनेक स्थलों पर छप्पय को 'पद' नाम से सम्बोधित किया है, किन्तु ऐसे छप्पय किसी राग में आबद्ध नहीं हैं। अतएव उन्हें पद शैली के अन्तर्गत मानना भूल होगी।

कुण्डलिया :—इस छंद का प्रयोग अधिकतर उपदेश कथन एवं सिद्धान्त-निरूपण के लिए मिलता है। सुन्दर कुँवरि, कृष्णदास, आदि ने इसका व्यवहार किया है। पद-शैली के अन्तर्गत छप्पय के समान कुण्डलिया का भी प्रयोग नहीं मिलता।

---

[१] द्रष्टव्य-लाड़सागर, पृ० १९२, पद १३४, १९३ : १३६, १९५ : १३९, १९६ : १३९, २०० : १४८ के छंद

नवीन मिश्रित छंद

जैसा कि हम संकेत कर चुके हैं कि इस प्रकार के छंदों में अधिकतर चौपाई, प्लवंगम, गीतिका और हरिगीतिका में से किन्हीं दो का मिश्रण हुआ है। मिश्रित छंदों का स्वरूप बहुत कुछ छप्पय और कुण्डलिया की पद्धति पर निर्मित हुआ है। इनका विस्तार भी अधिकतर ६ चरणों में ही हुआ है, किन्तु कहीं-कहीं ८ चरणों की भी योजना मिलती है। नीचे मिश्रित छंदों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं :—

चौपाई, गीतिका और हरिगीतिका :—इन छंदों का मिश्रण दो रूपों में हुआ है :—

१—एक अर्द्धाली और हरिगीतिका

२—पूर्ण चौपाई और गीतिका

इन दोनों ही रूपों में अर्द्धाली के मध्य अथवा अंत के किसी शब्द की पुनरावृत्ति द्वारा गीतिका और हरिगीतिका का प्रारम्भ हुआ है। यथा :—

सूहो-विलास

एक अर्द्धाली + हरिगीतिका

सुनिहो सुनि कुंवरि कन्हैया। सब जब जानी जसुमति मैया।
जानी सकल जग माइ जसुमति, गुण न मुख बरनत बनैं।
ब्रज में सबै नर नारि घर-घर चरित उनही के भनैं।
कमनीय तन अति साधु लक्षण महाभाग्य विशेषिये।
कोऊ दई रचित सुनो लला उह परम कौतिक देखिये ।।[१]

राग-सोरठा

चौपाई + गीतिका

नव दुलिहिन पुर नियरें आई। तब उपनंद भवन बैठाई।
फूली बाँटति महर बधाई। धनि धनि आजु सुदिन री माई ।।
आजु को दिन महा मंगल कहति महर सुजान की।
त्रैलोक सौभग सींव दरसी कुंवरि श्री बृषभानु की।

---

१ लाड़सागर, पृ० २००, पद १४८

मंगल गवाई बजाइ बाजै दुल्हिहिनी मंदरि लई ।
वारति महामणि रतन धनि यह जोट विधि जिनि निर्मई[१] ।।

प्लवंगम और हरिगीतिका :—लाड़सागर में इन छंदों का सर्वाधिक मिश्रण हुआ है । इसके अतिरिक्त शील सखी कृत 'आचार्य-मंगल' में भी इनके अनेक उदाहरण मिलते हैं । इन दोनों छंदों का चरण विन्यास इस प्रकार रहा है :—

१—प्लवंगम के दो चरण तथा पूर्ण हरिगीतिका
२—पूर्ण प्लवंगम तथा हरिगीतिका के दो चरण

दोनों छंदों के पूर्वापर सम्बन्ध निर्धारण हेतु पद में व्यवहृत प्लवंगम के अंतिम वर्णों से हरिगीतिका का प्रारम्भ हुआ है । जैसे :—

प्लवंगम+हरिगीतिका (४+२)

लगन लिखाई सुभ दिन रावल भूप-जू ।
सोधि मुहूरत ता-छिन परम अनू पजू ।
पुर बनिता जुरि आईं सब छोटीं बड़ीं ।
मणि चौकी पर बैठी नृप कुल अति लड़ी ।
अतिलड़ी कौं बैठारि चौकी रीति भाँति जु सब करी ।
ब्याह बिरियाँ लिखी निर्मल वेद पढ़ि गोदी धरी[२] ।।

प्लवंगम+हरिगीतिका (२+४)

चंचल घोरी हेली सुंदर श्याम की
सुभग बनी है री हेली गुन अभिराम की
अभिराम अति ही रंग चीती चढ़न दूलह साँवरे ।
चलि है जबहि बृषभानु पुर कौ लेन सुभ दिन भाँवरे ।
हींसत बंधी घुरसाल मणिमय भवन गोकुल ईस है ।
बहु नगनि जटित अमोल कलंगी बनी जाके सीस है ।।[३]

---

[१] लाड़सागर, पृ० २४२, पद ६
[२] वही, पृ० १०१, पद २
[३] वही, पृ० १०६, पद १४

प्लवंगम+गीतिका (४+४)

ये दोनों छंद भी एक पद के अन्तर्गत अपने पूर्ण रूप में प्रयुक्त हुए हैं। इनमें भी गीतिका का प्रारम्भ प्लवंगम के अंतिम वर्ण से हुआ है :—

जय जय श्री हरिदास रसिकवर गाइहौं।
इहि जग जन्म धरे कौ फल पाइहौं॥
दूरि होत भव द्वन्द्व-फन्द जग के कटै।
होइ विमल पद प्रीति नाम रसना रटै॥
रटै नाम अकाम ह्वै कै प्रेम रसिकन सौं बढ़ै।
वाह बस हरिदास नृप की सुखद बृन्दावन मढ़ै॥
निरखै महल की केलि आगम निगम ताहि न जानहीं।
जहँ लाल प्यारी पद कमल गहि भाग धनि कर मानहीं[१]॥

उपर्युक्त छंदों के अतिरिक्त दोहा-रोला तथा उज्जवला-उल्लाला का भी भारतेन्दु और चाचा वृन्दावनदास के पदों में मिश्रण हुआ है, किन्तु इस प्रकार के पद अपवाद रूप में ही मिलते हैं। इन छंदों के मिश्रण से निर्मित पदों की प्रकृति भी भिन्न प्रकार की है, उनमें कुण्डलिया की छंदों के पूर्वापर सम्बन्ध निर्धारण की शैली का अनुकरण नहीं मिलता।

फ़ारसी छंद :—

फ़ारसी छंदों के प्रयोग की प्रवृत्ति को अधिक प्रश्रय नहीं मिला। आलोच्य काव्य में केवल उद्दाम प्रेम भावना का चित्रण करने वाले ललितकिशोरी, नारायणस्वामी, भारतेन्दु आदि कवियों ने तदनुरूप फ़ारसी के ग़ज़ल और रेख़ता छंदों का प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त घनानन्द की वियोगवेलि में 'बहर' से साम्य रखने वाला हिन्दी छंद सुमेरु प्रयुक्त हुआ है :—

सलोने स्याम प्यारे, क्यौं न आवौ।
दरस प्यासी मरैं तिनकौं जिवावौ॥१॥
कहाँ हौ जू कहाँ हौ जू कहाँ हौ।
लगे ये प्रान तुम सौं हैं जहाँ हौ।

सुमेरु छंद के इन चरणों की लय 'मफ़ाईलुन मफ़ाईलुन फ़उलुन' की 'बहर' के वज़न पर ठीक उतरती है। किन्तु यह कह सकना अत्यन्त कठिन है कि

[१] सिद्धांत-सरोवर, आचार्य-मंगल, पृ० २७७

इस छंद की रचना पूर्णतया 'बहर' के ही वज़न पर हुई है। क्योंकि वियोगवेलि के अतिरिक्त घनानन्द की अन्य किसी रचना में कोई भी ऐसा छंद व्यवहृत नहीं हुआ है, जिसका साम्य किसी 'बहर' से ज्ञान होता हो। अतएव इस छंद का रचना शिल्प सुमेरु छंद पर ही आधारित मानना समीचीन प्रतीत होता है। वस्तुतः उन्नीसवीं शती से पहले कृष्णभक्ति-काव्य में फ़ारसी छंदों का प्रयोग नहीं मिलता। उन्नीसवीं शती में भी ग़ज़ल रचना की प्रधानता रही। गज़ल के अतिरिक्त भारतेन्दु की कुछ रचनाओं में रेख़ता का भी समावेश मिलता है, किन्तु उनकी संख्या बहुत कम है।

ग़ज़ल की शृंगार और करुण रसों के लिए अनुकूलता से ही प्रेरित होकर ललितकिशोरी, नारायणस्वामी और भारतेन्दु ने इसे अपनाया। 'ग़ज़ल' शब्द का अर्थ 'रमणी संलाप' भी उसकी शृंगारी प्रकृति का ही द्योतक है। गज़लों का रचना-विधान विभिन्न प्रकार की 'बहरों' पर आश्रित रहता है। इसमें पाँच से लेकर पच्चीस तक शेर होते हैं, किन्तु इसका कोई निश्चित नियम नहीं है। ग़ज़ल का अन्तिम शेर रचनाकार के नाम की छाप से युक्त होता है। गज़ल के प्रत्येक शेर की वस्तु अपने में पूर्ण होती है तथा उसमें सामान्यतया 'काफ़िया' और 'रदीफ़' की योजना अवश्य रहती है।

ललितकिशोरी, नारायणस्वामी और भारतेन्दु की गज़लों में प्रधानरूप से उनकी उद्दाम प्रेम भावना की चमत्कारपूर्ण रूप में अभिव्यक्ति हुई है। इनकी भाषा में व्रजभाषा की अपेक्षा खड़ीबोली के क्रियारूपों तथा फ़ारसी शब्दों का प्राधान्य मिलता है। अधिकांश गजलें आकार में संक्षिप्त हैं, किन्तु ललितकिशोरी और भारतेन्दु की कुछ ग़जलों का विस्तार २२ से २५ शेरों तक में हुआ[१] है। 'काफ़िया' और 'रदीफ़' के प्रयोग की दृष्टि से ग़ज़लों के दोनों प्रकार मिलते हैं, 'काफ़िया-रदीफ़ युक्त' और 'काफ़िया-रदीफ़ मुक्त' जैसे :—

ललितकिशोरी :—

मन मोह लिया श्याम ने वंशी को बजा के।
बेख़ुद किया दिलदार ने झलकी को दिखा के॥

---

१ अभिलाष-माधुरी, पृ० २६६, २७५, २८३ तथा भारतेन्दु-ग्रंथावली, पृ० ४२२, ४२३, ८५१, ८५२ की ग़ज़लें।

पट पीत मुकट मोर लकूट लटपटी पगिया,
चलते हो लटक चाल से भृकुटी को नचा के ।[१]

नारायणस्वामी :—

जहाँ ब्रजराज कलपाये, चलो सखी आज वा वन में ।
बिना वा रूप के देखे, विरह की लौ लगी तन में ॥
न कल परती है बेकल को, न जी लगता है बिन जानो ।
गई फिरती हूँ जोगिन सी सरे बाज़ार गलियन में[२] ॥

किन्तु 'रदीफ़-काफ़िया युक्त' ग़ज़लें अधिक संख्या में रची गईं । यद्यपि ग़ज़लों के प्रयोग से कृष्णभक्ति-काव्य में एक नवीन छद का समावेश हुआ, तथापि राधा-कृष्ण की परम्परागत प्रेम भावना को अभिव्यक्ति देने में वे अनुपयुक्त ही सिद्ध हुईं ।

अस्तु, उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि समालोच्य काव्य में पद-शैली और छंदों के अन्तर्गत परम्परा संचयन एवं प्रयोगशीलता की प्रवृत्तियों का युगपद विकास हुआ । उसके अन्तर्गत जहाँ परम्परागत संगीत शैलियों को प्रश्रय प्राप्त हुआ, वहीं समसामयिक संगीत शैलियों के प्रयोग द्वारा पद-रचना के शिल्प में युगीन चेतना को भी प्रवेश मिला । पद-रचना में लोक गीतों के समावेश से अभिव्यक्ति का नव्य धरातल निर्मित हुआ । छंदों के क्षेत्र में भी उपर्युक्त दोनों प्रवृत्तियाँ स्पष्टतया लक्षित होती हैं । आलोच्य-काव्य में जहाँ पूर्व प्रचलित छंदों का अस्तित्व बना रहा, वहीं कतिपय नवीन छंदों का भी समावेश हुआ । फ़ारसी छंदों के समावेश से राधा-कृष्ण की उद्दाम शृंगार भावना का नवीन संस्करण हुआ तथा मिश्रित छंदों के अन्तर्गत विशिष्ट नवीन छंदों का आविर्भाव हुआ । परन्तु यह ज्ञातव्य है कि समग्र रूप में लोक-गीतों तथा नवीन मिश्रित छंदों के अतिरिक्त इस दिशा में जो भी प्रयोग हुए, उनके द्वारा कृष्णभक्ति और कृष्णलीलाओं को अभिव्यक्ति का उपयुक्त एवं रसात्मक धरातल नहीं प्राप्त हो सका ।

●

१ अभिलाष-माधुरी, पृ० २८७

२ ब्रजविहार, पृ० २२१

भाषा

कृष्णभक्ति-काव्य और व्रजभाषा

परम्परा से कृष्णभक्तिकाव्य की भाषा व्रजभाषा रही है। अठारहवीं शती तक कृष्णभक्ति-काव्य और व्रजभाषा की अभिन्नता पूर्णतया स्थापित हो चुकी थी, साथ ही व्रजभाषा का अपना साहित्यिक स्वरूप भी निश्चित-सा हो चुका था। अपनी साहित्यिक गरिमा, लोक-विश्रुत मधुरता और संगीतात्मकता के प्रभाव स्वरूप वह व्रजप्रदेश के सीमित अंचल से निकल कर समस्त मध्यदेश तथा गुजरात, राजस्थान, पंजाब और बंगाल तक अपना क्षेत्र विस्तृत कर चुकी थी। इसका परिणाम यह हुआ कि कृष्णभक्त-कवियों ने मध्यदेश की विविध बोलियों तथा प्रादेशिक भाषाओं की शब्दावली के प्रयोग द्वारा व्रजभाषा को सम्पन्नता प्रदान की। इसके अतिरिक्त समालोच्य युग तक अरबी और फ़ारसी के अनेक शब्द भी व्रजभाषा की स्थायी सम्पत्ति बन चुके थे।

समालोच्य कृष्णभक्ति-काव्य भी अपनी परम्परागत भाषा व्रजभाषा में ही रचा गया। इस युग के कृष्णभक्त-कवियों को अत्यन्त समृद्ध तथा परिमार्जित व्रजभाषा उत्तराधिकार में प्राप्त हुई। सूरदास, नंददास, हितहरिवंश, मीरा, रसखान, बिहारी आदि ने व्रजभाषा का स्वरूप निश्चित-सा कर दिया था। किन्तु उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में खड़ीबोली को विकसित और संवर्धित करने वाली परिस्थितियों का आविर्भाव हुआ तथा खड़ीबोली का उत्तरोत्तर प्रसार होता गया। परिणामतः व्रजभाषा पर भी खड़ीबोली का प्रभाव पड़ना प्रारम्भ हो गया, फिर भी कृष्णभक्ति-काव्य और व्रजभाषा की अभिन्नता यथावत् बनी रही।

शब्द-समूह

भाषा में उसके शब्द-समूह का सबसे अधिक महत्त्व होता है। शब्दों के ही द्वारा भाषा की अभिव्यंजना शक्ति परखी जाती है। किसी भी भाषा का शब्द-समूह तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी शब्दों से निर्मित होता है। इसलिए समालोच्य कृष्णभक्ति-काव्य की व्रजभाषा के शब्द-समूह का विश्लेषण इन्हीं वर्गों के अन्तर्गत करना उचित समझा गया है।

कृष्णभक्त-कवियों ने व्रजभाषा को परिमार्जित तथा साहित्यिक गरिमा से युक्त करने के प्रयोजन से परम्परा से तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है। उसमें मधुरता एवं संगीतात्मकता के गुणों के समावेश तथा कृष्णभक्ति और कृष्णलीलाओं की भावधारा को लोकग्राह्य बनाने के उद्देश्य से तद्भव और देशज शब्दों को महत्ता प्रदान की। काल-प्रवाह के साथ विदेशी शब्दों को भी व्रजभाषा की प्रकृति के अनुरूप ढ़ाल कर उसे व्यापकता एवं अभिव्यंजना शक्ति से सम्पन्न बनाया। इस युग के कृष्णभक्ति-काव्य की व्रजभाषा में फ़ारसी शब्दों को छोड़ कर अन्य प्रकार के शब्दों के प्रयोग में शब्द-समूह को सम्पन्न बनाने की दृष्टि से कोई नवीनता नहीं मिलती। अधिकतर कवियों ने परम्परागत शब्दावली का ही प्रयोग किया है। इस विषय में एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि उन्नीसवीं शती के अन्त तक कृष्णभक्ति-काव्यधारा के कवियों का शब्दों को उनके विशुद्ध अथवा तत्सम रूप में प्रयुक्त करने के प्रति आकर्षण बढ़ता गया। यह प्रवृत्ति संस्कृत और फ़ारसी दोनों प्रकार के शब्दों में समान रूप से पल्लवित हुई है। तद्भव और देशज शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर कम होती गई।

तत्सम शब्द :—तत्सम शब्दों का प्रयोग सिद्धान्त, भक्ति और दर्शन विषयक अभिव्यक्तियों में प्रचुरता के साथ हुआ। स्तोत्र-पद्धति की रचनाओं तथा कल्पना प्रधान एवं आलंकारिक प्रयोगों में भी तत्सम शब्दावली का पर्याप्त आश्रय लिया गया है। संस्कृत और बँगला से अनूदित रचनाओं में मूल के प्रभावस्वरूप तत्सम शब्दों का प्राचुर्य मिलता है। रीति-कवियों की व्रजभाषा का परिमार्जित स्वरूप बहुत कुछ तत्सम शब्दों पर ही निर्भर दिखाई पड़ता है। काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों के निरूपण हेतु इन कवियों ने जिस परिमार्जित व्रजभाषा को अपनाया, उनकी कृष्णभक्ति-सम्बन्धी अभिव्यक्तियों पर भी उसका संस्कार मिलना स्वाभाविक है। व्रजभाषा की शुद्धता के साथ ही उनकी दृष्टि तत्सम शब्दों के प्रयोग में भी प्रायः सर्वत्र सजग रही है।

तत्सम शब्दों में अधिकांश परम्परागत हैं, विशेषकर धार्मिक और पारिभाषिक शब्द। कृष्णभक्त कवियों के लिए इनका परित्याग असम्भव था, क्योंकि ऐसे शब्दों का एक निश्चित एवं रूढ़ अर्थ होता है। अनूदित कृतियों में इनकी बहुलता मिलती है। अन्य प्रकार की रचनाओं में भी तत्सम शब्द अपने मूल रूप में ही प्रयुक्त हुए हैं। जैसे :—

हरिराय—सावधान स्रवननि पुट भरि भरि श्री गोपाल विमल जरु।
निगम कल्पतरु ताकौ यह फल परम मृदुल आनंदतरु।[1]

वृन्दावनदेव—नित्य धाम में नित्य सब राजै निज ठौर।
कृष्ण बसै गोलोक में जो है स्वयं प्रकाश।[2]

चाचा वृन्दावनदास-कोटि कोटि मारतण्ड चंद और ब्रह्मण्ड रज ताको।
सब भेद एक युक्ति में जताये देत।
सोइ ब्रह्म व्यापक निरंजन निराकार सचराचर,
वासी कै पल में लखाये देत।[3]

घनानन्द—अद्भुत अमित अखंड कलाधर। गोपी मन रंजन सुंदरवर।[4]

नागरीदास—ब्रज सम और कोउ नहिं धाम।
या ब्रज में परमेसुरहू के सुधरे सुंदरनाम।
जसुदा नंदन दामोदर नवनीत प्रिया दधि-चोर।
चोर चोर चितचोर चिकनियाँ चातुर नवल किसोर।[5]

भारतेन्दु—अखिल लोक निकुंज नायक सहज निज कर लियो।
जासु माया जगत मोहत लखि तनिक दृग कोर।[6]

इस प्रकार के शब्दों में बहुत से पर्याय रहित हैं, अर्थात् जिनके अभाव में किसी अन्य शब्द द्वारा अभिप्रेत अभिव्यंजित नहीं हो सकता था। स्तोत्र-शैली में रचित स्तुतियों की शब्दावली में सबसे अधिक तत्समता मिलती है। तत्सम शब्दावली के प्राचुर्य ने कहीं-कहीं भाषा को संस्कृतनिष्ठ सा बना दिया है तथा उनके अन्तर्गत तद्भव शब्दावली का अभाव मिलता है। उदाहरण के लिए निम्न उद्धृत अंशों को लिया जा सकता है :—

---

[1] हरिराय जी का पद साहित्य, प० ६४४
[2] गीतामृत गंगा, पृ० २४
[3] रास-छद्म-विनोद; स्फुट पद
[4] ब्रज-व्यवहार, पृ० ३२३
[5] नागर-सामुच्चय, ब्रज-सम्बन्ध नाममाला
[6] प्रेम-प्रलाप, पद ३१

हरिराय—जयति राधिका रमणवर चरण परि चरन रति बल्लभाधीश सुत विट्ठलेशं ।
सहज हासादि युक्त वदन पंकज सरस रसवचन रचना पराजित सुरेशं।
अखिल साधन रहित दोष रति सहित मति दास हरिदास गति निज बलेशं ।[1]

घनानन्द—हरिचरित सुरसरित मज्जित सुवानी।
महामोहन मधुर रस बलित ललित अति सुखद सुछंद सुचि काव्य कुल रानी ।
वदन सोभा सदन दरस महिमा बरस परस सर्वार्थदायक महत मानी ।
व्रज तरुनि-रमन आनंदघन चातकी विसद अद्‌भुत अखंडित जगत जानी ।[2]

भारतेन्दु—जयति आनंद रूप परमानंद कृष्ण मुख,
कृपानिधि दैवि उद्धार कारी ।
स्मृति मात्र सकल आरति हरन गूढ़
गुन भागवत अर्थ लीनो विचारी ।[3]

समीक्ष्य-युग में व्रजभाषा के अन्तर्गत तत्सम शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति बढ़ती गयी । परिणामतः स्वाभाविक रूप में प्रयुक्त तत्सम शब्द भी पर्याप्त संख्या में मिलते हैं । पर यह प्रवृत्ति अनेक कवियों की भाषा में देखी जा सकती है । जैसे :—

वृंदावनदेव—इन्द्र नील मनि वरन श्याम तन नखशिख आनंद कंद ।
बिथुरि रहीं सिर कुटिल लटूरी मृदु मुसुकत मुख चंद ।[4]

हरिराय—नव तरुनी नव तरलित मंडित, अगनित सुरभी ढूंक उगर ।
जहाँ तहाँ दधि मथन घमर के प्रमुदित माखन चोर लंगर ।[5]

घनानन्द—प्रेम सुधा स्रोत सुने सुख सिन्धु होत,

---

[1] हरिराय जी का पद साहित्य, पद सं० ६७३

[2] घनानन्द-ग्रन्थावली, पदावली, पद २३६

[3] सर्वोत्तम स्तोत्र भाषा, पद १

[4] गीतामृत गंगा, पृ० २

[5] हरिराय जी का पद साहित्य, पद सं० ३५

मोद-रासि मंगल निवारु ब्रज भांवरो।
कलाधर केलि के सुफल बानी केलि को है
रसना को भाग है रसीलो राधा नाँव रो।[१]

नागरीदास—अति निर्जन एकांत मदन, तसकर सेवत वन।
द्रुम पातन की छांह, छिपा छवि छाइ रही घन।
जहाँ-जहाँ सुन्दर ठौर लहत आनंद-रस बाढ़ै।
ठठकि तहाँ गहि लता लूंवि फिरि रहत हौ ठाढ़ै।[२]

प्रेमदास—दिपत वसन आभरण विविध विधि महा मनोहर अंग।
कोटिक रवि ससि मुख पर वारौं निरखि मदन भये पंगु।[३]

भारतेन्दु—मंगलमय सब ब्रजवासी लोग।
मंगलमय हरि जिन घर प्रकटे मिले अमंगल भव के सोग।
मगल वृंदावन गोकुल मंगल माखन दधि घृत भोग।[४]

उपर्युक्त उद्धरणों में जो तत्सम शब्द प्रयुक्त हुये हैं, उनके स्थान पर तद्भव अथवा देशज शब्द नहीं खप पाते। प्रयुक्त शब्दों से लय में भी कोई व्यवधान नहीं आने पाया है। तत्सम शब्द प्रायः चरणों के मध्य में ही प्रयुक्त हुये हैं, चरणान्त में तुक रूप में वे अपेक्षाकृत कम प्रयुक्त हुए हैं।

अप्रस्तुत योजना में भी तत्सम शब्दावली का पर्याप्त प्रयोग मिलता है। सभी कवियों ने राधा-कृष्ण के रूप और लीलाओं के चित्रण में जिन अप्रस्तुतों का आधार लिया है, उनमें से अधिकांश की शब्दावली तत्सम हैं। तत्समपरक अप्रस्तुत शब्दों की एक विशेषता यह है कि वे भाषा के साथ घुलमिल से गये हैं, तथा कहीं भी आरोपित नहीं प्रतीत होते। जैसे :—

हरिराय—चिबुक बिराजत वदन चंद में उपमा एक खरी।
अधर बिम्ब तहाँ दसन लगत मानों च्वै इक बूंद परी।
कहा कहौं अधरन की सोभा बरनी न जाय अपार।
मनहु कमल के उदय मैन रवि चुवत कुसुमरस सार।[५]

---

[१] सुजान-हित, पृ० ३६३

[२] निम्बार्क-माधुरी, पृ० ६१८

[३] शृङ्गाररससागर, भाग १ पृ० २०२

[४] राग-संग्रह, पद ९३

[५] हरिराय जी का पद साहित्य, पद सं० २०

वृंदावनदेव—लोचन दुख मोचन गिरधारी।
कोटि इंदु छवि छीनत आनन कानन कुंडल दमकत भारी।
सोभा सिंधु कलोलति मानों मदन मीन के जुगल बयारी।

घनानन्द—घूमत घुरत अरबीले न मुरत नेकौ,[1]
प्रानत सों खेलैं अलबेले लाड़ के बढ़े।
मीन कंज खंजन कुरंग मान भंग करै,
सींचे घनआनंद खुले संकोच सों मढ़े।[2]

प्रेमदास – पिय परिरंभन में बढ़ी लज्जा पग पेली।
अरुझी प्रेम तमाल सों मनों काम की बेली।[3]

उपर्युक्त सभी अंशों में रेखांकित शब्द तत्सम हैं। लेकिन चरणस्थ लय के प्रवाह में उनकी तत्समता खटकने नहीं पाती।

तत्सम की अपेक्षा ध्वनि परिवर्तन द्वारा निर्मित अर्ध तत्सम शब्द कहीं अधिक संख्या में व्यवहृत हुए हैं। इनके अन्तर्गत उनका संस्कृत रूप पूर्णतया सुरक्षित नहीं रह पाया है। अर्ध तत्सम शब्दों में तत्सम शब्दों को व्रजभाषा की प्रकृति के अनुकूल ढालने का यत्न प्रधान रहा है। इसके अतिरिक्त पद अथवा छंदगत लय तथा उच्चारण विषयक कारणों से भी अनेक तत्सम शब्दों का रूप अर्ध तत्सम रह गया है। सामान्य रूप से अर्ध तत्सम शब्दों की दो कोटियाँ निर्धारित की जा सकती हैं।

प्रथम प्रकार के अर्ध तत्सम शब्द वे हैं जिनमें, उनका मूल तत्सम रूप अंशत: ही सुरक्षित रह पाया है। इनके ऊपर व्रजभाषा के माधुर्य की छाप स्पष्टतया परिलक्षित होती है। कहीं-कहीं वर्ण मैत्री और वर्ण-संगीत के प्रवाह में तत्सम शब्द स्वत: अर्ध तत्सम बन गए हैं। इन शब्दों के द्वारा भाषा में एक विशिष्ट सौंदर्य की सृष्टि हुई है। कृष्णभक्त कवियों ने परम्परा से इस प्रकार निर्मित अर्ध तत्सम शब्दों का प्रचुर प्रयोग किया है। नीचे हरिराय, वृन्दावनदेव, चाचा वृन्दावनदास, घनानन्द और भारतेन्दु की रचनाओं से चयित अर्ध तत्सम शब्दों की एक लघु सूची प्रस्तुत की जा रही है, जिससे इनकी प्रवृत्ति का अनुमान लगाया जा सकता है :—

---

[1] गीतामृत गंगा, पृ० १८, पद १३

[2] सुजान-हित, छं ५२

[3] शृंङ्गाररससागर, भाग १ पृ० २०६

हरिराय—दिसि, दसा, बिकल, बदन, प्रानन, चमर, जोबन, चरन, तन, अंकुस, सीतल, गोचारन, जुबतिन, निसबास, दरस, सीस, निसि, पांति, निस्चै, छवि,[1]

वृंदावनदेव—दुति, अली, करन, किंकनी, मूरति, बिरंचि, पन, बिचित्र, बिलासी, गुपाल, रवन, जमुना, भूषन, सुबास, विसकर्मा प्रबीन,[2]

घनानन्द—स्रवन, बहुगुनी, नांव, उकति, हरष, सुर, बिबस, पुहुप, प्रकास, सनेह, विनोद, दिपत, सुदेस, स्याम, बिसै, आसा, पुरान, किसोर, सरूप[3]

चाचा वृंदावनदास—रतन, संकित, सैना, जाचक, सूछम, राकेस, सरद, अस्व, ईस, बिधु, रितु, सुक, बिरद, विमान, निसान, आवेस, कौतिक, अचरच, बसन[4]

भारतेन्दु—जुगपात्रि, चदा, प्रकास, छन, सोभा, ग्रीसम, सीतल, पौन, भौन बीर, बिबाद, आनंद, जुगल, बंसी, स्यामल आदि[5]

दूसरे प्रकार के अर्ध तत्सम शब्द वे हैं, जिनका निर्माण स्वरभक्ति के द्वारा हुआ है। इनके अन्तर्गत उनके तत्सम रूप की संयुक्त ध्वनियों को विभक्त करके व्रजभाषा के अनुकूल बना लिया गया है। इस प्रकार अनेक संस्कृत शब्द व्रजभाषा के अपने शब्द बन गये हैं। पदों और छंदों में लय की तरलता को सुरक्षित रखने के प्रयोजन वश भी ऐसा किया गया है। नीचे स्वरभक्ति द्वारा निर्मित अर्ध तत्सम शब्दों के कुछ प्रयोग प्रस्तुत किये जा रहे हैं :—

अमृत—करकौ अमरित छांडि कै को करै कालिह की आस[6]।

मार्ग—या मारग इम नित गयी, कबूहूँ सून्यो नहिं कान[7]।

गोबर्धन—गोबरधन पूजौ दै विप्रनि बहु गायी[8]।

---

[1] हरिराय जी का पद साहित्य, पद २१९ से २४०

[2] गीतामृत गंगा, पृ० १६ से २० तक

[3] घनानन्द-ग्रन्थावली, पृ० २४० से २५० तक

[4] लाड़सागर, पृ० १४९ से १५५ तक

[5] भारतेन्दु-ग्रन्थावली, पृ० १२२ से १२८ तक

[6] हरिराय जी का पद साहित्य, पद १०४

[7] वही, पद १११

[8] वही, पद १११

धुरपद—तन सुधि तनक रहै नहीं री तापर धुरपद गावै[1] ।

परिक्रमा—परिकरमा दै आनन्द बढ़ावती[2]

उत्पत्ति—कौन धाम यह, उतपति भई[3] ।

स्वार्थ—ये काहू के भये न होयंगे स्वारथ लोभी जान[4]

किन्तु स्वरभक्ति द्वारा निर्मित अर्ध तत्सम शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर कम होती गयी है। मुख्य रूप से प्रथम वर्ग के अर्ध तत्सम शब्द ही प्रयुक्त हुए हैं।

तत्सम और अर्धतत्सम शब्दों से निर्मित क्रियापद

तत्सम और अर्ध तत्सम शब्दों से क्रियापदों के निर्माण की प्रवृत्ति प्रायः सभी कवियों की रचनाओं में मिलती है। इस प्रकार की क्रियाओं पर भी व्रजभाषा का संस्कार मिलता है। जैसे :—

हरिराय :—संभरावत, डुलावनि, अंचवत, बिसरावै, अकुलात, सरसात, पिरानी, सिरानी, अभिरामैं, समझावत, बिसरत, मुसिकात, उपज्यौ, हरिराय, दुलरावत, उटबना, अनुरागै, जाकौ, समझाइ, अंगौछति, अधिकाई, बिसरामैं, परसाइ।

चाचा वृन्दावनदास :—अलापत, दमकनि, ठहरावति, निहारी, सौभै निवेरत सुहावै।

वृन्दावनदेव :—अनुराग्यौ, अभिलसिये, अनुमानै, प्रमानौ, मिथिलान, पुलकात, विचारत, निवस्यौ, अरसानी, बतरात आदि।

तत्सम, अर्धतत्सम और तद्भव रूप मिश्रित समास

भक्तिकाल के कृष्णभक्त कवियों की व्रजभाषा में तत्सम एवं अर्ध तत्सम शब्दों के संयोग से सामासिक पदों के निर्माण की प्रवृत्ति प्रचुर रूप में मिलती है, किन्तु आलोच्य काव्य में यह प्रवृत्ति उत्तरोत्तर कम होती गयी। किन्तु इस युग में सामासिक पदों के प्रयोग की दृष्टि से घनानन्द की भाषा पर्याप्त महत्व-पूर्ण है। उन्होंने दो अथवा तीन तत्सम, अर्ध तत्सम एवं तद्भव शब्दों के संयोग से अनेक सामासिक पदों का निर्माण किया है। जैसे :—

---

[1] गीतामृत गंगा, पृ० १०; पद २५

[2] लाड़सागर, पृ० ६६, पद २५

[3] ब्रजप्रेमानन्द सागर, पृ० ६६ चौ० २५

[4] वर्षा-बिनोद, पद ३६

१. सुजान-रूप-बावरो बदन दरसाय हौ।[1]
२. सुमरि-सुमरि घनआनन्द मिलन सुख।[2]
३. हँसनि-लसनि घनआनन्द जुन्हाई छाय।[3]
४. रतिरंग रागै प्रीति-पागै रैन जागै नैन।[4]
५. सींचैगो स्रवनि कहि सधा-सने वैन हैं।[5]
६. प्रान-प्रति आरति जा जानै तौ सुजान प्यारी।[6]
७. राकानिसि आली व्याली भई घनआनन्द कौं।[7]

सामासिक शब्दों से घनानन्द की भाषा में अद्‌भुत गरिमा और माधुर्य की सृष्टि हुई है। इस प्रकार के अर्ध तत्सम रूप वाले सामासिक पद तो उनकी भाषा में बहुलता के साथ प्राप्त होते हैं, जिनके अन्तर्गत 'ण' के स्थान पर 'न' का प्रयोग हुआ है। जैसे :—

प्रीति-पन, प्रान-पन, प्रान-हंस, प्रान-दान, चरन-मूल इत्यादि।

घनानन्द के अतिरिक्त हरिराय, वृन्दावनदेव, चाचा वृन्दावनदास, भारतेन्दु आदि की भाषा में भी यत्र-तत्र तत्सम और तद्‌भव रूप मिश्रित सामासिक पद मिल जाते हैं। इनके कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं :—

नूपुर-धुनि,[8] पांय-पैजनी,[9] लोक-लाज,[10] मोहन-मूरति,[11] रूप-सलोनी,[12]

---

[1] सुजान-हित छं० २४
[2] वही, छं० २६
[3] वही, छं० २९
[4] वही, छं० २९
[5] वही, छं० ८९
[6] वही, छं० २२२
[7] वही, छं० २२२
[8] हरिराय जी का पद साहित्य, पद २४
[9] वही, पद २७
[10] गीतामृत गंगा, पृ० १९, पद २४
[11] वही, पृ० २५, पद ५५
[12] वही, पृ० २१, पद २९

चरन-अँगूठा[1] गोकुल-रानौ[2] सुख-भीजे,[3] ब्रज-बीथिन,[4] प्रेम-डोर,[5] इत्यादि।

तद्भव शब्द

परम्परा से व्रजभाषा में तद्भव शब्दों का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। विशेषकर कृष्णभक्त कवियों ने व्रजभाषा में इसी प्रकार के शब्दों की प्रधानता रक्खी है। व्रजभाषा का सौन्दर्य बहुत कुछ उसकी तद्भव प्रकृति पर ही निर्भर है। आलोच्य-काव्य में यद्यपि कवियों की शब्दों को तत्सम तथा अर्ध तत्सम रूप में व्यवहृत करने की प्रवृत्ति बढ़ती गयी, तथापि तद्भव शब्दों का वे सर्वथा परित्याग नहीं कर सके। क्योंकि अठारहवीं शताब्दी तक तद्भव शब्दों का कृष्णलीलाओं और उनकी भावधारा से अभिन्न सम्बन्ध स्थापित हो चुका था तथा वे एक प्रकार से कृष्णभक्ति-काव्य की भाषा की स्थायी सम्पत्ति बन गये थे। सभी कवियों ने संस्कृत के अनेक शब्दों को व्रजभाषा के अनुरूप बदलकर उनका तद्भव रूप में प्रयोग किया है। नीचे विभिन्न कवियों द्वारा प्रयुक्त कुछ तद्भव शब्द उद्धृत किए जा रहे हैं :—

हरिराय—औरन, उधारै, काज, गारि, चकाइ, चहुँ, चरचित चुवाई, छिरके, जिय, झंपन, ढांपे, निहारि, निरखि, पंखुरी, पगिय, पत्याइ, बदरा, बसुरिया, बेधि, मदमातौ, माड़्यौ, मुदरि, रचिर, सोहत, सरकीं इत्यादि[6]।

वृन्दावनदेव—अँखियाँ, ऊग्यौ, कांध, केतौ, गाँव, खौरि, चाखे, चाँवर, चूभी, छाजत, छीनत, छुवत, ठगोरी, ढंढोरि, तनकौ, तिहारी, दमकत, धरत, नखत, पीजैं, पसारि, बन्धुर, भौरि, सगाई, सरबस, सरसुती, सांवरौ, सुहाई, इत्यादि[7]।

---

[1] ब्रजप्रेमानन्दसागर, पृ० ४०

[2] वही, पृ० ५५ छं० ६६

[3] वही, पृ० ४६, पद ३६

[4] भारतेन्दु-ग्रन्थावली, पृ० १५९, छं० ५४

[5] वही, पृ० १ ३ छं० ८२

[6] हरिराय जी का पद साहित्य, पृ० १७१-१७२

[7] गीतामृत गंगा पृ० २५ से २८ तक

घनानन्द—आँचै, अरल, अकाज, आगरि, आँचनि, ऊधहै, उनए, ऐंड, ओडि, ओल, आँचनि, काटत, खोरि, चौखन, छेकनि, छैल, जीभ, तिनहीं, नए, नियजै, निछावर, निरखे, पगौ, पढ़न, फैलत, बढ़ाय, बैन, मटकी, मथे, रिझावन, लकुटी, लाड़, सागरौ, सहु, इत्यादि ।[1]

चाचावृन्दावनदास—असीसै, ऊँची, ऊजरे, एकत, कहति, काकी, कुंवरि, कौंथरी, खेलन, गवन, चीतन, छिनु, अग्गी, झोर, त्यौहार, ताकै, दिन, नसाइ, निकसी, नैन, पठाइ, बूझन, बाँटि, बैस, बैठि, बिसारति, भूख, मंझाइ, माइ, नित, सांची, रखवारे, लखी, साँची, सांझी, साजि, सुभाव, बरनी, हिय, इत्यादि[2] ।

नागरीदास—अगड़, उलहै, खचित, गहि, गाढ़ी, चाव, छांह, जोहन झालरि, झुकि, ठठकि, ठौर, तिरछे, घनिवाय, निरझरत, निहुरि, नीरव, पातन पायनि, सुढ़ार, सुहाई, इत्यादि ।[3]

भारतेन्दु—अचरज, आज, अनोखी, आम, उछाव, उनीदै, कंगना, कुसुमीं, गरुई, चाँदनी, जंभात, जीऊँ, थिरक्यौ, नई, नाचत, निठुर, पंगति, पपिहा, फाटत, बरसत, बदरा, बाजत, बीतन, महीना, रूसन, रोवत, सिराई, सीरी, सेजिया, लहकि, सांपनि, सीरी, सेजिया, इत्यादि ।[4]

तद्भव शब्दों की इस सूची पर दृष्टिपात करने से यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि इनके प्रयोग की प्रवृत्ति धीरे-धीरे कम होती गयी तथा तद्भव शब्दों के स्थान पर तत्सम अथवा अर्ध तत्सम शब्दों को प्रमुखता मिलती गयी ।

देशज-शब्द

व्रजभाषा में देशज अथवा व्रजमण्डल के अनेक लोकप्रचलित शब्दों का भी प्रयोग मिलता है। कृष्णभक्ति-काव्य की लोकोन्मुखी प्रवृत्ति और लोकचेतना का संवहन करने की क्षमता पर्याप्त सीमा तक देशज अथवा-व्रजप्रदेश के क्षेत्रीय शब्दों पर ही निर्भर रही है। इनके द्वारा व्रजभाषा में विशिष्ट अभिव्यंजना शक्ति का समावेश हुआ है क्योंकि देशज शब्दों की अर्थव्यंजना तथा उनके सौन्दर्य की पूर्ति तत्सम अथवा अर्ध तत्सम शब्दों के द्वारा सम्भव नहीं

---

[1] **घनानन्द-ग्रन्थावली** पृ० २५३ से २५६ तक

[2] **व्रजप्रेमानन्दसागर**, पृ० ८२ से ८५ तक

[3] **निम्बार्क-माधुरी**, पृ० ६१८ से ६२० तक

[4] **भारतेन्दु-ग्रन्थावली**, पृ० ५०६ से ५१३ तक

होती। समालोच्य काव्य की व्रजभाषा में सामान्य रूप से बहुप्रचलित देशज शब्दों का ही प्रयोग हुआ है। किन्तु इस क्षेत्र में चाचा वृन्दावनदास की व्रजभाषा अपना वैशिष्ट्य रखती है। उनके व्रजप्रेमानंदसागर और लाड़सागर में लोकचित्रण के प्रसंगों में अनेक ऐसे देशज-शब्द प्रयुक्त हुये हैं, जिनमें से कुछ को छोड़ कर अधिकांश का समस्त कृष्णभक्ति-काव्य की व्रजभाषा में विरले ही प्रयोग मिलता है। चाचाजी द्वारा प्रयुक्त निम्न उद्धृत कुछ देशज शब्दों से उनकी महत्ता का अनुमान किया जा सकता है :—

मदनी, ढ़ोरी, लाड़ी बहिली, अरबीली, लली, व्यारू, उपरैनी, गोमटी, पिछौरी, ठठौरा, बिचौलिया, बाथी, बरजोरी, डोलैंता, फँकुरे, पढ़ैला, अलगोजा, टेन, घिलौटैं, छाक, चहुँटियाँ, नीठ, लहड़े, टौरा, रातुली, पीयरैं, हरुवौ, खरिक, कुलजगा, डांडौ, बिटौरा, नकबानी, छतना, पैंचू, पदिक, बगेरति, थिरमा, हटरी, औदरी, बिझुकाई, दरेरी, लगनाइत, पनवारे इत्यादि। (व्रजप्रेमानंद सागर से उद्धृत) आगौनी, गुलचौ, गुलगुलाय, मांड़्यौ, माइलजायौ, गौइंरे, लाड़िलरौ चकरी इत्यादि (लाड़सागर से उद्धृत)

देशज शब्दों में से अधिकांश संज्ञाएँ हैं, अन्य देशज शब्द रूपों का व्यवहार बहुत कम हुआ है।

अनुकरणात्मक शब्द :—अनुकरणात्मक शब्द भी एक प्रकार से देशज ही है, क्योंकि कवियों ने इनका निर्माण स्वयं किया है। किन्तु अनुकरणात्मक शब्दों की व्याप्ति अपेक्षाकृत अधिक होती है। इसलिए एक ही अनुकरणात्मक शब्द अनेक सजातीय उपभाषाओं में प्रयुक्त होता है। इन शब्दों से भाषा में अनुभूति, कार्य व्यापार, रूप और ध्वनि की सूक्ष्म व्यंजना में सहायता मिली है। देशज शब्दों से अभिव्यक्त होने वाले भावों और व्यापारों का अपना सौन्दर्य होता है, साथ-साथ इनमें अर्थ और ध्वनि का अद्‌भुत सामंजस्य भी रहता है।

भक्तिकालीन कृष्ण-काव्य की व्रजभाषा में अनुकरणात्मक शब्दों का प्रचुर प्रयोग मिलता है; किन्तु समीक्ष्य काव्य में इनका प्रयोग उत्तरोत्तर कम होता गया। नवीन अनुकरणात्मक शब्दों के निर्माण की प्रवृत्ति तो समाप्तप्राय सी लक्षित होती है। रास विषयक पदों में अवश्य नृत्य एवं वाद्य यंत्रो की ध्वनियों तथा तालों के आधार पर निर्मित कतिपय नवीन अनुकरणात्मक शब्द प्रयुक्त हुए हैं, किन्तु ऐसे शब्दों का भाषा की अभिव्यंजना शक्ति को संवर्धित करने की दृष्टि से विशेष महत्त्व नहीं है। उनका अपना एक विशिष्ट पारिभाषिक स्वरूप एवं अर्थ है। आलोच्य काव्य की व्रजभाषा में प्रयुक्त एक-ध्वनि-आश्रित शब्दों का

ही प्रयोग अधिक हुआ है। द्वित्वध्वनित, प्रतिध्वनित तथा 'क' ध्वनि-आश्रित अनुकरणात्मक शब्दों का प्रयोग अपेक्षाकृत कम मिलता है। नीचे वृन्दावनदेव, हरिराय, घनानन्द, चाचा वृन्दावनदास की भाषा से चयित द्वित्व-ध्वनित, प्रतिध्वनित तथा 'क' ध्वनि-आश्रित अनुकरणात्मक शब्दों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं :—

द्वित्वध्वनित—खनखन, ठुनठुन, खटखट, कुहुकुहु, झुनझुन, भटभट, धुकधुकी, गुड़गुड़ इत्यादि।

प्रतिध्वनित—लटपटे, चटपटी, अरबरे, डगमगी, जगमगै, अलवल, कलमलाय अटपटी, रुनझुन, रसमसे इत्यादि।

'क' ध्वनि-आश्रित—झलमल, झनकत, किलकत, झनकार, झपकत, ससकत, दमकावत, पटकावत, किलकरत, उहकत, चटकत, सटकारे इत्यादि।

विदेशी-शब्द

इस युग तक फ़ारसी राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी तथा समस्त उतरी भारत में अरबी-फ़ारसी के शब्द पर्याप्त संख्या में लोक-प्रचलित हो गए थे। परिणामतः उत्तर भारत की काव्य-भाषा व्रजभाषा में भी अरबी और फ़ारसी शब्दों का बहुलतापूर्वक प्रयोग होने लगा। उन्नीसवीं शती के अनेक कवियों की व्रजभाषा में इन शब्दों का इतना अधिक प्रयोग हुआ कि उसके स्वरूप में विकृति आने लगी। मांझ, रेखता, ग़ज़ल, आदि छंद शैलियों में भी अरबी-फ़ारसी शब्दों को ही प्रधानता मिली। व्रजभाषा पर उत्तरोत्तर बढ़ते हुए फ़ारसी प्रभाव का परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे उसके शब्द बिना किसी ध्वनि परिवर्तन के शुद्ध रूप में व्यवहृत होने लगे। खड़ीबोली मिश्रित व्रजभाषा में तो यह प्रवृत्ति अत्यन्त प्रखर रूप में मिलती है। इस प्रकार परवर्ती कष्ण-काव्य की भाषा में प्रयुक्त फ़ारसी शब्दों के दो रूप निर्धारित किए जा सकते हैं, एक तो परिवर्तित ध्वनि वाले शब्द और दूसरे विशुद्ध रूप में प्रयुक्त शब्द।

परिवर्तित ध्वनि वाले शब्द :—ऐसे शब्द अधिकतर व्रजभाषा के साथ मिश्रित रूप में प्रयुक्त हुए हैं, तथा उनका स्वरूप व्रजभाषा की प्रवृत्ति के अनुकूल बन गया है। जैसे :—

घानन्द—सराबी, चस्मा, जुलुम, गुमानी, इस्क, सहर, जिहान, खुसी, अरज, आरज, आसिक, हुकुम, जरद, इस्क इत्यादि (इश्कलता)

चाचा वृन्दावनदास—बाग, बाजार, जरकसी, ताजी, जीन, रकम, इजार, मसाल, आतिसबाजी, तास, गरूर, मुरब्बा, मनासिब, मखूतल (लाड़सागर)।

नागरीदास :—गजक, मजहब, खलक, आतिस, असर, इस्क (इश्क चमन)

हठी :—मखमल, जराव, अतर, दिमाकदार, गिलम, गलीचा, तखत, जलूस, पाइजेब, कासमीर, जेबदार, खासी, अगर, ख्याल, (राधासुधाशतक)

भारतेन्दु :—जुलफें, कुलफन, मजूरे, खूब, ख्याली, तमोरु, मसूसन, खुमारी, सुरुख, मुफुत, नजर, बेदरदी, फकीर, मसूसन, गरूर गरीब (प्रेममाधुरी)

विशुद्ध रूप में प्रयुक्त—इस वर्ग के फ़ारसी शब्दों का व्रजभाषा के साथ बहुत कम मिश्रण हुआ है। वे अधिकतर मांझ, लावनी और रेखता छंद शैलियों के अन्तर्गत प्रयुक्त हुए हैं। व्रजभाषा पर खड़ीबोली के प्रभाव के साथ उनका प्रयोग बढ़ता गया। स्फुट रूप में तो घनानन्द, नागरीदास आदि की रचनाओं में भी अरबी और फ़ारसी शब्दों के विशुद्ध प्रयोग मिल जाते हैं, किन्तु उन्नीसवीं शती के सहचरिशरण, शीतलदास, ललितकिशोरी आदि की भाषा में इस प्रवृत्ति का प्राचुर्य लक्षित होता है। जैसे :—

सहचरिशरण—दफ़तर, परवाह, अफ़ीम, दोज़ख, मुहब्बत, गुलशन, आशिक, दीदार, माशूक, शाखें, क़ायम वास्ते, मज़बूत, ज़ालिम, खुशक, मख़तूल, मुलाक़ात इत्यादि (सरस-मंजावलि)

शीतलदास—मज़ाज, हक़ीकी, बग़ीचे, जंजीरों, दिलवर, ज़ालिम, क़हर, खुशबू, जुल्फ, सफ़र, हुस्न, दिलबंद, जुदा, नक़ाब, नज़र, क़लम इत्यादि (गुलजार-चमन)

ललितकिशोरी—जेवर, निशानी, सुकूत, सुराही, मुक़ाबिल, क़ाफ़िले, चश्म, रुखसार, अख्तर, मुशकी, रौशन, जबाँ इत्यादि (अभिलाषा-माधुरी)

अरबी और फ़ारसी शब्दों के अत्यधिक प्रयोग से व्रजभाषा का स्वरूप विकृत होने लगा। इनसे कृष्णभक्ति-काव्य की परम्परागत भावधारा को आघात पहुँचा तथा इनकी प्रचुरता ही आगे चल कर उसके ह्रास तथा खड़ी बोली के विकास का कारण बनी।

मुहावरे और लोकोक्तियाँ

मुहावरों और लोकोक्तियों के द्वारा किसी भी भाषा में विशिष्ट

अभिव्यंजना शक्ति का समावेश होता है। इन दोनों में सूक्ष्म अंतर है। मुहावरे, शब्दों और क्रियाओं के योग से निर्मित होने के कारण काव्य के अंश रूप में व्यवहृत होते हैं, जब कि लोकोक्तियाँ स्वतः पूर्ण होती हैं। उनके अन्तर्गत एक विचार अथवा सत्य की पूर्ण व्यंजना सन्निहित रहती है। इसीलिए मुहावरे किसी भी भाषा में अभिव्यक्ति बन कर व्यवहृत होते हैं तथा लोकोक्तियाँ सत्य को उक्ति रूप में चरितार्थ करती हैं। परन्तु दोनों ही के अन्तर्गत लोकजीवन के परम्परागत अनुभव रूढ़ रूप में सन्निहित रहते हैं। इनकी अर्थवत्ता इतनी शक्तिवान होती है कि लोकभाषा के साथ परिनिष्ठित भाषा में भी ये बराबर व्यवहृत होते हैं। लोक और परम्परा से समर्थित होने के कारण इनका रूढ़िबद्ध लक्ष्यार्थ अत्यन्त प्रभावशाली सिद्ध होता है।

परवर्ती कष्णभक्ति-काव्य की ब्रजभाषा में भी मुहावरों और लोकोक्तियों के माध्यम से लोक के अनेक रूढ़बद्ध अनुभव अभिव्यक्त हुए हैं। दानलीला, मानलीला, भ्रमरगीत आदि प्रसंगों में तो इनका सभी कवियों ने प्रयोग किया है। किन्तु सामान्य रूप से घनानन्द और भारतेन्दु के अतिरिक्त अन्य कवियों के काव्य में मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग अपेक्षाकृत कम हुआ है। घनानन्द के मुहावरे कृष्णभक्ति-काव्य की परम्परा में अपनी चमत्कृत अभिव्यंजना, व्यावहारिकता तथा भावाभिव्यक्ति की सक्षमता के कारण विशेष महत्त्व रखते हैं। मुहावरों के प्रयोग से उनकी भाषा में विलक्षण अभिव्यंजना शक्ति का समावेश हुआ है। घनानन्द के मुहावरों पर फ़ारसी की चमत्कार प्रधान शैली का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। उनके द्वारा प्रयुक्त निम्न उद्धृत कुछ मुहावरे उदाहरण स्वरूप लिये जा सकते हैं:—

१—कोऊ मुँह मोरौ जोरा कौंरिक चबाइ क्यों न।
२—टरे नहीं टेक एक यहै घनआनद की।
३—रोम रोम पीर पागि गरी चिंता चूरि कै।
४—जतन बुझे हैं सब जाकी झर आँख।
५—आँखिन बसे हो सब सूनो बोहियै।
६—तैं मुँह लगाई तातें मोहि मौन ही की कथा।
७—बरनी परै न ज्यों भरी है नैन छाय के। (सुजान-हित से उद्धृत)
८—तिनहीं सों पगौ जिन रंग रए हौ।
९—मूढ़ चढ़े आवत नैरे।
१०—रीझि कै रीझि ही लेत बलाए।

११—नैनन के बल बोलति हैं क्यों इती इतरानी
१२—जीभ संभार न बोलत हौ। (बानघटा से उद्धृत)

भारतेन्दु की भी भाषा में मुहावरों और लोकोक्तियों का पर्याप्त प्रयोग मिलता है तथा दोनों के ही प्रति उनकी प्रवृत्ति समान रूप से क्रियाशील रही है। इनका प्रयोग अधिकतर प्रेमाभिव्यक्ति के प्रसंगों में हुआ है। उनके द्वारा प्रयुक्त निम्न उद्धृत कुछ मुहावरे और लोकोक्तियाँ इसकी प्रमाण हैं :—

फेर प्रान तरसे लगे, प्रेमरंग राची मैं, मुख छवि चितहिं चुराए लेत, सखि चूक हमारी हमारे बारी परी, नेह लगाय, लुभाय लई यहाँ आइ करेजहिं छोलौ, प्रतीत तिहारी खरी है, उनके रस भींजिये, वियोग दुख गांसी हौं, अब प्रान लागे मुरझान, ऊँची दुकान की फींकी मिठाई, अपने पग आय कुठार में दीनौ, अब तो हमको विष घूँटनौ है, बिन बात की रारहिं लीजिए।

अन्य कवियों के काव्य में जिन मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग मिलता है उनमें से अधिकांश परम्परागत हैं। नवीन मुहावरों और लोकोक्तियों की सृजन शक्ति उनमें प्रायः नहीं लक्षित होती। निम्न उद्धृत कतिपय मुहावरों और लोकोक्तियों से इस तथ्य की पुष्टि होती है :—

हरिराय—नीकैं हाथ लगाऊँ, बार-बार बलि जाऊँ, हिरदे में न समात, बिरहा अग्नि बुझाई, ग्वारिन गेल लगाइ, विरह दाह दहत, हृदौ सिरावै, सुनि-सुनि फूलत मात, हंसि-हँसि लीजै री बलैया, तन मन धन सब रह्यो बिकाई, त्यों-त्यों जिय ललचाय, नैनन भरि पीजै, तन मन प्रानन वारूँ, परत न पलक हूँ कल, कैसे अगनि बुझात, ऐसी विरह रंगी हृदै, विरह को घाऊ रे, तारे गिनत रही, इत्यादि (हरिराय जी का पद साहित्य से उद्धृत)

नागरीदास—अँखियाँ इतए ढ़रैंगी, चढ़त कारो रंग बावरी ह्वै रहत, सबै देस टक्टोये, परत तिहारे पाँय, अंगुरी गहत फिर गहत हौ पहुँचा, कर राखौं उरहार, हिय में आन सखी, अंखियनि हाथ बिकाने (नागर-समुच्चय)

चाचा वृंदावनदास—लखि तात कियौ सिराइ, सबन को सिरमौर, सबही दीनी लाज गमाइ कै, लगी टकटकी वाही ओर, गिरि पै चढ़े सिहाइ कै, आइ अलंकृत पुर कौ करिहैं, करवट दै चले लजि मद मदन, आज व्याह कौ परौ ठिकानौ, राई लौन

उतारति रानी, ललो लाड़ भीजी रहै सदा, नापि लिये हैं
ताके पाँइ, सब पै मेरी कूट करावैं, याकी लहर-उतरिहै
तबही, तनक लाज नहिं तोकौं आवै, एकन की जु पिछौरी
लेहि, इत्यादि। (व्रजप्रेमानंदसागर और लाड़सागर)

मुहावरों और लोकोक्तियों की उपर्युक्त सूची से यह भी स्पष्ट है कि मुहावरों की तुलना में लोकोक्तियों का प्रयोग कम हुआ है। कारण, एक तो मुहावरों की तुलना में लोकोक्तियों की अर्थव्यंजना और व्याप्ति सीमित होती है तथा दूसरे लोकोक्तियों का प्रयोग किसी विशेष सन्दर्भ में ही सम्भव होता है। इसके विपरीत मुहावरे जीवन और काव्य दोनों ही में अपनी संक्षिप्तता तथा वैयाकरणिक तरलता के कारण अधिक सरलता के साथ व्यवहृत होते हैं। वे पुरुष, लिंग, वचन और काल के अनुरूप नवीन रूप धारण कर लेते हैं। अतः आलोच्य काव्य में भी लोकोक्तियों की अपेक्षा मुहावरों की प्रचुरता मिलना एक सीमा तक स्वाभाविक ही है। इसके अतिरिक्त लोकोक्तियों के प्रयोग के प्रति सामान्य रूप से भी कवियों का आकर्षण कम होता गया।

रूप-विचार

समृद्ध व्रजभाषा उत्तराधिकार रूप में प्राप्त होने के कारण समालोच्य कृष्णपरक कवियों को उसके स्वरूप निर्धारण की आवश्यकता नहीं पड़ी। मिश्रित भाषा वाले प्रयोगों को छोड़ कर अधिकतर व्रजभाषा के रूप विधान का ही आधार लिया गया है। एक सीमा तक यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि भाषा के शब्द-समूह में परिवर्तन होता ही रहता है। उसी में उसका विकास सन्निहित है, किन्तु उसके स्वरूप विधायक विविध अंगों में अपेक्षाकृत कम परिवर्तन होता है। जैसा कि संकेत किया जा चुका है कि समीक्ष्य-काव्य की व्रजभाषा के शब्द-समूह में पर्याप्त परिवर्तन हुए, किन्तु जहाँ तक उसकी रूप रचना का प्रश्न है वह सामान्यतया अपवादों को छोड़कर व्याकरण सम्मत है। जहाँ-तहाँ कारकों आदि के प्रयोगों में कवियों ने स्वच्छंदता से कार्य लिया है, किन्तु इन्हें दोष न मान कर काव्य-भाषा की प्रकृति के संदर्भ में देखना चाहिए। काव्य-भाषा में छंदों की लय, गति तुक ताल आदि की योजना के कारण अनेक सूक्ष्म परिवर्तन स्वाभाविक रूप से आ ही जाते हैं। अतएव रूप-विवेचन में इस प्रकार के प्रयोगों को सम्मिलित नहीं किया गया है। इसके अन्तर्गत हमारी दृष्टि विविध रूपों के प्रयोग की प्रचुरता पर विशेष केन्द्रित रही है।

संज्ञा

व्रजभाषा की संज्ञाएँ स्वरान्त होती हैं। पुलिंग और स्त्रीलिंग दोनों में वे स्वरान्त-रूप में ही व्यवहृत हुई हैं। जैसे :—

अकारान्त, पुलिंग—जनक, कुँवर, गोप, नन्द, सकट, दयाल, बछरन, भवन
स्त्रीलिंग—बात, मात, इत्यादि।

आकारान्त, **पुलिंग**—बाबा, सखा, लला, श्रीदामा, चंदा, बिन्दुका, कान्हा, बंधना इत्यादि।
स्त्रीलिंग—राधा, रविजा, तनियाँ, करुना, मैया, निशा, ललिता इत्यादि।

इकारान्त, पुलिंग—कवि, रवि, राइ, मुनि इत्यादि।
स्त्रीलिंग—माइ, गाइ, कुँवरि, सखि, नागरि, आँखि, रावलि इत्यादि।

ईकारान्त, पुलिंग—हाथी, साथी, इत्यादि।
स्त्रीलिंग—रानी, सुदेवी, अवनी मदनी, गोपी, सुरभी, किंकिनी, आंगुरी इत्यादि।

उकारान्त, पुलिंग—प्रभु, आजु, तनु, मनु, धनु, वषभानु, इत्यादि।
स्त्रीलिंग—धेनु, बेनु, रेनु इत्यादि।

ऊकारान्त, पुलिंग—कलेऊ, नाऊ, दाऊ, इत्यादि।
स्त्रीलिंग—बहू इत्यादि।

एकारान्त पुलिंग—हिरदै, समै, इत्यादि।

ओकारान्त पुलिंग—ऊधो, माधो, इत्यादि।

औकारान्त—माधौ, माथौ, ऊधौ, हृदौ, इत्यादि।

संज्ञाओं के बहुवचन रूपों का निर्माण व्रजभाषा में ए, ओ, न, नि, आं, यँ, आदि प्रत्यय लगा कर होता है, किन्तु उनमें से न, नि, नु और याँ का ही अधिक प्रयोग हुआ है। इस प्रकार संज्ञा के बहुवचन रूपों के निर्माण में सामान्यतया, बहुप्रचलित प्रत्ययों का ही प्रयोग मिलता है। जैसे :—

न—दौऊ **सुतन** जिमावत नंद—ब्र : १८१
स्याम **खिलारिन** के सिर मौर—ब्र० : २००
मनहुँ कमल की प्रति **पंखुरिन** पै—ह : ४०३
गोपिन की गति कहा होत है—ह : १७८
पल पल यह, विचार चारि **सखियन** मिलि—ह : २६५
चायन बावरे **नैंन** कबै **अंसुवान** सों—घ : १६

छोटे-छोटे **हाथन** सौं खेलैं मन मोहैं—भा : ४४८, इत्यादि ।

नि—दोऊ गनि-गनि **ग्रासनि** लेंहि—ब्र : १८१
नगनि खचित बाजू भुज लसैं—ब्र : १८४
गायनि चरावत हौ चायनि चतुर छैल—घ : १९८
मौ तन निहारि जब बोल लई **सैंननि**—ह : १८५
झूठी **बतियानि** की पत्यानि ते उदास ह्वै कै—घ० : १९ इत्यादि ।

नु—जो सुख बन में **गाइनु** मांहि—ब्र : २०१
कंठी चौकी **मौतिनु** माला—ब्र : १८४
मोहन **नैननु** की अरुनाइ—ह : २३८ इत्यादि ।

यां—देख पंथ **अखियाँ** अति हारीं—ह : २४३
फैल गई **गैयाँ** न्यारी ये न्यारी—गी० : ६
करत भावती रस की **बतियाँ**—भ : ४५५, इत्यादि ।

सर्वनाम

ब्रजभाषा के सर्वनामों के लगभग सभी रूपों का प्रयोग हुआ है। किन्तु सर्वनामों के प्रयोग में किसी भी कवि ने आद्योपांत एक ही नीति का पालन नहीं किया है। उत्तम पुरुष सर्वनामों के मूल रूप मैं, हौं, और हम, के प्रयोग अधिक मिलते हैं। जैसे :—

मैं—**मैं** ढ़ाढ़ी तुव बंस कौ—ह : ५
मैं मुंदरी डारि जु दई—ब्र : ४५
अब **मैं** घर न रहूँगी—भ : ३८२
मैं अपनो प्यारौ अंजन करिहौं—घ : ३४०

हौं—**हौं** लाऊँगी जनि हौहु जु अनमने—ह : २०८
हौं लघुमति कहि सकौं जु कैसे—ब्र : ९३
राधा की **हौं** चौकस चैरी—घ : २४१

हम—**हम** जु साथ के जैंवन हारे—ब्र : २४१
हम जीते जु ग्वाल किलकारैं—ब्र १४०
जैसे **हम** कछु कहत हैं—ह : १०४
हैं **हम** ही धुर की दुखदाई—घ : ९०
को **हम** हैं कहा जोर हमारौ—भा : १६६

उत्तम पुरुष सर्वनाम के बोल-चाल के हूँ, मई आदि रूपों का प्रयोग प्राय: नहीं मिलता।

विकृत रूपों में एकवचन के अन्तर्गत **मो** तथा बहुवचन में **हम** के प्रयोग अधिक मिलते हैं। जैसे :—

मो— मो मन बसी मूरित साँवरी—ह। १८५
मो से हैं बालक बहुतेरे—ब्र० २८
मौं मन अंदेस आली—घ : ५१

हम — हमहु सुनैं कैसे हौ गवैया—ह : १७२
हमकौ बेगि बिदा अब कीजै—ब्र : ८४

मो के **मुहि** और **मोहि** तथा **हम** के **हमैं** और **हमहि** के विभक्त्यात्मक रूप कर्मकारक में प्राप्त होते हैं। जैसे :—

मुहि— मुहि उदास तू लागत काहे—ब्र : ४८
मुहि दुलहिन कबहूँ न दिखावै—ब्र : ३१६

मोहि— मोहि चिरावै माने न मोरि—ब्र : २८
रोवत मोहिं जगावत क्यों नहीं—घ : १६१

हमैं— हमैं तुम्हैं हाय हाय—घ : १६०

हमहिं— हमहिं दिखावत चिह्न राति के—ह : २४२

सम्बन्धकारक : एकवचन में मेरे, मेरो, तथा बहुवचन में हमारे, हमारौ, हमारी रूप अधिक प्रयुक्त हुए हैं। जैसे :—

मेरे— मेरे बसे तू हियरा माँह—ह : २११
आज मेरे भोरहिं जागे भाग—भ : २८०

मेरो— व्रजजीवन-व्रजजीवन मेरो—घ ३०४

मेरो— जो या घर मेरो पिय आगै —ह : २२४
मेरो से लटू जु फिरावौ - ब्र : २२७

मेरी— मेरी अंखियन की पलकन सों—ह ब्र : २२४
अरु दुह दे मेरी मदनी गाई—ब्र : ९३

हमारे— किधौं हमारे प्रेम बिबस तन—ह : ५८
हमारे जिय सालत यह बात—भ : २७६

हमारौ—द्वार हमारौ तू धौं कौन—ब्र : २८

हमारी हमारी सुरति करौ व्रजनाथ—घ : ३५१
हमारी सरबस राधा प्यारी—भ : ५६६

मध्यमपुरुष के रूप उत्तम पुरुष के समानान्तर ही मिलते हैं। मूल रूप में तू, तैं (एकवचन) और तुम (बहुवचन) तथा विकृत रूप में क्रमशः तो और तुम प्रमुख रहे हैं। जैसेः—

तू— तू प्रसन्न नहिं तौ हूँ भई—ब्र : २९
तू सुन राधे पिय के संग—घ : ३४१
काहे तू भरमाये डोलत—भ : २८८

तैं— तैं मुँह लगाई तातें मोहि मौन—घ : ३४
तैं तो सैन दई ही मोंको—ब्र : २००

तुम— तुम कौ तौ परयौ रस को चसक्यौ—गी : ४८
जौ तुम कहूँ खबर हौ पाई—ब्र : ३१

तो— कहा कहा भोजन रुचे तो कौ - ब्र : ४६
क्यों अब हौ बोलैगी तो सों—ब्र : ५०

कर्मकारक एकवचन में तुहि, तुव और तोहि तथा बहुवचन में तुम्हैं तुमहिं रूप अधिक प्राप्त होते हैं। जैसे :—

तुहि— बेटी तुहि को रुचै खिलौना—ब्र : ५६;
तुहि ढूंढि आरसी हम दई—ब्र : २९

तुव— तुव आनन की लाग—भ : २८७

तोहि— तोहि बिनु देख री—ह : २९९
यह तोहि करत पुकार—भ : २८८

तुम्हैं— जो तुम्हैं ऐसी करनी ही—गी : ५४
तुम्हैं पठावन कीरति पास —ब्र । ३७

तुमहिं— नेह तुमहिं सो जोड़यौ—भ : ५८०

मध्यम पुरुष सर्वनामों के सम्बन्ध कारक तेरे, तेरी, तेरौ, तथा तिहारे तुम्दारे, निहारी, तुम्हारी, रूपों की प्रमुखता मिलती है। जैसे :—

तेरे— जब भई तेरे जनम बधाई—ब्र : ५६

तेरी— हम तेरी घरबार तुम्हारी—ह : ३३

तेरो— तेरो अंग अंग लहे लाड़ो लड़कात हौ—घ : २३

तिहारे— तिहारे हित कारन प्यारी —ह : १८४

तुम्हारे—आज तुम्हारे संग मैं दये—ब्र ; १५

तिहारी—तिहारी प्रीति रीति जानी—घ : २६

तुम्हारी— तुम्हारी कौन टेक है प्यारे—घ : ३८२

अन्य पुरुष सर्वनामों का प्रयोग अपेक्षाकृत कम हुआ है तथा इसके जो रूप प्रयुक्त हुए हैं वे प्रायः साहित्यिक ही हैं। मूल रूप में दूरवर्ती निश्चय-वाचक सर्वनामों में **वह**, **वो**, **वे** और **वै** तथा विकृत रूप में **वा** और **उन** की अधिकता रही है। जैसे :—

वह— वह रोवै उत मैया बकै—ब्र : ३०७
वह माधुरियै सौं भरी—घ : ३७५
वो— वो देखौ कैसी नीकी चित्रसारी—ह : ३७६
वे— वे धंसि लाइ लाइ के देहि—ब्र : ८५
वे तो गन पूरन सबही के—ह : २५६
वै— वै देखौ गायें तहाँ जाति—ब्र : २०५
वा— वाके सुत की चुटिया छोरी—ब्र : ३१
घर सोवत है **वा** कौ ढोटा— ब्र : ३०
उन— उन कै पुत्र जनम जब भयौ— ब्र : ५६ इत्यादि।

बोलचाल में प्रयुक्त **बौ**, **बो**, **बु**, **बा**, आदि के प्रयोग नहीं मिलते।

निकटवर्ती निश्चयवाचक सर्वनामों के प्रयोग में अनेकरूपता मिलती है। इनके साहित्यिक रूपों में **यह**, **ये** (मूलरूप) तथा **या**, **इन** (विकृतरूप) तो प्रयुक्त हुए ही हैं। जैसे :—

यह— यह कौतुक नंद सुत करयौ— ब्र : ३०
यह समाज देखे ही जीजै – घ : २६१
ये— ये सुनि कीरति जु हंसि कै—ह : ३६६
या— यामें कछु सबाद नहिं दरस्यौ—ब्र : ३०
इन— जब ते निहारे **इन** आँखिन—घ : ३० इत्यादि।

बोले जाने वाले **जु**, **जौ**, **जिन**, **इहि**, **यो** आदि रूप भी मिल जाते हैं किन्तु इनका प्रयोग अपेक्षाकृत कम हुआ है। इनके कुछ प्रयोग द्रष्टव्य हैं :—

जु— नये नये खेल **जु** करै उदोत—ब्र : ५४
जौ— जौ दोहनी स्याम दुहि लायो—ब्र : १६५
जिन— **जिन** ही बरुनीन सौं बेंध्यो हियो—घ : ३६
ईहि— गड़त होंयगे **ईहि** तृन अंकुस—ह : २३१
यौ— यौ कहि चोर जु चहयौ पलाइ—ब्र : १९२

उपर्युक्त अन्य पुरुष सर्वनामों के कर्म कारक के विभक्त्यात्मक रूप भी

उनके विविध रूपों के समान कम मिलते हैं। प्रयुक्त रूपों में निम्न उद्धृत रूप प्रमुख हैं :—

वाहि— औरन आइ वाहि समझाइ—ब्र : २४
याहि— सुनिये पुकार याहि कौ लौं तरसायहौ –घ : ६
ताहि— जो कोउ मान करत ताहि मनावत–ह : २६५
जाहि— जाहि कौ लहनौ–ह: २३२
उन्हें— उन्हें कहा मेरी सी चटपटी है–घ : ६६१ इत्यादि

सम्बन्धवाचक सर्वनामों में मूलरूप जौ और जे तथा विकृत रूप जा और जिन के प्रयोग अधिक मिलते हैं। जैसे :—

जो— रजनी की बातैं जो मद भावैं – ह : ११४
जो देखियत तीज सुख फली – ब्र : ६६
जे— जे दृग सिराए घनआनंद दरस रस – घ : ४२
जा— जाकी सम इहि सृष्टि न और – ब्र : १०३
जापैं तुम अपनी ढ़ार ढ़रौ – घ : ४८१
जा दिन ते नैनन पथ आयो – ह : १०२
जिन— जिन कर ब्रज जन प्रेम बिकाये – ब्र : २३६

नित्य सम्बन्धी सर्वनामों के मूल रूप में सो, सोइ और ते तथा विकृत रूप में ता और तिन रूप प्रमुख रूप से व्यहृत हुये हैं। जैसे :—

सो— सो तेरे घर ओर बगाइ—ब्र : २६
सोइ— सोइ मनि धनि जाको उर पर धारो – ह : २३२
ते— ते राधा के हाथ गहाये — ब्र : ८१
ता— ता की आँख स्याम ढँक लई — ब्र : २००
तिन— तिन कौ पोंछत काकी कर वर—ब्र : ४४

प्रश्नवाचक सर्वनाम के, को, कहा (मूल रूप) तथा का एवं काहे (विकृत रूप) और काहि (विभक्त्यात्मक, कर्म कारक) अधिक मिलते हैं:—

को— को खेलै अब तेरे संग—ब्र : २६
को पावै हो ब्रजरस को भेद—घ : ५१७
कौन— कौन सुघर जिन बस कर लीन्हें—ह : २३७
कौन रची विधना यह आनि—घ : ३४०
कहा— कहा मों सों करत हौ कपट—ह : २४५

कहा कहौं कछु कहि न रही—भ : ५४६

का— का की सुता अरु का की वधू तुम— गी : १३

का के विरह उसास लेत है —ह : २०६

काहे— बतियाँ काहे को बनावत प्रीतम—ह : २४०

काहे मैं यह जल भर लावै—ब्र : २३५ इत्यादि :

अनिश्चयवाचक सर्वनाम के मूलरूप के प्रयोग में अनेकरूपता मिलती है। इसमें प्रमुख हैं, कोऊ, कौउ, कोउक, और केउ तथा विकृत रूप में **काहू** का ही अधिक प्रयोग हुआ है। जैसे : —

कोऊ — कोऊ लगा इत कोऊ सिरदार—ब्र। ५३

कोउ — कोउ गावत कोउ नाचत बारी— ह : ४८१

कौऊ— कौऊ भई दूलह और बसंती—ब्र : ५३

कोउक— कोउक लेत उजागर धरत—ह : ४०४

केउ— केउ रचे विधि ऐसे—गी : ४६

काहू — काहू ग्वाल डरी वह पाई—ब्र। २६

काहू गहयो पिय भुज—ह ४०४ इत्यादि।

इसके मूल रूप के **कोई** तथा विकृत रूप के **कहू** के भी अपवाद रूप में प्रयोग मिलते जाते हैं। जैसेः—

कोई -- कोई है निरौयें सानूँ कान्ह मिलावै--घ : ३६६

कहू— कहा कहू और के रूठे—गी : १४

आदरवाचक तथा **निजावाचक** सर्वनामों में **आप** तथा **रावरे** (सम्बन्ध-कारक से बने हुए कुछ रूपों का अधिक प्रयोग मिलता है। जैसे :—

आदरवाचक :—

अपु—अपु अनंग न संग को रंग भरयौ—ब्र : २४

आपु— आपु वेद पुर गवन जु कीजौ—ब्र : ८४

रावरे— रावरे रूप की रीति अनूप—घ : १५

रावरी— इन बातनि रावरी बलाइ—ह : २३४

रावरो— चातक है रावरो अनोखो मोह आवरो—घ : १०

निजवाचक :—

अपु— अपु करि दाँतुनि ललहिं कराई—ब्र : ४६

आपु— करी आपु आधीनी—ह : २१६

अपने— अपने लरका हूँ कौ खवावै—ब्र : २६

अपनी—जेंवति अपनी रुचि अनुसार—ब्र : ५८
अपनौ—ले संभार अपनौ घर—ब्र : २६ इत्यादि ।

अवधी के आपुन, आपुनी का भी प्रयोग हुआ है, किन्तु बहुत कम । जैसे:—

आपुन—आपुन त्यौं तकियै सकियै—घ : ३१
आपुनी—लीन्हें आपुनी धेनु—ह : १७८ इत्यादि ।

संयुक्त सर्वनामों के अनेक रूप मिलते हैं । कवियों ने इनका आवश्यकतानुसार निर्माण कर लिया है जैसे:—
जौ कौऊ नृप रिझवार—ब्र : ३१
जौ कोऊ मान करत—ह : २३६
सब कोऊ तुम सौं करिहै—ब्र : ३१
मैं अपनो—प्यारो अंजन करिहौं—ब्र० ३४० इत्यादि ।

परसर्ग

व्रजभाषा में परसर्गों की अनेकरूपता मिलती है लेकिन आलोच्यकाव्य की भाषा में परसर्गों के साहित्यिक रूप ही अधिक प्रयुक्त हुए हैं । बोली वाले रूपों के प्रति कवियों का आकर्षण प्रायः नहीं लक्षित होता ।

कर्ता—व्रजभाषा में कर्ता के ने, और नै दो रूप मिलते हैं, किन्तु काव्य-भाषा में इसका प्रयोग प्रायः नहीं मिलता । ब्रजप्रेमानंदसागर में एकाध स्थलों पर अपवाद रूप में इनका प्रयोग मिल जाता है, जैसे:—

मन के मरमी सखा ने, कहे कृष्ण सों बैन । ब्र : १६१

अन्य परसर्गों के मुख्य रूपों के जो प्रयोग मिलते हैं वे इस प्रकार हैं:—

कर्म और सम्प्रदान—को, कों, कौ, कौ
को—आनंद को घन छायौ—घ : २०१
कों—कमल नयन कों पलना—ह : १४
कौं—काजर कौं दुरि दूध जु लेहु—ब्र : १६६
कौं—मो कौं मन कौं भेद न दियौ—ब्र : १५८ इत्यादि ।

करण और अपादान—सों, सौं, तें, तैं

सों—पलकन सों डगर बुहारूंगी—ह : २२४

लाज सों बदन मोड़ि--भ : १६८

सौं—दोनों हाथ दही सौं सने—ब्र : ५१

तैं— दूध माट सीस तै नावत—ह : २

या रज तें रज ही अभिलाखौ—घ : २६३

तैं— और न काहू तैं हौं डरौं—ब्र : १४८ इत्यादि।

सम्बन्ध— की, के, कैं, कों, कौ, कौ, की

की—हरि जू की हेरनि—ह : ६४

के— प्रेम के फंद परी—भ : १६८

कैं— विधि हूँ कैं आवै न बिचार—ब्र : ७८

को— कमल नयन को पलना—ह : १४

कौं— या रज कौं पाए ही लहौं—घ : २६३

कौं— मन कौं भेद सबै कह दीयौ—ब्र : १४१

कौं— मधु मंगल हूँ कौं संग लीजै—ब्र : १४१ इत्यादि।

अधिकरण—में, मैं, मांहि, पै, पर, ऊपर

में— माखन मुख में मेलि— ह : ५

मैं— नैनन मैं लागे जाय—घ : ६६

माँहि—घर माँहि दुराऊँ—ह : ३६

पै— पटुली पै ताको बैठायो —ब्र : २३०

पर— चौतनी सिरन पर सोहै—भ : ४४८

ऊपर—पलिका उपर बैठी लसै—ब्र : ११६ इत्यादि

इसके अतिरिक्त अनेक परसर्ग रहित प्रयोग भी मिलतें हैं। इनके अन्तर्गत विभक्ति द्योतक चिह्न संज्ञा अथवा सर्वनाम के साथ ही घुल मिल गये हैं। किन्तु इनका प्रयोग उत्तरोत्तर कम होता गया। परसर्ग रहित प्रयोगों के कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं:—

कर्ता— रानी लीनी प्रेम दबाइ—ब्र : १११

कर्म— डंडा गेंद स्याम दिहु डार—ब्र : १४०

करण— नैंन थकैं छबि पान छकैं—घ : १४

सम्बन्ध— जू तुम बरसाने बासी—ब्र : ३७ इत्यादि।

किन्तु अधिकरण के परसर्ग लोप के उदाहरण अपेक्षाकृत अधिक पाए गए हैं, जिनमें से कुछ प्रयोग उद्धरणीय हैं:—

घनआनंद एंडिनि आनि भिड़ैं—घ : १४
बुलावौ कदम चढ़ि—ह : ६६
मेवा पाक गोद भरि लाऊँ—ब्र : १४३
भवन भीर पुनि बीथिनु भीर—ब्र : १५५
आँखनि बसत हैं—घ : १० इत्यादि ।

क्रियापद

आलोच्य काव्य की व्रजभाषा में जो क्रियारूप उपलब्ध हुए हैं, उनके दो भेद तिङन्तीय रूप और कृदन्तीय रूप नीचे प्रस्तुत किये जा रहे हैं। तिङन्तीय रूप वर्तमान निश्चयार्थ, भविष्यत् निश्चयार्थ, सम्भावनार्थ और आज्ञार्थ प्रयुक्त हुए हैं । इनमें लिंगभेद नहीं है ।

तिङन्तीय रूप

क—**वर्तमान** निश्चयार्थ में प्रयुक्त मुख्य-मुख्य प्रत्यय इस प्रकार हैं :—

१—**उत्तमपुरुष एकवचन**

ओं । औं—अपने सुतकों उर धरि राखों—ह : १४
कोरिक मदन **वारों**—घ : ६४
परम मित्र करिकै हौं **जानौं**—ब्र : १४१
कौन बानिक **करौं**—ला० सा० २६८

ऊँ—प्राय: आकारान्त धातुओं के साथ प्रयुक्त हुआ है, किन्तु कुछ एक उदाहरण—ओं, औं के विकल्प में मिल जाते हैं :—
हौं न **चराऊँ** गाइ—ब्र : ३३
जसोदा सुत को चरित **सुनाऊँ**—ह : ३६
राधा मदन गुपाल की हौं सेज बिछाऊँ—घ : ३१२
एवं
अधर सुधा रस **चाखूं**—ह : २१२
प्रणऊँ या रस प्रचुर—ला० सा० ३१५

उत्तमपुरुष बहुवचन—

ऐं—सुख दैन हमारौं हम भरैं—घ : १६१
हम उन बिनु अति व्याकुल डोलैं—भ : ११४

२—मध्यमपुरुष एकवचन—

ऐ—सो तू बात न मौसौं **कहे**—ब्र० १४२

मध्यमपुरुष बहुवचन—

ओ—अब तुम रोर नगर मैं **पारौं**—त्र : ३४

३—**अन्यपुरुष एकवचन—**

ऐ—बेटी वह मोती ही **चरै**—त्र : ११३
सखिन सहित अति लड़ हि **जिमावै**—त्र : ११३
गोपी हँसि तारी **पटकावै**—त्र : ३६

अन्यपुरुष बहुवचन—

ऐं—नाना विधि के पंछी **लसैं**—त्र : ११६
त्यों-त्यों **चलैं** गाँव दिसि गाइ—त्र : १६१
लेहु लेहु यौं **बोलैं**—ला० सा० १८०

ख—भविष्यत् निश्चयार्थ के रूप दो तरह से सम्पन्न हुए हैं, एक तो वर्तमान निश्चयार्थ के साथ **गो, गे, गी,** के योग से निर्मित रूप और एक दूसरे इह—के योग से निर्मित रूप । **गो, गे, गी** कृदन्त हैं । यहाँ केवल तिङन्तीय रूप दिये जा रहे हैं :—

१—उत्तमपुरुष एकवचन—

इहौं—वियोग ताप **मेटिहौं**—घ : ६६ : ३०७
सूधौ चलौ कबहू नाहिं **लरिहौं**—त्र : १४५

उत्तमपुरुष बहुवचन—

एहैं—हम अपनो मन भायौ **लैहैं**—त्र : १४५

२—**मध्यमपुरुष एकवचन—**

इहै—चित हाथ धरि **धरिहै**—भ : १५६

मध्यमपुरुष बहुवचन—

इहौ—कहाँ लौ तुम दूर **रहिहौ**—ह : ३६०

३—**अन्यपुरुष एकवचन—**

इहै—क्यों करि **फूलिहै** जू—घ : १५८

अन्यपुरुष बहुवचन—

इहैं—कहा जान हरि **करिहैं** करुना—ह : ३३४
सब अभिलास **पुजाइहैं**—ला० सा० १७६

ग—**सम्भवनार्थ** में वर्तमान निश्चयार्थ की तरह जैसे :—

ऐ—मिलै अहार पेट भर जब ही—ब्र : १६४ : २७
किहि भाँति भटू निसि द्यौंस कटै—घ : ८६

घ—**आज्ञार्थ**—के कई रूप प्रयुक्त हुए हैं, जिनमें मुख्य इस प्रकार हैं। जैसे :—

इ— देखि सखि चंदा उदित भयो—भ : १२२
ओ—**बैठो देखो** चरन कमल दल–ह : २३१
ये— दसा आप **देखिये**—घ : ७६
ऐ— मेरो अपराध क्षमा **कीजै**—ब्र : ३५५
औ—मधुर सुख **उपजाऔ** बेनु—ह : १८१
यौ—**पियौ** धार अपनी धौरी की—ह : ४१

कृन्दतीय रूप—कृदन्तीय रूप सामान्य वर्तमान, सामान्य भूतकाल और पूर्वकालिक (अपूर्ण) क्रिया तथा गो, गी, गे वाले भविष्यत् काल में प्रयुक्त हुए हैं। कृन्दतीय प्रत्ययों में पुरुष-भेद नहीं है।

(क) **वर्तमानकाल**—त, तु प्रत्यय। त प्रत्यय में लिगभेद नहीं है, वचन भेद भी नहीं है। किन्तु तु का स्त्रीलिंग रूप, ति मिलता है। वचन का संकेत सहायक क्रिया से हुआ है। जैसे :—

पुल्लिग— त— **फिरत** गोप आनन्द उमाहत—ब्र : १३७
तु— बसि बीच तऊ मति **मोहतु** है—घ : ३४०

स्त्रीलिंग—त— **खेलत** कुंवरि संग सजनी—ब्र : १३७
ति—रानी लाड़ **करति** बहुतेरो—ब्र : १६३

(ख) भूतकाल–

पुल्लिग एकवचन

यो—आयो सरन बिकार **भर्यो**—घ : १६३
जुगल को **जगायौ**—ला० सा० २४८

पुल्लिग बहुवचन

ए—प्रेम सहित बहुविधि **रचे**—ला० सा० १८१
नाच रहे मद **पागे**—भ : १२२

स्त्रीलिंग एकवचन

ई—फिरि फिर चित पछताई —ह : ३१७

मदन भोरि धुनि छाइ – ला० स्म० १७२

आनंद सरिता बाढ़ी—भ० ११६

स्त्रीलिंग बहुवचन

ई—वधू घर कौं चली—ला० सा० २४४

आज ब्रजबधू फूली—भ : १२१

धातु और प्रत्यय के बीचमें किन्हीं क्रियाओं के साथ न, एवं दे, ले, कर के साथ विकरण मिल गया है, जैसे :—

सब देखत बहु आदर दीन्हो—ह : ३०७

इहि विधि रुचि मानी—ला० सा० १८१

हरीचंद न सुरत भुलानी—भ : २८८

(ग) पूर्वकालिक (अपूर्ण) क्रिया

इ—या—इस रूप के साथ विकल्प से कै भी प्रयुक्त हुआ है। जैसे :—

देखत रूप परसि प्रीतम कौ—ह : ३०८

नित धाय कै जाय धरौं—घ : २५४

आय बिरंचि तुरत तहँ देख्यो—द्व० ११४

देखि देखि वह बाल चरित—भ : ४७

(घ) भविष्यतकाल के गे, गो, गी रूप उल्लेखीनोय हैं। इनमें तिङन्तीय रूपों को भी लिया गया है। जैसे :—

पुंल्लिग एकवचन

गो—तिन्हें सिंगार चलौंगो—ला० सा० २१

गौ—वह दिन कैसो होहिगौ—ह : ९१

पुंल्लिग बहुवचन

गे—हम मानैंगे जीतोई सोई—ब्र : २०४

माधौ कब पुकार लगौगे—घ : १६२

स्त्रीलिंग एकवचन

गीं—हौं तो रूसी रहूँगी—ह : २४६

गी—प्रगट होहिगी प्रीति—ह : ७०

स्त्रीलिंग बहुवचन

गीं—हम **पकरैंगीं** तोर जंजीर—ब्र० १३७
पूजैंगीं मन आस सबै—ह :८९

संयुक्त क्रिया

संयुक्त क्रियाएँ दो प्रकार से प्रयुक्त हुई हैं :—

(१) प्रधान क्रिया के साथ सहायक क्रिया, जैसे—

सम के **दिखरावत है** बिसमैं—घ : १५४
अद्‌भुत कंचन घरु **दरस्यौ है**—ला० सा० : १९९
या मग में मेरौ पिय **आवत है**—ह : २२३
रीझि घनआनंद **रही है** छकि—घ : १२८ इत्यादि।

(२) दो प्रधान क्रियाओं का योग, जैसे :—

खेलिबै को **उठि भागौगे**—ह : ४९
वस्तु अपूरब **आवत चली**—ब्र : २७५
अति औसर की अति **दीस परीं**—घ : १५६
मोहि **पुकारन दीजिये**—भ : १६८
नैकु दरस **दिखाय जाय**—भ : १६९ इत्यादि

प्रेरणार्थक क्रिया—प्रेरणार्थक क्रियाएँ **आ**, **व** और **आव** से निर्मित हुई हैं, किन्तु इन सभी रूपों में **आव** रूप वाली क्रियाएँ सबसे अधिक मिलती हैं :—

आ—ज्यौं सवारै **ललचात है**—घ : १९७
वा—जीवहिं **जिवाय** नीके—घ : १११
आव—तू तौ **समुझावत है**—ह : २९१
गहौ कुछ और **लखावत** कछु औरे—घ : १२४
सरस अरुन दृग मोहि **जनावत** ह : २३५
सदा **जियावति** ही सो—ह : ३२९ इत्यादि

संज्ञार्थक क्रिया—**बो, बौ** तथा **नो, नौ** प्रत्ययों से निर्मित संज्ञार्थक कियाएँ अधिक प्रयुक्त हुई हैं। जैसे :—

बौ, बो—नैत न मुख मैं मेलिबौ—ह : ३७

घरीं जुग कोटि वितैबो—घ : २०१ : ५२

याद बिछुरबौ वाको—भा : ११५

नौ, नौ—अब कैसे जीवनौ होय मेरी रजनी—ह : ४०१

बिन पावक ही दहनो है—घ : ६

इनके तिर्यक् रूप, न और वे प्राप्त होते हैं। जैसे—

न—देखन कौ घरै रहैं—घ : ७५

वे—टूटत आसा हरि मिलिबे की—ह : ३२६

पान पेठिबे को फिरि वैठे—घ : ४६

अव्यय

इनके प्रायः बहुप्रचलित सभी रूप प्रयुक्त हुए हैं। नीचे कुछ अव्ययों के कतिपय प्रयोग उद्धृत किये जा रहे हैं :—

समुच्चय बोधक—औ—धिक देह औ गेह सबै—भ : १७२

और—उर बघना और हार—ह : १०

अरु - महाधीर अरु अधिक अधीर—घ : २५६

पुनि—पुनि कियौ पालिक—ब्र : ५४

फेरि—एक वेर बहुरि के फेरि—ह : १८१ इत्यादि।

विरोध वाचक—पै—अंतर मैं रहौ पैं न अंतर उधारत हौ—घ : १४४ इत्यादि।

निमित्ति वाचक—तौ—तुम तौ वन वन चारत—ह : १७८

तौ - तैं तौ सैन दई हौ मौकों—ब्र : २०० इत्यादि।

उद्देश्य-वाचक—जो—जौ मेरे मन होत—ह : २०३

जौ—जौ उहि ओर—घ : ७६

जौ पे - जौ पे स्याम मनोहर—ह : २४६ इत्यादि।

संकेत वाचक—जदपि-जदपि गुरुजन लाज दुरत हौ—ह : ३६५

सिखर पर बरजै जदपि ग्वार—ला० सा० : ७२ इत्यादि।

व्याख्या वाचक—तातैं-तातैं कहि ये गोकुल रानो—ब्र : ५२

यातैं—पिता उजागर यातैं—घ : १८२

याही तैं—याही तैं यह ब्रजराज—घ : २७६

तासौं—मौ मन प्रीति बढ़ी है तासौं—ब्र : १०४ इत्यादि।

क्रिया-विशेषण

इनके जो रूप अधिक प्रयुक्त हुए हैं वे संज्ञा, सर्वनाम, और विशेषणों के आधार पर निर्मित्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त पुराने क्रिया-विशेषणों का भी प्रयोग मिलता है। कुछ प्रमुख क्रिया विशेषणों के प्रयोग इस प्रकार हैं :—

कालवाचक-कबहूँ—कबहूँ भेंटत भुज पसारत—ह : २६
निरतर-यह लीला हिय बसौ निरन्तर—ह : ३९
वेग—जैवहु वेग खेल खैलिहौ पाछे—ह : ५४
तब लौं—न लग्यौ तब लौं मन गुंजन—घ : १४२
पुनि—पुनि अर घर पै पान करावै—ब्र : ६
जब तैं—जब तैं तुम वन आये—ह : ६०
सदा—सीरी सदा सुख मैन—घ : १४२ इत्यादि।

स्थान-वाचक—पास—लै आओ हम पास—ह : २६
तहाँ—हाथ न पहुँचे तहाँ लेवे को—ह : ३८
भीतर—भीतर जाय बैठाय—गी : ८
जहाँ—जहाँ विराजत स्यामा स्याम—ब्र : २
बाहिर—घर बाहिर जाय उपाधि मचावै—ब्र : ९
तहाँ—तहाँ पूतना बिहँसत आई—ब्र : २
आगै—आगै ह्वै टेरयै जब माई—ब्र : ७ इत्यादि।

रीति-वाचक—ऐसे—ऐसे रसामृत पूरित ह्वै—घ : १४१
जैसी—ताहि जेसी भाँति लसे—घ : ६४
यौं—मोद भरी यौं लड़ावत मैया—गी : २
यौंही—यौंही मोहि बिरावै—ह : ३१
अस—रस माधुर्य बली अस भयौ—ब्र : ५ इत्यादि।

निषेध-वाचक—नहीं—जो कुछ रोचन को नहिं पावै—ह : ३८
नहीं—मनैं नहिं प्यावेता—घ : ९४
नहिं—पैंडे नाहिं चलाई—ह : ५८
नाहिंन—निगमौ परसौ नाहिन जास—ब्र : २ इत्यादि

कारण-वाचक—काहै—काहै बेर लगाई—ह : ५१
कौन—कौन काज ते आई—ह : ५८
क्यों—पावत क्यों दृग प्यारा नहीं—घ : ९६

क्योंकर—क्योंकर कितहूँ निकसिये सजनी—गो : ११
इत्यादि।

परिमाण-वाचक—अति—अति सुन्दर अति रंग-रंग तनियौ—ह : २५
कछुक—दै कछुक स्वाद करि खाय—ह : ३८
अधिक—अधिक प्रेम बढ़ गयौ हमारौ—ब्र : ७
एते—ऐते गुन पाय हाय—ब्र : ६५
नैंक—नेक चरन चित उपराव हो—ह : ६५
सब—आभूषण सब धरे उतार—ह : ५२ इत्यादि।

आवृत्तिमूलक वाक्यांश—इनके अन्तर्गत एक ही अव्यय की पुनरावृत्ति हुई है अथवा विलोम अव्ययों के युग्म प्रयुक्त हुए हैं। जैसे :—

तहीं-तहीं—भूमि रहे तहीं-तहीं—घ : १८४
ज्यों-ज्यों—ज्यौं-ज्यौं मन रोचक धुनि लागैं—ब्र : ६
जैसे जैसे—जैसे-जैसे वंसी बाजै—ह : २७
इत-उत—इत-उत नव-नव लाड़ लड़ाए—ब्र : ५
जित-तित—जित-तित नगर-नगर—घ : १०
जब-तब—रहे गोपाल अकेले जब-तब—ह : ५८

रूप विचार के उपर्युक्त विश्लेषण के यह भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है कि समालोच्य-काव्य की व्रजभाषा में परिनिष्ठित शब्द-रूपों की प्रधानता होती गई तथा लोक-प्रचलित शब्द-रूपों के प्रयोग धीरे-धीरे कम होते गये।

विविध भाषाओं और बोलियों का प्रयोग

आलोच्य काव्य के अनेक प्रणेताओं ने व्रजभाषा के साथ पंजाबी, राजस्थानी गुजराती और बंगला का भी प्रयोग और मिश्रण किया है। व्रजभाषा के साथ संस्कृत और फ़ारसी के मिश्रण का तो पीछे शब्द-समूह के संदर्भ में विवेचन किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त हिन्दी-प्रदेश की उपभाषाओं के शब्दों का स्फुट रूप में भी प्रयोग मिल जाता है। विविध भाषाओं के प्रयोग की प्रवृत्ति जितने प्रखर रूप में इस युग के कृष्णभक्ति-काव्य में मिलती है, इससे पूर्व उतनी नहीं मिलती। कुछ स्थलों पर तो इन भाषाओं का प्रयोग इतने स्पष्ट रूप में हुआ है, कि रचना व्रजभाषा की प्रतीत ही नहीं होती।

भाषाओं का प्रयोग

पंजाबी :—व्रजभाषा के साथ पंजाबी का मिश्रण सबसे अधिक मात्रा में हुआ है। वृन्दावनदेव, हरिराय, घनानन्द, सहचरिशरण, भारतेन्दु और किशोरीअलि के पद इस दृष्टि से विशेष महत्व के हैं। इनके कुछ पद तो आद्योपान्त पंजाबी में ही रचे गये हैं। इसके अतिरिक्त प्रायः सभी मांझकारों ने व्रजभाषा के अन्तर्गत फ़ारसी तथा पंजाबी शब्दों का पर्याप्त मिश्रण किया है। केवल चाचा-वृन्दावनदास की मांझे इस प्रवृत्ति की अपवाद कही जा सकती हैं। इन कवियों की रचनाओं के निम्न उद्धत अंश द्रष्टव्य हैं :—

वृन्दावनदेव—मोहन दे नैंन मार दे अब मैनूं।
किस अग्गे करौं पुकार नी सँये श्याम सलौने प्यार दे।
श्री वृन्दावन प्रभु वशि करि लैदे चुक जिस तरफ निहार दे।[1]

हरिराय—हौरी दे खेल बिच्च यह कीता।
मैं नौ लगाई छरी फूल्यो दी, सिर ते घूंघट खोंचि लीता।
पायो गुलाल आँखों बिच मेरे, देखन दा सुख छीता।
सब देखै, दे लाज मरंदो, चुवना गालों दीता।
ऐसो न कीजे निगर नंद दे, कहावै ब्रज जन मीता।
'रसिक-प्रीतम'.सौ हारवा दी हौं हारो तू जीता।[2]

घनानन्द—अणी मिठ बोलणा यार निमाणी दा।
इत बल आंवदा कूक सुवणांवदा मरहम हाल दिवाणी दा।
मुरली बजावंदा इस्क जगांवदा गाहक हत्थ बिकाणी दा।
आनन्दघन व्रजमोहन प्यारिया मुझ बन्दी कुरवाणी दा।[3]

सहचरिशरण—श्यामल श्यामा मिला हुसन को रूप सुधा सुख सीमैं।
वर शरबत मिश्रीदा प्याला पिया पिये क्या नीमैं।[4]

---

[1] गीतामृत गंगा, पृ० ८३ पद ८३
[2] हरिराय जी का पद साहित्य, पद ६६६
[3] घनानन्द-ग्रन्थावली, पद ८८२
[4] सरस मंझावलि, छं० ३८

भारतेन्दु—तैंडा होरी खैल मैड़ें जीउ नूं भांवदा ।
तू वारी कोई दी सरमन करदा बुरी वे गल्लियाँ गांवदा ।
पाय अजार नैन विच साडे वंसी निलज्ज बजावंदा ।
'हरिचंद' मैनू लगी लड़ तैंडी तू नहिं आस पुरावंदा ।[1]

किशोरी अलि—राधे तैं सदके जावां ।
साहिजनी वृंदावन रानी बांस वृंदावन पांवा ॥
अरज कबूल करी तौ प्यारी फूनी अंग न भांव ॥
वंशी वाले राखि किशोरी है को की गुन गांवा ॥[2]

ऐसी प्रतीत होता है कि इस युग के कृष्णभक्त कवियों के बीच व्रजभाषा के साथ पंजाबी में काव्य रचना तथा व्रजभाषा के साथ उसके मिश्रण की एक शैली ही चल पड़ी थी । कदाचित इसीलिए अनेक कवियों के काव्य में व्रजभाषा के साथ पंजाबी का मिश्रण हुआ है ।

राजस्थानी :—व्रजभाषा के साथ राजस्थानी का मिश्रण वन्दावनदेव, नागरीदास, बनीठनी, भारतेन्दु, किशोरीअलि आदि की रचनाओं में स्फुट रूप में मिलता है । आद्योपांत राजस्थानी में रचे जाने की दृष्टि से वृन्दावनदेव के कुछ पद पर्याप्त महत्वपूर्ण हैं । नीचे इन कवियों के राजस्थानी में रचित तथा राजस्थानी मिश्रित व्रजभाषा पदों के कुछ अंश उद्धत किये जा रहे हैं :—

वृन्दावनदेव—प्यारा लागो छोजी प्यारा थैतो म्हानैं ।
म्हां की चालै तौ थानैं छाती सौं कढ़ैं करां नहिं न्यारा ।
सूरत थांहरी कामणगारी ।
थांहरी छांजी अरज करा छां दरसण दैज्यौ धूतारां ।
श्री वृन्दावन प्रभु उरां सौं नहिं तो चालां थाकी लारां ।[3]

नागरीदास -- मैं की जाणूँ कमली पैरणावो इस्क बहर दरियाव ।
मुज धीरज दी विछुपई झकझो कांसी दी नांव ।
वे परवाई पार दी चलैं बुरा पवन परवाव ।
नागर एक मलाह विहूँणां सबही दाव कुदाव :[4]

---

[1] होली, पद २५
[2] डॉ० शरणबिहारी गोस्वामी के संकलन से उद्धृत
[3] गीतामृत गंगा पृ० ८३ पद २६
[4] नागर-समुच्चय पृ० ४००

बनीठनी :—रतवारी हो थारी आंखड़ियाँ।
प्रेमी छकी रस बस अलसानी, जानि कमल की पांखड़ियां।
सुंदर रूप लुभाई गति-मति हो गई ज्यूं मधु माखड़ियां।[१]

भारतेन्दु :—नींदड़िया नहिं आवैं, मैं कैसे करूँ एरी सखियाँ।
हरीचंद पिय बिनु अति तड़पैं खुली रहे दुखिया अँखियाँ।[२]

गुजराती :—व्रजभाषा के साथ गुजराती का मिश्रण बहुत कम हुआ है। स्वतंत्र रूप में पंजाबी के समान गुजराती में काव्य रचना की प्रवृत्ति केवल हरिराय और भारतेन्दु के ही पदों में मिलती है। इनमें हरिराय के गुजराती पद तो प्रचुर संख्या में मिलते हैं, किन्तु भारतेन्दु ने कुछ ही पद गुजराती में रचे हैं। नीचे दोनों कवियों के दो गुजराती पद दिये जाते हैं :—

हरिराय :—मारे सरबस श्री बल्लभवर हुँ हूँ, एउनी दासी रे।
बोहूँ नहीं हूँ बीजा कोई थी, लोक करे छै हाँसी रे॥
प्रीति बँधाणी एड़ने चरणें तो, ड़ावी नहीं लूटै रे।
बांधी हेम पटौले गांठी, छोड़ावी नहिं छूटै रे॥
मूकी लाज लोक कुल नी हूँ, भूंडी भली थई एड़नी रे।
भणै 'हरिदास' दास तेना हूँ, चरण रेणु नित तेउनी रे॥[३]

भारतेन्दु :—थारे मुख पर सुंदर श्याम लटूरी लट लटके छे।
जेने जोई ने म्हारौ मन लाल जाइ जाइ अटके छे।
थारा सुंदर नैन बिसाल, प्यारा अति रूड़ा छे।
थारा सुंदर गोल कपोल गुलाब जेव्हा फूल्या छे।[४]

बंगला :—आलोच्य काव्य की व्रजभाषा में गुजाराती के समान बंगला का भी कम प्रयोग हुआ है। यह उल्लेखनीय है कि बंगला से अनूदित काव्यों की भाषा में बंगला का मिश्रण नहीं मिलता। भारतेन्दु ने 'प्रेम-तरंग' में अवश्य अनेक पद बगला में रचे हैं, किन्तु इसे भी उनके गुजराती पदों के समान अपवाद तथा भाषा-प्रयोग की विचित्रता ही समझना चाहिए। इसके अतिरिक्त

---

१ नागर-समुच्चय से उद्धृत
२ प्रेम-तरंग, छं० ६६
३ हरिराय जी का पद साहित्य, पद सं० ६९३
४ प्रेम-प्रलाप, छं० ५८

वृन्दावनदेव का भी एक बंगला पद मिलता है जो नीचे उद्धृत किया जा रहा हैं—

वृन्दावनदेव :—अरे प्रान बन्धु कान हरि लीलो प्रान।
आमार वाडो मध्ये आसीवौ जाइवौ तुमी नहिल जोवन जीवो दान रे।
की मंत्र पौढ़िया डारीलौ तुम अमा कौ भूलिलो खांन आर पान।
श्री वृन्दावन प्रभु तुमी अमां कै पासुरिला अमा के तुम्हारा गुनगान।[१]

पंजाबी और राजस्थानी के अतिरिक्त सभी भाषाओं का प्रयोग रत्नाकार की विविध भाषाओं की काव्य रचना की अभिरुचि का ही द्योतक कहा जायेगा। एक सीमा तक तो राजस्थानी और पंजाबी के भी विषय में यही बात कही जा सकती है, किन्तु इन दोनों ही भाषाओं के व्रजभाषा के साथ मिश्रण की भी प्रवृत्ति मिलती हैं। अतएव पंजाबी और राजस्थानी मिश्रित व्रजभाषा को उसकी एक शैली के रूप में स्वीकार करना उचित प्रतीत होता है।

बोलियों का प्रयोग

मध्य युग में अपनी व्यापकता के कारण व्रजभाषा में मध्यदेश की विविध बोलियों के शब्द-रूपों का समावेश हुआ तथा व्रजभाषा के माधुर्य में घुल कर वे उसके अभिन्न अंग से बन गये। व्रजभाषी क्षेत्रों से इतर भाषा-भाषी-क्षेत्रों के प्रभाव व्रजभाषा पर पड़ने स्वाभाविक भी थे। किन्तु जहाँ तक विवेच्य काव्य की भाषा का प्रश्न है, उस पर हिन्दी प्रदेश की बोलियों का प्रभाव बहुत न्यून है। उसके जो तत्त्व इस काव्य की व्रजभाषा में आ भी गये हैं, वे उसमें इतने घुलमिल गये हैं कि उनका पृथक विवेचन सूक्ष्म भाषा वैज्ञानिक विश्लेषण की अपेक्षा रखता है, जो यहाँ हमारा अभिप्रेत नहीं है।

मध्यदेश की बोलियों में अवधी, भोजपुरी और खड़ीबोली ही ऐसी उप-भाषाएँ हैं, जिनका समालोच्य काव्य की भाषा में प्रयोग हुआ है। इनमें अवधी और भोजपुरी का स्वतन्त्र रूप से प्रयोग तो केवल भारतेन्दु की ही कुछ रचनाओं में हुआ है, किन्तु खड़ीबोली के व्रजभाषा के साथ मिश्रण और प्रयोग की प्रवृत्ति

---

[१] गीतामृत गंगा, पृ० ८३, पद २२

अनेक कवियों के काव्य में उत्तरोत्तर विकसित होती हुई लक्षित होती है। भारतेन्दु ने पूर्वी उत्तर-प्रदेश की राग-रागनियों तथा लोकगीतों के अन्तर्गत पद रचना में लोकचेतना की रक्षा हेतु उनकी भाषा का भी प्रयोग किया है। जैसे :—

> १—न बोलौं मौसों मीत पियरवा जानि गये सब लोगवा।
> तुमरी प्रीति छिपी न छिपाये, अब निबहैंगी बहुत बचाये,
> इन दइमारे नयनन पीछै यह भोगन परयो भोगवा।[१]
> २—न जाय मोसों ऐसौ झोंका सहीलौ न जाय।
> झुलाओ धीरे उर लगै भारो बलिहारी हो बिहारी,
> मोसो ऐसो झोंका सहीलो न जाय॥
> हरीचंद निपट में तो डर गई प्यारे मोहिं लेहु झट गरवां
> लगाय।[२]

विविध भाषाओं के समान उपर्युक्त बोलियों में भी काव्य रचना भारतेन्दु की भाषा-प्रियता की ही द्योतक है, उनकी व्रजभाषा के किसी रूप की नहीं।

यह संकेत किया जा चुका है कि समालोच्य काव्य की भाषा में फ़ारसी शब्दों का प्राचुर्य खड़ीबोली के तत्त्वों को प्रश्रय देने में पर्याप्त सहायक हुआ। जहाँ तक व्रजभाषा के साथ खड़ीबोली के मिश्रण का प्रश्न है, आलोच्य काव्य में वह प्रवृत्ति सर्वप्रथम हरिराय की भाषा में प्रयुक्त कुछ क्रियापदों में मिलने लगती है :—

> तू बनरा रे बनि बनि आया, मो मन भाया सुख उपजाया।
> अति उतंग नीली घोड़ी चढ़ि, धारि सिर सेहरा अति सुंदर
> अंग सुगंध लगाया।[३]
> अपने संग सकल जन सोहें, तिलक लिलार बनाया।
> 'रसिक-प्रीतम' बलिहारी जाऊँ उठि हँसि अंग लगाया।[४]

इसके अनन्तर नागरीदास, सहचरिशरण, गौरगणदास, शीतलदास, नारायण-स्वामी, भारतेन्दु आदि की भाषा में व्रजभाषा के साथ खड़ीबोली का मिश्रण तथा प्रयोग क्रमशः बढ़ता गया। मांझकारों में भी अधिकांश ने प्रायः खड़ीबोली

---

[१] प्रेम-तरंग पद ६२

[२] प्रेम-तरंग, छं० ६५

[३] हरिराय जी का पद साहित्य, पद ११५

के ही क्रिया-रूपों का प्रयोग किया है। उन्नीसवीं शती के अंत तक ब्रजभाषा और खड़ीबोली का मिश्रित प्रयोग कृष्णभक्ति-काव्य की भाषा की एक प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में दिखाई पड़ने लगा। ग़ज़लों, रेखतों और लावनियों की रचना तो अधिकतर खड़ीबोली में ही हुई। कतिपय कवियों द्वारा प्रयुक्त खड़ीबोली के कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं :—

नागरीदास— इश्क उसी की झलक है ज्यों सूरज की धूप
जहाँ इश्क तहँ आप हैं, कादिर नादिर रूप।[1]

सहचरिशरण— मतलब नहीं फरिश्तों से हम, इश्क दिलां दे संगी।
सहचरिसरन रसिक सुलतां बर मिहरबान रस रंगी।[2]

गोरगणदास— यह मधुर माधुरी रसिक नाज की रसिकन हृदय पगी है।
छवि विलास रस केलि रूप में नव नव लगन लगी है।[3]

शीतलदास— शृंगार रूप रस भरे हुए हैं सुधा-किरण के मोती ये।
बाँधे सीने में मूरति सी दरशावें रूप उदोती ये।[4]

नारायणस्वामी — हम न भये ब्रज में प्रगट यही रही मन आस।
नित प्रति निरखत युगल छवि कर वृन्दावन वास।[5]

भारतेन्दु— छतियाँ लेहु लगाय सजन अब मत तरसाओ रे।
तुम बिन तलफत प्रान हमारे नयन सों बहै जल की धारे।[6]

उपर्युक्त उद्धरणों में रेखांकित अंशों पर खड़ीबोली की छाया स्पष्ट है तथा वाक्य-रचना पर ब्रजभाषा का संस्कार अल्प मात्रा में ही लक्षित होता है। किन्तु खड़ीबोली का यह मिश्रण कृष्णभक्ति-काव्य की प्रकृति के प्रतिकूल सिद्ध हुआ तथा ब्रजभाषा के ह्रास का कारण बना। फिर भी इतना तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि खड़ीबोली के विकास में कृष्णभक्ति काव्यधारा के इन कवियों की भाषा का अपना निश्चित योग और महत्त्व रहा है।

---

[1] नगर-समुच्चय, इश्क चमन
[2] सरस मंजावलि, छं० ७१
[3] गौराङ्गभूषण मंजावली छं० ८५
[4] आनंद चमन, छं० १६
[5] ब्रज-बिहार पृ० २८८
[6] प्रेम-तरंग छं० ३०

सारांश यह है कि समलोच्य कृष्णभक्ति-काव्य अपनी परम्परा के अनुरूप व्रजभाषा में रचा गया। परन्तु अनेक कवियों के काव्य में भाषा-प्रयोग की विविधता एवं व्रजभाषा के साथ उनके मिश्रण की अभिरुचि का भी विकास हुआ। यह प्रवृत्ति पंजाबी और गुजराती तथा हिन्दी-प्रदेश की कतिपय बोलियों के प्रयोग में विशेष रूप से पल्लवित हुई। व्रजभाषा में तत्समता की प्रवृति संवर्धित होती गयी तथा अपवादों कों छोड़कर मुहावरों और लोकोक्तियों, तथा तद्भव, देशज और अनुकरणत्मक शब्दों का प्रयोग अपेक्षाकृत कम होता गया। रूप-रचना के क्षेत्र में साहित्यिक एवं परिनिष्ठित प्रयोगों की उत्तरोत्तर प्रधानता होती गई। आलोच्च काव्य की व्रजभाषा में एक ओर तो आन्तरिक संक्रमण घटित होता रहा तथा दूसरी ओर संक्रमण के समानान्तर उस पर फ़ारसी शब्द-समूह और खड़ीबोली की रूप-रचना का भी प्रभाव पड़ता रहा। परिणामतः व्रजभाषा लोक से उत्तरोत्तर दूर पड़ती गई। अस्तु, व्रजभाषा के परिष्कारमूलक आन्तरिक संक्रमग तथा वाह्य प्रभाव की समानान्तर प्रक्रियाएँ अन्ततः उसके ह्रास के तत्वों को प्रश्रय देने में सहायक हुईं।

•

उपसंहार

परवर्ती कृष्णभक्ति-काव्य का अपनी पूर्ववर्ती परम्परा के पोषण तथा युगानुरूप स्वरूप ग्रहण करने की दृष्टि से वैशिष्ट्य असंदिग्ध है। विगत विवेचन की समस्त उपलब्धियों के संश्लिष्ट निदर्शन हेतु यहाँ उनका पुनरावलोकन कर लेना उचित प्रतीत होता है।

कृष्णभक्ति और कृष्णलीलाओं का सम्बल लेकर भक्तिकाल में जिस काव्यधारा का अविर्भाव और विकास हुआ उसकी परम्परा अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों में भी विकासमान रही। परन्तु राजनीतिक पराभव और अतिशय श्रृंगारिकता के कारण इस काल में उसका वेग अपेक्षाकृत शिथिल और स्वरूप परिवर्तित हो गया। कृष्णभक्ति का प्रमुख केन्द्र और कृष्ण का लीलाधाम व्रजप्रदेश इन दो शताब्दियों में राजनीतिक संघर्षों से पर्याप्त आक्रान्त रहा। उत्तरी भारत की अस्त-व्यस्त परिस्थितियों का प्रभाव उस पर सर्वाधिक मात्रा में पड़ा। उन्नीसवीं शती के देशव्यापी पुनर्जागरण तथा नवीन चेतना ने व्रजप्रदेश को भी प्रभावित किया। सामन्ती वातावरण तथा कृष्णभक्ति सम्प्रदायों के केन्द्रों में पल्लवित भोगपरक वातावरण से भी समालोच्य काव्य अछूता न बचा। इस युग में विविध संत सम्प्रदायों ने व्रजप्रदेश में अपने केन्द्र स्थापित किये तथा अपने-अपने मतों का प्रचार किया। किन्तु प्रतिकूल परिस्थितियों में भी कृष्णभक्ति के सभी सम्प्रदायों के संरक्षण में काव्य-रचना की परम्परा विकसित होती रही तथा कृष्णभक्ति ने लोकमन को पूर्णरूप से उल्लसित रक्खा।

समालोच्य कृष्णभक्ति-काव्य पर उसकी पूर्ववर्ती काव्यधाराओं का भी प्रभाव मिलता है, जिनमें प्रेमाख्यानक और राम काव्यधाराएँ प्रमुख हैं। घनानन्द, सहचरिशरण, शीतलदास, आदि के काव्य में राधा-कृष्ण की प्रेम-भावना के साथ सूफी तत्वों का मिश्रण इसका प्रमाण है। तुलसी के राम-काव्य की वर्णनात्मक शैली निर्दिष्ट काव्य में पर्याप्त लोकप्रिय हुई। कृष्ण-लीलापरक प्रबंध-काव्यों, साम्प्रदायिक इतिहासों आदि में इसी शैली का अनुगमन मिलता है। इसके अतिरिक्त समसामयिक नीति-काव्यधारा का भी आलोच्य-काव्य पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा तथा कृष्णभक्ति के सामान्य सिद्धान्तों के निरूपण एवं प्रचार हेतु अनेक कवियों ने उपदेश कथन की शैली को अपनाया।

भक्तिकाल में कृष्णभक्ति-काव्य की दो अवांतर धाराएँ मिलती हैं, साम्प्रदायिक और सम्प्रदाय-मुक्त। आलोच्य काल में भी इस काव्य के प्रणेताओं की यही दो श्रेणियाँ प्राप्त होती हैं। निम्बार्क, वल्लभ, चैतन्य, राधावल्लभ और हरिदासी सम्प्रदायों के संरक्षण में पर्याप्त साहित्य रचा गया। राधा-कृष्ण ने देश-काल के अनुरूप अपना रूप बदल कर रीति-कवियों के काव्य में भी नायक और नायिका की भूमिका ग्रहण की तथा लोक में अनेक कवियों ने राधा-कृष्ण की लीलाओं को अपनी काव्य-साधना का आलम्बन बनाया।

निम्बार्क-सम्प्रदाय के इस युग के कवियों में वृन्दावनदेव, घनानन्द, रसिक-गोविन्द, ब्रजदासी, कृष्णदास, सुन्दर कुंवरि और नारायणस्वामी मुख्य हैं। इन्होंने अनेक काव्यों की रचना की। किन्तु कवित्व की दृष्टि से इन सभी में घनानन्द का स्थान मूर्धन्य पर है। वल्लभ-सम्प्रदाय के अन्तर्गत इस युग में अपेक्षाकृत कम काव्य रचा गया। इस सम्प्रदाय के केवल चार कवि उल्लेख-नीय हैं, हरिराय, ब्रजवासीदास, नागरीदास और भारतेन्दु, परन्तु इन सभी के काव्य का अपना वैशिष्ट है। समालोच्य युग में चैतन्यमत के अनेक कवियों और उनकी कृतियों के उल्लेख प्राप्त होते हैं, जिनमें मनोहरराय, प्रियादास, वैष्णवदास रसजानि, सुबल श्याम आदि कई उल्लेखनीय हैं। चैतन्यमत के अधिकांश कवियों का व्यक्तित्व अनुवादक और सम्प्रदाय प्रचारक का है। राधावल्लभ-सम्प्रदाय के अन्तर्गत सर्वाधिक काव्य रचा गया। निर्दिष्ट युग के राधावल्लभीय रचनाकारों की संख्या शताधिक है, जिनमें गोस्वामी रूपलाल, रसिकदास, चाचा वृन्दावनदास, सहचरिसुख आदि मुख्य हैं। इनमें चाचा वृन्दावनदास का इस युग के समस्त कवियों में सर्वाधिक महत्व है। उनका काव्य परिमाण और गुण दोनों ही दृष्टियों से उत्कृष्ट है। हरिदासी सम्प्रदाय के कवियों में ललितकिशोरी देव, ललितमोहनी देव, किशोरीदास, बनीठनी आदि कई रचनाकारों के उल्लेख प्राप्त होते हैं किन्तु इनका कृतित्व-काव्य-दृष्टि से उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना कि अन्य सम्प्रदायों के कवियों का लक्षित होता है।

सम्प्रदाय-मुक्त, कृष्णपरक रीति-कवियों ने अपने काव्य-हेतु के अनुरूप राधा-कृष्ण की लीलाओं का पर्याप्त उपयोग किया। इस काव्य पर कृष्ण-भक्ति का पूरा प्रभाव है। कृष्णलीलाओं के समस्त उपकरण इस काव्य में मिल जाते हैं, किन्तु इसकी मूल चेतना भक्ति न होकर शृंगार ही है। रीति-काव्य की शृंगारिकता एवं ऐहिक दृष्टिकोण का प्रभाव अनेक साम्प्रदायिक

कवियों के काव्य पर भी मिलता है। इस युग में सम्प्रदाय-मुक्त वर्ग में राधा-कृष्ण की लीलाओं का आधार लेकर आत्मानुरंजन अथवा लोकानुरंजन के उद्देश्य से काव्य-रचना करने वाले भी अनेक कवि हुये। इनके काव्य की भाषा, शैली, अभिव्यंजना आदि पर रीति काव्य का प्रभाव प्रचुरमात्रा में मिलता है। सम्प्रदाय-मुक्त कृष्ण-काव्य की ये दोनों हीं धाराएँ इस तथ्य की प्रतीक हैं कि आलोच्य युग में भी लोक में राधा-कृष्ण की लीलाओं के प्रति पर्याप्त आकर्षण विद्यमान था। राधा-कृष्ण लोक के रंग में रंग कर उसे निरन्तर अनुरंजित कर रहे थे।

आलोच्य कृष्णभक्ति-काव्य के अन्तर्गत कृष्णभक्ति और कृष्ण-लीलापरक संस्कृत और बंगला ग्रन्थों के अनुवाद की पुष्ट परम्परा मिलती है। इनमें भागवत के अनुवाद सबसे अधिक संख्या में हुए। भागवत के अनुवादों के प्रति साम्प्रदायिक ओर सम्प्रदाय-मुक्त दोनों ही वर्ग के कवियों की सक्रिय रुचि लक्षित होती है। समस्त अनूदित काव्यों का प्रयोजन कृष्णलीलाओं और कृष्णभक्ति का लोक में प्रचार तथा मूल ग्रन्थों में प्राप्त स्वरूप एवं भावधारा का आस्वादन रहा है। अतएव अनूदित-काव्य को रचनाकारों की अनुभूति का प्रतिफलन नहीं कहा जा सकता।

अनूदित काव्यों के अतिरिक्त साम्प्रदायिक कृष्णभक्त कवियों द्वारा सिद्धान्त, टीका, भक्तचरित तथा नाममाला और कोशात्मक-काव्य भी प्रचुर संख्या में रचे गए। सिद्धान्त-काव्यों में प्रायः रचनाकारों के सम्प्रदायों की भावधारा की विवृति तथा भक्ति सिद्धान्तों के सामान्य कथन की प्रवृति ही उनका अभिप्रेत रही है। इस काव्य में प्रतिपाद्य की मौलिकता का सर्वथा अभाव मिलता है। भक्तचरित तथा परम्परा विषयक काव्यों में भक्ति नामावलियों तथा साम्प्रदायिक इतिहास का निरूपण करने वाले काव्यों की सर्वाधिक रचना हुई। यह समस्त काव्य वस्तुतः भक्तमाल साहित्य का ही परिवर्तित रूप है। इसका भक्तों के जीवनवृत्त विषयक सूत्रों की दृष्टि से भी पर्याप्त महत्व है, किन्तु इस काव्य में कृष्णलीलाओं का प्रत्यक्ष तथा रसात्मक आधार नहीं लक्षित होता। टीका-काव्यों की सर्वाधिक रचना राधावल्लभ-सम्प्रदाय के अन्तर्गत हुई। इस काव्य में वर्ण्यवस्तु की मौलिकता का अभाव तथा आधार ग्रन्थों की भावधारा के अनुकरण की प्रवृत्ति प्रधान रही है। टीका काव्यों में भी रचनाकारों की अनुभूति का कोई योग नहीं लक्षित होता। नाममालाओं तथा कोशात्मक रचनाओं में राधा-कृष्ण, व्रज, तथा

कृष्णोपासना के विविध तत्त्वों के कथन तथा अर्थ निरूपण की प्रवृत्तियाँ प्रधान रही हैं।

आलोच्य काव्य में राधा-कृष्ण की पुराणों में प्राप्त प्रायः समस्त लीलाएँ वर्णित हुई हैं। विविध कृष्णभक्ति सम्प्रदायों के कवियों ने अपने काव्य में कृष्णलीलाओं का समावेश अधिकतर साम्प्रदायिक भावधारा के अनुरूप ही किया है, किन्तु इसके अपवाद भी बराबर मिलते हैं। इस युग में राधा-कृष्ण की अनेक लीलाओं ने साम्प्रदायिक उत्सवों तथा विविध सम्प्रदायों के सामान्य उत्सवों ने कृष्णलीलाओं का रूप ग्रहण कर लिया। लीला-स्थल और प्रकृति की दृष्टि से निर्दिष्ट काव्य में राधा-कृष्ण की लौकिक वृन्दावन लीलाओं की प्रधानता रही है। राधावल्लभीय कवियों विशेषकर, चाचा वृन्दावनदास ने कृष्णलीलाओं को अपनी साम्प्रदायिक दृष्टि का विशिष्ट आधार प्रदान किया तथा अनेक नवीन उद्भावनाओं के द्वारा उन्हें सम्पन्नता प्रदान की। उनके द्वारा वर्णित राधा की नन्दगाँव बरसाने की लौकिक लीलाएँ कृष्ण-कथा में नवीन अध्याय जोड़ती हैं। रासलीला के राधिका-महारास और द्वारका-रास परवर्ती कृष्णभक्ति-काव्य की विशिष्ट उपलब्धियाँ हैं। मथुरा और द्वारका की कृष्णलीलाएँ परम्परा के अनुरूप इस काव्य में भी उपेक्षित-सी रही हैं। कुछ ही प्रसंग, जिनमें भ्रमरगीत, सुदामा-चरित और रुक्मिणी-परिणय मुख्य हैं, कवियों को आकृष्ट कर सके। सामूहिक रूप से आलोच्य काव्य में वर्णित कृष्ण-कथा के अन्तर्गत वस्तुगत नवीन उद्-भावनाओं की दृष्टि से राधा-कृष्ण की वृन्दावन तथा राधा की नंदगाँव बरसाने की लौकिक लीलाएँ ही महत्वपूर्ण हैं। काव्य में कृष्णलीलाओं का परम्परागत पौराणिक रूप लुप्त होता गया तथा उनके अन्तर्गत लोकरंजक तत्वों की उत्तरोत्तर प्रधानता होती गई।

प्रत्येक काव्यधारा का उसकी प्रकृति और परम्परा के अनुरूप एक अपना विशिष्ट काव्य-रूप बन जाता है। किन्तु विकास की प्रक्रिया में अनेक कवि परम्परा संवहन के साथ ही उससे भिन्न काव्य-रूपों का भी प्रयोग करते हैं। इस काल के कृष्णभक्त कवियों ने अधिकतर गेय पदों और मुक्तकों में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कीं, किन्तु इनके साथ ही कथा-प्रबन्धों और लीला नाटकों के प्रति भी उनका पर्याप्त आकर्षण लक्षित होता है। इस युग का कृष्णभक्ति-काव्य गीति-काव्य की दृष्टि से सम्पन्न नहीं कहा जा सकता। उसमें सहज अन्तःप्रेरणा एवं आत्माभिव्यक्ति के स्थान पर इतिवृत्तात्मक तत्वों का

प्राचुर्य मिलता है। मुक्तकों का इस काव्य में सर्वाधिक प्रयोग हुआ है, जो मूलतः रीति-काव्य की चमत्कार वृत्ति का प्रभाव कहा जाएगा। भक्तिकाल के कृष्णभक्ति-काव्य में जो लोकप्रियता गेय पदों में प्राप्त थी, समालोच्य काव्य में वही मुक्तकों को प्राप्त हुई। मुक्तकों के जो रूप इस काव्य में व्यवहृत हुए हैं, उनमें शुद्ध, राग-बद्ध, वर्णनात्मक, संख्यावाची, वर्णमालाश्रित, छंदाश्रित, ऋतु और उत्सवपरक, तथा दृष्टिकूट मुख्य हैं। इन सभी के अन्तर्गत कवित्त, सवैया और दोहा छंदों की प्रधानता रही है।

इस युग के कृष्णलीलापरक कथा-प्रबन्ध शैली की दृष्टि से दो प्रकार के हैं, आख्यानक शैली के कथा-प्रबन्ध और पद-शैली के कथा-प्रबन्ध। इनमें प्रथम प्रकार के कथा-प्रबन्ध अपेक्षाकृत अधिक संख्या में रचे गए। भागवत तथा अन्य पुराणों के अनुवादों में भी आख्यान शैली का ही अनुगमन हुआ है। पद-शैली के कथा-प्रबन्ध संख्या में कम हैं। इनमें गीतामृत गंगा और लाड़सागर मुख्य हैं। भावधारा की दृष्टि से दोनों ही प्रकार के कथा-प्रबन्ध ऐश्वर्यपरक तथा माधुर्यपरक कोटियों के अन्तर्गत रक्खे जा सकते हैं। इन्होंने कृष्णलीलाओं तथा उनकी भावधारा को लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण योग दिया। कुछ कवियों के गेय पदों और मुक्तकों को छोड़कर प्रायः समस्त काव्य-रूपों में इतिवृत्तात्मक तत्वों की प्रधानता मिलती है। काव्य-रूपों की यह अनेकरूपता कृष्णभक्ति-काव्य की प्रवृत्ति के प्रतिकूल सिद्ध हुई तथा इनके अन्तर्गत उसकी मूल संवेदना सुरक्षित नहीं रह सकी।

आलोच्य काव्य में कृष्णलीलाओं के समान दृश्य-चित्रण के क्षेत्र में भी पुराणाश्रित दृश्यों का अभाव मिलता है। दृश्यों के अन्तर्गत प्रायः काल्पनिक उद्भावनाओं की ही प्रमुखता रही है। फिर भी रासलीला आदि के भागवत में चित्रित दृश्यों की कतिपय कवियों के काव्य में रूढ़ अभिव्यक्ति देखने को मिल जाती है। लोकगीतों में चित्रित दृश्यों में वर्णनात्मकता का प्राधान्य रहा है तथा मुक्तकों में प्रायः कल्पना प्रसूत दृश्यों की उद्भावना हुई है। युग की अतिशय श्रृंगारिकता एवं सामन्ती ऐश्वर्य के प्रभाव स्वरूप अनेक कवियों ने राधा-कृष्ण के रूप और उनकी लीलाओं से सम्बन्धित दृश्यों को विकृत भी किया है, जो उनके चिरपरिचित रूप एवं लीलापरक उदात्त दृश्यों की तुलना में हमारी सहानुभूति नहीं प्राप्त कर पाते।

कृष्णलीलाओं का प्रकृति से घनिष्ठ एवं भावात्मक सम्बन्ध है। इस युग के समस्त कृष्णभक्त-कवियों ने परम्परा के अनुरूप वृन्दावन की आदर्श प्रकृति

का चित्रण करते हुए उससे आत्मीयता स्थापित की है। आलोच्य-काव्य में प्रकृति के आदर्श रूप के अतिरिक्त उसका उद्दीपन रूप भी प्रचुरता के साथ वर्णित हुआ है। षट्-ऋतु वर्णन और बारहमासा की रूढ़ शैलियों पर आधारित प्रकृति चित्रण ने भी कुछ कवियों को आकृष्ट किया। प्रकृति के उपकरणों का तो राधा-कृष्ण के रूप-चित्रण में प्रायः सभी कवियों ने उपमान रूप में प्रयोग किया है।

राधा-कृष्ण के सौन्दर्यांकन में उक्ति-वैचित्र्य और अलंकारों का प्रायः सभी कवियों ने आश्रय लिया है। इनके प्रयोग में साम्प्रदायिक तथा रीति कवियों के दृष्टिकोण में प्रयोजनगत अन्तर मिलता है। परन्तु कलात्मक दृष्टिकोण के इस अन्तर के होते हुए भी इन दोनों परम्पराओं के कवियों द्वारा रचित काव्य के मध्य कोई विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती क्योंकि काव्य-रचना के समसामयिक प्रवाह से दोनों ही परम्पराओं का कृष्ण-काव्य प्रभावित हुआ है। उक्ति-वैचित्र्य की दृष्टि से आलोच्य काव्य में उनके रूढ़ प्रयोगों की प्रधानता रही है। किन्तु घनानन्द की उक्तियों में अद्‌भुत लाक्षणिकता मिलती है। व्रजभाषा के सहज माधुर्य. नाद-सौंदर्य, वर्ण-मैत्री से साम्य रखने वाले अनुप्रास, वीप्सा और पुनरुक्ति-प्रकाश का शब्दालंकारों में सर्वाधिक प्रयोग मिलता है, अन्य शब्दालंकारों का प्रयोग अपेक्षाकृत कम हुआ है। अर्थालंकारों में सादृश्य, वैषम्य और अतिशयमूलक अलंकारों की प्रधानता रही है।

आलोच्य काव्य में पद-शैली, लोकगीतों और छंदों के क्षेत्र में अनेकरूपता मिलती है। भक्तिकाल की तुलना में इस युग में पद-शैली का उत्कृष्ट रूप नहीं मिलता तथा उसकी परम्परा ह्रासोन्मुखी-सी लक्षित होती है। किन्तु कृष्णभक्ति सम्प्रदायों में कीर्तन की परम्परा के प्रभाव स्वरूप पद-शैली की लोकप्रियता और उपयोगिता यथावत बनी रही। साम्प्रदायिक उत्सवपरक पद प्रायः वर्णनात्मक प्रकृति के हैं। सभी प्रकार के पदों में शास्त्रीय संगीत का आधार मिलता है। इनके अन्तर्गत प्रयुक्त संगीत शैलियों में ध्रुवपद, ख्याल, टप्पा, ठुमरी और दादरा मुख्य हैं। पदों में विविध रागों का भी प्रयोग हुआ है, जो प्रायः सर्वत्र पदस्थ वस्तु तथा रसानुरूप ही नियोजित हुए हैं।

कुछ कवियों ने लोकचेतना की अभिव्यक्ति एवं सामूहिक गेयता के उद्देश्य से लोकगीतों की भी रचना की। समस्त लोकगीतों में प्रधानता व्रजप्रदेश में प्रचलित लोकगीतों की रही है, किन्तु भारतेन्दु के काव्य में उनसे इतर पूर्वी प्रदेश में प्रचलित लोकगीतों की भी शैलियाँ प्रयुक्त हुई हैं। अधिकांश

लोकगीतों में कल्पना प्रसूत एक कथातंतु की योजना मिलती है। पदों के अन्तर्गत रचे जाने के कारण सभी लोकगीत शास्त्रीय रागों से भी अनुशासित रहे हैं। सभी लोकगीत आकार में पर्याप्त विस्तृत हैं तथा कुछ लोकगीतों का विस्तार तो शताधिक चरणों तक हुआ है, जिससे उनमें एकरसता सी आ गयी है, किन्तु लोकधुनों के प्रयोग द्वारा उसका परिहार करने की प्रवृत्ति प्राय: सर्वत्र मिलती है। छंदों का प्रयोग प्रायः सर्वत्र काव्य-रूपों की प्रकृति के अनुरूप ही हुआ है। स्वतंत्र रूप में तथा पदों के अन्तर्गत प्रयुक्त मात्रिक छंदों में चौपाई, पद्धरि, अरिल्ल, सखी, शृंगार, चंद्रिका, रूपमाला, कुंडल, सार, सरसी, करखा आदि मुख्य हैं। इन मात्रिक छंदों के अतिरिक्त मांझ, लावनी, तथा वर्णिक छंदों में कवित्त और सवैया भी पर्याप्त लोकप्रिय हुए। राधावल्लभ-सम्प्रदाय के चाचा वृन्दावनदास ने कतिपय नवीन मिश्रित छंदों का निर्माण किया, जिनका कृष्णभक्ति-काव्य की परम्परा में अपना वैशिष्ट है। उन्नीसवीं शती के कतिपय कवियों द्वारा प्रयुक्त फ़ारसी छंदों से कृष्ण-काव्यधारा के अन्तर्गत नवीन प्रवृत्ति आविर्भूत हुई। फ़ारसी छंदों में ग़ज़ल के प्रति अनेक कवि आकृष्ट हुए। इनका प्रयोग प्रायः खड़ीबोली मिश्रित व्रजभाषा के साथ मिलता है।

अपनी परम्परा के अनुरूप समालोच्य-काव्य व्रजभाषा में ही रचा गया। किन्तु कुछ कवियों ने व्रजभाषा के साथ पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती, बंगला आदि प्रान्तीय भाषाओं तथा अवधी, भोजपुरी, खड़ीबोली आदि हिन्दी-प्रदेश की उपभाषाओं में भी काव्य रचना की। भाषाओं और बोलियों के ये प्रयोग कवियों की विविध भाषा-प्रियता के द्योतक हैं, उनकी व्रजभाषा के किसी रूप विशेष के नहीं। समालोच्य काव्य की व्रजभाषा में तत्सम शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर बढ़ती गई तथा तद्भव, देशज और अनुकरणात्मक शब्दों का प्रयोग अपेक्षाकृत कम होता गया। उन्नीसवीं शताब्दी के अनेक कवियों में व्रजभाषा के साथ फ़ारसी शब्दों के मिश्रण और खड़ीबोली के प्रति पर्याप्त आकर्षण लक्षित होता है। घनानन्द और भारतेन्दु के अतिरिक्त सभी कवियों ने मुहावरों और लोकोक्तियों का कम प्रयोग किया है। समालोच्य-काव्य की भाषा में अधिकतर साहित्यिक शब्द-रूपों का ही व्यवहार हुआ है। संज्ञा, सर्वनामों, क्रियापदों, परसर्गों, अव्ययों, क्रिया विशेषणों आदि के प्रयोगों के अध्ययन से यह तथ्य भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है। व्रजभाषा में साहित्यिक प्रयोगों की प्रचुरता तथा वाह्य प्रभाव की

प्रवृत्तियों का प्रभाव यह पड़ा कि वह लोक से उत्तरोत्तर दूर पड़ती गईं, और उन्नीसवीं शताब्दी तक उसके ह्रास के तत्त्व स्पष्ट रूप से परिलक्षित होने लगे।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही नवीन राजनीतिक, सामाजिक, बौद्धिक परिवेश तथा देशभक्ति एवं राष्ट्रीयता की भावनाओं ने लोकमन में भक्ति और दर्शन के प्रति एक सहज विकर्षण उत्पन्न कर दिया, जिसके प्रभाव स्वरूप व्रजभाषा कृष्णभक्ति काव्यधारा का प्रवाह अवरुद्ध-सा हो गया। बीसवीं शताब्दी में रचित व्रजभाषा कृष्णभक्ति-काव्य अधिकांशतः अपनी पूर्व परम्परा का निर्वाह मात्र प्रतीत होता है। किन्तु कवियों ने लोकनायक कृष्ण के स्वरूप को युगानुरूप बदल कर उसमें देशव्यापी राष्ट्रीयता की क्रान्तिकारी भावना के प्रसार तथा लोकरक्षा के आदर्शों की प्रतिष्ठा की। उन्होंने कृष्ण के समानान्तर राधा के स्वरूप में भी परिवर्तन किया तथा बीसवीं शताब्दी की राधा ने रसकेलि का परित्याग कर लोकसेवा के पुनीत अनुष्ठान में सक्रिय योग दिया। राधा-कृष्ण के नवोद्घाटित रूप यद्यपि पूर्णतया युगानुरूप कहे जाएगें, परन्तु वे उनके चिरपरिचित माधुर्य मण्डित रूप की तुलनामें लोकप्रियता नहीं प्राप्त कर सके।

●

क—व्यक्ति—नामानुक्रमणिका

ख—ग्रन्थ-नामानुक्रमणिका